भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन

एव

संवैधानिक विकास

(१६०० ई० से १९४७ ई० तक)

लेखक

रणजीतसिंह दरडा

राजनीतिशास्त्र विभाग उदयपुर विश्वविद्यालय

उदयपुर



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

जयपुर

भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

प्रथम संस्करण १९७२

मूल्य १८

प्रकाशक
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए २६/२ विद्यालय मार्ग तिलक नगर,
जयपुर-४

मुद्रक
ओरियन्टल प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
नाट के दुबे का रास्ता चाँदपोल बाजार
जयपुर-१

पूज्य माँ और श्रद्धेय पिताजी

को

सादर समर्पित

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत पीछे १९६९ में पाँच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गई।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गई है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चंदनमल बैद

अध्यक्ष

विषय-सूची

१

समाजशास्त्रीय तत्त्व

प्रवेश

प्रत्येक देश के संविधान की आत्मा और उसके क्रियात्मक स्वरूप पर उसकी प्राकृतिक दशा, उसकी जनसंख्या, उसकी प्राकृतिक सम्पदा, उसकी धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओं आदि समाजशास्त्रीय तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है। इन तत्त्वों का संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त किए बिना किसी भी देश के संविधान के स्वरूप और संस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। भारतवर्ष के संविधान और संस्थाओं के उचित अध्ययन के लिए समाजशास्त्रीय तत्त्वों के ज्ञान का महत्त्व और भी अधिक है। भारत न केवल सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है बल्कि विश्व का विशालतम लोकतन्त्रीय राज्य तथा एशिया में प्रजातन्त्र का ज्योति-स्तम्भ भी है। उसकी अन्य राष्ट्रों से पृथक आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक दशाएं हैं तथा उसकी सरकार और राजनीति का स्वरूप निर्माणाधीन है। अतः यह आवश्यक है कि उसके संविधान और राष्ट्रीय विकास का अध्ययन समाजशास्त्रीय तत्त्वों के अध्ययन से प्रारम्भ किया जाए, जिससे कि देश के राजनैतिक हृदय-पटल को भली भाँति समझा जा सके।

१ देश की स्थिति

भारतवर्ष पूर्वी गोलार्ध के मध्य विषुवत् रेखा के उत्तर में स्थित है। इस के उत्तर में हिमालय है जिसके पीछे ४००० या ५०० मीटर ऊंचा तिब्बत का पठार है। एक बड़ी पर्वत श्रेणी भारत को एशिया के देशों (पाकिस्तान को छोड़कर) से पृथक करती है। उत्तर में हिमालय पर्वत भारत को तिब्बत व चीन से पृथक करता है। उत्तर-पूर्व में पटकोई, नागा और लुशाई की पहाड़ियां इसे बर्मा से पृथक करती हैं। उत्तर पश्चिम में पाकिस्तान है। शेष सभी ओर भारत समुद्र से घिरा हुआ है—पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण में विशालकाय हिन्द महासागर। इस प्रकार भारतवर्ष उत्तर पश्चिम को छोड़कर चारों ओर प्राकृतिक सीमाओं से घिरा है। भारत के उत्तर में नेपाल और चीन, पूर्व में बर्मा और बांगला देश, उत्तर पश्चिम में अफगानिस्तान और पाकिस्तान, दक्षिण में मन्नार की खाड़ी और पाक जलडमरू भारत को लंका से पृथक करते हैं। बंगाल की खाड़ी में अंडमान और निकोबार, अरब सागर में मीनिकोय और अमन द्वीप हैं जो भारत देश के ही अंग हैं। दूर पूर्व में जापान, दक्षिण-पूर्व में आस्ट्रेलिया महाद्वीप, दक्षिण-पश्चिम में अफ्रीका महाद्वीप और उत्तर-पश्चिम में यूरोप है।

पश्चिम में ही स्वेज नहर है जिसमें से होकर जहाज यूरोप को जाते हैं। भारत हिन्द महासागर के जहाजों के मार्ग में भी पड़ता है और यूरोप से जो हवाई जहाज पूर्वी देशों को जाते हैं वे भारत के भूभाग के ऊपर से होकर आते जाते हैं। इस प्रकार भारत की स्थिति सैनिक एवं आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

२ देश का विस्तार एवं विभाग

भारत का भौगोलिक विस्तार विषुवत् रेखा के उत्तर में ८ ४ उत्तरी अक्षांश से लेकर ३७ ६ उत्तरी अक्षांश तक तथा ६८ ७ पूर्वी देशान्तर से ९७ २५ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। कर्क रेखा इस देश को लगभग दो भागों में बाँटती है। आसाम के पूर्व से कच्छ के पश्चिम तक देश की लम्बाई २९७७ किलो मीटर और काश्मीर के उत्तर से सुदूर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक ३२१४ किलो मीटर है। देश की स्थलवर्ती सीमा १५१६८ किलो मीटर है तथा समुद्री सीमा ५६८९ किलो मीटर है। देश का क्षेत्रफल ३२ ७६ १४१ वर्ग किलो मीटर है।

भारत का क्षेत्र २१ राज्यों एवं ९ केन्द्र शासित प्रदेशों में विभक्त है जिनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है

राज्य

नाम राज्य	क्षेत्रफल वर्ग मील/ वर्ग किलो मीटर	जनसंख्या (१९७१ की जनगणना)	राजधानी	भाषा
अनुक्रम	२	३	४	५
आन्ध्र प्रदेश	२७६८१ व कि मी	३ ३४ ६९ ६५१	हैदराबाद	तेलगू
आसाम	७८ व कि मी	१४ १	शिलांग*	असमी व बंगला
उड़ीसा	१५६१८ व कि मी	२१ ९३४ ८२७	भुवनेश्वर	उड़िया
उत्तर प्रदेश	२ ३ व कि मी	८ २९६ ४५३	लखनऊ	हिन्दी
केरल	३ ९ व कि मी	२१ २८ ३९७	त्रिवेन्द्रम	मलयालम
जम्मू काश्मीर	२२२८ व कि मी	४६१५ ७६	श्रीनगर	डोगरी/ कश्मीरी
पंजाब	५ २३८ व कि मी	१३ ४७२ ९७२	चंडीगढ़	पंजाबी
हरियाणा	४४ व कि मी	९ ९७१ १६५	चंडीगढ़	हिन्दी
प बंगाल	८७९ व कि मी	४४ ४४ ६५	कलकत्ता	बंगाली
बिहार	१७४ व कि मी	५६ ३८७ २९७	पटना	हिन्दी
महाराष्ट्र	३ ७५ व कि मी	५ २९५ ८१	बम्बई	मराठी
गुजरात	१ ७१ व कि मी	२६६९ ९२	अहमदाबाद	गुजराती

* असम राज्य के लिए नई राजधानी का निर्माण हो रहा है।

१	२	३	४	५
मध्यप्रदेश	४४३६ ० व कि मी	४१ ४६६ १२६	भोपाल	हिन्दी
तमिलनाडु	१२६८ व कि मी	४११ ३ १२२	मद्रास	तामिल
मैसूर	१ ६२ २०० व कि मी	२६ २२४ ४६	बगलोर	कन्नड
राजस्थान	३ ४२ ३ ० व कि मी	२५ ७२४ १४२	जयपुर	हिन्दी (राजस्थानी)
त्रिपुरा	१० २४० व कि मी	१ ५५६ ८२२	अगरतला	
नागालैड	१६ ५ व कि मी	५१५ ७ १	कोहिमा	असमिया
हिमाचल प्रदेश	५६ २६३ व कि मी	३ २४ ३३२	शिमला	
मेघालय	२२ २ व कि मी	६८३ ३३६	शिलाग	
मणीपुर	२२ ०१ व कि मी	१ ६६ १५५	इम्फाल	

केन्द्र शासित प्रदेश

नाम राज्य	क्षेत्रफल	जनसंख्या	राजधानी
१	२	३	४
दिल्ली	१ ५ व कि मी	४ ६६ ३८	दिल्ली
मिजोराम	२०७ व कि मी	३२ ०	ऐजल
अरुणाचल प्रदेश	८ ३०० व कि मी	४ ६६ ३६४	जीरो
अडमान निकोबार द्वीप	८ ३ व कि मी	११५ ०६	पोर्टब्लेयर
लक्षद्वीप मीनि कोय अमन द्वीप	३० व कि मी	३१ ३६८	कोजीकोडे
चडीगढ	११४ व कि मी	२ ५६ ९७६	चडीगढ
दादरा नगर हवेली	५ व कि मी	७४ १६५	सिलवासा
गोवा दामन द्यु	३ ७ व कि मी	८ ५७ १८	पजिम
पाडेचेरी	२ ० व कि मी	४ ७१ ३४७	पाडचेरी

३ देश की भौतिक आकृतियाँ

भारत की भौतिक रचना एक विशिष्ट प्रकार की है जिसमे ऊचे पर्वत पठार और विशाल मदान सभी स्थित हैं। भारत के कुल क्षेत्रफल का २६ ३ प्रतिशत पर्वतीय भाग (३० मीटर से ऊचा) २७ ७ प्रतिशत पठारी भाग एव ४३ प्रतिशत समतल मैदानी भाग है। भौगोलिक इतिहास तथा बनावट के अनुसार भारत को चार भौगोलिक विभागों—उत्तर का पहाडी प्रदेश सतलज–गगा–ब्रह्मपुत्र का मदान दक्षिण का पठार एव तटीय म दान—मे विभाजित किया जाता है।

(अ) उत्तर का पहाड़ी प्रदेश

भारत की उत्तरी सीमा पर एक विशाल पर्वत-समूह स्थित है। इसमें अनेक पर्वत-श्रेणियाँ हैं। इन श्रेणियों में हिमालय सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सिन्धु एवं ब्रह्मपुत्र नदियाँ इस पर्वत-समूह को तीन भागों में विभक्त करती हैं (१) हिमालय (2) हिमालय के उत्तर पश्चिम के पर्वत तथा (३) हिमालय के दक्षिण-पूर्व के पर्वत। हिमालय पर्वत श्रेणी मोडदार पर्वतों की श्रेणी है। यह संसार का सबसे नवीन पहाड़ है। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट है जिसकी ऊँचाई ८८४ मीटर है। कंचनजंगा ८५९८ मीटर धवलगिरी ८१७२ मीटर आदि अनेक उच्चातिउच्च चोटियाँ इस पर्वत श्रेणी में हैं। हिमालय की लगभग १४ चोटियाँ आल्प्स की उच्चतम चोटी माउन्ट ब्लेंक से अधिक ऊँची हैं। हिमालय के मध्य कहीं-कहीं ऊँचे मैदान हैं जिन्हें दून मैदान कहते हैं। इस पर्वत-माला में काश्मीर एवं कुल्लू घाटी अत्यन्त विस्तृत उपजाऊ एवं सुन्दर दृश्यों वाली है। हिमालय की यह दीवार २४१४ किलो मीटर लम्बी और २४ से ३२ किलोमीटर चौड़ी है।

(ब) सतलज-गंगा-ब्रह्मपुत्र मैदान

हिमालय पर्वत-श्रेणी के दक्षिण में स्थित यह मैदान उत्तरी भारत के अधिकांश भाग में पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ है तथा २४१४ किलो मीटर लम्बा है। इसकी चौड़ाई २४१ से ३२१ किलो मीटर तक है। इस मैदान में दो बड़ी नदियाँ गंगा एवं ब्रह्मपुत्र अपनी सहायक नदियों के साथ बहती हैं। इसमें सिन्धु नदी की दो सहायक नदियाँ सतलज एवं व्यास भी बहती हैं। गंगा नदी की प्रमुख सहायक नदियाँ यमुना रामगंगा आदि करनाली गंडक कोसी चम्बल बेतवा केन सोन आदि हैं। ब्रह्मपुत्र नदी क्रम से तिस्ता मेघना सुरमा आदि नदियाँ सम्मिलित हैं। ब्रह्मपुत्र नदी डिब्रूगढ़ तक (लगभग १० किलो मीटर ऊपर) जलयानों द्वारा यातायात के लिए सुलभ है किन्तु जहाज केवल गोहाटी तक ही पहुँच पाते हैं। इस मैदान की आबादी बड़ी घनी है और इसमें बड़े-बड़े नगर बसे हुए हैं।

(स) दक्षिणी पठार

सतलज-गंगा ब्रह्मपुत्र-मैदान के दक्षिण में एक पठार है जिसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से ४५८ से १२२ मीटर तक है। यह पठार तिकोना है और उत्तर-पूर्व एवं पश्चिम में पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है। ये पर्वत श्रेणियाँ या तो पुराने पहाड़ों के अवशेष हैं (जैसे अरावली की पहाड़ियाँ) या स्वयं पठार के ही कठोरतम भाग हैं जो शरण से बच रहे हैं। इनके किनारे काफी कटे फटे हैं। इस पठार का धरातल टीलेदार या लहरदार है। जिस फटी घाटी से होकर नर्मदा नदी बहती है वह पठारी प्रदेश को दो त्रिकोणाकार भागों में बाँट देती है। उत्तरी भाग मालवा पठार कहलाता है। मालवा पठार के पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम में अरावली की पहाड़ियाँ हैं जो लगभग पूर्व-पश्चिम दिशा में सुदूर फैली हुई हैं।

अरावली के पहाड़ टूटे-फूटे हैं। उनमें सबसे अधिक ऊंचाई वाला आबू पहाड़ समुद्र की सतह से १७२२ मीटर ऊंचा है जो इसके दक्षिण पश्चिम में गुरु शिखर के रूप में विद्यमान है। अरावली के पश्चिम की ओर थार मरुभूमि एवं राजस्थान की मरुभूमि है। अरावली पहाड़ियों से अनेक नदियां निकलती हैं जो बरसात के अतिरिक्त सदा सूखी सी रहती हैं। इसमें प्रमुख नदियां बनास लूनी आदि हैं। मालवा पठार के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत है। यह पर्वत भी कई भागों में विभक्त है। इसका पूर्वी भाग कैमूर की पहाड़ी कहलाता है। यह भी त्रिकोणाकार है और चारों ओर नीची पहाड़ियों से घिरा हुआ है। उत्तर की ओर सतपुड़ा की पहाड़ियां हैं जिनमें से महादेव की पहाड़ियाँ सबसे ऊंची हैं। नर्मदा एवं ताप्ती इस क्षेत्र की प्रमुख नदियां हैं।

दक्षिणी पठार का पश्चिमी किनारा पश्चिमी घाट से आवृत्त है। उनके एक भाग को सह्याद्रि की पहाड़ियाँ भी कहा जाता है। सागर की ओर पश्चिमी घाट का ढाल सीधा है। पूर्व की ओर इसका ढाल साधारण व धीमा है। पश्चिमी घाट उत्तर दक्षिण की ओर फैले हुए लगातार पर्वत हैं। इन्हें पार करना केवल कुछ ही स्थानों पर सम्भव है। उत्तरी भाग में स्थित दो दर्रे थोर घाट एवं पाल घाट का रास्ता सुरंगों से होकर है। दक्षिण में पाल घाट से सपाट मैदान है। पठार के पूर्व में पूर्वी घाट है। उपरोक्त दोनों पर्वत-श्रेणियों को नीलगिरी पहाड़ियाँ दक्षिण में जोड़ती हैं। इनकी सबसे ऊंची चोटी दोदा बेटा समुद्र तल से २६३७ मीटर ऊंची है तथा अन्नमलय पहाड़ी की सबसे ऊंची चोटी अनाईमुडी २६९५ मीटर से अधिक ऊंची है। दक्षिणी पठार का क्षेत्र सतलज गंगा-ब्रह्मपुत्र मैदान की अपेक्षा बहुत कम उपजाऊ है। केवल नदियों की घाटियों में उपज अच्छी होती है। पठार में बहने वाली नदियों के तल लगभग चपटे हैं एवं जहां-जहां वे पठार को छोड़ती हैं वहां-वहां तेज धाराएं या जल प्रपात बनाती हैं।

(३) तटीय मैदान

दक्षिणी पठार के पूर्व एवं पश्चिम में नीची धरती की दो सकरी पट्टियाँ हैं जो समुद्र के किनारे-किनारे चली गई हैं। वे तटीय मैदान कहलाते हैं। पूर्वीय तटीय मैदान का दक्षिणी भाग कर्नाटक का मैदान व कारोमण्डल तट कहलाता है। इसका उत्तरी भाग उत्तरी सरकार का मैदान कहलाता है। पश्चिमी तटीय मैदान दक्षिण में मालाबार तट से प्रारम्भ होकर उत्तर में कोंकण तट व गुजरात तट तक सारे अरब सागर के किनारे फैला हुआ है। यह मैदान काफी सकरा है। तटीय मैदान में लम्बे एव सकरे लगून भी हैं जिनमें समुद्र का जल भर गया है।

(४) देश की जलवायु

भारत की जलवायु मानसूनी है। भारत के ऋतु पर्यवेक्षण विभाग ने एक वर्ष को आधार मान कर एक वर्ष की जलवायु को निम्न प्रकार से निर्दिष्ट किया है —

(१) उत्तरी-पूर्वी मानसून का समय
 (अ) शीत ऋतु जनवरी एवं फरवरी
 (ब) ग्रीष्म ऋतु मार्च से मध्य जून तक।
(२) दक्षिणी-पश्चिमी मानसून का समय
 (अ) वर्षा ऋतु मध्य जून से मध्य सितम्बर तक
 (ब) शरद ऋतु मध्य सितम्बर से दिसम्बर तक।

२२ दिसम्बर के पश्चात् सूर्य मकर रेखा से विषुवत् रेखा की ओर लौटना आरम्भ कर देता है फलस्वरूप भारत में शीत ऋतु का आरम्भ होता है। शीत काल के समय मध्य एशिया उच्च भार का केन्द्र बन जाता है फलस्वरूप भारत में आकाश स्वच्छ मौसम सुहावना एवं तापमान नीचा हो जाता है। उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के तापक्रम में साधारण अन्तर मिलता है। उत्तर से दक्षिण की ओर तापक्रम बढ़ता जाता है। उत्तरी भारत में तापक्रम १ —१२ से ग्रे के लगभग रहता है। दिन में ताप कुछ ऊंचा हो जाता है। कभी कभी पाला भी पड़ता है। दक्षिण भारत में मद्रास में जनवरी में तापमान २४ से ग्र रहता है। मार्च के अन्त में सूर्य कर्क रेखा की ओर बढ़ना आरम्भ कर देता है फलस्वरूप सारे देश में ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ हो जाती है। इस ऋतु के आरम्भ में सबसे ऊंचा ताप दक्षिण भारत में पाया जाता है। अप्रैल मास में मध्यप्रदेश और गुजरात में तापक्रम ३७.७ तथा ४३ से ग्र के लगभग रहता है। क्रमशः भारत के उत्तरी पश्चिमी भाग में तापक्रम बढ़ता जाता है एवं उत्तरी भारत में मई में ताप ४८ से ग्र तक पहुँच जाता है। उत्तरी भारत में उष्ण एवं शुष्क पछुआ हवाएं चलती हैं। इन्हें लू कहा जाता है। इस ऋतु में तटीय क्षेत्रों में स्थलीय एवं जलीय हवाओं के चलने के कारण दैनिक तापमान ५ या ६ से ग्र से अधिक नहीं होता किन्तु आन्तरिक भागों में यह काफी ऊंचा होता है।

मई के अन्त तक सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकने लगता है। ग्रीष्मकालीन हवाएं चलने लगती हैं। वर्षा का प्रारम्भ पहले पश्चिमी तट पर होता है तदुपरान्त अन्य स्थानों पर। देश के विभिन्न भागों में मानसून के आगमन एवं समाप्ति का समय भिन्न भिन्न होता है। ग्रीष्मकालीन मानसून की दो प्रधान शाखाएँ हैं

(१) अरब सागरीय मानसून (दक्षिणी पश्चिमी मानसून) (२) बंगाल की खाड़ी वाली मानसून। अरब सागरीय मानसून के द्वारा भारत में ७५ प्रतिशत वर्षा होती है। इसका प्रभाव पश्चिमी घाट के पश्चिमी भाग में अधिक है जहां पर २५ से भी वर्षा होती है। दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ने पर इस मानसून का प्रभाव व वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। अरब सागरीय मानसून की एक शाखा पश्चिमी घाट के उत्तर में सतपुड़ा और विन्ध्याचल पर्वतों की मध्यवर्ती घाटी में होकर मध्यप्रदेश तक वर्षा करती है। शाखा का उत्तरी भाग गुजरात एवं कच्छ की ओर से प्रवेश करके थार मरुस्थल होकर हिमाचल प्रदेश तक पहुँच जाता है क्योंकि मार्ग में इन

हवाओं को रोकने योग्य कोई ऊंचा पर्वत नहीं है। राजस्थान में अरावली पर्वत है किन्तु इसकी स्थिति इन हवाओं की दिशाओं के समानान्तर है इसलिए वर्षा प्राप्ति में इनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता। पहाड़ियों के दक्षिणी ढालों पर साधारण वर्षा हो जाती है एवं अधिकांश राजस्थान वर्षा शून्य रह जाता है। बंगाल की खाड़ी वाली मानसून का सर्वाधिक प्रभाव आसाम की खासी पहाड़ियों में होता है। सबसे अधिक वर्षा ११९४ से. मी. चेरापूंजी में होती है। आसाम की पहाड़ियों को पार कर उत्तर की ओर वर्षा कम होती है। बंगाल को पार करने के पश्चात् मानसून के दो भाग हो जाते हैं। एक भाग ब्रह्मपुत्र की घाटी में पूर्व की ओर चला जाता है एवं दूसरा भाग पश्चिम की ओर मुड़कर गंगा के मैदान को पार करता हुआ पंजाब तक पहुंच जाता है। यह जैसे जैसे पश्चिम की ओर बढ़ता है वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। उत्तरी भारत के मध्यवर्ती भाग में कम वर्षा होती है क्योंकि इस क्षेत्र में उक्त दोनों मानसूनों का प्रभाव कम होता है। कुछ चक्रवातों के कारण भी काफी वर्षा हो जाती है। इस वर्षा ऋतु में वायुमण्डल में आर्द्रता शत प्रतिशत रहती है। दिन में तापमान अधिक रहता है पर रात्रि को कम। मध्य सितम्बर के पश्चात् मानसून उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर लौटना आरम्भ कर देता है। मानसून के लौटने के साथ साथ उत्तरी पश्चिमी भारत में तापक्रम कम होने लगता है। अक्टूबर मास तक उत्तर भारत, पंजाब, राजस्थान एवं कश्मीर में वर्षा लगभग समाप्त हो जाती है। लौटती हुई मानसून जब तट के निकट पहुंचती है तो बंगाल के डेल्टा भाग, आसाम तथा मद्रास में वर्षा करती है। मद्रास के निकट वर्षा ६५ से ७५ से. मी. तक हो जाती है। भीतर प्रवेश करने पर वर्षा की मात्रा कम होती जाती है।

भारत की उक्त मानसूनी जलवायु का प्रभाव भारतीय आर्थिक जीवन पर पड़ता है जो निम्न प्रकार है —

(१) विषुवत् रेखा के उत्तर में स्थित होने से भारत का अधिकांश भाग गर्म पेटी में है फलस्वरूप देश के निवासी वर्ष भर एक सी मेहनत नहीं कर सकते। ग्रीष्म काल में तो जलवायु अत्यन्त उष्ण होती है। गंगा यमुना के दोआब में तापमान ४६ से. ग्र. तक पहुंच जाता है। लू इतनी अधिक चलती है कि दिन को (११ बजे से ४ बजे तक) घर में बन्द रहना पड़ता है।

(२) भारत में मौसम जल्दी जल्दी बदलता है जिससे फलस्वरूप अनेक बीमारियां पैदा हो जाती हैं। बीमारी के कारण आदमी की कार्यक्षमता कम हो जाती है तथा उसकी शक्ति का पूर्ण प्रयोग नहीं हो पाता है।

(३) भारत के गर्म देश होने से पहाड़ों को छोड़कर तापमान कहीं भी १२ से. से ग्रे. से नीचा नहीं होता। पाले द्वारा भी हानि बहुत कम होती है अतः देश

कृषि की दृष्टि से उत्तम है। फसलें वर्ष भर उगायी जा सकती हैं। साधारणतया दो फसलें उगायी जाती हैं किन्तु बंगाल बिहार उत्तरप्रदेश एवं केरल में तीन फसलें तक उगायी जाती हैं। जलवायु की विविधता का प्रभाव फसलों पर पड़ता है। देश में जो ज्वार बाजरा मक्का चना चावल गेहूं कपास चाय कहवा गन्ना रबड़ आदि अनेक वस्तुएं उत्पन्न होती हैं। मानसूनी जलवायु में ग्रीष्मकालीन तापक्रम ऊंचा होता है और इसके शीघ्र बढ़ जाने से उसका फसलों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। फसल घटिया किस्म की होती हैं अनाज का दाना पतला और छोटा होता है।

(४) जलवायु सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। मनुष्य शीघ्र परिपक्व अवस्था को पहुंच जाता है। अतः जीवन की अवधि ठंडे पश्चिमी देशों से कम है। लड़के-लड़कियाँ किशोरावस्था को शीघ्र प्राप्त हो जाते हैं। अतः विवाह छोटी आयु में हो जाता है। नाजुक उम्र में ही युवक और युवतियों को भार वहन करना पड़ जाता है जिससे उनकी कार्य-कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या भी तेजी से बढ़ती है जो विकासशील देश के लिए हितकर नहीं है।

(५) भारत में वर्षा की स्थिति अनिश्चित है। कभी यह ग्रीष्मकाल में ही आरम्भ हो जाती है तो कभी कई सप्ताह पिछड़ जाती है। कभी वर्षा कुछ समय होकर रुक जाती है तो कभी वर्षा काल बहुत अधिक लम्बा हो जाता है। देश में वर्षा का वितरण समान नहीं है। कुछ भागों में वर्षा २५ सें मी से भी अधिक हो जाती है और देश में ऐसे भी भाग हैं जहाँ वर्षा की प्राप्ति १२७ से मी से भी कम है। देश के ११ प्रतिशत भाग में १९ से मी से अधिक २१ प्रतिशत भाग में १२७ से १९ से मी तक ३७ प्रतिशत भाग में ७६ से १२७ से मी तक २४ प्रतिशत भाग में ३८ से ७६ से मी तक एवं ७ प्रतिशत भाग में ८ से मी से भी कम वर्षा होती है। भारत के अधिकांश भागों में वर्षा मूसलाधार होती है फलस्वरूप वर्षा का जल भूमि का कटाव करते हुए समुद्र की ओर बह जाता है एवं इसका अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता। भारत में किसी न किसी भाग में प्रत्येक मास में वर्षा होती पायी जाती है। अधिकांश वर्षा ग्रीष्मकाल के उत्तरार्ध में हो जाती है। फलस्वरूप शीतकालीन फसलों के लिए सिंचाई के साधनों की आवश्यकता रहती है। देश की कृषि सिंचाई के साधनों पर निर्भर करती है वर्षा की अनिश्चितता देश में आपत्ति का कारण बनती है। किसी वर्ष जलवृष्टि बहुत कम होती है और अकाल पड़ जाता है कभी वर्षा अधिक हो जाती है और नदियों में बाढ़ें आ जाती हैं। देश की अर्थ व्यवस्था को इस प्रकार काफी धक्का पहुँचता है।

(५) देश की प्राकृतिक सम्पदा

भारत में प्राकृतिक साधन पर्याप्त मात्रा में हैं। देश का कुल भौगोलिक क्षेत्र ३२८८ लाख हेक्टेयर है। भूमापन द्वारा निश्चित की गयी भूमि ३०१६ लाख हैक्टेयर है। इसमें बोया जाने वाला मूल क्षेत्र सन् १९६६-६७ में लगभग १३७१ लाख हेक्टेयर था जो विश्व में पाया जाने वाला दूसरे नम्बर का क्षेत्र है। देश में कृषि योग्य भूमि का प्रति व्यक्ति औसत ०.७२ हेक्टेयर है जो ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस से काफी कम है। देश में वर्षा द्वारा लगभग ३७० ४४ करोड़ घन मीटर जल प्राप्त होता है। इसमें १००० मिलियन एकड़ फुट तत्काल वाष्प बनकर उड़ जाता है। ६२ मि एकड़ फुट मिट्टियों द्वारा सोख लिया जाता है एवं नदियों में बहने के लिए १६७७२३ करोड़ घन मीटर शेष रह जाता है। इस जल राशि का भी पूरा पूरा उपयोग नहीं होता। सिंचाई के लिए प्राप्त जल की मात्रा का अनुमान ५६ । ० करोड़ घन मीटर लगाया जाता है किन्तु मार्च १९६६ ई तक केवल १८.८ करोड़ घन मीटर (३ प्रतिशत) का ही उपयोग में लाया गया था। इस जल से भारत की ७७ लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है। सन् १९६६-६७ में नहरों द्वारा ४२ प्रतिशत तालाबों द्वारा १८ प्रतिशत कुओं द्वारा ५ प्रतिशत और अन्य साधनों द्वारा १० प्रतिशत क्षेत्र सींचा गया। तथा उनकी लम्बाई ६७५ मील थी। जल का उपयोग विद्युत शक्ति के लिए भी सम्भव है। देश में ४११० किलोवाट जल विद्युत उत्पन्न करने की क्षमता है किन्तु सन् १९६८-६९ तक केवल ५६१ किलोवाट विद्युत् ही उत्पन्न होती थी। तेल भण्डार १ ३५६२ घन किलो मीटर में उपलब्ध है। अणुशक्ति उत्पन्न करने की भी काफी क्षमता है। केरल एवं मद्रास के तट की मोनोजाइट बालू में २ ३२० मीट्रिक टन थोरियम एवं बिहार में ३ ४८०० मीट्रिक टन थोरियम की मात्रा सुरक्षित है। भारत में कोयला ५३६४ ० ० मीट्रिक टन मैंगनीज १८८२ मीट्रिक टन लोहा २१ २३६ ०० मीट्रिक टन ताँबा १३४ ०० मीट्रिक टन जिप्सम ११३४२ मीट्रिक टन बाक्साइट ३६५६ मीट्रिक टन क्रोमाइट २३ ००० मीट्रिक टन मैग्निशियम २७०००० मीट्रिक टन स्वर्ण ४४ लाख मीट्रिक टन का सुरक्षित भण्डार है। अभ्रक ८५४ वर्ग कि मी क्षेत्र में प्राप्त है।

भारत में वन सम्पदा भी पर्याप्त है। वनों का क्षेत्र ५१२ लाख हेक्टेयर है जो कुल क्षेत्र का २० ४ प्रतिशत है। वन क्षेत्र मुख्यतः हिमालय विन्ध्य और दक्खिन में सीमित है। प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र आधा एकड़ है। एक एकड़ वन से २)६ रुपया की आय है। देश के धन एवं जनसंख्या को देखते हुए भारत में धनोपार्जन बहुत कम है। १९६८ ६९ में राष्ट्रीय आय १९६ -६१ वर्ष के मूल्य आँकड़ा के आधार पर केवल १६६४३ करोड़ रुपए एवं प्रति व्यक्ति आय २१४ रुपया थी जो किसी भी तरह सन्तोषजनक नहीं है।

(६) देश की जनसंख्या

चीन को छोड़कर विश्व में भारत की जनसंख्या सब से बड़ी है। सन् १९७१ की जनगणनानुसार देश की जनसंख्या ५४७९४९०८९ थी जो अब बढ़कर ५६ करोड़ के लगभग हो गयी है। भारत की कुल जनसंख्या उत्तरी एवं दक्षिणी अमरिका की कुल जनसंख्या के योग से भी अधिक है। अफ्रीका महाद्वीप से दुगुनी है आस्ट्रेलिया से ४४ गुनी एवं ब्रिटेन से ९ गुनी अधिक है। भारत में जनसंख्या में वृद्धि डनमार्क की जनसंख्या के बराबर प्रतिवर्ष होती है। देश में जनसंख्या का घनत्व प्रतिवर्ग किलो मीटर १८२ है जो एशिया में जापान और कोरिया को छोड़ कर सबसे अधिक है। भारत में जनसंख्या का घनत्व सब जगह एक सा नहीं है। केरल में ५४८ एवं बंगाल में ५०९ घन व प्रति वर्ग किलो मीटर है जबकि राजस्थान के मरु क्षेत्र में यह ५९ एवं नागालैंड में ३१ से अधिक नहीं है। भारत के अधिकांश निवासी (८२.२ प्रतिशत) गावों में रहते हैं। कृषि यहाँ के निवासियों का प्रमुख धन्धा है। ६९.५ प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी हुई है। भारत में ग्रामों की संख्या ५५८०८९ है तथा नगरों की २५४६ है किन्तु बड़े नगर जिनकी जनसंख्या एक लाख से ऊपर है केवल ११६ है। पिछले कुछ वर्षों में शहरी जनसंख्या का अनुपात बढ़ा है तथा यह इस बात का द्योतक है कि कृषि पर जनसंख्या का भार कम हो रहा है।

(७) देश के निवासी

भारतवर्ष में विभिन्न जातियों के लोग निवास करते हैं। इस का कारण यह है कि विभिन्न समयों में यहाँ विभिन्न जातियाँ बस गयीं। सबसे पहले निग्रायड जाति के लोग अफ्रीका से आकर बसे। इस जाति के चिह्न अब बिल्कुल मिट चुके हैं और अंडमान द्वीप के आदिनिवासियों को छोड़कर और कोई भी भारतीय इनसे उद्भूत नहीं है। निग्रायड जाति के पश्चात् प्रोटो आस्ट्रालायड जाति के लोग फलेस्टाइन से आकर यहाँ बसे। उनका सिर लम्बा रंग काला एवं नाक चपटी थी। मध्यप्रदेश के आदिवासी इस जाति के हैं। भूमध्यसागर जाति की एक शाखा आस्ट्रिया मसोपोटामिया के भाग से अति प्राचीन समय में भारत में आयी। इस जाति के लोगों का सिर लंबा रंग साफ और नाक लम्बी व सीधी थी। ये लोग उत्तरी भारत में बसे। कोल, संथाल, खासी लोग इस जाति के हैं। ५००० ई० पू० एशिया माइनर एवं एजियन द्वीप समूह से द्रविड़ लोग भारत में आए और उन्होंने उत्तरी भारत में अनेक नगर स्थापित किए। आजकल इस जाति के लोग दक्षिण भारत में रहते हैं। इनकी संख्या भारतीय आबादी की २० प्रतिशत के लगभग है। २५०० ई० पू० आर्य भारत में आए। इनका रंग गोरा चेहरा सुन्दर एवं कद लम्बा था। भारत के ७३ प्रतिशत लोग इसी जाति के हैं एवं पंजाब राजस्थान उत्तरप्रदेश आदि प्रदेशों में फैले हुए हैं। आर्यों के बाद मंगोल जाति के लोग भारत आए। इनका रंग पीला था। इस जाति के लोग काश्मीर के पूर्वी भाग एवं आसाम में मिलते हैं।

वर्तमान समय में अधिकांश भारतीय उक्त तीन जातियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हैं। तीन विभिन्न जातियाँ प्रधान हैं (क) आर्य द्रविड़ (उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात एवं पश्चिमी बंगाल में कुछ भागों में पाए जाते हैं।) (ख) मंगोल द्रविड़ (आसाम एवं बंगाल में पाए जाते हैं।) (ग) सीथो द्रविड़ (गुजरात तथा पश्चिमी भारत में पाये जाते हैं मराठा लोग इस जाति के हैं।)

(८) भाषा एवं धर्म

देश के निवासियों की भाषा में भिन्नता है। यहाँ १७६ भाषाएँ बोली जाती हैं जिनमें से लगभग ११६ भाषाएँ तो अत्यन्त ही कम लोगों में प्रचलित हैं। पूर्णतया उन्नत व विकसित भाषाएँ केवल १५ हैं—हिन्दी, उर्दू, बंगाली, उड़िया, मराठी, गुजराती, कश्मीरी, पंजाबी, सिन्धी, असमिया, संस्कृत, तेलगू, कन्नड़, तामिल एवं मलयालम। अन्तिम चार भाषाएँ दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। हिन्दी राष्ट्रभाषा एवं अंग्रेजी सह भाषा है। भारत में जातियों और भाषाओं की विभिन्नता के साथ धार्मिक विभिन्नता भी विद्यमान है। धर्म के विचार से भारतवर्ष में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जैन, पारसी, बौद्ध, ईसाई आदि हैं। हिन्दुओं की संख्या सर्वाधिक (८३ प्रतिशत) है। हिन्दू एवं मुसलमान देश के सभी भागों में रहते हैं। सिक्ख अधिकतर पंजाब एवं दिल्ली, जैन लोग गुजरात, राजस्थान, बम्बई एवं उत्तरप्रदेश में, ईसाई केरल, मद्रास एवं उत्तरी भारत में और पारसी बम्बई में रहते हैं।

(९) रहन सहन

भारत के निवासियों के रहन-सहन एवं खान-पान में भी काफी भिन्नता है। पंजाबी पुरुष साफा बाँधते हैं और ढीला कुर्ता एवं पायजामा पहनते हैं। पंजाबी स्त्रियाँ प्राय: सलवार एवं लम्बी कमीज पहनती हैं। उत्तरप्रदेश के हिन्दू [illegible] कपड़े पहनते हैं। बंगाल के लोग नंगे सिर रहते हैं और खास तरह से धोती पहनते हैं। राजपूत लोग दाढ़ी रखते हैं। राजस्थान में कुछ भागों में लहरियादार साफे पहने जाते हैं। महाराष्ट्र के लोग खास तरह से पगड़ियाँ बाँधते हैं। गुजरात, उत्तरप्रदेश एवं महाराष्ट्र में स्त्रियाँ प्राय: नंगे सिर रहती हैं। मद्रासी अक्सर तहमद पहनते हैं। उत्तर के पहाड़ी लोग छोटे छोटे कोट एवं सिर में चिपटी हुई हल्की टोपी पहनते हैं। शिक्षित एवं बुद्धिजीवी वर्ग पैन्ट, कमीज, बुशर्ट और कोट पहनते हैं। शिक्षित स्त्रियाँ सुन्दर पोशाक या साड़ी पहनती हैं एवं प्राय: नंगे सिर रहती हैं।

(१०) खान पान

खानपान में भी भारत में अत्यधिक भिन्नता पायी जाती है। पंजाब एवं उत्तर प्रदेश के लोग अधिकतर गेहूँ की रोटी और उड़द की दाल खाते हैं परन्तु बंगालियों का मुख्य भोजन भात, मछली एवं अरहर की दाल है। गुजरात में लोग भोजन के साथ तिल्ली एवं मूँगफली के तेल का प्रयोग करते हैं। दक्षिण के निवासी चावल और मछली खाते हैं। राजस्थान में ज्वार, बाजरा एवं मक्का का अधिक प्रयोग किया जाता है।

(११) भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियों में अपना अद्वितीय स्थान रखती है। विश्व की अनेक प्राचीन संस्कृतियों का लोप हो गया है परन्तु भारतीय संस्कृति का प्रवाह उसी गति से चल रहा है। भारतीय संस्कृति कई संस्कृतियों को अपने में समन्वय करके आज के युग में भी अपना मस्तक ऊँचा किए हुए है। इस संस्कृति के मौलिक तत्त्व इतने स्थायी और प्रभावशाली हैं कि इसकी धारा की गति में कोई अन्तर नहीं आ पाया है। ये मौलिक तत्त्व निम्न लिखित हैं —

(१) भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान है। मानव जीवन के हर क्षेत्र में धर्म को प्रधानता दी गयी है। धर्म से हमारा तात्पर्य कर्त्तव्य से है। हमारी संस्कृति का प्राचीनतम सिद्धान्त यह रहा है कि जो धर्म का नाश करेगा उसका विनाश हो जाएगा एवं जो धर्म की रक्षा करेगा धर्म उसकी रक्षा करेगा। यही कारण है कि भारतीय जीवन की समस्त बातों में धर्म की भावना प्रधान है। व्यापक रूप में धर्म का अर्थ मानव धर्म से है।

(२) हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। आज से पचास वर्ष पूर्व तक आर्य संस्कृति को ही हमारी प्राचीन संस्कृति माना जाता था परन्तु १९२२ ई० में हुई सिंधु घाटी की खुदाई से हमारे समक्ष एक नयी संस्कृति आयी। इस संस्कृति को हम भारतीय संस्कृति की प्रथम झाँकी कह सकते हैं। सिन्धु घाटी की संस्कृति ३५०० ई० पू० लगभग की है जो विश्व की अन्य प्राचीनतम संस्कृतियों के समकक्ष है।

(३) भारतीय संस्कृति में अन्य विचारों को अपने में समन्वय कर लेने की एक बड़ी अद्भुत शक्ति है। प्रो० डोडवेल के शब्दों में "भारत में समुद्र की तरह सोखने की शक्ति है। उसने समस्त बाह्य शक्तियों के विभिन्न लाभकारी गुणों को हमेशा अपने में मिला लिया।" इस प्रकार हमारी संस्कृति की हंस वृत्ति है। इसने आर्य यूनानी सिथियन शक हूण मुसलमान ईसाई सभी जातियों के विशेष गुणों को ग्रहण कर लिया। विश्व गुरु विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति की पाचन शक्ति की बड़ी सराहना की है।

(४) इस संस्कृति में सहिष्णुता एवं उदारता की भावना विशिष्ट रूप से पायी जाती है। विश्व इतिहास पर दृष्टिपात करने से हमें ज्ञात होता है कि यूरोपीय देशों में असहिष्णुता के कारण अनेक युद्ध हुए जिनमें जन और धन की अपार हानि हुई। भारत में इस प्रकार के युद्ध कभी नहीं हुए। हमारी परम्परा रही है कि एक ही घर में अनेक धर्मों के व्यक्ति साथ रह सकते हैं। कई धर्मों एवं सम्प्रदायों का पल्लवन यहाँ हुआ पर किसी प्रकार के अनुदार युद्ध नहीं हुए। विभिन्नता में सारभूत अखण्डता हमारी संस्कृति की एक बड़ी विशेषता है।

(५) हमारी संस्कृति ज्ञान से ओत प्रोत है। भारत का धार्मिक साहित्य ज्ञान का एक बड़ा भण्डार है। वेद उपनिषद् पुराण गीता स्मृतियाँ महाकाव्य

रामायण और महाभारत इत्यादि ग्रन्थ के रूप में ज्योतिर्मान हैं। भारतीय साहित्य में निहित ज्ञान का विश्व भर में आदर होता है। उपनिषद् गीता इत्यादि के अनुवाद विश्व की अन्य भाषाओं में हो चुके हैं और उनको पाश्चात्य विद्वान भी बड़ा धन्य समझते हैं।

(६) आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति की एक महान् विशेषता है। भारतीय नारी भी कार्य करते समय इहलोक और परलोक का ध्यान रखता है। वह मोक्ष की कामना रखता है। पश्चिम के लोग जिस भौतिक सुख को प्राप्ति के आधार पर आंकते हैं। इस प्रकार हमारी संस्कृति भौतिक सुख को हेय समझती है और आध्यात्मिक चिन्तन पर जोर देती है। हम आत्म कल्याण द्वारा प्राप्त सुख को श्रेष्ठ मानते हैं।

(७) प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुसार भारतीय लोगों की आयु सौ वर्ष की मानी गयी है। इन सौ वर्षों में मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित कर दिया गया है। पहला ब्रह्मचर्य आश्रम जिसमें मनुष्य बालक को २५ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करना और ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है। दूसरा गृहस्थाश्रम है जिसमें २५ से ५० वर्ष तक व्यक्ति विवाह के उपरान्त गृहस्थ के सुख भोगता है। तीसरा वानप्रस्थ आश्रम है जिसमें ५० से ७५ वर्ष की आयु तक जंगलों में रहकर मनुष्य भगवान का चिन्तन करता है। चौथा संन्यास आश्रम है जिसमें व्यक्ति ७५ से १०० वर्ष की आयु तक आत्मा की पहिचान की कोशिश करता है और संसार से सम्बन्ध तोड़ लेता है। यह व्यवस्था विश्व में केवल भारत में ही पायी जाती है।

(८) हमारी संस्कृति में नारियों को बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है और वे पूजनीया मानी गयी हैं। नारी को घर में देवी माना गया है। हमारे ऋषि मुनियों ने यह बताया है कि वह घर नरक है जिसमें नारी का आदर नहीं होता। हमारे शास्त्रों में नारी को अर्धांगिनी माना गया है। समाज में वे पुरुषों के साथ धार्मिक कृत्यों में बराबर भाग लेती हैं।

(९) अहिंसात्मक भावना से भारतीय संस्कृति ओत-प्रोत है। भारतीय इतिहास के समस्त महान् सम्राटों तथा नेताओं ने अहिंसा का उपदेश दिया है। महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर, अशोक, महात्मा गांधी इत्यादि विभूतियाँ आज इसी भावना के कारण पूजनीय हैं। भारत की विदेश-नीति का आधार भी यही अहिंसा की भावना है।

(१०) भारतीयों में त्याग की भावना उच्चकोटि की है। इसी भावना से प्रेरणा प्राप्त कर लाखों भारतीयों ने अपने देश, समाज और मानव के कल्याण के लिए प्राण न्यौछावर किए और शहीद हुए। हमारा इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र, महर्षि दधीचि, भामाशाह और आधुनिक युग में स्वतन्त्रता संग्राम में शहीद हुए सेनानियों का त्याग अपूर्व था जिसे हम कभी भुला नहीं सकते।

(११) हमारी संस्कृति ने हमें सादगी एवं सरलता का पाठ पढ़ाया है। उसने यहाँ प्रतिपादित किया है कि सादगी से रहो और अपने विचारों को उच्च रखो। एक भारतीय कहावत भी है सादा जीवन उच्च विचार। हमारे ऋषि मुनियों ने व अन्य महात्माओं ने भी सादे जीवन और सद्व्यवहार पर अधिक बल दिया है।

(१२) हमारी संस्कृति ने हमें विश्वबन्धुत्व का पाठ पढ़ाया। इस प्रकार भारतवासियों ने वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धान्त अपनाया। भारत पर बाह्य आक्रमण कई बार हुए परन्तु भारत ने किसी पर आक्रमण नहीं किया। यह इसलिए कि हमारा सिद्धान्त जिओ और जीने दो का है। विश्व का प्रत्येक देश व राष्ट्र हमारा सहोदर है।

(१३) भारतीय संस्कृति ने हमें पुनर्जन्म व आत्मावाद का सिद्धान्त सिखाया। इसके अनुसार आत्मा अमर है और वह एक शरीर से निकल कर दूसरे में दूसरे से तीसरे में प्रवेश करती रहती है। इस प्रकार आवागमन का चक्र चलता रहता है। जब मनुष्य अच्छे कर्म करता है तो वह इस चक्र से छूट जाता है। जो बुरे कर्म करता है उसका पुनर्जन्म ऐसे स्थान पर होता है जहाँ उसे दुख ही दुख मिलता है। इस सिद्धान्त से हर व्यक्ति को यह आशा रहती है कि वह एक दिन सुकर्म करके मोक्ष की प्राप्ति कर सकेगा फलतः वह बुरे कर्मों से परे रहता है।

(१४) हमारी संस्कृति के अन्तर्गत भारतवासी भाग्यवाद में विश्वास करते हैं। हर व्यक्ति यह मानता है कि जीवन में सुख और दुख उनके भाग्य में लिखा हुआ होता है। इस सिद्धान्त में विश्वास रखने से हर व्यक्ति बड़े से बड़े दुख को आसानी से पार कर सकता है। निरुत्साही व्यक्ति को इससे उत्साह मिलता है।

(१५) गीता में लिखा हुआ है कि कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन अर्थात् कर्म करते रहो फल की इच्छा मत करो। हमारी संस्कृति इस प्रकार बिना फल की आशा के कर्म करने में विश्वास करती है। इस विचार धारा से प्रत्येक व्यक्ति बिना फल की चिन्ता किए दत्तचित्त होकर कार्य में लग जाता है और सफलता के दर्शन करता है।

ऑन कम्पनी

(कम्पनी का घटनापूर्ण जीवन और भारत में उसकी सत्तास्थापना की दौड़)

प्रवेश

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य एक व्यापारिक निकाय ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रयत्नों के फलस्वरूप स्थापित हुआ था। यह भी महत्वपूर्ण है कि पूर्वी हिन्द द्वीप समूह में व्यापार रत लन्दन व्यापारियों की कम्पनी व इसके गवर्नर (जिस को महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने अपने अधिकारपत्र के बाद ३१ दिसम्बर, १६०० ई० को निगमन का शासनपत्र दिया था) के प्रथम आगमन में भारत में उपनिवेश अभिग्रहण का कोई संकेत नहीं था। अतः यह आवश्यक है कि हम ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के घटनापूर्ण और समृद्धिशाली जीवन के विकास तथा उसके द्वारा ब्रिटिश सम्राट के लिए भारत में सत्ता स्थापना के साथ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें जो भारत के संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास को ठीक प्रकार से समझने के लिए अनिवार्य है।

(१) कम्पनी का घटनापूर्ण जीवन

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के घटनापूर्ण एवं समृद्धिशाली जीवन को हम दो युगों प्रथम व्यापारिक युग एवं द्वितीय प्रादेशिक सत्ता युग में विभक्त कर सकते हैं। व्यापारिक युग कम्पनी के अस्तित्व में आने (१६०० ई०) से लेकर मुगल सम्राट शाहआलम से बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी प्राप्ति (१७६५ ई०) तक और प्रादेशिक सत्ता युग कम्पनी द्वारा शासन का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के काल (१७६५ ई०) से लेकर ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के शासन की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी ग्रहण करने के निश्चयकाल (१८५८ ई०) तक माना जा सकता है। व्यापारिक युग में कम्पनी का स्वरूप विशेष एवं स्पष्ट रूप से व्यापारिक था। प्रादेशिक सत्ता युग में कम्पनी ने सम्राट के साथ सत्ता का उपभोग किया।

कम्पनी की स्थापना

वास्को डी गामा के २० मई १४९८ ई० को कालीकट पहुँचने के साथ ही एशिया के इतिहास का वास्को डी गामा युग आरम्भ होता है जो लगभग चार शताब्दी एवं पचास वर्ष तक कायम रहा। इस युग में पश्चिमी देशों ने एशिया के अनेक देशों में अपना शासन स्थापित किया तथा पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का

प्रसार किया। इसी क्रम में भारत में अंग्रेजों का साहसी व्यापारियों के रूप में आगमन हुआ। १५६१ ई. में राल्फ फिच भारत एवं बर्मा की यात्रा पूरी कर इंगलैंड पहुँचे। उन्होंने अपने देश के व्यापारियों को भारत से व्यापार प्रारम्भ करने के लिए प्रोत्साहित किया। १५८२ ई. में लेवन्ट कम्पनी ने ब्रिटिश महारानी एलिजाबेथ प्रथम से भारत एवं पूर्वी देशों से तुर्की के भूभाग से होकर व्यापार करने का शासपत्र प्राप्त किया। तुर्की के सुल्तान ने कुछ समय पश्चात् अपने साम्राज्य के भूभाग से किए जाने वाले व्यापार के विकास में काफी अड़चनें लगायीं जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश व्यापारियों का पूर्वी देशों से व्यापार काफी कम हो गया। अपने व्यापारिक हितों की रक्षा हेतु ब्रिटिश व्यापारियों ने समुद्री मार्ग से व्यापार करने के लिए कदम उठाना अनिवार्य हो गया। २२ सितम्बर १५६६ ई. को लन्दन के व्यापारियों की एक बैठक लार्ड मेयर की अध्यक्षता में फाउन्डर्स हाल में हुई जिसमें भारत से व्यापार करने के लिए एक संघ बनाने का महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। शीघ्र ही एक कम्पनी गवर्नर एण्ड कम्पनी आफ मर्चेन्टस ट्रेडिंग इन टू दी ईस्ट इण्डीज की स्थापना हो गयी।

कम्पनी का प्रारम्भिक स्वरूप

३१ दिसम्बर १६०० ई. को उक्त कम्पनी को महारानी एलिजाबेथ ने एक शासपत्र प्रदान किया। इस शासपत्र के अनुसार कम्पनी को पूर्वी हिन्द द्वीप में एशिया और अफ्रीका के देशों और मार्गों में सभी हिन्द द्वीपों में बन्दरगाहों पर जहाजों के आश्रय स्थलों, शहरों, खाड़ियों, बस्तियों और एशिया और अफ्रीका के स्थानों और अमेरिका का या उनमें से किसी एक के भीतर और वहाँ से बोना एस्पेरेन्जा के अन्तरीप पार से मेगेलन की जल सन्धियों तक स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने का अधिकार दिया गया। शासपत्र में कम्पनी की व्यवस्था एक गवर्नर और चौबीस समितियों में निहित की गयी। आज्ञा पत्र केवल १५ वर्ष के लिए दिया गया जिसे दो वर्ष की सूचना द्वारा समाप्त किया जा सकता था।

३१ मई, १६०६ ई. को जेम्स प्रथम ने कम्पनी के शासपत्र का नवीनीकरण किया। कम्पनी को व्यापार का अधिकार सदा के लिए प्रदान कर दिया गया पर शर्त यह रखी गयी कि यदि यह सिद्ध हो जाए कि कम्पनी का एकाधिकार जनता के हितों को हानि पहुँचाता है तो ३ वर्ष की सूचना से व्यापार का अधिकार समाप्त किया जा सकेगा। कम्पनी एक नियमित कम्पनी थी। सदस्यों की पूंजी पृथक पृथक थी। सदस्यों को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता था। जब भारत या पूर्व की ओर कोई अभियान जाता तब व्यापारी एक जगह एकत्रित होने एवं खर्च के लिए अंशदान देते थे। लाभ को अंशदान के हिसाब से वितरण कर दिया जाता था। १६६२ ई. के पश्चात् धन देने वालों ने अपना अंश एक संयुक्त स्कंध में डाल दिया किन्तु यह संयुक्त स्कंध स्थायी आधार पर नहीं था। १४ दिसम्बर १६१५ ई. और ४ फरवरी १६२३ ई. के शासपत्रों द्वारा लन्दन कम्पनी की शक्तियों में वृद्धि की गयी। पहले शासपत्र द्वारा कम्पनी को अपने कर्मचारियों का क्षमा-पत्र जारी करने

और दूसरे शासपत्र द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा स्थल पर किये गये अपराधों के लिए कम्पनी के अधिकारियों को इन्हें सजा देने की शक्तियाँ प्रदान की गयीं।

कम्पनी संकट में

चार्ल्स प्रथम के शासन काल में कम्पनी को कुछ संकटों का सामना करना पड़ा। १६२३ ई० में हालैंड वालों ने अम्बोयना में सभी अंग्रेजों को मार डाला। परिणामस्वरूप लन्दन कम्पनी मसालों के द्वीप के व्यापार से हट गयी तथा उसने अपनी पूरी शक्ति भारत से व्यापार बढ़ाने में केन्द्रित कर दी। १६२८ ई० में चार्ल्स प्रथम ने सर कार्टन के प्रभाव में आकर असाडा कम्पनी को पूर्वी हिन्द द्वीप में व्यापार करने का शासपत्र प्रदान कर दिया। इस कम्पनी ने कुछ समय तक बड़ी तेजी से व्यापार चलाया। फलस्वरूप लन्दन कम्पनी को काफी नुकसान हुआ। गृह युद्ध का भी कम्पनी की स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ा। गृह युद्ध की समाप्ति के पश्चात् क्रामवेल ने कम्पनी के संकट को दूर करने का सफल प्रयास किया। एक समझौते के द्वारा असाडा कम्पनी को लन्दन कम्पनी में मिला दिया गया। १६५४ ई० की वेस्टमिनिस्टर की संधि द्वारा हालैंड से अम्बोयना काण्ड के लिए लन्दन कम्पनी को ८५,००० पौंड क्षतिपूर्ति के रूप में प्रदान किये गये।

कम्पनी के स्वरूप में परिवर्तन एवं शक्ति में वृद्धि

१६५७ ई० में क्रामवेल ने कम्पनी को एक नया शासपत्र प्रदान किया। इस शासपत्र द्वारा कम्पनी के लिए निरंतर संयुक्त स्कंध रखना अनिवार्य कर दिया गया। फलस्वरूप कम्पनी एक संयुक्त स्कंध निगम बन गयी। ३ अप्रैल १६६१ ई० को चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को नया शासपत्र दिया। कम्पनी को इस आज्ञा पत्र द्वारा कमाण्डर एवं अधिकारी नियुक्त करने, उन्हें आदेश देने, अपने कारखानों एवं दुर्गों की रक्षा करने के लिए लड़ाई के जहाज, सैनिक एवं अस्त्र भेजने, अपने दुर्गों के संचालन के लिए गवर्नर एवं अन्य अधिकारी नियुक्त करने, मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता आदि व्यापारिक केन्द्रों एवं कारखानों में स्थित गवर्नर एवं उसकी परिषद् को सब व्यक्तियों के दीवानी और फौजदारी मुकदमों का अंग्रेजी कानून के अनुसार निर्णय करने आदि के अधिकार प्रदान किये गये। ५ अक्टूबर १६७६ के शासपत्र द्वारा कम्पनी को बम्बई में सिक्के ढालने का अधिकार भी प्राप्त हो गया। ९ अगस्त १६८३ ई० के शासपत्र द्वारा कम्पनी को एशिया, अफ्रीका और अमेरिका की किसी अन्य शक्ति के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने और उससे शान्ति समझौता करने, सेनाएं बढ़ाने एवं अपनी रक्षा के लिए सैनिक नियम घोषित करने का अधिकार प्रदान किया गया। १२ अप्रैल १६८६ ई० के शासपत्र से कम्पनी को एडमिरल और अन्य समुद्री अधिकारी नियुक्त करने तथा अपनी बस्तियों के लिए सिक्के ढालने की शक्ति प्राप्त हो गयी। ११ दिसम्बर १६८७ ई० के शासपत्र द्वारा कम्पनी को मद्रास में मेयर का न्यायालय तथा नगरपालिका स्थापित करने की शक्ति प्रदान की गयी।

नई कम्पनी का निर्माण

१६८८ ई० की क्रान्ति के पश्चात् लन्दन कम्पनी की स्थिति बिगड़ती चली गयी। कम्पनी के विरोधियों ने कम्पनी के विरुद्ध एक प्रबल विरोध का संगठन किया। १६९१ ई० में ब्रिटिश संसद में लंदन कम्पनी को उसके प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा निर्मित कम्पनी के साथ मिलाने का प्रस्ताव रखा गया। परन्तु सर जोसिया चाइल्ड ने वहाँ रिश्वत देकर कम्पनी का शासपत्र फिर से जारी करा लिया। १६९४ ई० में लोक सदन ने एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें कहा गया था कि इंगलैंड की समस्त प्रजा को पूर्वी द्वीप समूह के साथ व्यापार करने का पूरा अधिकार है जब तक संसद की विधि द्वारा उस पर रोक न लगा दी जाय। इस प्रकार कम्पनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। शीघ्र ही सरकार को धन की आवश्यकता हुई। सरकार ने व्यापार के एकाधिकार को नीलाम के लिए प्रस्तुत कर उसके बदले में ८ प्रतिशत ब्याज पर २० लाख पौंड लेने का निश्चय किया। लन्दन कम्पनी ने ७ लाख पौंड देने का प्रस्ताव किया जो अस्वीकृत कर दिया गया। एक नयी कम्पनी सरकार को सारी राशि ऋण के रूप में देने के लिए तैयार हो गया। नयी कम्पनी को एकाधिकार देने का अधिनियम ब्रिटिश संसद द्वारा स्वीकृत कर लिया गया और जुलाई १६९८ ई० में उसे राजकीय स्वीकृति मिल गयी। लन्दन कम्पनी को अपना कारोबार बन्द करने के लिए ३ वर्ष की सूचना दी गयी। ५ सितम्बर, १६९८ ई० के शाही शासपत्र द्वारा दी इंग्लिश कम्पनी ट्रेडिंग टू दी ईस्ट इंडीज, नाम की नयी कम्पनी का निर्माण हुआ।

प्रतियोगिता एवं समझौता

लन्दन कम्पनी ने नयी कम्पनी में ३,१५,००० पौंड के हिस्से खरीद लिए। दोनों कम्पनियों में अत्यधिक प्रतियोगिता चली जिसके परिणामस्वरूप नयी कम्पनी को अत्यधिक नुकसान हुआ। राजा विलियम के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप १७०२ ई० में दोनों कम्पनियों ने अपनी सम्पत्ति का मूल्य आंके जाने के पश्चात् बराबर के साझे में एक हो जाने का निश्चय किया। समझौते के द्वारा लंदन कम्पनी को ७ वर्ष तक अपनी पृथक सत्ता बनाये रखने का अधिकार मिला बशर्ते कि व्यापार इंग्लिश कम्पनी के नाम में संयुक्त रूप में किया जाय। १७०२ ई० के समझौते में कुछ झगड़े उठ खड़े हुए। इनको दूर करने के लिए १७०७ ई० का अधिनियम बनाया गया। दोनों कम्पनियों के विवादों के प्रमुख प्रश्नों को हल करने के लिए लार्ड गोडोल्फिन को मध्यस्थ नियुक्त किया गया। गोडोल्फिन ने सितम्बर १७०८ ई० में अपना निर्णय दिया। मार्च १७०९ ई० में पुरानी कम्पनी ने अपने अधिकार पत्र ब्रिटिश महारानी ऐनी को सौंप दिये। लन्दन कम्पनी के पृथक् अस्तित्व का अन्त हो गया तथा नयी कम्पनी दी युनाइटेड कम्पनी ऑफ मर्चेन्ट्स ऑफ इंगलैंड ट्रेडिंग टू दी ईस्ट इंडीज के नाम से व्यापार करने लगी। कालान्तर में यही कम्पनी ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

प्रादेशिक सत्ता युग मे प्रवेश

ईस्ट इ डिया कम्पनी को सन् १७२६ सन् १७५०, सन् १७५४ एव सन् १७५८ म ब्रिटिश सरकार द्वारा आज्ञापत्र प्रदान किए गए। इन सभी शासपत्रो म १७५८ ई का शासपत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण है। १४ जून को प्रदत्त उक्त आज्ञा पत्र द्वारा ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी को उन प्रदेशों जिलो तथा दुर्गों को बचने अपने पास रखने या किसी को इच्छानुसार देने का अधिकार प्रदान किया जो उसे भारतीय नरेशों और सरकारो से विजय द्वारा प्राप्त हुए। इस प्रकार शन शन कम्पनी को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रादेशिक सत्ता सम्पन्न संस्था के लिए आवश्यक सभी अधिकार प्राप्त हो गए। १७६५ ई म भारत के मुगल सम्राट शाह आलम ने कम्पनी को बगाल बिहार एव उडीसा की दीवानी प्रदान कर दी। इस प्रकार ब्रिटिश सम्राट एव भारत के मुगल सम्राट द्वारा प्रादेशिक शक्ति के रूप म मान्यता प्राप्त कर कम्पनी ने १७६५ ई० मे अपने जीवन काल के द्वितीय युग, प्रादेशिक सत्ता युग म प्रवेश किया।

ससद द्वारा मार्ग दर्शन

कम्पनी प्रभुत्व सम्पन्न निकाय नही थी अत जब कम्पनी राजनतिक उत्तर दायित्व वहन करने लगी तो ब्रिटिश ससद ने इसके मार्गदर्शन एव भारत म इसके द्वारा स्थापित सरकार का स्वरूप निर्धारित करने के लिए अनेक अधिनियम बनाए यथा रेग्युलेटिंग अधिनियम पिट का भारत अधिनियम १७९३ ई० का शासपत्र अधिनियम १८१३ ई का शासपत्र अधिनियम १८३३ ई० का शासपत्र अधिनियम और १८५३ ई का शासपत्र अधिनियम (इन अधिनियमो का विस्तृत वर्णन तीसरे अध्याय मे किया गया है)।

कम्पनी जीवन की अंतिम राह पर

१८३३ ई मे शासपत्र अधिनियम द्वारा कम्पनी के व्यापारिक काय समाप्त कर दिए गए। अब उसके पास केवल राजनतिक काय का उत्तरदायित्व रहा। १८५३ ई के शासपत्र अधिनियम द्वारा कम्पनी को असीमित काल तक भारत पर शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। किन्तु १८५७ ई म कम्पनी के शासन के विरुद्ध भारत म एक महान क्रान्ति हुई जिसके कारण भारत म कम्पनी की प्रादेशिक सत्ता का अन्त हो गया। ब्रिटिश ससद ने भारत के श्रेष्ठ शासन के लिए एक अधिनियम पारित किया जिसको २ अगस्त १८५८ ई को राजकीय स्वीकृति प्राप्त हो गयी। इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश ताज ने भारत के शासन का भार स्वय ग्रहण कर लिया। १ सितम्बर १८५८ ई को कम्पनी के सचालक मडल की अन्तिम बठक हुई जिसमे भारतीय साम्राज्य को एक मूल्यवान उपहार के रूप म हर मजेस्टी को सौंप देने का निणय किया गया। इस प्रकार भारत म ईस्ट इ डिया कम्पनी के शासन का अन्त एव ब्रिटिश ताज के शासन की स्थापना हुई।

(२) भारत में कम्पनी की सत्ता स्थापना का दौर

अंग्रेजों की प्रारम्भिक बस्तियां

सन्‍त कम्पनी के अस्तित्व में आने के समय भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य अपने पूर्ण यौवन पर था। अतः अंग्रेजों का मुगल शासन से व्यापार प्रसार के लिए सुविधाएं प्राप्त करने का यत्न करना स्वाभाविक था। १६११ ई. में अंग्रेजों ने विलियम हाकिन्स को मुगल सम्राट जहांगीर के दरबार में व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करने के निमित्त भेजा पर उसे अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। सन् १६१३ एवं सन् १६१६ के वर्षों के मध्य अंग्रेजों ने टामस रो के माध्यम से पत्र प्रदान किए पर मुगल दरबार में पुर्तगाल एवं हालैण्ड के व्यापारियों का प्रभाव होने के कारण विशेष सफलता नहीं मिली। अंग्रेजों को केवल सूरत एवं कुछ अन्य स्थानों पर बस्तियां बसाने का शाही प्रादेश मिला। अतः अंग्रेजों की पहली बस्तियां सूरत, अहमदाबाद, आगरा एवं भड़ोंच में स्थापित हुईं।

स्थानीय शासकों द्वारा कम्पनी को व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति

मुगल सम्राट से रवये से निराश अंग्रेज व्यापारियों को स्थानीय शासकों से व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करने में अवश्य सफलताएं मिली। गुजरात के सूबेदार शाहजादा खुर्रम ने न केवल अंग्रेजों को सूरत में व्यापारिक सुविधाएं ही प्रदान की बल्कि उसने उन्हें अपने कारखाना में स्वतन्त्रतापूर्वक संचालन का भी अधिकार प्रदान कर दिया। फलस्वरूप सूरत में अंग्रेजों का पहला कारखाना स्थापित हुआ। १६१६ ई. में मछलीपट्टम १६२६ ई. में अरमगाव एवं १६३३ ई. में हरिहरपुर में भी कारखाने स्थापित किए गए। १६३६ ई. में चांद्रगिरि के शासक ने कम्पनी द्वारा बंदरगाह से प्राप्त आय के कुछ भाग के बदले में कम्पनी को दुर्ग बनाने जिसके डालने एवं मद्रास पर शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया। १६४ ई. में अंग्रेजों ने मद्रास में सेंट जार्ज का किला बनवाया। १६५ ई. में बंगाल के शासक ने कम्पनी को बंगाल प्रान्त में व्यापार करने एवं कारखाने निर्माण करने का अधिकार प्राप्त हो गया। अतः कम्पनी ने हुगली पटना एवं कासिम बाजार में बस्तियों का निर्माण किया। १६६१ ई. में चार्ल्स द्वितीय ने बम्बई का द्वीप (जो उसे पुर्तगाली राजकुमारी कैथरीन से विवाह के कारण दहेज में मिला था) कम्पनी को १ पौंड वार्षिक पट्टे पर दे दिया। १६७२ ई. में मद्रास का पूर्ण शासन कम्पनी को प्राप्त हो गया एवं कालान्तर में ३ गांव भी कम्पनी के नियन्त्रण में आ गए। १६६ ई. में कम्पनी ने हुगली को छोड़ दिया एवं सुतनती में कारखाना स्थापित किया। १६९८ ई. में कम्पनी ने १२ वार्षिक शुल्क पर सुतनती कलकत्ता एवं गोविन्दपुर की जमींदारी खरीद ली तथा सुतनती की किलाबन्दी कर उसको फोर्ट विलियम का नाम दिया। १७ ई. में फोर्ट विलियम बंगाल देश विभाग का मुख्यालय हो गया।

भारतीय शासकों द्वारा कंपनी को अधिक सुविधाएं प्रदान करना

१७०२ ई० में अंग्रेजों ने विलियम नोरिस को मुगल सम्राट औरंगजेब से व्यापारिक सुविधा प्राप्त करने के लिए भेजा पर उसे सफलता नहीं मिली। १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हो गयी। मुगल साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो गया। बंगाल एवं अन्य कई प्रान्त मुगल सम्राट के नियन्त्रण से मुक्त हो गये। १७१६ ई० में अंग्रेज सुरमन ने मुगल सम्राट फर्रुखसियर से हैदराबाद, गुजरात एवं बंगाल के नवाबों के नाम कम्पनी को व्यापारिक सुविधाएं प्रदान करने का फरमान प्राप्त कर लिया। परिणामस्वरूप कम्पनी [illegible] कर दिए गए। कम्पनी को बंगाल में [illegible] व्यापार करने की सुविधा प्राप्त हो गयी तथा बंगाल में [illegible] का अधिकार भी मिल गया। इन सुविधाओं के बदले में कम्पनी ने [illegible] वार्षिक कर देना तय किया था। शीघ्र ही कम्पनी ने बंगाल में किलाबन्दी प्रारम्भ कर दी तथा अपने व्यापारिक अधिकारों का दुरुपयोग भी आरम्भ कर दिया।

कम्पनी द्वारा देश की राजनीति में हस्तक्षेप

अंग्रेजों ने बंगाल की राजनीति में भी हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों को अपनी बस्तियों की किलाबन्दी से इन्कार किया परन्तु अंग्रेजों ने आज्ञा का पालन नहीं किया। १७५७ में प्लासी का युद्ध हुआ जिसमें मीर जाफर की गद्दारी के परिणामस्वरूप सिराजुद्दौला पराजित हो गया। अंग्रेजों ने मीर जाफर को बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया। मीर जाफर पर अंग्रेजों ने पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लिया एवं उससे अत्यधिक संख्या में रुपया वसूल करना प्रारम्भ कर दिया। १७६१ ई० में अंग्रेजों ने वांडीवाश के युद्ध में अपने प्रबल प्रतिद्वन्दी फ्रांस को पराजित कर दिया। १७६१ ई० में पानीपत के युद्ध में पराजित हो जाने से मराठों की शक्ति भी छिन्न भिन्न हो गयी। इस प्रकार १७६१ ई० के अन्त तक भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रसार के लिए पूर्ण रूप से निमन्त्रण देती हुई प्रतीत होने लगीं। रॉबर्ट क्लाइव ने परिस्थिति की अनुकूलता समझकर स्वतन्त्र रूप से भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना का प्रयास आरम्भ कर दिया।

कम्पनी को भारतीय शासकों द्वारा प्रादेशिक सत्ता की प्राप्ति

शीघ्र ही अंग्रेजों ने मीर जाफर को गद्दी से उतारकर मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया। मीर कासिम एवं कम्पनी में शीघ्र ही मतभेद पैदा हो गये। १७६४ ई० में मीर कासिम एवं अंग्रेजों में बक्सर का युद्ध हुआ। अवध के नवाब एवं मुगल सम्राट ने मीर कासिम की मदद की परन्तु वह अंग्रेजों से पराजित हो गया। १७६५ ई० में मुगल सम्राट शाह आलम एवं अंग्रेजों के बीच एक सन्धि हुई। सन्धि की शर्तों के अनुसार शाह आलम ने कम्पनी को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी प्रदान कर दी। इसी वर्ष कुछ समय पश्चात् बंगाल के नये नवाब

नाजिमुद्दौला ने अंग्रेजों को बंगाल की निजामत प्रदान कर दी। इस प्रकार १७६५ ई. के अंत तक भारत में अंग्रेज एक राजनीतिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होने में सफल हो गये।

कम्पनी का पूर्ण भारतीय सत्ता पर अधिकार

१८वीं सदी के उत्तरार्ध एवं १६वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में देश में व्याप्त हीन राजनैतिक व्यवस्था का लाभ उठाकर १८५७ ई. तक वारेन हेस्टिंग्ज, वेलजली, लार्ड डलहौजी आदि निपुण एवं देश भक्त अंग्रेजों ने अपने युद्ध कौशल एवं कूटनीति से सम्पूर्ण भारतवर्ष को उत्तर में हिमालय से दक्षिण में कन्या कुमारी तक और पश्चिम में सिन्ध से पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक कम्पनी के शासन के अन्तर्गत ला दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी की भारत में शासन स्थापना की इस सफल दौड़ ने भारत को ब्रिटिश राजमुकुट का एक बहुमूल्य रत्न बना दिया।



ब्रिटिश राज्य का प्रारम्भ

प्रवेश ।

सन् १७६५ ई० में दीवानी का अधिकार मिल जाने पर कम्पनी एक व्यापारिक संस्था न रह कर राजनैतिक संस्था बन गयी। कम्पनी द्वारा भारत में राजनैतिक सत्ता के प्रयोग पर ब्रिटेन में आपत्ति की गयी तथा संसद से हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया गया। सन् १७७३ ई० में ब्रिटिश संसद ने परिस्थितियों से बाध्य होकर भारत में कम्पनी की सरकार का स्वरूप निर्धारित करने के उद्देश्य से रेग्यूलेटिंग अधिनियम स्वीकृत किया जिसके परिणामस्वरूप भारत में ब्रिटिश राज्य का प्रारम्भ हो गया। इस अधिनियम के द्वारा जहाँ एक ओर कम्पनी के राजनैतिक कार्यों को वैध स्वीकृत किया गया वहाँ दूसरी ओर कम्पनी के निजी क्षेत्र में सरकार का स्वरूप निश्चित करने के ब्रिटिश संसद के अधिकार की भी स्थापना हो गयी। ब्रिटिश संसद ने अपने अधिकार का पूर्ण उपयोग कर कम्पनी के प्रादेशिक सत्ता काल में उसके द्वारा स्थापित सरकार का स्वरूप निर्धारित करने की दृष्टि से और भी अनेक अधिनियम स्वीकृत किए यथा पिट का १७८४ ई० का भारतीय अधिनियम, १७९३ ई० का शासनपत्र अधिनियम, १८१३ ई० का शासनपत्र अधिनियम, १८३३ ई० का शासनपत्र अधिनियम और १८५३ ई० का शासनपत्र अधिनियम। भारत के संवैधानिक विकास में इन सभी अधिनियमों का अपना अपना महत्व है। यहाँ हम संक्षेप में इन अधिनियमों की स्वीकृति के कारणों, उनके मुख्य उपबन्धों और उनके संवैधानिक महत्व की चर्चा करेंगे।

(१) रेग्यूलेटिंग अधिनियम

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

ब्रिटिश संसद ने निम्नलिखित कारणों से रेग्यूलेटिंग अधिनियम स्वीकृत किया था —

१ ब्रिटिश प्रजाजनों द्वारा कम्पनी के शासन पर ब्रिटिश ताज के नियन्त्रण की माँग

सन् १६०० ई० से १७७३ ई० तक भारतीय व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार था। कम्पनी के आरम्भ से लेकर सन् १६९४ ई० तक का व्यापारिक एकाधिकार कम्पनी को ब्रिटिश शासकों द्वारा स्वीकृत विभिन्न शासनपत्रों द्वारा प्राप्त हुआ था। सन् १६९४ ई० में ब्रिटिश लोक सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत कर कम्पनी का एका

धिकार समाप्त कर दिया तथा भारत के व्यापार के द्वार सभी ब्रिटिश नागरिकों के लिए खोल दिए। सन् १७७३ ई० तक कम्पनी भारतीय व्यापार पर फिर भी ब्रिटिश सरकार को समय-समय पर ऋण देकर अपना एकाधिकार बनाए रखने में सफल रही। एकाधिकार के बाद सरकार का कम्पनी के मामलों में हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण नगण्य मात्र था। उसके कार्यों में ब्रिटिश शासन का हस्तक्षेप सन् १७७३ ई० से प्रारम्भ हुआ। बक्सर के युद्ध के पश्चात् जब कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गयी तो उसके नियन्त्रण में बहुत बड़ा क्षेत्र आ गया था। अंग्रेज विधि के अनुसार कोई निजी व्यापारी संस्था या ब्रिटिश प्रजाजन ब्रिटिश सम्राट की आज्ञा बिना प्रदेश प्राप्त नहीं कर सकता था। अतः कम्पनी उक्त प्रदेशों को अपने नियन्त्रण में नहीं रख सकती थी। इंग्लैंड में अनेक व्यक्तियों ने सरकार पर भारतीय क्षेत्र का शासन सम्भालने के लिए दबाव डालना प्रारम्भ किया परन्तु ब्रिटिश सरकार के लिए भारतवर्ष का शासन सम्भालने में तीन कठिनाइयाँ थीं :

(अ) कम्पनी उक्त प्रदेशों का शासन मुगल सम्राट के दीवान की हैसियत से चला सकती थी किन्तु ब्रिटिश ताज के लिए ऐसा करना प्रतिष्ठा के प्रतिकूल था।

(ब) ब्रिटिश ताज यदि भारतीय प्रशासन को प्रत्यक्ष रूप से सम्भालता तो उसकी मुगल, मराठा तथा अन्य देशी रियासतों से शत्रुता हो जाती और

(स) इंग्लैंड में उस समय निजी सम्पत्ति का काफी मान था। भारतीय प्रदेश कम्पनी की निजी सम्पत्ति समझे जाते थे एवं उनको कम्पनी से छीनना अवांछनीय था। अतः सरकार के लिए कम्पनी के शासन पर नियन्त्रण लगाने के अतिरिक्त जनता की माँग को पूरा करने का साधन नहीं था।

२. कम्पनी के कर्मचारियों की रिश्वत, निजी व्यापार तथा भेंट प्रवृत्तियाँ

कम्पनी के कर्मचारी भ्रष्ट थे। वे बंगाल, बिहार और उड़ीसा में निजी व्यापार चला रहे थे। वे रिश्वत एवं भेंट भी लेते थे। बाल्पोल के शब्दों में, "अत्याचार एवं लूटमार के ऐसे दृश्यों से हृदय काँप उठता है। मान की लोलुपता में हम स्पेन वासियों की तरह हैं और प्राप्त करने में हानवासियों की तरह परिष्कृत हैं।"[1] कम्पनी के कर्मचारी निजी व्यापार रिश्वत एवं भेंट लेने के फलस्वरूप काफी धनवान बन गए थे और वे इंग्लैंड जाकर भारत के नवाबों की तरह भोग विलास का जीवन व्यतीत करते थे। संसद में भी उनका प्रभाव बढ़ने लगा था क्योंकि वे अनुचित ढंग

---

१. गुरुमुख निहालसिंह द्वारा उद्धृत, भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृ० १४

से कमाये हुए धन से निर्वाचन में भाग लेते थे। इसलिए इग्लैंड की जनता इन से ईर्षा करने लगी थी और कम्पनी के मामलों पर ब्रिटिश संसद का नियंत्रण स्थापित करना चाहती थी।

(३) बंगाल की जनता की दुदशा

दोहरे शासन से बंगाल की जनता की बड़ी दुर्दशा हो गयी थी। जनता के पास अपने कष्टों को दूर कराने का कोई साधन नहीं बचा था। दोहरे शासन में शक्ति एवं जिम्मेदारी में कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि जनता नवाब के अधिकारियों के सामने अपने कष्ट रखती थी तो वे कहते थे कि न तो हमारे पास शक्ति है, और न धन ही। वास्तविक शक्ति तो अंग्रेजों के पास है। यदि जनता अपने कष्ट अंग्रेजों के सामने रखती थी तो वे कहते थे कि हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं है शासन सूत्र नवाब के हाथ में है। मिस्टर नॉयल के अनुसार मजिस्ट्रेट पुलिस और राजस्व अधिकारी विभिन्न पद्धतियों में काम करने वाले तथा विरोधी हितों की रक्षा करने वाले थे। उनका कोई एक संयुक्त मुखिया नहीं था इसलिए सरकार को बुरी तरह चलाने में वे एक दूसरे से आगे बढ़ने के प्रयास करते थे। बंगाल में कोई अच्छा कानून नहीं था और न्याय तो बहुत ही कम था। रिचर्ड बेक्चर ने लिखा है अंग्रेजों को यह जानकर दुःख होगा कि जब से कम्पनी के पास दीवानी अधिकार आए हैं बंगाल के लोगों की दशा पहले की अपेक्षा अधिक खराब हो गयी है। सर टयुमिन ने लिखा है सन् १७६५ ई० से लेकर सन् १७७२ ई० तक ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन इतना दोषपूर्ण एवं भ्रष्ट रहा है कि संसार भर की सभ्य सरकारों में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता।

सन् १७७० ई० में बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा। मिस्टर कीथ के अनुसार इस दुर्भिक्ष में बंगाल की जनसंख्या का पर्याप्त विनाश हो गया, परन्तु लोगों के इधर उधर भाग जाने के कारण कम्पनी को जो घाटा हुआ उसकी पूर्ति कम्पनी ने दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के दाम बढ़ाकर कर ली।' लेकी के अनुसार इसके पूर्व भारतीयों को इतना बुद्धिमत्तापूर्ण, खोजपूर्ण तथा कठोर अत्याचारपूर्ण अनुभव नहीं हुए थे। जो जिले घनी आबादी वाले और समृद्धिशाली थे अन्नत वे सब के सब पूर्ण रूप से जनसंख्या रहित कर दिए गए।[1] चेथम के अनुसार भारत में आंतरिक विषमताओं का इतना अधिक विस्तार हुआ जितना कि पृथ्वी एवं आकाश का अन्तर। बंगाल की दुखी जनता की कहानियाँ इंग्लैंड पहुँचीं और वहाँ की जनता ने कम्पनी की कार्य विधि पर संसद के नियंत्रण की माँग प्रस्तुत की।

(४) कम्पनी की पराजय

सन् १७६९ ई० में कम्पनी को मैसूर के सुल्तान हैदरअली से बुरी तरह पराजित होना पड़ा। मद्रास सरकार ने हैदरअली के दबाव में आकर उसकी सभी

---

1 पुखराज सिंह द्वारा उद्धत भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० १४

बातें स्वीकार करलीं। जब ये समाचार इंग्लैण्ड पहुँचे तो इंग्लैण्ड की जनता ने इन्हें अपने मान सम्मान का प्रश्न बना लिया और इस प्रकार कम्पनी की नीतियों पर नियन्त्रण करने का आग्रह और बल पकड़ गया।

(५) कम्पनी के असफल होने की आशंका

सन् १७६५ ई० में जब शाहआलम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दीवानी के अधिकार दिये तो भागीदारों को बहुत प्रसन्नता हुई। क्लाइव ने अनुमान लगाया कि बंगाल की कुल मालगुजारी ४ लाख पौंड होगी एवं कम्पनी को सारे व्यय निकाल कर १६५ पौंड की विशुद्ध आय होगी। अतः कम्पनी के मालिकों ने सन् १७६६ ई० में लाभांश ६ प्रतिशत से बढ़ाकर १ प्रतिशत कर दिया जो बाद में सन् १७६६ ई० में बढ़ाकर १२॥ प्रतिशत कर दिया गया। जनता ने कम्पनी के हिस्से खूब खरीदे किन्तु जब बाद में पता चला कि कम्पनी का दीवाला निकलने वाला है तो जनता ने कम्पनी के शासन पर नियन्त्रण की मांग की।

(६) कम्पनी द्वारा ब्रिटिश सरकार को रकम की अदायगी न करना

जब से ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी मिली थी तभी से इंग्लैण्ड में यह मांग जोर पकड़ रही थी कि कम्पनी एक व्यापारी संस्था के बजाय एक शासक बन गयी है इसलिए उसको इन इलाकों की आमदनी तभी रखने दी जाय जब कम्पनी ब्रिटिश सरकार को ४ लाख पौंड प्रतिवर्ष के हिसाब से खिराज के रूप में दे। ब्रिटिश संसद ने सन् १७६७ ई० में एक अधिनियम बनाया जिसमें दो वर्ष तक उक्त राशि की मांग निहित थी। कम्पनी ने इस बात को स्वीकार कर लिया। १७६६ ई० में यह समझौता ५ वर्ष के लिए और बढ़ा दिया गया। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उक्त राशि कुछ वर्षों तक तो अदा की किन्तु बाद में कम्पनी की स्थिति इतनी खराब हो गयी कि वह रकम को प्रतिवर्ष अदा न कर सकी। इसलिए भी कम्पनी के शासन पर ब्रिटिश नियन्त्रण की मांग की जाने लगी।

अधिनियम का स्वीकृत होना

१७७३ ई० के अन्त तक कम्पनी की आर्थिक दशा अत्यधिक बिगड़ गयी थी। इस समय कम्पनी पर ६ पौंड का ऋण था तथा १ पौंड इसे प्रतिवर्ष नवाबों, मुगल सम्राट एवं अन्य भारतीय शासकों को सहायता के रूप में देना होता था। इसकी तुलना में ३ सञ्चित थे। इस प्रकार कम्पनी पर अत्यधिक आर्थिक दबाव हो गया था। अतः उसने ब्रिटिश सरकार से ऋण मांगा। सरकार को कम्पनी के कार्यों की जांच पड़ताल करना एक अच्छा मौका मिल गया। ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी की जांच के लिए दो संसदीय समितियों की नियुक्ति की। इनमें एक प्रवर समिति थी और दूसरी गुप्त संसदीय समिति। दोनों समितियों ने कम्पनी के विरुद्ध कड़े प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। अतः परिस्थितियों से विवश होकर लार्ड नार्थ ने कम्पनी के मामलों को नियमित करने को १८

मई १७७३ ई० को ब्रिटिश संसद के सामने एक बिल रखा गया जिसको रेग्युलेटिंग अधिनियम कहा जाता है। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लार्ड नार्थ के बिल के विरुद्ध संसद में एक याचिका प्रस्तुत की। बर्क ने संसद में कम्पनी के पक्ष की बहुत हिमायत की और कम्पनी के कार्यों में ब्रिटिश संसद के हस्तक्षेप को अनैतिक और अबुद्धि सम्मत बताया। उनका कहना था कि यह अधिनियम राष्ट्रीय अधिकारों, राष्ट्रीय निष्ठा और राष्ट्रीय न्याय के विरुद्ध है। परन्तु ब्रिटिश संसद ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और बहुत अधिक मतों से अधिनियम को पारित कर दिया। यह अधिनियम रेग्युलेटिंग अधिनियम के नाम से प्रसिद्ध है।

अधिनियम के उपबन्ध

इस अधिनियम के उपबन्धों का सार निम्नलिखित है—

(अ) इस अधिनियम द्वारा इंग्लैंड में स्थापित कम्पनी की व्यवस्था में परिवर्तन किया गया। पहले ५०० पौंड वाले साझेदारों को भी सञ्चालकों को निर्वाचित करने का अधिकार था किन्तु इस अधिनियम द्वारा यह अधिकार १००० पौंड वाले साझेदारों तक सीमित कर दिया गया। सञ्चालकों में से १/४ सञ्चालकों के लिए प्रतिवर्ष पदत्याग ग्रहण करना अनिवार्य कर दिया गया।

(ब) इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सरकार का कम्पनी पर नियन्त्रण बढ़ा दिया गया। यह निश्चित किया गया कि कम्पनी के सञ्चालक भारत के राजस्व से सम्बन्धित सभी मामलों को १४ दिन के अन्दर ब्रिटिश वित्त विभाग के सामने रखेंगे। सैनिक और असैनिक पत्र भी भारत सचिव के सम्मुख रखे जाएँगे।

(स) इस अधिनियम द्वारा भारत में कम्पनी सरकार का पुनर्गठन किया गया। बंगाल के गवर्नर का पद गवर्नर जनरल के रूप में बदल दिया गया तथा मद्रास एवं बम्बई के गवर्नरों को उसके अधीन कर दिया गया। गवर्नर जनरल को देश विभागों की सरकारों के कार्यों पर निगरानी रखने तथा आवश्यकतानुसार उनको आज्ञाएँ देने की शक्ति प्रदान की गयी। मद्रास एवं बम्बई के गवर्नरों को गवर्नर जनरल या सञ्चालकों की पूर्व अनुमति के बिना युद्ध की घोषणा करने (जबतक कि परिस्थितियाँ उन्हें बहुत अधिक विवश न करें) या सन्धि करने या देशी शासकों से सम्बन्ध स्थापित करने की मनाही कर दी गयी। गवर्नर जनरल को आवश्यकता पड़ने पर बंबई एवं मद्रास के गवर्नर एवं परिषद् को निलम्बित करने की शक्ति प्रदान की गयी। गवर्नर जनरल की सहायता के लिए ४ सदस्यों की एक परिषद् बनायी गयी। सदस्यों के नाम अधिनियम में दे दिए गए। इन सदस्यों की अवधि ५ वर्ष रखी गयी परन्तु सञ्चालकों की सिफारिश पर ५ वर्ष की अवधि के पूर्व भी उन्हें पदच्युत किया जा सकता था। गवर्नर जनरल परिषद् में बहुमत से मान्य निर्णयों को स्वीकार करने को बाध्य था। बराबर मत होने पर गवर्नर जनरल को निर्णायक मत देने का अधिकार दिया गया। बम्बई एवं मद्रास के गवर्नरों के लिए एक परिषद् का निर्माण किया गया।

(द) इस अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् को भारत में कम्पनी के समस्त प्रदेशों के लिए नियम बनाने एवं अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया गया। ब्रिटिश संसद को इन नियमों एवं अध्यादेशों को रद्द करने की शक्ति प्रदान की गयी।

(म) इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सम्राट को कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने का अधिकार दिया गया। एक शाही आदेश द्वारा इसमें एक मुख्य न्यायाधीश एवं तीन अन्य न्यायाधीश नियुक्त किए गए। सर्वोच्च न्यायालय को कम्पनी के सब क्षेत्रों में रहने वाले अंग्रेजों एवं कर्मचारियों के दीवानी फौजदारी धार्मिक और जलसेना सम्बन्धी मामलों को सुनने का अधिकार दिया गया। किसी भारतीय एवं अंग्रेज का विवाद भी भारतीय की सहमति से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुना जा सकता था। गवर्नर जनरल एवं उसकी परिषद् द्वारा पारित प्रत्येक नियम एवं कानून की रजिस्ट्री सर्वोच्च न्यायालय में कराना अनिवार्य कर दिया गया। इन कानूनों को प्रकाशित करने के पूर्व सर्वोच्च न्यायालय की स्वीकृति लेना भी अनिवार्य रखा गया।

(य) इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों को उपहार एवं घूस लेने से रोक दिया गया। कोई सरकारी नागरिक अथवा सैनिक कर्मचारी अथवा संयुक्त कम्पनी का कर्मचारी भारत के किसी राजा नवाब या उसके मन्त्री या प्रतिनिधि से प्रत्यक्ष या परोक्ष में कोई भेंट उपहार तथा पुरस्कार नहीं लेगा। किसी भी प्रजाजन को १२ प्रतिशत से अधिक सूद लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अपराध के लिए कम्पनी के कर्मचारियों गवर्नर परिषद् के सदस्यों न्यायाधीशों आदि को इंगलैंड में सम्राट के न्यायालय में सुनवाई एवं दंड की व्यवस्था की गयी। कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की व्यवस्था की गयी ताकि उनमें किसी प्रकार का लालच न हो। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का वेतन ८ पौंड न्यायाधीश का वेतन ६ पौंड गवर्नर जनरल का वेतन २५ पौंड परिषद् के प्रत्येक सदस्य का वेतन १ पौंड वार्षिक निर्धारित किया गया।

अधिनियम का महत्व

रेग्यूलेटिंग अधिनियम का अत्यधिक संवैधानिक महत्व है। यह अधिनियम ब्रिटिश संसद के द्वारा स्वीकृत अनेक अधिनियमों की लम्बी शृंखला का प्रथम था जो भारत सरकार में परिवर्तन करने तथा उन्हें नियमित करने के लिए ब्रिटेन में बनाए गए थे। इस अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश भारत में लिखित संविधान प्रणाली का ""र""म हुआ। कम्पनी के कार्यों में हस्तक्षेप करने और उसके द्वारा अधिकृत प्रदेशों के लिए विधान बनाने के सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद के अधिकारों को मान्यता मिली एवं कम्पनी के राजनैतिक कार्यों को स्वीकार किया गया।

श्री गुरमुख निहालसिंह ने सन् १७७३ के अधिनियम का वैधानिक महत्व इन शब्दों में प्रकट किया है <u>सन् १७७३ के एक्ट का वैधानिक महत्व बहुत बड़ा</u>

उसमें निहित है। कर से कम्पनी की राजनीतिक कार्यवाहियों को स्वीकार किया गया है। दूसरा कारण यह है कि उस समय तक जो कम्पनी के निजी प्रदेश समझे जाते थे उनमें सरकारी ढांचा किस प्रकार का हो यह निश्चित करने के लिए पार्लियामेण्ट ने अपने अधिकार पर पहली बार जोर दिया। तीसरा कारण यह है कि भारत सरकार का ढांचा बनाने के लिए पार्लियामेण्ट में जो बहुत से एक्ट बनाये गये उनमें यह सब से पहला था। सन् १६१६ के गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट के आमुख में यह बात अन्तिम रूप से और दृढ़ता से स्पष्ट की गयी कि भारतवासियों के लिए किस प्रकार का विधान उचित और आवश्यक है। उसे निश्चित करने एवं लागू करने का एकमात्र अधिकार पार्लियामेण्ट को है।[1] मिस्टर लॉवेल ने लिखा है १७७३ ई० में एक्ट के द्वारा जो शासन-पद्धति स्थापित की गयी वह इस दृष्टि से पहला ही प्रयत्न था कि उसने कम्पनी की अनिश्चित और निरंकुश सत्ता को निश्चित तथा मर्यादा के योग्य रूप प्रदान किया। इसके बाद वर्तमान भारतीय सरकार की रूपरेखा की धीरे धीरे पूर्ति की गयी। प्रो० कीथ ने रैग्यूलेटिंग एक्ट के सम्बन्ध में लिखा है इस अधिनियम में कम्पनी की इंगलैंड स्थित व्यवस्था के विधान में परिवर्तन किया गया। भारत सरकार के स्वरूप में बहुत से सुधार किये गये। कम्पनी के समस्त अधिकृत प्रदेशों पर एक सीमा तक एक ही शक्ति का नियन्त्रण कर दिया गया और कम्पनी को बड़े सुचारु ढंग से इंगलैंड के मन्त्रिमंडल के निरीक्षण तथा संरक्षण में कर दिया गया। संक्षेप में इस अधिनियम के द्वारा भारतवर्ष में केन्द्रीय शासन की नींव पड़ गयी। कम्पनी के सेवकों के निजी व्यापार रिश्वत और भेंट प्राप्त करने की बुराइयों को दूर किया गया। सर्वोच्च न्यायालय को गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् के द्वारा बनाये हुए नियमों एवं कानूनों की देखभाल का अधिकार मिल गया और कम्पनी की आन्तरिक प्रबन्धव्यवस्था और शासन को सुधारने का अधिकार ब्रिटिश सत्ता के हाथ में आ गया। इस अधिनियम के द्वारा उन अधिनियमों एवं राजनीतिक सुधारों का प्रारम्भ हुआ जिनका अन्त भारत की स्वतन्त्रता के साथ हुआ।

अधिनियम के दोष

श्री गुरुमुख निहालसिंह ने रैग्यूलेटिंग अधिनियम में निम्नलिखित दोषों का उल्लेख किया है —

(१) रैग्यूलेटिंग अधिनियम का प्रथम दोष यह था कि उसमें गवर्नर जनरल और सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार अस्पष्ट थे। सर्वोच्च न्यायालय देश के निवासियों के नाम आज्ञापत्र जारी करने और उनके अभियोग सुनने का अपना अधिकार बताता था। गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् सर्वोच्च न्यायालय के

---

[1] गुरुमुख निहालसिंह पूर्वोक्त पुस्तक पृ० १६।

इस अधिकार को स्वीकार नही करते थे । उनके मतानुसार यायालय का क्षेत्र फरार उन्ही मामलो तक सीमित था जिनमे दोनो पक्षो ने झगडे की दशा म यायालय के सम्मुख जाना स्वीकार किया हो ।

कम्पनी द्वारा मालगुजारी वसूल करने के अधिकार के सम्ब ध म भी विवाद था । मालगुजारी वसूल करने वाले अपने काय के सिलसिले म अनेक ज्यादतिया किया करते थे । अधिनियम म इस बात का कोई निर्धारण न ी था कि कौन कम्पनी के सेवक थे । क्या काम करने वाले कम्पनी के अधीन थे ? प्रमाण देने एव सिद्ध करने का दायित्व किस पर था ? क्या जमी दार एव मालगुजार कम्पनी के सेवक थे ? यायालय के अनुसार ये कम्पनी के सेवक थे कि तु स्वय व स्थिति और कम्पनी के मुख्य अधिकारी यायालय का यह मत मानने को तयार नहीं थे ।

यायालय कम्पनी के यायाधिकारियो द्वारा सरकारी हैसियत से किये गये कार्यों के विरुद्ध अभियोग निर्णय करने का अधिकार जताता था । झगडे की चौथी बात यह थी कि सर्वो च यायालय प्रा तीय या प्रादेशिक यायालयो का क्षेत्राधिकार स्वीकार करने को तयार नही था । प्रा तीय यायालयो द्वारा समय पर राजस्व न देने वाले कई गिरफ्तार-अपराधियो को सर्वो च यायालय ने मुक्त कर दिया । उसने एक जिले के कोषा य क्ष का दोषी ठहराया जिस पर कि रुपया की जालसाजी का अभियोग लगाया गया था । यायाधीश ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया था हम नही जानते कि तुम्हारे प्रा तीय मुख्य-अधिकारी तथा कौसिल क्या हैं ? तुम यह भी कह सकते हो कि उसे परियो के सम्राट ने ब ाया किया होगा । वारेन हेस्टिंग्स ने सर्वो च यायालय एव छोटे यायालय के झगडों को दूर करने के लिए इम्पी को सदर दीवानी यायालय का यायाधीश नियुक्त कर दिया तथा उसको छोटे यायालय का अपील सुनने और उनका निर्णय दुहरा देने का अधिकार दे दिया । किन्तु इस प्रकार इम्पी कम्पनी के सेवक हो गये । यायालय के मुख्य न्यायाधीश की स्थिति मे यह बात असगत थी ।

(२) सन् १७७३ के अधिनियम म दूसरा दोष यह था कि उस में यह स्पष्ट रूप से उल्लख नही किया गया था कि सर्वो च यायालय को किस कानून को लागू करना चाहिए । यह एक मौलिक प्रश्न था कि हिन्दू कानून मुस्लिम कानून और ईसाई कानून प्रयोग म लाये जावें । यह भी स्पष्ट नही किया गया था कि प्रतिवादी का कानून लागू किया जाए या वादी का कानून । उच्च यायालय के यायाधीश अंग्रेजी विधि मे कुशल थे और प्रत्येक मामले म उसका ही यवहार करते थे । वे भारतीय कानून रीतियों एव परम्पराओ से सवथा अपरिचित थे और उनसे परिचित होने के लिए उनमें इच्छा और उत्सुकता भी नही थी । देशवासी इससे घबरा उठे ।

(३) अधिनियम म तीसरा दोष यह था कि गवनर जनरल को अपनी परिषद् की कृपा पर छोड़ दिया गया था । इससे गवनर जनरल की स्थिति बहुत

कमजोर हो गयी थी। परिषद् के सदस्यों में से केवल मि० बारवेल को ही भारतीय शासन का कुछ अनुभव था। दूसरे सदस्यों को भारतीय शासन की कुछ भी जानकारी नहीं थी। गवनर जनरल और उसकी परिषद् में कटु संघर्ष होने के लक्षण स्पष्ट रूप से विद्यमान थे। कहा जाता है कि ६ वर्ष तक वारेन हेस्टिंग्स और उसकी परिषद् में कटु संघर्ष चला। प्रत्येक अवसरों पर गवनर जनरल को ऐसी नीति का पालन करने को विवश होना पड़ा जिससे वह सहमत न था। वारेन हेस्टिंग्स की स्थिति इतनी कठिन थी कि एक अवसर पर उसने अपने लंदन स्थित प्रतिनिधि को यह आदेश दिया कि उसका त्यागपत्र वह सचालकों को दे दे। मानसन एवं क्लवरिंग की मृत्यु के बाद ही वारेन हेस्टिंग्स अपनी परिषद् की व्यवस्था करने में सफल हुआ।

(४) अधिनियम के द्वारा कम्पनी की गृह सरकार के विधान में जो परिवर्तन हुए वे भी दोष रहित न थे। मतदान के लिए योग्यता का स्तर ऊंचा कर देने से १२४६ छोटे साझीदार मताधिकार से वंचित हो गये और सचालक मंडल पर स्थायी रूप से कुछ ही व्यक्तियों का आधिपत्य हो गया। सन् १७८१ की प्रवर समिति के प्रतिवेदन के अनुसार "स्वामी मण्डल से सम्बन्ध रखने वाले सारे नियम आदि दो ऐसे सिद्धान्तों पर जो कितनी ही बार भ्रमपूर्ण सिद्ध हो चुके हैं, अवलम्बित थे। एक तो यह सिद्धान्त कि छोटे मतगणों से कुव्यवस्था और विघ्नता के विरुद्ध सुरक्षा होती है दूसरा यह कि सम्पत्तिशालियों का चरित्र उच्च एवं उज्ज्वल होता है। मिस्टर रावट्स के अनुसार "सचालक-मण्डल के विधान में परिवर्तन करने वाला खंड अपने उद्देश्यों में असफल रहा।"

(५) गवनर जनरल का बम्बई तथा मद्रास पर नियंत्रण प्रभावशाली नहीं था। कुछ विकट परिस्थितियों में मद्रास और बम्बई की सरकार को युद्ध की घोषणा करने की आज्ञा दे दी गयी थी। इसका उन्होंने दुरुपयोग किया और विकट परिस्थिति का बहाना बनाकर गवनर जनरल को बिना सूचना दिए कई बार युद्ध की घोषणा कर दी। इससे बंगाल की सरकार को बड़ी कठिनाई एवं परेशानी का सामना करना पड़ा।

(६) इस अधिनियम का एक दोष यह भी था कि इसके द्वारा कम्पनी पर संसदीय नियंत्रण की स्थापना पर्याप्त रूप से न हो पायी थी। यद्यपि इस अधिनियम में यह कहा गया था कि भारत में कम्पनी की सरकार से जो पत्र व्यवहार होगा वह मंत्रियों के पास भेजा जायगा परन्तु व्यवहार में यह नियंत्रण प्रभावशाली न रहा। संसद के सामने ऐसे पत्र व्यवहार प्रायः नहीं रखे जाते थे। अतएव समग्र या कम्पनी के कार्यों पर कोई प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित नहीं हो पाया था।

प्रो० रावट्स के अनुसार "रेग्यूलेटिंग अधिनियम एक अधूरा प्रयास था तथा बड़े प्रश्नों के सम्बन्ध में अत्यन्त अस्पष्ट था। बंगाल के नवाब का नाममात्र का स्वामित्व नीतिपूर्वक छोड़ दिया गया था तथा ब्रिटिश सम्राट अथवा भारत में

कम्पनी की राजसत्ता के सम्बन्ध में भी कुछ स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा गया। मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन के अनुसार "इस अधिनियम द्वारा शासन प्रणाली के प्राथमिक सिद्धान्तों की हानि हुई, इसके द्वारा एक ऐसे गवर्नर जनरल की व्यवस्था की गयी जो अपनी परिषद् के सम्मुख शक्तिहीन था और एक ऐसी कार्यकारिणी का निर्माण किया गया, जो सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख शक्तिहीन थी।" इन दोषों का निदर्शन अपने असफल रूप में वारेन हेस्टिंग के समय हुआ। इस अधिनियम की धाराओं से उसके हाथ पर बन्ध गये थे और वह कोई भी कार्य करने के योग्य नहीं रह गया था। संविधान के इतिहास में आज भी यह अधिनियम अपूर्ण है और असफल राजनीति और अपरिपक्व राजनीतिज्ञता का द्योतक है।

अधिनियम की अपूर्णता के कारण

रेग्यूलेटिंग अधिनियम की अपूर्णता के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे

प्रथम ब्रिटिश संसद को सन् १७७३ ई० में एक ऐसी समस्या को सुलझाना पड़ा जो एकदम नयी थी। कानूनी रूप में ब्रिटिश कम्पनी अपने आपको मुगल सम्राट का दीवान कहती थी और इसलिए संसद के लिए बहुत कठिन हो गया कि कम्पनी के शासन में प्रत्यक्ष रूप से प्रभावशाली सुधार कर सके। दूसरा भारतीय प्रदेशों का प्रशासन कम्पनी के हाथों में था न कि ब्रिटिश ताज के हाथों में अत संसद कम्पनी के मामलों में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। ब्रिटिश संसद को भारतीय विषयों का बहुत थोड़ा ज्ञान था। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को भी भारत की स्थिति और उसकी समस्याओं के हल के तरीकों का पूरा ज्ञान नहीं था। सरकार को भारतीय तथ्यों का पता कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा ही मिलता था किन्तु वे ठीक सलाह देने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं थे। अत इस मन्त्रणा के प्रभाव में संसद के लिए सही निर्णय लेना सम्भव नहीं था। तृतीय लार्ड नार्थ दृढ़ विचारों का व्यक्ति नहीं था। उसकी आन्तरिक इच्छा जिस प्रकार कार्य चल रहा है चलने दो की थी। वह यथा स्थिति बनाये रखने में अधिक विश्वास रखता था। इसलिए वह कुछ महत्वपूर्ण निर्णय नहीं ले पाया। यह सौभाग्य की बात है कि इस अधिनियम के दोष चाहे कितने ही गम्भीर थे परन्तु फिर भी वे घातक सिद्ध नहीं हुए।

(२)

पिट का भारत अधिनियम

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

पिट के भारत अधिनियम की स्वीकृति के पीछे अनेक कारण विद्यमान थे

(१) रेग्यूलेटिंग अधिनियम में अनेक दोष रह गये थे। वारेन हेस्टिंग्ज को इस अधिनियम के अनुसार कार्य करना पड़ा और उसे अनेक कठिनाइयों को झेलना पड़ा। गवर्नर जनरल का अपनी परिषद् पर नियन्त्रण नहीं था। बम्बई और मद्रास की सरकारें भी उसके प्रभावशाली नियन्त्रण में नहीं थीं। सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार भी अनिश्चित था। अत गवर्नर जनरल एवं सर्वोच्च न्यायालय में

विवाद चलता रहता था। १७८१ ई० के बंगाल न्यायालय अधिनियम द्वारा सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार तो निश्चित कर लिया गया था किन्तु रेग्यूलेटिंग अधिनियम की अन्य बुराइयों को दूर नहीं किया गया था। अतः रेग्यूलेटिंग अधिनियम के दोषों को दूर करना अनिवार्य था।

(२) भारत में कम्पनी के बुरे शासन के परिणामस्वरूप अंग्रेजों के व्यापार को काफी नुकसान हो रहा था। अमेरिका इस समय तक ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण से मुक्त हो गया था इसलिए ब्रिटेन के लिए भारत का महत्व और भी बढ़ गया था। कम्पनी के कर्मचारियों ने बिना किसी कारण के मराठों और रोहिलों से युद्ध छेड़ दिए थे। ये युद्ध ब्रिटिश सरकार की आज्ञा के बिना प्रारम्भ किए गए थे और इनमें ब्रिटिश सरकार को बहुत धन व्यय करना पड़ा था। उक्त कारणों से ब्रिटिश सरकार कम्पनी पर अपना नियन्त्रण बढ़ाना चाहती थी एवं इसके लिए अधिनियम बनाना आवश्यक था।

(३) कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा अनुचित रूप से धन जमा किया जा रहा था। रेग्यूलेटिंग अधिनियम के द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों के लिए अनुचित ढंग से सम्पत्ति अर्जित करने की मनाही कर दी गई थी फिर भी वे अप्रत्यक्ष रूप से अनुचित धन जमा कर लेते थे और अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् ब्रिटेन में भोग विलास का जीवन व्यतीत करते थे। वे धन बल से निर्वाचन में विजयी होकर ब्रिटिश संसद में पहुँच जाते थे। ब्रिटिश सरकार इस प्रकार के भ्रष्टाचार को बन्द करने की इच्छुक थी।

(४) ब्रिटेन के शासक यह अनुभव कर रहे थे कि कम्पनी अपने बुरे शासन के परिणामस्वरूप भारत के अंग्रेजी शासन को अस्थायी एवं अप्रिय बना रही है। वे यह चाहते थे कि भारत में अच्छा शासन स्थापित हो और वहाँ के नागरिक इंग्लैंड के शासन से होने वाली अच्छाइयों को महसूस करें। इन सब तथ्यों के कारण एक नए अधिनियम की आवश्यकता महसूस की जा रही थी।

अधिनियम की स्वीकृति

प्रारम्भ १७८३ ई० में डण्डास ने अपना विधेयक ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत किया जिस में ब्रिटिश ताज को कम्पनी के प्रमुख सेवकों को वापस बुलाने का अधिकार देने एवं गवर्नर जनरल के अधिकारों में वृद्धि करने का प्रस्ताव था। डण्डास विरोधी दल में था अतः अधिनियम पारित नहीं हो सका फिर भी इससे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल कुछ करने के लिए प्रेरित हुआ। १ नवम्बर १७८३ ई० को फोक्स ने भारत के सम्बन्ध में अपना प्रसिद्ध अधिनियम फोक्स इंडिया बिल संसद में प्रस्तुत किया। बिल में कम्पनी के गृह सरकार और विदेशों में कम्पनी के सेवकों को ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में लाने और कम्पनी की व्यापारिक सत्ता को राजसत्ता एवं मन्त्रियों को सौंपने का प्रस्ताव किया गया। यह बिल लोक सदन में बहुत अधिक मतों से स्वीकृत हो गया किन्तु हाउस ऑफ लार्ड्स में सम्राट जार्ज तृतीय के हस्तक्षेप के परिणाम

स्वरूप स्वीकृत नहीं हो पाया। इस बिल के स्वीकृत न होने का एक और कारण यह था कि फोक्स ने इस बिल को प्रस्तुत करने से पूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी से कोई परामर्श नहीं किया था। कम्पनी की इस विषय में रुचि थी और कम्पनी ने विधेयक का पूर्ण रूप से विरोध किया। जार्ज तृतीय ने १८ नवम्बर को संयुक्त मन्त्रिमण्डल को भंग कर दिया और पिट को नया मन्त्रिमंडल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। जनवरी १७८४ ई० में पिट ने अपना बिल प्रस्तुत किया जो अगस्त १७८४ ई० में संसद के द्वारा पारित हुआ तथा सम्राट की स्वीकृति प्राप्त होने पर वह अधिनियम बन गया।

अधिनियम के उपबन्ध

इस अधिनियम के अनुसार कम्पनी के संचालक मण्डल के अतिरिक्त एक नियन्त्रक मण्डल की स्थापना की गयी। इसमें ६ सदस्य रखे गए जो इस प्रकार थे चांसलर आफ दी एक्सचेकर सेक्रेटरी आफ स्टेट तथा ४ प्रिवी कौंसिल के सदस्य। इनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी तथा इनका कार्य काल उसी की इच्छा पर निर्भर था। यह नियन्त्रक मण्डल कम्पनी के संचालकों से वरिष्ठ अधिकार वाला था और इसके अधीन ही स्वामी मण्डल भी था। इस मण्डल की बैठक की गणपूर्ति तीन रखी गयी। सेक्रेटरी आफ स्टेट नियन्त्रक मंडल का अध्यक्ष होगा तथा उसे निर्णायक मत देने की शक्ति भी दे दी गयी। मंडल को कम्पनी के उपनिवेशों के बारे में समस्त सैनिक और असैनिक तथा राजस्व संबंधी विषयों की देख भाल निगरानी और नियन्त्रण का अधिकार दिया गया। नियन्त्रक मंडल कम्पनी के संचालकों के नाम आदेश भी जारी कर सकता था। भारत सरकार द्वारा भेजे जाने वाले समस्त पत्र भी नियन्त्रक मण्डल के सामने प्रस्तुत किए जाते थे। संचालकों में से तीन सदस्यों की एक और गुप्त समिति बनायी गयी थी जिसे यह कार्य सौंपा गया था कि नियन्त्रक मंडल यदि कोई ऐसे आदेश बाहर भेजना चाहता हो जिन्हें वह गुप्त रखना चाहता है तो यह समिति उन आदेशों को बिना दूसरे संचालकों को बताए ही भेज दे। मण्डल को कम्पनी के व्यापारिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं दिया गया था और यदि नियन्त्रक मण्डल व्यापारिक मामलों में हस्तक्षेप करे तो कम्पनी सम्राट के सामने अपील कर सकती थी। संचालकों के पास इस बात के अधिकार सुरक्षित रहे कि वे भारत के विभिन्न पदों के लिए नियुक्तियां कर सकें तथा भारतीय अधिनियमों का संशोधन और उनकी सुरक्षा कर सकें। स्वामी मंडल से संचालक मंडल के निर्णय में परिवर्तन करने का अधिकार छीन लिया गया।

इस अधिनियम के द्वारा भारत सरकार के संगठन में भी परिवर्तन किया गया। गवर्नर जनरल की परिषद् की सदस्य संख्या तीन कर दी गयी जिनमें एक कमाण्डर इन चीफ होता था। कमाण्डर इन चीफ का परिषद् में दूसरा स्थान रखा गया। गवर्नर जनरल की अनुपस्थिति में उसके अधिकार कमाण्डर इन-चीफ में निहित न होकर परिषद् के नागरिक सदस्यों में से वरिष्ठ सदस्य में निहित किए

गए। गवनर जनरल की नियुक्ति का अधिकार सचालको को दिया गया सम्राट की स्वीकृति से यह काय कर सकते थे। देश विभागो के गवनरों गवनर जनरल एव गवनर जनरल की परिषद् के सदस्यों आदि की नियुक्ति के अधिकार भी कम्पनी के सचालको के पास ही बने रहे तथा इनमे सम्राट की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं रखी गयी। सम्राट गवनर जनरल एव गवनरो को वापस बुला सकते थ। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तो को प्रत्येक दृष्टि से गवनर जनरल के अधीन बना दिया गया। बगाल एव मद्रास मे गवनर की सहायता के लिए परिषद् की स्थापना की गयी। गवनर की परिषद् की सदस्य सख्या तीन रखी गयी।

इस अधिनियम द्वारा परिषद् सहित गवनर जनरल को बिना सचालको की विशेष अनुमति के भारत के किसी प्रदेश प्रात या रियासत के विरुद्ध युद्ध घोषित करने युद्ध करने या युद्ध के सम्बन्ध म सधि करने की मनाही कर दी गयी। अधिनियम द्वारा ब्रिटिश ससद को यह शक्ति प्रदान की गयी कि वह नियन्त्रण मण्डल के सब खच भारतवष के राजस्व से दे सकेगी यदि वह राशि १६० पौंड से अधिक न हो।

इस अधिनियम के द्वारा पहले की अपेक्षा अब बहुत अच्छे तरीके से इस बात की व्यवस्था की गयी कि जो अग्रेज भारत म अपराध करें उन पर इगलड में मुकद्दमा चलाकर दण्डित किया जाय। इसके लिए इग्लड में तीन न्यायाधीश और दस ससद के सदस्यो का एक न्यायालय स्थापित किया गया। सक्षेप म इस अधिनियम के द्वारा रेग्यूलेटिंग अधिनियम के दोषो को दूर कर कम्पनी के स्वय के प्रशासन एव उसके भारतीय शासन के ढाचे म महान् परिवतन किया गया।

अधिनियम का महत्त्व

पिट के भारत अधिनियम का बहुत अधिक महत्त्व है। इसके द्वारा ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सब गर सनिक और राजनीतिक विषयो पर ब्रिटिश ससद का अन्तिम नियन्त्रण स्थापित हो गया। बगाल के गवनर जनरल का बम्बई और मद्रास की सरकारो पर निश्चित और वास्तविक नियन्त्रण स्थापित हो गया। इस अधिनियम के द्वारा पहली बार कम्पनी के भारतीय प्रदेशो का अग्रेजी साम्राज्य का अग माना गया और उनका नियन्त्रण करने के लिए एक सरकार नियन्त्रक मण्डल की स्थापना की गयी। स्वामी मण्डल का प्रभाव कम हो गया और गुप्त समिति के द्वारा कम्पनी के कार्यों म कुशलता तथा योग्यता का समावेश किया गया। इस अधिनियम की एक महत्त्वपूण बात यह थी कि नयी विदेश नीति अपनायी गयी और यह कहा गया कि भारत म साम्राज्य विस्तार की नीति ब्रिटिश राष्ट्र की नीति प्रतिष्ठा और इच्छा के विरुद्ध है।

इस अधिनियम की एक अन्य महत्त्वपूण बात यह थी कि इसके द्वारा इग्लड मे कम्पनी के शासन में द्वध शासन की स्थापना हुई। भारत वष का शासन करने

के लिए संचालक मण्डल और नियन्त्रक मण्डल जैसी दो स्वतन्त्र संस्थाओं की स्थापना हुई और भारत से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों पर कम्पनी का पूर्ण और अन्तिम नियन्त्रण नहीं रहा। सर इल्बर्ट कहता है "जाँच और अवरोध प्रतिरोध की विस्तृत कार्य प्रणाली से सन् १७८४ के पिट के अधिनियम द्वारा स्थापित द्वैध शासन का प्रभाव १८५८ ई० तक रहा। यद्यपि उसमें परिस्थिति-अनुसार कुछ सुधार अवश्य होते रहे।" यह संयोग की ही बात थी कि कम्पनी में द्वैध शासन की स्थापना द्वारा सन् १७६५ ई० में भारत ने प्रादेशिक प्रभुसत्ता प्राप्त की और पिट ने सन् १७८४ ई० के अधिनियम द्वारा स्थापित द्वैध शासन से कम्पनी को भारतीय विषयों की व्यवस्था के सर्वोच्च और अन्तिम निर्णय के अधिकार से वंचित कर दिया।

श्रीराम शर्मा ने पिट के भारत-अधिनियम के महत्व को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है "पिट के भारत अधिनियम ने इंग्लैण्ड में भारतीय विषयों के संचालन के आधार में परिवर्तन कर दिया। कम्पनी के स्वामियों का राजनैतिक प्रभुत्व कम हो गया। कम्पनी के संचालक अब ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में हो गये। ब्रिटिश सरकार के पास आज्ञाएँ जारी करने की अपरिमित शक्तियाँ थीं जिनका पालन करना संचालकों के लिए आवश्यक था।" मि० लायल के अनुसार "पिट के भारत अधिनियम का तात्कालिक प्रभाव बहुत ज्यादा था। इसके द्वारा स्पष्ट रूप से भारत सरकार के ढाँचे में सुधार हो गया। इस अधिनियम ने उन सब गवर्नर जनरलों एवं बाधाओं को दूर कर दिया जिनके कारण वारेन हेस्टिंग्ज का अपनी परिषद् तथा बम्बई और मद्रास की सरकारों से झगड़ा हुआ था। इस अधिनियम के द्वारा उन दोषों को दूर कर दिया गया जो उसने भारत सरकार के ढाँचे में बताये थे और उन सुधारों को अपनाया गया जो उसने प्रस्तुत किये थे।"

सन् १७८६ ई० में पिट के भारत अधिनियम में संशोधन किया गया। इसके अनुसार गवर्नर जनरल को परिषद् के निर्णय को वीटो करने का अधिकार दे दिया गया। यही शक्ति प्रान्तों में गवर्नरों को भी उनकी परिषद् के ऊपर दी गयी।

(३) सन् १७९३ ई० का आज्ञापत्र अधिनियम

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

सन् १७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग अधिनियम द्वारा कम्पनी को २० वर्ष के लिए पूर्वी देशों से व्यापार करने की आज्ञा प्रदान की गयी थी। यह अवधि १७९३ ई० में समाप्त हो गयी। अतः कम्पनी के संचालकों ने सरकार से एकाधिकार का काल बढ़ाने एवं पूर्वी देशों से व्यापार करने का अधिकार दिया जाने का अनुरोध किया। इंग्लैंड की जनता यह चाहती थी कि केवल कम्पनी का ही पूर्वी देशों से व्यापार करने का एकाधिकार प्राप्त न हो बल्कि सभी ब्रिटिश जनता को यह अधिकार मिले। ग्लासगो, लिवरपूल एवं मानचेस्टर की प्रमुख फर्मों के व्यापारियों ने संसद के सामने स्वतन्त्र व्यापार के लिए कुछ याचिकाएँ रखीं परन्तु तत्कालीन भारत मन्त्री

एच थी पिट कम्पनी के पक्ष म थ ग्रत १७६३ ई० के शासपत्र अधिनियम द्वारा ससद ने पुन कम्पनी को २० वप के लिए पूर्वी देशो से व्यापार करने का अधिकार प्रदान कर दिया ।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

यह अधिनियम बहुत लम्बा दस्तावेज नही था। इसके अनुसार वतमान उपबन्धों म कोई विशेष परिवतन नहीं किया गया था । इसके द्वारा केवल पहले अधि नियमो के बहुत से उपबन्धो को नया स्वरूप दिया गया तथा उनके क्षेत्र का विस्तार किया गया। इस अधिनियम द्वारा नियन्त्रक मण्डल के सदस्यो एव कमचारियो का वेतन भारतीय राजस्व से दिए जाने का निश्चय किया गया । गवनर जनरल एव उसकी परिषद् का मद्रास और बम्बई के देश–विभागो की विदेश नीति पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। गवनर जनरल और गवनरो को भारत में शान्ति व्यवस्था सुरक्षा और अंग्रेजो प्रजा के हितो से सबधित विषयों पर अपनी परिषद् के मत की उपेक्षा करने का अधिकार दिया गया। कलकत्ता के सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधिकरण क्षेत्र महासमुद्र तक बढा दिया गया । गवनर जनरल को अपनी कायकारिणी के किसी एक सदस्य को उप प्रधान नियुक्त करने का अधिकार दिया गया जो उसकी अनुपस्थिति म उसका काम कर सके। बम्बई मद्रास और बगाल मे परिषदो के सदस्यों की सख्या ३ ३ निश्चित की गयी। परिषद् के लिए नियुक्त सदस्यो के लिए कम से कम भारतवष मे रहते हुए १२ वष की अवधि पूणता आवश्यक थी । इस अधिनियम के द्वारा यह भी निश्चित किया गया कि नियन्त्रक मण्डल के दो सदस्यो के लिए प्रिवी कौंसिलर होना आवश्यक नही है । अनुमति पत्र के बिना शराब की बिक्री पर रोक लगा दी गयी । गवनर जनरल और उसकी परिषद् को दस विभाग के नगरो म स्वच्छता और सफाई के लिए कर लगाने और स्वच्छता सेवक नियुक्त करने की शक्ति प्रदान की गयी । इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के आर्थिक ढाचे को भी नियमित किया गया । कम्पनी की वार्षिक बचत का अनुमान लगाया गया । तथा इसकी बचत में से १ लाख पौंड कम्पनी का ऋण चुकाने के लिए सुरक्षित रख दिया गया और कुछ रकम साझेदारो को अधिक लाभांश देने के लिए रखी गयी ।

अधिनियम का महत्त्व

वास्तव मे उक्त शासपत्र सगठनकारी था । इसके द्वारा पुरानी व्यवस्था को [illegible] किया गया और बहुत कम नयी धाराएं बनायी गयी । पुरानी बातो को दोहरा दिया गया और उनका स्पष्टीकरण और विस्तार कर दिया गया । इस शासपत्र की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसके द्वारा नियन्त्रक मण्डल [illegible] सदस्यो एव कम चारियो का वेतन भारतीय राजस्व से देने की व्यवस्था की गयी जो एक बुरी पर परा थी एव जो १९१९ ई० तक अपने बुरे परिणामो के साथ चलती रही ।

(४) १८१३ ई० का शासपत्र अधिनियम

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

सन् १७९३ ई० में कम्पनी को पूर्वी देशों से व्यापार करने की अनुमति केवल २० वर्ष के लिए प्रदान की गयी थी। यह अवधि १८१२ ई० में समाप्त हो गयी अतः कम्पनी को व्यापार करने की अनुमति देने का प्रश्न संसद के सामने आया। इस समय इंग्लैण्ड में स्वतंत्र व्यापार का सिद्धान्त प्रचलित था। जनता यह मांग कर रही थी कि पूर्वी देशों से व्यापार करने का अधिकार सारी ब्रिटिश प्रजा को होना चाहिए। उस समय ईसाई धर्म के प्रचार हेतु पादरी भी भारतवर्ष आना चाहते थे और वे ब्रिटिश सरकार से इसके लिए आवश्यक सुविधाएं मांग रहे थे। ऐसी स्थिति में १८१३ ई० का शासपत्र अधिनियम स्वीकार किया गया।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी का कार्यकाल भारतवर्ष में २० वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का चीन के साथ व्यापार करने और चाय के व्यापार को छोड़कर दूसरे सब प्रकार के व्यापार पर से एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। यह अधिकार अब प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक के लिए खुला कर दिया गया। इस विचार से कि अंग्रेज वहां जाकर भारतीयों को तंग न कर परमिट और अनुमति पत्र की व्यवस्था लागू की गयी।

भारत में कम्पनी के व्यय पर एक बिशप की स्थापना की गयी। जो अंग्रेज भारत में जाते थे उन्हें भारत में लाभदायक ज्ञान कराने, ईसाई धर्म और नैतिक सुधारों का प्रचार करने की आज्ञा दे दी गयी। भारतवासियों में विज्ञान, कला और साहित्य के प्रचार के लिए तथा पढ़े लिखे भारतीयों को उत्साहित करने के लिए भारत सरकार को राजस्व से १ लाख रुपयों की वार्षिक मंजूरी की व्यवस्था की गयी।

इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी के व्यापारिक और शासन सम्बन्धी हिसाब किताब अलग अलग रखने की व्यवस्था की गयी। कम्पनी के ऊपर कुछ विशेष जिम्मेदारियां डाल दी गयी।

(१) वह भारतीय राजस्व में से सेनाओं को वेतन दे।
(२) ऋण देने वालों को ब्याज दे और
( ) असैनिक और व्यापारी दफ्तरों के संचालन का व्यय वहन करे।

भारतीय राजस्व से वेतन प्राप्त करने वाले ब्रिटिश सैनिकों की संख्या २ निर्धारित कर दी गयी। अधिनियम द्वारा नियन्त्रक मण्डल के अधिकारों को भी निश्चित कर दिया गया और उसकी निगरानी तथा आज्ञाएं जारी करने के अधिकार को अधिक व्यापक कर दिया गया।

स्थानीय सरकारों को अपने अपने अधिकार क्षेत्र में कर लगाने और कर न देने वालों को दण्ड देने का अधिकार दिया गया। ऐसे मामलों में जिनमें वादी और

प्रतिवादी अंग्रेज और भारतीय होने पर निर्णय की विशेष व्यवस्था की गयी। जाली जालसाजी और जाली सिक्के बनाने वाला को विशेष दण्ड देने के नियम बनाये गये। कम्पनी पर भारत में यूरोपीय हितों का देखभाल के लिए एक विशेष और तीन पादरियों की नियुक्ति का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इस अधिनियम द्वारा कंपनी के नागरिक तथा फौजी प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी।

अधिनियम का महत्त्व

इस अधिनियम का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि इसके द्वारा भारत में व्यापार करने का ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिकार समाप्त हो गया। भारत से व्यापार करने के लिए इंग्लैंड के व्यापारियों को कुछ शर्तों पर व्यापार करने की आज्ञा मिल गयी। भारत में अंग्रेजी व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता भारतीय व्यापारियों से हुई जिसमें ब्रिटिश व्यापारियों को अधिक लाभ रहा। लंकाशायर एवं मनचेस्टर के कारखानों में निर्मित अच्छे कपड़े के मुकाबले में भारतीय गृह उद्योग में निर्मित कपड़ा नहीं चल सका। फलस्वरूप भारतवर्ष का कपड़ा उद्योग नष्ट हो गया और भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश ही रह गया। इस अधिनियम के फलस्वरूप ईसाई धर्म प्रचारकों को भारतवर्ष में ईसाई धर्म प्रचार करने की आज्ञा मिल गयी। इन्होंने अनेक गिरजाघर और शिक्षण संस्थाएं खोलीं। ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ा और प्रतिवर्ष हजारों हिन्दू ईसाई बनने लगे। इस अधिनियम के द्वारा अंग्रेजों ने भारतवर्ष में शिक्षा के विकास के लिए १ लाख रुपया की व्यवस्था की। इस धन का उपयोग अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार करने में किया गया जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों को न केवल पढ़े लिखे सस्ते कर्मचारी ही मिले बल्कि शिक्षित भारतीयों में अपनी सभ्यता और संस्कृति को घटिया और अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति को बढ़िया समझने की प्रवृत्ति भी पैदा हुई। संक्षेप में इस अधिनियम द्वारा जो कदम उठाये गये उससे भारत की आर्थिक व्यवस्था को काफी धक्का लगा। देश में ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ा और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को क्षति पहुँची।

(५) सन् १८३३ ई० का शासपत्र अधिनियम

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

सन् १८१३ के शासपत्र अधिनियम द्वारा कम्पनी का चीन और पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए २० वर्ष का अधिकार प्राप्त हुआ था। सन् १८३३ ई० में यह अवधि समाप्त हो गयी थी अतः व्यापार के लिए कम्पनी को अनुमति देने का प्रश्न संसद के सामने आया जिसके फलस्वरूप सन् १८३३ ई० का शासपत्र अधिनियम स्वीकृत किया गया।

अधिनियम के उपबन्ध

इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के चीन के साथ व्यापार करने के सर्वाधिकार को समाप्त कर दिया गया तथा चीन का व्यापार सभी व्यापारियों के लिए खोल

दिया गया। कम्पनी के व्यापारिक कार्य समाप्त कर दिये गये और उनको केवल राजनतिक कार्यों के सम्पादन का उत्तरदायित्व सौंपा गया। उसको एक शुद्ध प्रशासकीय सस्था का स्वरूप प्रदान किया गया। कपनी को भारतीय प्रदेश ब्रिटिश ताज की तरफ से अमानत के रूप मे रखने की आज्ञा दी गयी। भारत सरकार के निरीक्षण नियन्त्रण और निर्देशन का काम गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् को सौंप दिया गया। गवनर जनरल को भारत के गवनर जनरल की पदवी दी गयी और उसकी परिषद् में ४ सदस्यों की नियुक्ति की गयी। चौथा सदस्य विधि सदस्य कहलाया इस सदस्य के लिए यह आवश्यक था कि वह कानून का विशेषज्ञ हो। कानून सबधी कार्यों के अतिरिक्त उसे अन्य कार्य नहीं दिया जा सकता था। गवनर जनरल को प्रान्तीय सरकार को स्थगित करने का अधिकार प्रदान किया गया। इस अधिनियम के द्वारा गवनर जनरल और गवनर की वीटो की शक्ति का और अधिक स्पष्टीकरण कर दिया गया। गवनर जनरल और गवनर के लिए परिषदों के मत की उपेक्षा करने के लिए कारणों का उल्लेख करना आवश्यक कर दिया गया। गवनर जनरल और गवनर को इन शक्तियों का प्रयोग कम से कम करने का परामर्श दिया गया। सम्पूर्ण भारत वर्ष के लिए कानून बनाने की शक्ति गवनर जनरल और उसकी परिषद् को दे दी गयी। गवनर जनरल और उसकी परिषद् कोई ऐसा कानून नहीं बना सकती थी जो ब्रिटिश ससद के कानूनो या सचालकों के आदेशों के विरुद्ध हो। गवनर जनरल को भारतीयो की दशा सुधारने के लिए कानून बनाने का अधिकार भी दिया गया।

भारतीयो के विरुद्ध धर्म वश जाति और रग के आधार पर सब भेद भाव समाप्त कर दिये गये। भारत मे ईसाइयो के लाभ के लिए बम्बई मद्रास तथा कलकत्ता मे बडे पादरी की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी। भारत सरकार को गुलाम प्रथा को समाप्त करने और गुलामो के लिए अन्य नियम बनाने का अधिकार दिया गया। इस अधिनियम के अनुसार यूरोप से भारत मे आने वालो को भारत मे बसने तथा भूमि खरीदने की आज्ञा प्रदान की गयी। नियन्त्रक मडल के प्रधान को भारतीय मामलो का मत्री बना दिया गया। मडल मे उसके जो अन्य साथी थे उनको हटा दिया गया। मत्री की सहायता के लिए दो सहायक आयुक्त नियुक्त किये गये। भारत सरकार को कपनी के ऋण चुकाने का उत्तरदायित्व दिया गया। कम्पनी के शेयर-होल्डरो को आगामी ४० वर्षों मे भारतीय राजस्व मे १०½ प्रतिशत लाभाश का आश्वासन दिया गया। कम्पनी की भारतीय अधिकृत बस्तियों को ब्रिटिश सरकार के विश्वास के रूप में कपनी द्वारा अधिकृत ही घोषित कर दिया गया। कपनी को व्यापारिक कार्यों से वचित किये जाने के परिणामस्वरूप जो घाटा हुआ उसकी पूर्ति हेतु ६० लाख पौंड भारतीय राजस्व से दिये जाने की व्यवस्था की गयी। इस अधिनियम के द्वारा सचालको का सरक्षण सीमित कर दिया गया। ऐसा प्रबन्ध किया गया कि हेलीबरी कॉलेज में मनोनीत स्थानो की सख्या दुगनी

कर दी जाए। मनोनीत व्यक्तियों को ही कॉलिज में प्रवेश मिलता था तथा उनमें सबसे अच्छे परीक्षा परिणाम वाले प्रार्थी रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए नियुक्त किये जाते थे। बंगाल देश विभाग से आगरा देश विभाग को अलग करने की व्यवस्था की गयी परन्तु बाद में इसे स्थगित कर दिया गया। बम्बई और मद्रास को प्रमुख सेनापति के आधीन पृथक सेनाएं रखने का अधिकार दिया गया परन्तु उनका नियन्त्रण केन्द्र सरकार के आधीन रखने की व्यवस्था की गयी।

अधिनियम का महत्त्व

सन् १८३३ ई॰ के शासपत्र-अधिनियम का अत्यधिक महत्त्व है। लॉर्ड मोर्ले इस अधिनियम को पिट के सन् १७८४ के प्रसिद्ध अधिनियम और महारानी विक्टोरिया के भारत शासन को अपने अधिकार में लेने के मध्यकाल का अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव मानते हैं। इस अधिनियम का महत्त्व इस बात में है कि इसके द्वारा भारत में एक दृढ़ केन्द्र शासन की स्थापना का प्रयास किया गया। इस अधिनियम के द्वारा विधि की समानता सम्पूर्ण देश में स्थापित कर दी गयी। इस अधिनियम के द्वारा कानून निर्माण और शासन संचालन के लिए भिन्न भिन्न व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। इस अधिनियम के प्रचलन से भारतीयों के विरुद्ध धर्म जाति और रंग के आधार पर भेदभाव समाप्त कर दिया गया। मकाले ने इस अधिनियम की धारा को दयालुतापूर्ण बुद्धिमत्तापूर्ण और शानदार बताया। डॉ॰ ईश्वरीप्रसाद के अनुसार इस अधिनियम का महत्त्व इस बात में है कि इसके द्वारा भारतीय विधान मण्डल की नींव रखी गयी। इस प्रकार से इस अधिनियम का महत्त्व बहुत अधिक है। इस अधिनियम से पश्चात् कंपनी के पास केवल राजनैतिक रह गये। कम्पनी पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण बढ़ता गया एवं सन् १८५८ में यह नियन्त्रण यहाँ तक बढ़ा कि कंपनी का अन्त हो गया।

यद्यपि १८३३ ई॰ के अधिनियम में जो बातें कही गयी थी वे बहुत महत्त्वपूर्ण थी तथापि जो उन्नति इस दिशा में हुई यह बहुत ही धीमी थी। डा॰ ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि भारत पर शासन करते समय सन् १८३३ के अधिनियम में निर्धारित नीति का पालन करने के बजाय उल्लंघन ही अधिक किया गया। फिर भी यदि १८३३ ई॰ के अधिनियम की घोषणा से कोई विशेष लाभ न हुआ हो तो भी कम से कम यह परिणाम तो अवश्य निकला कि १९ वीं शताब्दी के अन्त एवं २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्रवादियों ने इस घोषणा को आधार बनाकर अधिक से अधिक सुधारों की मांग की जिसके फलस्वरूप देश में राष्ट्रीय चेतना और राजनैतिक जागृति का सूत्रपात हुआ।

(६) १८५३ ई॰ का शासपत्र अधिनियम

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

सन् १८३३ के अधिनियम द्वारा कम्पनी का व्यापार काल २० वर्ष के लिए बढ़ाया गया था जो अब समाप्त हो गया था अतः कम्पनी के कार्यकाल को बढ़ाने

हेतु विधेयक स्वीकृत करना आवश्यक था। भारतीय जनता भी सुधार की मांग कर रही थी। बंगाल, मद्रास एवं बम्बई देश विभागों के निवासियों ने एक प्रार्थना-पत्र ब्रिटेन सरकार को दिया। इस प्रार्थना पत्र में उन्होंने कहा कि यद्यपि १८३३ ई. के अधिनियम के अनुसार भारतीयों के विरुद्ध सब भेदभाव समाप्त कर दिया गया था परन्तु किसी भी भारतीय को अब तक किसी ऊँचे पद पर नियुक्त नहीं किया गया है। इसलिए भारत का शासन करने का अधिकार भारत सचिव और उसकी परिषद् को सौंपा जाय तथा कम्पनी को यह अधिकार पुनः प्रदान न किया जाए। उनकी यह भी मांग थी कि ब्रिटिश सिविल सर्विस की परीक्षा के द्वार इंग्लैंड के सम्राट की प्रजा के प्रत्येक सदस्य के लिए खोल जाएं। भारत में कानून निर्माण के लिए एक अलग विधानपरिषद् की स्थापना की जाए तथा प्रदेशों को प्रान्तीय स्वराज्य का स्वरूप प्रदान किया जाए। भारतीय जनता की मांग ने भी सरकार का ध्यान आकर्षित किया। इसके फलस्वरूप सरकार ने सुधार के लिए अधिनियम को स्वीकृत करना आवश्यक समझा।

संसद द्वारा अधिनियम का स्वीकृत किया जाना

लार्ड डर्बी ने मार्च १८५३ ई. में कम्पनी के शासन के विरुद्ध शिकायतों की जांच करने के लिए एक विशेष समिति की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि नीति और धर्म, मानवता का हित एवं परोपकार के लिए हमारा यह परम कर्तव्य है कि जितनी ज्यादा बुद्धिमानी और दूरदर्शिता के साथ हो सके उतनी ही शीघ्रता से भारत के निवासियों के व्यक्तिगत और प्रशंसनीय कार्यों का एक अधिक से अधिक मात्रा में नियंत्रण और निरीक्षण उनके हाथों में सौंपा जाय। विशेष समिति के प्रतिवेदन के आधार पर १८५३ ई. का आज्ञापत्र-अधिनियम स्वीकृत कर लिया गया।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

सन् १८५३ ई. के आज्ञापत्र अधिनियम के मुख्य मुख्य उपबन्ध निम्न लिखित थे —

(१) इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी के अधिकारों का नवीनीकरण किया गया। भारतीय प्रदेशों को इंग्लैंड की महारानी और उसके उत्तराधिकारियों की अमानत के रूप में रख लिया गया। पहले अधिनियम में संसद ने कम्पनी को २० साल के लिए भारतीय कार्यों पर शासन का अधिकार दिया था। किन्तु इस बार यह कहा गया कि जब तक संसद कम्पनी को कोई और आदेश न दे तब तक उसे इसका शासन करने का अधिकार होगा। संक्षेप में इस अधिनियम के अनुसार संसद ने कम्पनी को असीमित समय के लिए भारत पर शासन करने का अधिकार दे दिया।

(२) इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी के संचालकों की संख्या २४ से घटाकर १८ कर दी गयी। इन १८ संचालकों में से ६ सदस्यों की नियुक्ति कम्पनी के

स्वामियों के बजाय ब्रिटिश सम्राट द्वारा होगी। संचालकों की बैठक में गणपूर्ति १३ से घटाकर १० कर दी गयी।

(३) इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल अब बंगाल का गवर्नर नहीं रहा। यह निश्चय किया गया कि बंगाल के लिए अलग गवर्नर होगा। गवर्नर जनरल को संचालकों और नियन्त्रण मण्डल की आज्ञा से बंगाल के लिए एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। इसी प्रकार पंजाब के लिए भी अलग लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी।

(४) गवर्नर जनरल तथा उसकी परिषद् को नये प्रान्त बनाने तथा पुराने प्रान्तों की सीमाओं को बदलने तथा नियन्त्रण मंडल की सहमति से निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। गवर्नर जनरल को अपनी परिषद् का एक उप प्रधान नियुक्त करने का भी अधिकार दिया गया जो उसकी अनुपस्थिति में परिषद् की बैठकों का सभापतित्व कर सके।

(५) इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल की कानून निर्मात्री परिषद् का विस्तार किया गया। ६ नए सदस्य बढ़ाये गये—बंगाल, मद्रास, बम्बई एवं उत्तर-पश्चिम सीमान्त देश विभागों से एक एक प्रतिनिधि, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीश। इस प्रकार कानून निर्माण के लिए कुल १२ सदस्य हो गये (गवर्नर जनरल, प्रधान सेनापति, गवर्नर जनरल की परिषद् के ४ सदस्य और ६ नये सदस्य जो नये अधिनियम के द्वारा सम्मिलित किए गये)। कानूनी परिषद् के प्रत्येक सदस्य का वेतन ५ पौंड निश्चित किया गया। परिषद् की गणपूर्ति ७ रखी गयी। कानून बनाने के लिए परिषद् में ब्रिटिश संसद से मिलती जुलती कानून बनाने की पद्धति अपनायी गयी। विधेयक विचारार्थ की सम्मति के लिए प्रवर समिति के पास भेजे जाते थे। प्रत्येक विधेयक पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी। गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी परिषद् किसी भी विधेयक को वीटो कर सकती थी।

(६) इस अधिनियम के द्वारा भारतीय कानून के संग्रह की ओर भी ध्यान दिया गया। सन् १८३३ के अधिनियम द्वारा एक विधि आयोग की नियुक्ति की गयी थी। इस अधिनियम के द्वारा विधि आयोग की सिफारिशों की जांच पड़ताल के लिए ब्रिटिश कमिश्नर नियुक्त किये गये। इन सब की मेहनत के परिणामस्वरूप दीवानी और फौजदारी कानून की पुस्तकें तैयार की गयीं।

(७) इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी की सेवाओं में प्रतियोगी परीक्षाओं की पद्धति जारी की गयी। भारतीय नागरिक सेवा की परीक्षा सारी जनता के लिए खोल दी गयी।

(८) इस अधिनियम के द्वारा यह निश्चित किया गया कि नियन्त्रण मंडल के सदस्यों, सचिवों तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन कम्पनी द्वारा दिया जाए। वेतन निश्चित करने का अधिकार ब्रिटिश सम्राट को दिया गया।

अधिनियम का महत्व

१८५३ ई० का अधिनियम कम्पनी की प्रादेशिक सत्ता तथा न्याय निर्माण के मध्यकाल और भारतवर्ष में कम्पनी के शासनकाल का अन्तिम अधिनियम था। इस अधिनियम का महत्व इस बात में निहित है कि गवनर जनरल की परिषद् का विस्तार किया गया। प्रारम्भ से ही परिषद् एक छोटी सी संसद के रूप में काम करने लगी। गवनर जनरल की इस कानून बनाने वाली परिषद् ने सरकार की नीति की आलोचना करना प्रारंभ किया। इस प्रकार भारतवर्ष में संसदीय सरकार की नींव पड़ी यद्यपि इसके निर्माताओं ने इस बात से इन्कार किया था। नियन्त्रक मंडल के प्रधान चार्ल्सवुड ने लिखा है "मैं गवनर जनरल की कानून बनाने वाली परिषद् को भारत में संवधानिक संसद का प्रारम्भ तथा केन्द्र नहीं मानता हूं। फिर भी जो वास्तविकता है उसे हम नजर अन्दाज नहीं कर सकते।" श्री ठाकुर ने लिखा है "सन् १८३३ के कानून के एक सन्दर्भ से विकसित यह धारासभा यद्यपि केवल अधिकारियों की ही एक संस्था थी फिर भी "इसकी बैठक आम जनता के लिए खुली हुई थी। इसका कार्यक्रम अधिकृत रूप से प्रकाशित किया जाता था।"

इस अधिनियम की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इस अधिनियम में कम्पनी के शासन का कार्यकाल निर्धारित नहीं किया गया था। इससे यह प्रतीत होने लगा था कि कम्पनी के शासन का अन्त होने में अब थोड़ा समय शेष रह गया है तथा ब्रिटिश सरकार इस दिशा में सोचने लगी है। इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी की शक्तियों को अत्यन्त कम कर दिया गया था। इसी प्रकार संचालक मंडल की सदस्य संख्या घटाकर और उसमें से ६ सदस्य ब्रिटिश सम्राट द्वारा नियुक्त किये जाने का उल्लेख कर कम्पनी के स्वामियों का नियन्त्रण कम कर दिया गया। संचालकों के हाथ से भारत के अधिकारियों की नियुक्ति की शक्तियां भी ले ली गयीं। इस तरह से संचालकों की शक्तियां काफी कम कर दी गयीं और ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण बढ़ा दिया गया।

इस अधिनियम की तीसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसके द्वारा गवनर जनरल की परिषद् में प्रान्तों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया गया। भारतीय कानून के संग्रह का महत्वपूर्ण काय भी इस अधिनियम के द्वारा प्रारम्भ हुआ।

इसकी चौथी विशेषता यह थी कि इस अधिनियम द्वारा १८३३ ई० के अधिनियम की महान् घोषणा को व्यावहारिक रूप दिया गया। अब भारतीयों के लिए सब पद खोल दिये गये और इस हेतु उन्हें प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने की आज्ञा दे दी गयी। इस तरह से कम्पनी की सेवा में नामजदगी के सिद्धान्त का महत्व अपने आप ही समाप्त हो गया। डॉ० इकबाल नारायण ने इस अधिनियम के महत्व का वर्णन इन शब्दों में किया है "वधानिक इतिहास के विकास में अगली महत्वपूर्ण सीढ़ी है सन् १८५३ का अधिनियम। इस अधिनियम द्वारा भारतवर्ष में एक ओर

दो पृथक् व्यवस्थापिका सभा का निर्माण किया गया और दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप से इस अधिनियम का प्रजातन्त्रात्मक प्रभाव पडा। इसके द्वारा भारत की अंग्रेजी सरकार ने वर्तमान सरकार का रूप धारण किया जिसका कार्य केवल कानून बनाना मात्र न था बल्कि उन्हें लागू करना भी था। वस्तुतः यह स्पष्ट प्रकार की एक घटना है जिसमें निरंकुश शासन में अधिक प्रजातन्त्र का आस्वादन मिला।[1]

उपर्युक्त चर्चा से प्रकट होता है कि भारत में कम्पनी के शासन के दो केन्द्र थे—प्रथम भारत में और द्वितीय इंग्लैण्ड में। भारत में प्रारम्भ में कम्पनी की शासन शक्तियाँ तीन देश विभागों—बम्बई, मद्रास और बंगाल के हाथों में थीं। प्रत्येक देश विभाग की अपनी पृथक्-पृथक् सरकार थी जिसमें एक गवर्नर एवं एक परिषद् होती थी। परिषद् में १२ से लेकर १६ तक सदस्य होते थे। गवर्नर एवं परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति संचालक मण्डल द्वारा होती थी। प्रत्येक देश विभाग का संचालकों से सीधा सम्बन्ध था। सन् १७७३ ई० में भारत में प्रशासन में केन्द्रीयकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ। बंगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल बना दिया गया एवं बम्बई और मद्रास के देश विभागों को इसके नियन्त्रण में कर दिया गया। कुछ वर्षों के पश्चात् गवर्नर जनरल को सारे भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और भारत में शासन के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व एवं अधिकार उसे दे दिये गये। प्रान्तों में गवर्नर रहे।

भारत सरकार इंग्लैंड स्थित कम्पनी के अधिकारियों के नियन्त्रण में थी। प्रारम्भ में एक गवर्नर, एक उप गवर्नर एवं २४ सदस्यों का एक संचालक मंडल भारत सरकार को नियन्त्रित एवं शासित करता था। सन् १७८४ में ब्रिटिश सरकार ने संचालक मण्डल के ऊपर एक नियन्त्रक मंडल की स्थापना कर दी। कम्पनी की सारी शक्तियाँ संचालक मण्डल एवं नियन्त्रक मंडल में विभाजित हो गयी। इस प्रकार गृह शासन में द्वैध शासन का प्रारम्भ हुआ जो सन् १८५८ तक कायम रहा। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया संचालक मंडल के अधिकार कम होते गये एवं नियन्त्रक मण्डल के अधिकारों में वृद्धि होती गयी। भारत में कम्पनी के शासन की दो प्रमुख विशेषताएं थीं (१) भारतीय शासन में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति और (२) गृह सरकार में द्वैध शासन की स्थापना।

---

१ वायर्स इण्डियन गवर्नमेण्ट

४

सन् १८५७ ई० का स्वतन्त्रता संग्राम महान् राष्ट्रीय घटना

प्रवेश

भारतवर्ष में विदेशी शासन से मुक्ति पाने का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण प्रयास सन् १८५७ ई० में हुआ। इस प्रयास ने भारत में ब्रिटिश शासन के स्वरूप को ही पलट दिया। अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतवासियों के स्वतन्त्रता प्राप्ति के इस प्रथम प्रयास को सैनिक विद्रोह या क्रान्ति की संज्ञा दी परन्तु भारतीय इतिहासकारों ने इसको प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष की संज्ञा दी है। हम यहां संक्षेप में १८५७ ई० के संघर्ष के कारणों, महत्वपूर्ण घटनाओं, संघर्ष के स्वरूप एवं उसकी असफलताओं के कारणों का उल्लेख करेंगे।

सन् १८५७ ई० के संघर्ष के निम्नलिखित कारण थे —

(अ) राजनैतिक कारण—

लॉर्ड डलहौजी ने अपने शासन काल में व्यपगत सिद्धान्त की नीति को कठोरता पूर्वक अपना कर अनेक देशी राज्य यथा सतारा, जैतपुर, सम्भलपुर, उदयपुर (यह राजस्थान की उदयपुर या मेवाड़ रियासत से भिन्न है) झांसी आदि को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। डलहौजी की इस नीति के फलस्वरूप अन्य सुरक्षित देशी नरेश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वे कभी भी अंग्रेजों के कुचक्र का शिकार बन सकते हैं। अंग्रेजों ने अवध के नवाब पर राज्य के कुप्रबन्ध का आरोप लगाकर अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। इस घटना ने अन्य देशी नरेशों को सोचने के लिए बाध्य किया कि जब अंग्रेजों ने अवध जैसे स्वामीभक्त राज्य को नहीं छोड़ा तो फिर अंग्रेजों के प्रति स्वामीभक्त रहने से क्या लाभ है? अवध की प्रजा और सेना में भी अंग्रेजों के इस कार्य से असंतोष व्याप्त हुआ। विलसन ने भारतीय क्रान्ति के इतिहास में लिखा है कि अवध को ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित करने तथा वहां पर नई शासन पद्धति के प्रारम्भ किए जाने से मुसलमान, कुलीनतन्त्र, सिपाही और किसान सब अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए और अवध असंतोष का बड़ा केन्द्र बन गया।

अंग्रेजों ने नाना साहब के प्रति भी अन्याय किया। उनकी पेन्शन बन्द कर

दी। बाजीराव द्वितीय को कम्पनी से बकाया पेन्शन के बासठ हजार रुपए देने से इन्कार कर दिया एवं नाना साहब को यह नोटिस दिया गया कि बिठूर की जागीर भी कम्पनी सरकार अपनी इच्छानुसार जब चाहे छीन लेगी। अंग्रेजों के इस व्यवहार ने नाना साहब को अंग्रेजों का घोर शत्रु बना दिया। अंग्रेजों ने मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के साथ भी दुर्व्यवहार किया। सिक्कों पर से बादशाह का नाम हटा दिया गया। अंग्रेज प्रतिनिधियों ने बादशाह के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करना बन्द कर दिया। बादशाह के बड़े पुत्र मिर्जा जवाबख्त को युवराज बनाने से इन्कार कर दिया। पेंशन एक लाख से घटाकर पन्द्रह हजार करदी तथा सम्राट को लाल किला खाली करके महरौली में रहने के लिए कहा गया। ये सब बातें बड़ी अपमानजनक थीं तथा उनके कारण बहादुरशाह और उसके अनुयायी अंग्रेजों के शत्रु बन गए।

देशी राज्यों के अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लेने के फलस्वरूप उच्च वर्ग के लोगों को भी काफी धक्का पहुँचा। उनके सभी विशेषाधिकार व सुविधाएँ समाप्त हो गयीं। अतः वे अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए। देशी राज्यों के विलय के फलस्वरूप अनेक देशी राज्यों की सेनाएं भी समाप्त हो गयीं जिससे समस्त देशी सैनिक भी बेकार हो गए। अंग्रेजों ने जमींदारों पर भी बड़ा अत्याचार किया उनकी भूमि छीन ली। अतः उनमें भी अंग्रेजों के प्रति असन्तोष की भावना तीव्र हो उठी। संक्षेप में अंग्रेजों की नीति ने भारतीय सैनिकों, जमींदारों, कुलीनों एवं राजा महाराजाओं में असन्तोष की ज्वाला प्रज्वलित कर दी जो समय पाकर संघर्ष के रूप में प्रकट हो गयी।

(ब) आर्थिक कारण

अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से भारत का आर्थिक शोषण प्रारम्भ हो गया था। १६ वीं शताब्दी में हुई औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप इंग्लैंड को कच्चे माल की आवश्यकता थी तथा निर्मित माल के लिए मंडियों की जरूरत थी। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए भारत को मनचेस्टर एवं लंकाशायर में उत्पादित माल के विक्रय के लिए प्रधान बाजार बना लिया तथा भारत से रुई और अन्य कच्चा माल इंगलैंड भेजना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप भारतीय उद्योग धन्धे नष्ट हो गए एवं अनेक भारतीय बेकार हो गए। अंग्रेज पूँजीपतियों ने अपनी पूँजी का प्रयोग भारत में प्रारम्भ किया फलस्वरूप भारत की पूँजी अंग्रेज पूँजीपतियों के हाथों में पहुँचनी प्रारम्भ हो गयी। लार्ड विलियम बैंटिक ने बहुत सी कर मुक्त एवं इनाम की भूमि को छीन लिया। इससे अनेक भूमिपति विपन्न एवं गरीब हो गए। संक्षेप में अंग्रेजों की नीति से भारतीयों को काफी आर्थिक हानि पहुँची एवं उनमें अंग्रेजों के विरुद्ध भावना काफी तीव्र हो गयी।

(स) सामाजिक कारण

अंग्रेज शासकों की नीतियों का भारतीयों के सामाजिक जीवन पर भी बुरा

प्रभाव पड़ा। अंग्रेजों ने उच्च वर्ग की सम्पत्ति भूमि पद जागीरें तथा पेन्शन आदि छीन लीं। इन सब के कारण उनकी सामाजिक स्थिति मान मर्यादा एवं कीर्ति प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। अतः वे अंग्रेजों से असन्तुष्ट हो गये। अंग्रेजों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा सभ्यता व संस्कृति का तेजी से प्रसार करना आरम्भ कर दिया। अंग्रेजी स्कूलों में सभी जाति व धर्म के बच्चों को एक साथ शिक्षा दी जाने लगी जो भारतीय परम्परा के विरुद्ध थी। भारतीयों के मन में यह भावना जागृत हुई कि अंग्रेज भारतीय नवयुवकों को अंग्रेजी शिक्षा देकर पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव में लाना चाहते हैं और इस प्रकार भारतीय सभ्यता व संस्कृति को नष्ट करना चाहते हैं। अंग्रेजों ने भारतीयों के सामाजिक जीवन में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था। लार्ड विलियम बैंटिंक ने सती प्रथा बालहत्या नरबलि आदि को बन्द करने का प्रयास किया था। डलहौजी ने विधवा विवाह को कानूनी रूप प्रदान कर दिया था। यद्यपि अंग्रेजों ने ये सब सुधार भारतीय समाज को स्वस्थ बनाने की दृष्टि से किये तथापि रूढ़िवादी तथा कट्टरपंथी भारतीयों ने अंग्रेजों के इस हस्तक्षेप को असह्य माना। भारत की अशिक्षित जनता ने रेल तार आदि के नये नये प्रयोगों की उपयोगिता को नहीं समझा। वह इनसे सशंकित हो उठी। उन्होंने यह समझा कि अंग्रेज यह सब प्रयत्न भारतीय समाज व धार्मिक व सामाजिक जीवन को नष्ट करने के लिए कर रहे हैं। अतः इन सब सामाजिक व अन्य प्रकार के सुधारों का भारतीयों ने स्वागत नहीं किया एवं वे अंग्रेजों के विरोधी हो गये।

(ब) धार्मिक कारण

सन् १८५७ के संघर्ष का एक मुख्य कारण था भारतीयों को ईसाई बनाने की अंग्रेजों की बड़ी भारी इच्छा। यद्यपि कम्पनी के कर्मचारियों ने प्रत्यक्ष रूप से भारत में ईसाई धर्म के प्रचार में पूरा भाग नहीं लिया था तथापि अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई धर्म के प्रचार में पूरा योग दिया था। ईसाई धर्म का प्रचार करने वालों को राजकीय सहायता व संरक्षण प्रदान किया गया था। ईसाई धर्मोपदेशक खुलेआम हिन्दू व मुस्लिम धर्म की निन्दा करते थे। इससे हिन्दू व मुसलमान दोनों की भावनाओं को ठेस पहुँचना स्वाभाविक था। शिक्षण संस्थाओं के द्वारा भी ईसाई धर्म का प्रचार किया जा रहा था। ईसाई मिशनरियों ने अनेक मिशनरी स्कूल खोल रखे थे। उनमें पढ़ने वाले बच्चों को ईसाई धर्म का ज्ञान कराया जाता था। अतः भारतीयों के मन में यह शंका उत्पन्न हो गयी कि उनकी संतति निश्चय ही ईसाई हो जाएगी। सरकार भी अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू और मुसलमानों को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहन दे रही थी। ईसाई धर्म ग्रहण करने पर सरकारी नौकरियां मिल जाती थीं। सेना को भी ईसाई बनाने का प्रयत्न किया गया। मालेसन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "अंग्रेज सरकार सिपाहियों के धार्मिक मामलों की अवहेलना करने लगी एवं बात बात में उनकी धार्मिक मान्यताओं का उल्लंघन किया जाने लगा। यहां तक कि कम्पनी की सेना में अनेक अफसर खुले तौर पर अपने सिपाहियों का धर्म परिवर्तन कराने के कार्य में लग गये। डलहौजी

द्वारा गोद लेने की प्रथा का निषेध भी हिन्दू धर्म शास्त्र के अन्दर हस्तक्षेप माना गया और इससे भी हिन्दुओं की धार्मिक मान्यताओं को बड़ी भारी ठेस लगी। हिन्दुओं के मन में यह शंका उत्पन्न हो गयी कि अंग्रेज उनके धर्म को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

(इ) सैनिक कारण

सन् १८५७ के संघर्ष का सबसे महत्वपूर्ण कारण सैनिक आक्रोश था। संघर्ष का विस्फोट सर्वप्रथम सेना में ही हुआ था। भारतीय सैनिकों और अंग्रेजी सैनिकों की संख्या में बड़ा भारी अन्तर था। भारतीय सैनिकों की संख्या अंग्रेज सैनिकों से छः गुनी थी। भारतीय अंग्रेज सेना का वितरण भी विभिन्न विभागों में समझदारी के साथ नहीं किया गया था यथा दिल्ली व इलाहाबाद में एक भी अंग्रेज सेना नहीं थी लखनऊ में सिर्फ एक रिसाला था। इससे संघर्ष के फैलने में आसानी रही। हिन्दुस्तानी सैनिकों व अंग्रेज-सैनिकों को प्रदत्त सुविधाओं में भी भारी अन्तर था। भारतीय सैनिकों का वेतन व भत्ता अंग्रेज सैनिकों से बहुत कम था। ऊँचे पदों पर केवल अंग्रेजों को ही नियुक्त किया जाता था। अंग्रेज अफसरों का भारतीय सैनिकों के प्रति व्यवहार भी अच्छा नहीं था। अतः सैनिकों में विद्रोह की भावना काफी समय से सुलग रही थी। युद्ध के समय भारतीय सैनिकों का भीषण हत्याकाण्ड होता था। हिन्दुस्तानियों की सेना में कुलीन व अभिजात लोगों की संख्या बहुत बड़ी थी। अधिकांश सैनिक ब्राह्मण व राजपूत थे। अतः उनमें कुल जाति व धर्म की पवित्रता के प्रति भावना प्रबल थी। जब लार्ड कैनिंग ने अधिनियम बना कर भारतीय सैनिकों के लिए यह नियम बना दिया कि वे भारत के किसी कोने में अथवा भारत से बाहर भी जाने के लिए बाध्य होंगे तो इन कुलीन उच्च-वर्गीय लोगों में बड़ा असंतोष फैला। उनका यह विश्वास था कि सामुद्रिक यात्रा करने से धर्म नष्ट हो जाता है। अतः सैनिकों के मन में ब्रिटिश विरोधी भावना का तेजी से प्रसार हुआ। चर्बी से युक्त कारतूसों के विवाद ने तो आग में घी का काम किया अतः वे अशान्त हो उठे। इसके अतिरिक्त भारतीय सैनिकों का अपने रणकौशल व वीरता में काफी विश्वास था। भारतीय सैनिक अपने को अजेय समझते थे। इस आत्म विश्वास ने उनको संघर्ष करने के लिए बड़ा सम्बल प्रदान किया।

(उ) अफवाहें

सन् १८५७ ई. के संघर्ष के मूल में कुछ अफवाहों का भी योग था। एक आम अफवाह यह थी कि ठेकेदारों द्वारा सैनिकों को दिये जाने वाले आटे में मनुष्यों की हड्डियों का चूर्ण मिला रहता है दूसरी अफवाह यह थी कि कारतूसों में जिन्हें प्रयोग करने के पहले दाँत से कारतूसों को दांतों से काटना होता था गाय व सुअर की चर्बी मिली रहती है। इसके अतिरिक्त यह भी अफवाह थी कि रूस क्रीमिया के युद्ध में प्राप्त पराजय का बदला लेने के लिए भारत पर आक्रमण

करने की योजना बना रहा है। इस योजना में उसे फारस के शाह की भी सहायता प्राप्त है। इसी समय एक ज्योतिषी ने भी यह घोषणा की कि एक सौ वर्ष पश्चात् भारत में अंग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो जाएगा। सन् १८५७ तक भारत में अंग्रेजी शासन के १०० वर्ष पूरे हो चुके थे। उससे भी भारतीयों को संघर्ष प्रारंभ करने का प्रोत्साहन मिला।

संघर्ष का प्रसार

संघर्ष का प्रारंभ बैरकपुर में हुआ। २९ मार्च १८५७ को मंगल पांडे नामक एक सैनिक ने संघर्ष का श्रीगणेश कर दिया। उसने गाय एवं सूअर की चर्बी से युक्त कारतूसों को मुंह से काट कर प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। उसने अन्य सिपाहियों को भी भड़काना प्रारंभ किया। जब अंग्रेज अधिकारियों ने उसे कैद करना चाहा तो उनकी भी उसने हत्या कर दी। अंत में उसको गिरफ्तार कर लिया गया एवं ८ अप्रैल, १८५७ ई० को फांसी पर लटका दिया गया। तत्पश्चात् ९ मई को मेरठ में ८५ सवारों ने चर्बी लगे कारतूसों को काटने से इन्कार कर दिया। ९ मई को उन्हें दस दस वर्ष की सजा सुना दी गयी। मेरठ की छावनी के हिंदुस्तानी पैदल और घुड़सवार सिपाहियों ने मिलकर १० मई १८५७ ई० को मेरठ के जेलखाने को तोड़कर कैदियों को मुक्त कर दिया, सरकारी दफ्तरों में आग लगा दी एवं जो भी अंग्रेज मिला उसे मौत के घाट उतार दिया। १० मई १८५७ ई० की रात्रि को मेरठ के सिपाही दिल्ली के लिए रवाना हो गये एवं ११ मई को दिल्ली पहुंच गये। वहां उन्होंने दिल्ली के लाल किले पर अपना अधिकार जमा लिया तथा मुगल सम्राट बहादुरशाह को सम्राट घोषित कर दिया।

दिल्ली की मुक्ति का समाचार वायुवेग से उत्तर भारत में फैल गया। मई १८५७ ई० के अन्त तक अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी तथा दिल्ली के आसपास के स्थानों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। बुन्देलखण्ड भी संघर्ष में शामिल हो गया। इसके पश्चात् संघर्ष कानपुर, लखनऊ, बिहार और मध्य प्रदेश में भी फैल गया।

नाना साहब ने कानपुर पर अपना अधिकार जमा लिया और अपने को पेशवा घोषित कर दिया। बुन्देलखण्ड में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने, मध्यभारत में तात्या टोपे ने, बिहार में जगदीशपुर के कुंवर अमरसिंह ने संघर्षकारियों का मार्गदर्शन किया। पंजाब शान्त रहा तथा सिक्खों ने अंग्रेजों का साथ दिया। राजपूताना व दक्षिण भारत भी शान्त रहे।

लार्ड केनिंग ने बड़ी दृढ़ता व धैर्य से कूटनीति का सहारा लेकर संघर्ष का दमन किया। इलाहीबख्श की सहायता से १७ सितम्बर १८५७ ई० को बहादुर शाह को गिरफ्तार किया गया तथा उन्हें निर्वासित कर आजन्म कैद के लिए रंगून भेज दिया गया जहां १८६२ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई युद्ध करते करते ग्वालियर के युद्ध में १८ जून १८५८ ई० को परलोक

वापिस हुई। तात्या टोपे देश द्रोही मानसिंह के कारण बन्दी बना लिये गये तथा १८ अप्रैल १८५६ ई० में फाँसी पर लटका दिये गये। मौलवी अहमद शाह को पावन के शासक के भाई ने धोखे से मार दिया। नाना साहब जगदीशपुर के अमरसिंह और हजरतमहल बेगम नेपाल की तरफ भाग गये। इस प्रकार स्वतन्त्रता संघर्ष के इस प्रथम महान् प्रयास का अप्रैल १८५६ ई० तक अन्त हो गया।

विफलता के कारण

सन १८५७ का संघर्ष भारतीयों का अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का प्रथम प्रयास था जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। संघर्ष की विफलता के अनेक कारण थे। असफलता का पहला कारण यह था कि संघर्ष निश्चित समय से पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था जिसके परिणामस्वरूप इसका सूत्रपात व संचालन निश्चित योजना के अनुसार न हो सका। संघर्ष के समय से पूर्व ही विस्फोट हो जाने के कारण यह आन्दोलन अखिल भारतीय आन्दोलन का स्वरूप धारण न कर सका तथा यह उत्तर भारत तक ही सीमित रहा। संघर्षकारियों के साधन अंग्रेजों की अपेक्षा अत्यन्त सीमित थे। उनके पास उतनी युद्ध सामग्री व हथियार आदि नहीं थे जितने अंग्रेजों के पास थे। उनके पास सूचना पहुंचाने के भी उतने तेज साधन नहीं थे जैसे कि अंग्रेजों के पास थे। कम्पनी की सेना भी भारतीय सेना से संख्या में काफी अधिक थी। ऐसी दशा में सशस्त्र क्रान्ति को अधिक समय तक चालू रखना सम्भव नहीं था। क्रान्तिकारियों में नेतृत्व का भी अभाव था। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई तात्या टोपे नाना साहब व कुंवर अमरसिंह के अतिरिक्त अन्य कोई सुयोग्य नेता नहीं था। ये नेता वीर अवश्य थे पर संघर्ष संचालन में उतने कुशल नहीं थे जितने कि अंग्रेज अधिकारी। संघर्षकारियों में उद्देश्य की एकता भी न थी। हिन्दुस्तानी सैनिकों ने अपनी असुविधा (चर्बीवाले कारतूस आदि) के कारण संघर्ष का झण्डा खड़ा किया था। उनका लक्ष्य क्या है इसका भी किसी को पता न था। मुसलमान संघर्षकारी मुगल बादशाह के खोये हुए गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित करना चाहते थे। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई अपने गोद लेने के अधिकार से तथा नाना साहब अपनी पेंशन से वंचित हो जाने के कारण युद्ध कर रहे थे। इस प्रकार संघर्षकारियों में कोई मिलन बिन्दु नहीं था। इस संघर्ष की असफलता का कारण यह भी था कि संघर्षकारियों ने अपने संघर्ष को राजाओं ताल्लुकेदारों जमींदारों आदि के आन्दोलन का रूप दिया। उन्होंने किसानों की पूर्ण उपेक्षा की अतः यह संघर्ष वास्तविक अर्थ में जनसाधारण का संघर्ष न बन सका। फलस्वरूप अंग्रेजों को इसके दमन में अधिक कठिनाई नहीं हुई।

संघर्ष का स्वरूप

१८५७ ई० के संघर्ष के स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। अनेक अंग्रेज विद्वान् एवं इतिहासकार इसे केवल सिपाही विद्रोह बताते हैं। सील की धारणा है कि १८५७ ई० का गदर केवल सैनिक विद्रोह था। यह पूर्णत

अराष्ट्रीय स्वार्थी विद्रोह था जिसका न कोई देशीय नेता था और न ही जिसको सामान्य जनता का समर्थन ही प्राप्त था। सर लॉरेंस का कथन है कि क्रान्ति का उद्गम स्थल सेना थी और इसका कारण कारतूस वाली घटना थी। किसी पूर्वगामी षडयन्त्र से इसका कोई संबंध नहीं था। यद्यपि बाद में कुछ असंतुष्ट लोगों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए इसका लाभ उठाया।

इससे भिन्न मत व्यक्त करते हुए भारतीय विद्वान् इसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा देते हैं। श्री वृन्दावनलाल वर्मा की धारणा है कि यह विद्रोह नहीं जन क्रान्ति था जो कलकत्ते से लेकर दिल्ली तक व्याप्त हो गयी और जिसमें जनता एवं सेना तथा राजा महाराजाओं ने अपनी शक्ति भर भाग लिया। मौलाना अबुल कलाम आजाद का कहना है कि सन् १८५७ का संघर्ष समस्त जनता में सदियों से व्याप्त असन्तोष का परिणाम था। इसी प्रकार डा. पट्टाभि सीतारमैया, वीर सावरकर, डॉ. परांजपे एवं डा. ईश्वरीप्रसाद आदि विद्वान् भी इस संघर्ष को स्वतन्त्रता प्राप्ति का एक महान् आन्दोलन बताते हैं।

जो विद्वान् इसे मात्र सैनिक विद्रोह मानते हैं उनका कहना है कि यह कुछ असंतुष्ट सैनिकों का संघर्ष था जो भारत के बहुत थोड़े भाग में फैल सका था तथा जिसका दमन थोड़े से सैनिकों द्वारा संभव हुआ। इसके अतिरिक्त उन दिनों न तो भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का विकास ही हो सकता था और न ही अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने की उनकी कोई संगठित योजना थी। उस समय भारतीय जनता में इतनी जागृति नहीं हो पाई थी कि वे विदेशी शासन समाप्त करने की कोई निश्चित योजना बनाते। भारतीय सेना का बहुत बड़ा भाग अंग्रेजों का भक्त बना रहा तथा बड़े बड़े देशी नरेशों ने भी इसमें भाग नहीं लिया और साधारण जनता भी शान्तिपूर्ण ढंग से अपने अपने कारोबार में लगी रही अतः यह संघर्ष केवल एक सैनिक क्रान्ति थी। इससे अधिक कुछ नहीं।

परन्तु जो विद्वान् इसे राष्ट्रीय आन्दोलन बताते हैं उनका कहना है कि इस संघर्ष में हिन्दू व मुसलमानों ने समान रूप से भाग लिया। कंधे से कंधा मिला कर युद्ध किया तथा दोनों जातियों के नेताओं ने क्रान्तिकारियों का नेतृत्व किया। सभी भारतीयों की क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति थी। डा. ईश्वरीप्रसाद ने 'आधुनिक भारत के इतिहास' में लिखा है कि यह विद्रोह योजनाबद्ध था और विद्रोह के नेता बहुत समय से अंग्रेजी राज के विरुद्ध ग्राम ग्राम में इस भावना को फैला रहे थे। नेता निःस्वार्थ एवं देश भक्त थे तथा उनको अपने देश की स्वतन्त्रता से अधिक प्रिय कोई वस्तु न थी। अनेक अंग्रेज विद्वानों यथा विल्सन के, सर ली ग्रह जक्सन लार्ड सैलसबरी आदि ने इस बात को स्वीकार किया है कि यह केवल सैनिक विद्रोह मात्र नहीं था यह तो एक योजनाबद्ध संघर्ष था।

के. सी. विल्सन ने लिखा है कि प्राप्त प्रमाणों से मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि एक साथ विद्रोह करने के लिए ३१ मई १८५७ का दिन निश्चित किया

गया था। मिस्टर कने लिखा है कि ६ महीनों तक, वास्तव में वर्षों तक नाना साहब के दूत अपनी गुप्त मन्त्रणा का जाल सारे देश में फैलाते रहे। एक से दूसरे राज दरबार तक इस विशाल देश के एक छोर से दूसरे छोर तक, नाना साहब के दूत विभिन्न जातियों तथा धर्मों के राजाओं एवं सरदारों के लिए बड़ी सावधानी और रहस्यमय ढंग से लिख गये प्रस्ताव तथा निमन्त्रण लेकर पहुँचे थे। उसने आगे लिखा है कि अवध के वजीर अलीनकी खां के आह्वान पर हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों ने गंगाजल और कुरान की पवित्रता की सौगन्ध लेकर प्रतिज्ञा की कि वे अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने में अपनी जानें लड़ा देंगे। अलीनकी खां के दूतों ने साधुओं और फकीरों का भेष बनाकर कलकत्ता से गुरु होकर उत्तर भारत की प्रत्येक छावनी में विप्लव का संदेश पहुँचाया। सैनिकों के अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियों से भी सम्बन्ध स्थापित किया गया और कोई भी सरकारी थाना या दफ्तर ऐसा नहीं छूटा जहां विप्लव का सन्देश न पहुंचा हो। स्पष्ट है कि यह संघर्ष योजनाबद्ध था। इस संघर्ष का उद्देश्य स्वतन्त्रता प्राप्ति था जो बहादुरशाह की दरबेनी घोषणा से स्पष्ट है। घोषणा में कहा गया था हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानो उठो भाइयो उठो, खुदा ने जितनी बरकतें इन्सान को दी हैं, उनमें सबसे कीमती बरकत आजादी है। क्या वह जालिम नाकस, जिसने धोखा देकर यह बरकत हमसे छीन ली है हमेशा के लिए हम उससे महरूम रख सकेगा? क्या खुदा की मर्जी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है? नहीं नहीं। फिरंगियों ने इतने जुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज हो चुका है। यहां तक कि हमारे पाक मजहब को नाश करने की नापाक ख्वाहिश भी उनमें पैदा हो गयी है। क्या तुम अब भी खामोश बैठे रहोगे? खुदा यह नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो क्योंकि उसने हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों में अंग्रेजों को अपने मुल्क से निकालने की ख्वाहिश पैदा कर दी है और खुदा के फजल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से अंग्रेजों की इतनी कामिल शिकस्त होगी और हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में इनका जरा भी निशान न रह जायगा। सम्राट बहादुरशाह की तरफ से एक और ऐलान दिल्ली में जारी किया गया था जिसके कुछ वाक्य इस प्रकार थे ऐ हिन्दुस्तान के फरजन्दो, अगर हम इरादा कर लें, तो बात की बात में दुश्मन का खात्मा कर सकते हैं। हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म तथा देश को जो हम जान से भी ज्यादा प्यारे हैं, खतरे से बचा लेंगे।

बहादुरशाह द्वारा भारतीय नरेशों के नाम भेजे गये पत्र से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। बहादुरशाह ने इस पत्र में लिखा था मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि जिस जरिये से भी और जिस कीमत पर भी हो सके फिरंगियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। मेरी यह जबरदस्त ख्वाहिश है कि तमाम हिन्दुस्तान आजाद हो जाय। अंग्रेजों को निकाल दिये जाने के बाद अपने निजी लाभ [illegible] लिए हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने की मुझ में जरा भी ख्वाहिश नहीं है। अगर आप सब

देशी नरेश दुश्मन को निकालने की गरज से अपनी अपनी तलवार खींचने के लिए तैयार हो तो मैं इस बात के लिए राजी हूँ कि तमाम शाही अधिकारात और हकूक देशी नरेशों में किसी ऐसे शिरोमणि के हाथों सौंप दूँ जिसे इस काम के लिए चुन लिया जाय। अतः सन् १८५७ का संघर्ष था जब भारत के हिन्दू और मुसलमान नरेशों और भारतीय जनता दोनों ही का देश को ब्रिटिश की राजनैतिक अधीनता से मुक्त कराने की जबरदस्त और व्यापक कोशिश थी। इस बात की पुष्टि लार्ड हार्डिंग के दिनों प्रसिद्ध सर विलियम हावर्ड के बयान से भी होती है कि १८५७ ई० का संघर्ष ऐसा था जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर अपनी कौम के नाम पर बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। उस युद्ध में समूचे राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुए को फेंक कर उसकी जगह देशी नरेशों की पूरी सत्ता और देशी धर्मों का पूरा अधिकार फिर से कायम करने का संकल्प किया था। स्पष्ट है कि इस संघर्ष का उद्देश्य ब्रिटिश सत्ता का अन्त करना था।

संघर्ष के परिणाम

यद्यपि सन् १८५७ के संघर्ष को अत्यन्त कठोरता से दबा दिया गया था परन्तु वह पूर्ण रूप से निष्फल सिद्ध नहीं हुआ। उसके परिणाम बड़े महत्वपूर्ण हुए। परिणामों की दृष्टि से सन् १८५७ के संघर्ष का भारतीय इतिहास में वही महत्व है जो इंग्लैंड में सन् १६८८ की रक्तहीन क्रान्ति का है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आधुनिक भारत के इतिहास में इससे अधिक सौभाग्यशाली अन्य घटना नहीं घटी। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप भारत में कम्पनी का सौ वर्ष पुराना अनुदार एवं अत्याचारी शासन समाप्त हो गया तथा उसके स्थान पर ब्रिटिश ताज एवं संसद का उदार और न्यायपूर्ण शासन प्रारम्भ हुआ। इस संघर्ष के फलस्वरूप अंग्रेज तथा भारतीय दोनों के भविष्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। संघर्ष के पूर्व अंग्रेजों एवं भारतीयों का एक दूसरे के प्रति काफी उदार दृष्टिकोण था। परन्तु सन् १८५७ के संघर्ष ने इस मनोवृत्ति को बदल दिया। भारतीयों एवं अंग्रेजों में आपसी फूट तथा अविश्वास पैदा हो गया। अंग्रेजों ने बहुत अधिक कठोरता एवं निर्दयता से संघर्ष का दमन किया फलस्वरूप भारतीयों में ब्रिटिश साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट करने की भावना जागृत होनी प्रारम्भ हो गया। भारतीयों के प्रति अंग्रेजों का रुख भी बदलना प्रारम्भ हो गया। भारतीयों से उन का मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कम होने लगा तथा वे उन्हें घृणा की दृष्टि से देखने लगे। अंग्रेजों एवं भारतीयों के मध्य यह खाई दिन प्रतिदिन विस्तृत होती गयी।

इस संघर्ष के फलस्वरूप हिन्दुओं तथा मुसलमानों में भी आपसी कटुता तथा अविश्वास बढ़ा एवं उनके आपसी सम्बन्धों में दरार प्रारम्भ हो गयी। मुसलमानों की धारणा थी कि हिन्दुओं ने संघर्ष में उतना उत्साह नहीं दिखाया जितना कि मुसलमानों ने। हिन्दू एवं मुसलमानों के आपसी सम्बन्धों की यह खाई निरंतर

बन्ती चली गयी जो आने वाले वर्षों में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में बाधक सिद्ध हुई। हिन्दू मुस्लिम विभेद का अंग्रेजों ने लाभ उठाया व दोनों जातियों को लड़ाकर शासन करने की नीति को अपनाया।

अंग्रेजों ने भारतीय सेना के संगठन में भी परिवर्तन किया। भारतीय सेना में अंग्रेजी तत्वों को शक्तिशाली बनाया गया ताकि सेना में स्वामिभक्ति और कार्यकुशलता का विकास हो। ब्राह्मणों एवं राजपूतों को सेना से बाहर रखने का निर्णय किया गया एवं उनके स्थान पर पंजाबी सिक्खों, नेपाल से गुरखों एवं सीमा प्रान्त से पठानों को सेना में लिया जाने लगा। बंगाल में भारतीय एवं अंग्रेज सैनिक बराबर संख्या में रखे गये। देशी रियासतों के अपहरण की नीति का भी अंग्रेजों ने त्याग कर दिया। ब्रिटिश शासकों ने देशी राजाओं की स्वामिभक्ति के महत्व को समझ लिया तथा देश में उनके शासन को बनाये रखने का निश्चय किया। उनको नये पट्टे प्रदान किये गये तथा उनकी भूमि की रक्षा करने का वचन दिया गया। महारानी विक्टोरिया की १ नवम्बर १८५८ ई० की घोषणा में उनके सम्मान की रक्षा का वचन दिया गया है।

इस संघर्ष का वैधानिक दृष्टिकोण से भी बड़ा महत्व है। यहीं से भारत के इतिहास में संवैधानिक शासन का सूत्रपात हुआ। सन् १८५७ के संघर्ष का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि अंग्रेजों ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा का काफी प्रचार किया फलस्वरूप भारतवासी अन्धविश्वास एवं कट्टरता का त्याग कर पश्चिमी ज्ञान से लाभान्वित होने के लिए अग्रसर हुए।

संघर्ष का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि भारत में राष्ट्रवाद एवं पुनरुत्थान का सूत्रपात हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन-काल में यह संघर्ष आन्दोलनकारियों को निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा। श्री सुन्दरलाल का कहना है कि यदि १८५७ ई० की क्रान्ति न हुई होती तो इसका यही अर्थ होता कि भारतीयों में से साहस, आत्म गौरव, देश परायणता और जीवन शक्ति का अन्त हो चुका होता। अंग्रेज शासकों के हौसले फिर सहस्र गुना बढ़ गये होते और भारतवासियों की अवस्था इस समय तक लगभग वैसी ही होती जैसी कि अफ्रीका और अमरीका के उन आदिवासियों की हुई जो सैकड़ों वर्षों से यूरोपियन जातियों के उपनिवेश बने हुए हैं और जिनका अपना अस्तित्व नगण्य रह गया है।

सन् १८५८ ई० का अधिनियम

प्रवेश

१८५७ ई० के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के फलस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भाग्य उलट गया। ब्रिटिश सरकार ने भारतवर्ष का शासन कम्पनी के हाथों से छीन लिया और उसे ब्रिटिश ताज के आधीन कर दिया। ब्रिटिश ताज का यह शासन भारतवर्ष में निरन्तर ९० वर्ष तक रहा। भारतवर्ष में ब्रिटिश ताज का शासन १८५८ ई० के अधिनियम द्वारा प्रारम्भ हुआ। हम यहां संक्षेप में इस अधिनियम की चर्चा करेंगे।

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

ब्रिटिश संसद द्वारा १८५८ ई० का अधिनियम स्वीकृत करने के निम्नलिखित कारण थे —

(१) कम्पनी की भारत में शासन प्रणाली अत्यधिक खराब थी। जान कम्पबेल जे० डब्ल्यू० के तथा जान ब्राइट जैसे उदारवादी विचारधारा वाले व्यक्ति निरन्तर कम्पनी के शासन में सुधार की माग कर रहे थे। जान ब्राइट ने कम्पनी की शासन प्रणाली की कठोर आलोचना की। उसने नियन्त्रण मण्डल और संचालक मण्डल के दोहरे शासन को इन्कार की विधि का नाम दिया जिसने जनमत को तथा उत्तरदायित्व को नष्ट किया और संसद के नियन्त्रण को शक्तिहीन बना दिया।[1] किन्तु उक्त स्पष्ट और यथार्थ आलोचना व्यर्थ सिद्ध हुई।

(२) कम्पनी के शासकों की नीति के फलस्वरूप १८५७ ई० में भारतवर्ष में स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि इससे भारतवासियों को स्वतन्त्रता तो नहीं मिली किन्तु यह घटना भारतवर्ष में कम्पनी राज्य का अन्त करने में सहायक सिद्ध हुई। ब्राइट ने लिखा है, "इस प्रश्न पर राष्ट्र का मनुविवेक जाग उठा एवं उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी का तोड़ देने का निर्णय किया।"[2] स्वतन्त्रता संग्राम ने अंग्रेजी शासकों को अत्यन्त शीघ्र ही यह निष्कर्ष निकालने को मजबूर कर दिया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

---

१ [illegible] नारायण द्वारा उद्धृत [illegible] पृ० १
२ गुरुमुख निहालसिंह द्वारा उद्धृत भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० [illegible]

अधिनियम का पारित किया जाना

१२ फरवरी १८५८ ई को लॉर्ड पामस्टन ने हाउस ऑफ कॉमन्स' में भारतवर्ष के शासन को कम्पनी के हाथ से लेकर ब्रिटिश सम्राट को देने सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत किया। उसने इस अवसर पर एक चिरस्मरणीय और अर्थपूर्ण भाषण दिया जिसमे उसने द्वैध शासन को खत्म करने के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत किये। उसने कम्पनी के शासन में प्रमुख दोष उत्तरदायित्वहीनता द्वैध शासन की जटिलता एवं असुविधापूर्ण प्रणाली को दूर करने के लिए सचालक मडल और नियन्त्रक मण्डल को तोड देने का प्रस्ताव किया। इसके स्थान पर एक सभापति बनाने का प्रस्ताव किया जो शासन और मन्त्रिमण्डल का सदस्य हो और जिसकी सहायता के लिए एक परिषद् की व्यवस्था हो। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पामस्टन के प्रस्ताव का विरोध किया और कम्पनी द्वारा किये गये सराहनीय कार्यों का उल्लेख किया। विधेयक के दूसरे वाचन के पश्चात् लार्ड पामस्टन को प्रधानमन्त्री पद से हटा दिया गया। लार्ड डर्बी प्रधान मन्त्री बने और मि० डिजराइली लोकसभा के नेता। नये मन्त्रिमण्डल ने पामस्टन मन्त्रिमण्डल की नीति का अनुसरण किया। २ अप्रैल १८५८ ई० को लोकसभा ने १४ प्रस्ताव स्वीकार किये। इनके आधार पर सरकार ने नया विधेयक प्रस्तुत किया जो २ अगस्त १८५८ ई० को राजकीय स्वीकृति प्राप्त कर सन् १८५७ का अधिनियम बन गया।

अधिनियम के उपबन्ध

अधिनियम के प्रमुख उपबन्ध निम्नलिखित थे —

(१) सन् १८५८ के अधिनियम की पहली व्यवस्था यह थी कि भारतवर्ष का शासन प्रबन्ध कम्पनी के हाथ से छीन लिया गया और उसको ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया। अधिनियम की दूसरी धारा के अनुसार यह निश्चित किया गया कि अब से भारतवर्ष का शासन साम्राज्ञी की ओर से उसी के नाम से होगा।[1] समस्त प्रदेशों की आय तथा अन्य आय साम्राज्ञी के लिए और उसी के अधीन सग्रहीत की जाएगी और उसका प्रयोग केवल भारत सरकार के उद्देश्यों और कार्यों की पूर्ति के लिए ही होगा।[2] गवर्नर जनरल का नाम वायसराय रख दिया गया और कम्पनी की सब सेनाएं ब्रिटिश सम्राट के अधीन कर दी गयीं।

(२) सचालक मण्डल और नियन्त्रक मण्डल को भग कर दिया गया और उसके स्थान पर भारत मन्त्री के पद की स्थापना कर दी गयी। भारत मन्त्री ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता था और वह ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी होता था। भारत मन्त्री की सहायता के लिये एक परिषद् की स्थापना की गयी जिसके

१ धारा २ १८५८ ई का अधिनियम कीथ ए बी स्पीचेज एण्ड डोक्यूमेंटस ऑन इण्डियन पालिसी पृ ३७०

२ धारा ३, १८५८ ई अधिनियम कीथ ए बी उपर्युक्त पुस्तक

पन्द्रह सदस्य थे। इसमें से आठ सदस्यों की नियुक्ति ब्रिटिश ताज के द्वारा और सात सदस्यों की नियुक्ति कम्पनी के सचालकों द्वारा होनी तय हुई। पन्द्रह में से कम से कम ६ के लिये यह आवश्यक था कि वे भारत में कम से कम दस वर्ष तक किसी भी पद पर रहे हों और अपनी नियुक्ति के समय उन्हें भारतवर्ष को छोड़े १ वर्ष से अधिक समय न हुआ हो।[1] भारत मन्त्री को अपनी परिषद् की बैठकों में अध्यक्ष पद पर रहने का अधिकार था। भारत मन्त्री अपनी परिषद् के सदस्यों को हटा नहीं सकता था। उनको ब्रिटिश संसद के प्रस्ताव के आधार पर केवल ब्रिटिश सम्राट हटा सकता था। भारत मन्त्री अपना कार्य परिषद् के समर्थन से करता था। मतों के बराबर होने पर उसे अपना निर्णायक मत देने का अधिकार था। भारत मन्त्री को कुछ विषयों में अपनी परिषद् के निर्णयों के विरुद्ध अपने विवेक का प्रयोग करने की शक्ति दी गई किन्तु जब वह ऐसा करता था तो उसे उन कारणों को बताना पड़ता था जिनसे विवश होकर उसे अपनी परिषद् के निर्णय के विरुद्ध कार्य करना पड़ा।[2] भारतीय राजस्व नियुक्तियों भारत सरकार की ओर से ऋण लेने भारतीय सम्पत्ति को बेचने व बंधक रखने आदि के लिए उसे अपनी परिषद् के निर्णय मानने पड़ते थे। परिषद् की बैठक सप्ताह में एक बार होती थी तथा उसके लिए गणपूर्ति पाँच रखी गई। भारत मन्त्री गवर्नर जनरल से आवश्यक गुप्त पत्र-व्यवहार अपनी परिषद् को बताये बिना कर सकता था। वह भारतीय राजाओं के साथ किये गये अपने पत्र-व्यवहार को अपनी परिषद् से गुप्त रख सकता था। भारतीय राजाओं से उसका पत्र-व्यवहार वायसराय के माध्यम से ही होता था। वह वायसराय से गुप्त पत्र मँगवा सकता था और उसे इन गुप्त पत्रों को परिषद् के सामने रखना आवश्यक नहीं था। भारत मन्त्री को भारतीय नागरिक सेवा के सम्बन्ध में नये नियम बनाने का अधिकार दिया गया। भारत मन्त्री और उसकी परिषद् एवं उसके कार्यालय का समस्त खर्च भारत सरकार को देना पड़ता था।

(३) भारतवर्ष के वायसराय और अन्य विभागों के गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार ब्रिटिश सम्राट को दिया गया। लेफ्टिनेंट गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार वायसराय को दिया गया परन्तु इसके लिए ब्रिटिश सरकार की अन्तिम स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक था। भारत मन्त्री और उसकी परिषद् को भारत में गवर्नरों की परिषदों के सदस्यों की नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया।

( ) भारत मन्त्री का यह उत्तरदायित्व रखा गया कि वह प्रतिवर्ष भारत की आमदनी और खर्च का लेखा-जोखा ब्रिटिश संसद के सामने पेश करे। भारत मन्त्री को भारत की प्रजा की नैतिक और भौतिक प्रगति का एक प्रतिवेदन भी ब्रिटिश संसद के सामने पेश करना अनिवार्य था।[3] ब्रिटिश संसद भारतीय शासन

---

१ धारा ३, १८५८ ई. अधिनियम कीथ ए बी पूर्वोक्त पुस्तक

२ धारा ३६, १८५८ ई. का अधिनियम कीथ ए बी पूर्वोक्त पुस्तक

३ धारा ५३, १८५८ ई. का अधिनियम कीथ ए बी पूर्वोक्त पुस्तक

और राजस्व के बारे में भारत मंत्री से प्रश्न पूछ सकती थी। संसद भारत मंत्री के कार्यों की आलोचना कर सकती थी और उसको अपने पद से हटा सकती थी।

सन् १८५८ के अधिनियम का महत्त्व

सन् १८५८ के अधिनियम का संवैधानिक इतिहास में विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम से भारतवर्ष के शासन प्रबन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया। इसके द्वारा भारतवर्ष में कम्पनी का शासन समाप्त होकर ब्रिटिश सम्राट का निरंकुश शासन प्रारम्भ हुआ जो निरन्तर ६० वर्ष तक कायम रहा और सन् १९४७ में भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ समाप्त हुआ। श्री गुरुमुख निहाल सिंह ने १८५८ ई० के अधिनियम के सम्बन्ध में लिखा है कि 'सन् १८५८ में भारतीय शासन अधिनियम बनाने से भारतीय इतिहास का एक बड़ा युग समाप्त हुआ और दूसरा बड़ा ब्रिटिश राज्य का युग आरम्भ हुआ।'[1] भारत से व्यापार करने के लिये जिस कम्पनी का १६०० ई० में जन्म हुआ था अन्ततः उसका अन्त हो गया किन्तु उसके अपने अन्त के साथ भारतवर्ष में ब्रिटिश ताज को एक विशाल साम्राज्य हाथ लग गया। कम्पनी का यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था।

इस अधिनियम की एक अन्य मुख्य बात यह थी कि इसके द्वारा इंग्लैंड में दोहरी सरकार का अन्त हो गया। अब निदेशक मण्डल और संचालक मंडल के स्थान पर केवल एक ही संस्था भारत मंत्री और उसकी परिषद् की स्थापना हो गयी। भारतवर्ष में गवर्नर जनरल को अब दो स्वामियों के स्थान पर केवल एक की सेवा करना बाकी रहा। इसलिये गवर्नर जनरल की स्थिति में सुधार हो गया। सरकार चलाने में सुविधा हो गयी और देरी असुविधा तथा अनिश्चितता का अन्त हो गया।

अधिनियम के दोष

इतना होने हुए भी इस अधिनियम में कुछ दोष थे। पहला दोष यह था कि भारत मन्त्री उसकी परिषद् और कार्यालय का समस्त खर्चा भारतीय राजस्व से दिया जाने लगा जिससे भारत के राजस्व पर काफी आर्थिक बोझ पड़ा। ऐसा करना नैतिक दृष्टि से भी उचित न था। भारत मन्त्री ब्रिटिश मन्त्रिमंडल का सदस्य होता था और उसका कार्यालय भी लन्दन में ही था। ऐसी स्थिति में उसका वेतन और खर्चा ब्रिटिश राजस्व से ही लेना उचित होता। इस अधिनियम का दूसरा दोष था कि इसके द्वारा केवल इंग्लैंड में ही भारतवर्ष की गृह सरकार में परिवर्तन किया गया। भारतवर्ष में गवर्नर जनरल और उसके शासन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। भारत का शासन कम्पनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश सरकार के हाथ में चले जाने से भारतवासियों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। भारत मन्त्री और उसकी परिषद्,

---

[1] गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० ८५.

कानून बनाने की परिषद् में प्रान्तों का एक एक प्रतिनिधि होता था। किन्तु न तो परिषद् को प्रांतों की स्थिति का गहन अध्ययन ही था और न उनके पास इसके लिए समय ही था। परिषद् के सदस्यों को भी प्रांतों के बारे में कोई विशेष जानकारी और अनुभव न था। इसके परिणामस्वरूप प्रांतों के लिए उचित विधि विधान नहीं हो पाता था।

(४) वाइसराय और उसकी परिषद् की शक्तियों को निश्चित करना भी आवश्यक था। गवनर जनरल और उसकी कानून बनाने वाली परिषद् ने धीरे २ अपनी शक्तियों में वृद्धि कर ली थी। वह अपने आपको एक छोटी संसद समझने लग गयी थी। वह भारत मन्त्री और गवनर जनरल के मध्य गुप्त पत्र व्यवहार को भी अपने सम्मुख रखने की मांग करती थी। उसने कई बार भारत मन्त्री द्वारा दिये गये निर्देशों के अनुसार कानून बनाने से इन्कार कर दिया। नियन्त्रण मण्डल के प्रधान चार्ल्सवुड ने बार-बार इस बात का उल्लेख किया कि परिषद् को इतनी सत्ता नहीं दी गई है किन्तु परिषद् ने इस सम्बन्ध में कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिये प्रशासकीय कार्यों में अत्यधिक कठिनाइयां होने लग गयी थी। विवश होकर भारत के तत्कालीन गवनर जनरल और वाइसराय लार्ड कैनिंग ने भारत मन्त्री के समक्ष इस स्थिति को सुधारने के लिये प्रस्ताव रखे। फलस्वरूप ६ जून १८६१ ई० को हाऊस आफ कामन्स में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया जो स्वीकृत होने के पश्चात् १८६१ ई० का अधिनियम बना।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

सन् १८६१ के अधिनियम के द्वारा गवनर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में एक पांचवें सदस्य की व्यवस्था की गयी।[1] उसकी योग्यता के सम्बन्ध में यह कहा गया कि वह कानूनी अनुभव का व्यक्ति होना चाहिये। अधिनियम के द्वारा गवनर जनरल को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह अपनी कार्यकारिणी परिषद् के प्रत्येक सदस्य को विशेष २ कार्य बाँट दे। इस प्रकार परिषद् के विभिन्न सदस्यों को अपने अपने विभागों का उत्तरदायित्व मिल गया तथा वे अपने अपने विभागीय कार्यों को अपनी इच्छा के अनुसार करने लग गये। महत्वपूर्ण कार्य गवनर-जनरल के सामने उपस्थित किये जाते थे। मतभेद उत्पन्न होने की अवस्था में सारी परिषद् को उन पर विचार करना था। गवनर जनरल को अपनी कार्यकारिणी परिषद् का कार्य चलाने के लिए नियम और विनियम बनाने के अधिकार दिये गये। गवनर जनरल को अपनी अनुपस्थिति में काम चलाने के लिये किसी व्यक्ति को परिषद् का सभापति मनोनीत करने का अधिकार भी दिया गया। गवनर जनरल को कानूनी उद्देश्यों के लिये नये प्रांत बनाने उनकी सीमाओं में परिवर्तन करने और आवश्यकता के अनुसार बांटने का अधिकार दिया गया।

---

1 १८६१ के अधिनियम की धारा ३ देखिए ए. बी. कीथ स्पीचेज एण्ड डॉक्युमेंट्स ऑन इंडियन पालिसी खण्ड द्वितीय पृ० ११

[illegible]से छोटे २ प्रांतों के लिये लेफ्टिनेंट गवर्नर और विधि निर्माण के लिए विधान मण्डल स्थापित करने की शक्ति भी दी गई।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में कानून निर्माण सम्बन्धी कार्य करने के लिये कम से कम ६ तथा अधिक से अधिक १२ सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार गवर्नर जनरल को दिया गया। इनमें से कम से कम आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना आवश्यक था।[1] इन गैर सरकारी सदस्यों की कार्य अवधि कम से कम २ वर्ष रखी गयी। कानून सम्बन्धी विधानपरिषद् के कार्यों में केवल विधि निर्माण सम्बन्धी कार्यों की सीमाएं निर्धारित कर दी गयी। सार्वजनिक ऋण सार्वजनिक राजस्व भारतीय धार्मिक रिवाज सैनिक अनुशासन तथा भारतीय रियासतों के प्रति नीति आदि के सम्बन्ध में कानून प्रस्तुत करने से पूर्व गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक था। ऐसी कोई भी विधि अधिकृत नहीं समझी जाती थी जो ब्रिटिश सरकार के अधिकारों का उल्लंघन करती हो जिससे संसद द्वारा स्वीकृत विधि का किसी प्रकार से उल्लंघन होता हो। विधानपरिषद के द्वारा निर्मित कानून की अन्तिम स्वीकृति गवर्नर जनरल से प्राप्त करनी आवश्यक थी। गवर्नर जनरल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया गया था। यह अध्यादेश ६ मास तक जारी रह सकते थे। ६ मास के पूर्व भी भारत मंत्री तथा उसकी परिषद् तथा गवर्नर जनरल की विधानपरिषद उन्हें रद्द कर सकती थी।

इस अधिनियम के द्वारा प्रांतों को पुनः विधि निर्माण की शक्ति दी गई। प्रान्तीय विधानपरिषद् में एक महाधिवक्ता तथा कम से कम चार और अधिक से अधिक आठ सदस्यों को गवर्नर की परिषद् में बनाने की आज्ञा दी गई। इस परिषद् का काम केवल कानून बनाना था। इन्हें और किसी कार्य में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। प्रांतों के द्वारा स्वीकृत अथवा परिवर्तित सभी कानूनों आदि पर गवर्नर तथा गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी।

अधिनियम का महत्व

१८६१ ई० का भारतीय परिषद् अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण सीमांत है। इस अधिनियम के द्वारा भारत सरकार का ढांचा तैयार हुआ जो आने वाले वर्षों में भी बना रहा। भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं द्वारा विधि निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। गुरुमुख निहालसिंह ने १८६१ ई० के अधिनियम के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा है इसके द्वारा गवर्नर जनरल को कानून बनाने के काम में भारतीयों की सहायता लेने का अधिकार दिया गया। दूसरे बम्बई एवं मद्रास की विधानपरिषदों को कानून बनाने का अधिकार दिया गया और अन्य प्रांतों के लिये भी ऐसी ही व्यवस्था की गयी। इस तरह उस नीति [illegible] प्रारम्भ हुआ जिसके कारण सन् १९ ७ में प्रांतों को १९३२ ई० के अधिनियम

---

१ धारा १ १८६१ ई का अधिनियम कोथ ए बी पूर्वोक्त पुस्तक पृ २८

के अनुसार भीतरी मामलों में स्वराज्य दे दिया गया।

अधिनियम के दोष

इस अधिनियम में कुछ दोष भी थे। इस अधिनियम से भारतीय जनता को विधानमण्डलों में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया। चार्ल्सवुड ने भारतीयों को विधानपरिषदों में प्रतिनिधित्व देना असम्भव बताया। किन्तु इतना होते हुए भी भारतीय रजवाड़ों एवं सामन्तों को साथ मिलाना आवश्यक समझा गया। गवर्नर जनरल ने महाराजा पटियाला, ग्वालियर एवं बनारस के राजाओं को अपनी विधान परिषद् का सदस्य नियुक्त कर दिया। किन्तु ये लोग जनता के प्रतिनिधि नहीं थे तथा इनकी कानून बनाने में कोई रुचि भी नहीं थी इसलिये इस अधिनियम द्वारा भारतीयों को भारत में उत्तरदायी शासन की जो आशा थी वह पूर्ण नहीं हुई।[1]

इस अधिनियम का दूसरा दोष था कि विधानपरिषद् की शक्तियाँ बहुत सीमित हो गयी थीं। उन्हें संसद की तरह काम करने का अधिकार नहीं मिला था। उनके कानून बनाने के अधिकार पर काफी सीमायें लगाई गयी थीं। उनको कार्यकारिणी के सदस्यों को हटाने का अधिकार नहीं दिया गया था। गवर्नर जनरल को प्रान्तीय विधानपरिषद् एवं केन्द्रीय परिषद् के कानून पर वीटो का अधिकार दिया गया जिससे सारी शक्तियाँ गवर्नर जनरल के हाथ में आ गयीं। इससे न केवल प्रशासकीय कार्यों में ही उसकी सर्वोच्चता हो गयी बल्कि कानून निर्माण के क्षेत्र में भी उसको सर्वोच्चता प्राप्त हो गयी थी। इस प्रकार भारतवर्ष में इस अधिनियम द्वारा उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशा में वस्तुतः कुछ भी नहीं किया गया।

---

1 बी० एन० मिश्र द्वारा उद्धृत, भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृ० ८३

विरोधी आन्दोलन (१८६१ ई० से १८८४ ई० तक)

प्रवेश

सन् १८५८ ई० में ब्रिटिश ताज ने भारत के शासन का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया। १८६१ ई० के परिषद् अधिनियम द्वारा भारतीय शासन में कुछ परिवर्तन भी किये गये। परन्तु भारतीयों के मन में अंग्रेजों तथा उनके शासन के प्रति विद्वेष की जो भावना १८५७ ई० के महान् संघर्ष के फलस्वरूप पैदा हुई थी वह किसी भी तरह कुछ कम या शान्त न हुई। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यद्यपि कोई राष्ट्रव्यापी आन्दोलन नहीं हुआ तथापि अनेक स्थानीय विरोध आन्दोलन हुए जो भारतीयों की राजनैतिक अवस्था के परिणामस्वरूप कहे जा सकते हैं। कुछ विशेष आन्दोलनों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

(१) बंगाल में नील विप्लव

सन् १८६१ ई० में कृषकों की आर्थिक स्थिति के बिगड़ने से बंगाल में किसान विद्रोह हुआ। नील की खेती अंग्रेजों के हाथ में थी। अंग्रेज जमींदार भारतीय किसानों के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार करते थे। जमींदार अत्यधिक शक्तिशाली थे। इन की शक्ति का वर्णन करते हुए एक बंगाली पत्र ने अपने ६ जनवरी १८६० ई० के अंक में लिखा—"बहुत से लोगों का कहना है कि नील मण्डी के जमींदार दूसरी सरकार हैं। न पुलिस, न न्याय और न ही सरकार उन्हें नियन्त्रण में रख सकती है। परन्तु अब अनेक ग्रामों को बरबाद करके छोड़ दिया गया है। सब ओर से ऐसा कहा जा रहा है कि उनका कोई भी उपाय नहीं।" जमींदारों के अत्याचारों से दुःखी होकर भारतीय किसानों ने विद्रोह कर दिया। किसान श्रेणियों ने असाधारण उत्साह और दृढ़ साहस का परिचय दिया। उन्होंने आत्मविश्वास और आत्मबलिदान का प्रदर्शन करते हुए अपूर्व साहस दिखाया। जिला नारायणपुर के गांव के सब प्रथम भाग किसानों और दूसरों ने अनुसरण किया। इसके बाद अनेक स्थानों पर एकत्र हुए और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि पुनः नील की बुवाई नहीं करेंगे और थोड़े ही समय में उनमें से पचास हजार एक दिन और किसान हो गये।

जमींदारों ने किसानों पर काफी अत्याचार किए। किसान नेताओं को पकड़ लिया गया और उन पर अत्याचार किये गये। न्यायालयों में अभियोग चलाए गए। अनेक किसान बेघर हो गये किन्तु वे पीछे न हटे। 'साहित्य, पत्र प्राय किसानों की ...

को हाथ नहीं लगायेगा साहिब हमने प्रतिज्ञा की है और हम इसे कभी भंग नहीं करेंगे यातनाओं की हम तनिक भी परवाह नहीं है हमारे हाथ फिर कभी नील नहीं बोएंगे।

किसानों को सफलता मिली। सरकार ने किसानों की दशा सुधारने की दिशा में कुछ प्रयास किये।

सन् १८७२ एवं सन् १८७५ के मध्य पबना में भी दंगे हुए। भारतीय जमींदारों ने जब अधिक कर भार लाद दिया तो किसानों ने संगठित होकर उनका विरोध करना आरम्भ कर दिया फलस्वरूप सरकार ने सन् १८८५ में बंगाल टेनेन्सी अधिनियम पारित कर किसानों की दशा सुधारने की ओर सक्रिय कदम उठाये।

(२) संथालों के विद्रोह

१६ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में संथालों ने कई विद्रोह किये। संथाल सरल प्रकृति के आदिवासी थे जिन्होंने अनेक कठिनाइयों को उठाकर वीरानी जमीन को आबाद किया था। धीरे धीरे यूरोपीयन बंगाली और महाजन जमींदारों ने वहाँ अपने पाँव फैलाने शुरू किये। संथालों को धर्म के नाम पर उकसाया जाने लगा। ठेकेदारों ने अत्यधिक कर वसूल किया जाने लगा। जब अत्याचार अपनी सीमा से अधिक बढ़ गये तो सन् १८६१ में संथालों ने इकट्ठे होकर हत्या की धमकी दी परन्तु सरकारी प्रयत्नों से इस प्रवृत्ति को रोक दिया गया। अंग्रेज जमींदारों ने तीन वर्ष के अन्दर ही अपनी मांग १२ हजार से बढ़ाकर ६ हजार कर दी परन्तु सरकार के कहने पर उसको घटाकर ४ हजार कर दिया। सन् १८७१ में परिस्थितियों में और भी बिगाड़ आ गया। सन् १८७१ से सन् १८७५ तक संथालों के रोष के चिह्न प्रकट हुए। भगत आन्दोलन इनमें सबसे महत्वपूर्ण आन्दोलन था। विद्रोह के नायक भगत ने स्वयं कहा था शुभ है ! जब राज और भूमि संथालों की सम्पत्ति होगी और जब अधिकाधिक कर आठ आने प्रति हल निर्धारित होगा। बंगाल के मुख्यायुक्त ने लिखा था कि ध्यान दिया जाय कि भगत आन्दोलन का धार्मिक आरम्भ था या नहीं किन्तु आरम्भ से ही इसके साथ असुचित आचरण की राजनीतिक भावनाओं का संबंध अवश्य रहा है।

( ) दक्कन के विद्रोह

सन् १८७ से सन् १८७५ तक दक्कन में भी किसान आन्दोलन हुए। ये आन्दोलन साहूकारों के विरुद्ध थे। गांवों की प्रजा कर्ज की शिकार थी। खेड़ा के जिलाधीश ने बताया कि सरकारी जमीन के ५ कृषकों में से ७५ कृषक ऋण के शिकार थे। सरकार ने इस समस्या की सदैव अवहेलना की थी। दक्कन की प्रजा भी अत्यधिक कर भार और न्यायालय की कार्यवाहियों से दुखी थी। वस्तुतः

प्रत्येक गाव के किसान साहूकारो और कचहरियो की डिग्रियो से खिन्न थे। दक्कन के विप्लवकारियो ने कानून अपने हाथ में लेकर दगा का सूत्रपात किया। पूना जिला इसका मुख्य केन्द्र था। ९५६ व्यक्ति वहा गिरफ्तार किये गये। साहूकारो के बहीखातो का जलाना के साथ साथ मारपीट भी की गयी। आदोलन का स्वरूप व्यापक था और आदोलनकारियो में पूर्ण सगठन था।

(४) कूका आदोलन

कूका आदोलन के सस्थापक गुरु रामसिंह थे। उन्होंने सन् १८४७ मे लुधियाना जिले में अपना धर्म प्रचार कार्य आरम्भ किया। उन्होने निम्न सिद्धातो का प्रचार किया—

१ प्रात काल भजन सध्या गौ रक्षा अतिथि-सत्कार और यज्ञ, होम आदि करना।
२ मास शराब झूठ घमड चोरी और सूद की कमाई का त्याग करना।
३ बालिका-वध न करना और न ही धन लेकर छोटी आयु की लडकी को वृद्ध पुरुष से विवाह करने की अनुमति देना।
४ विधवा विवाह की स्वतन्त्रता।
५ अंग्रेजो की नौकरी पोशाक न्यायालयो तथा डाकघरो का बहिष्कार।
६ विदेशी कपडो का बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग।
७ ऐसी विधियो का विरोध करना जो आत्माधार के विरुद्ध हो।
८ अपनी पचायतो द्वारा ही अपने झगडो का फैसला करना।

गुरु रामसिंह के शिष्य नामधारी सिक्ख या कूका कहलाते हैं। क्योकि इन्होंने ही सबसे पहले अ ग्रेजो के विरुद्ध कूक या आवाज उठायी। भनी गाव उनका मुख्य कार्यालय था। उनके अनुयायियो मे जाट खाती चमार मजहबी सिक्ख और कुछ हिन्दू थे। कूका पथी इकट्ठे होकर चडीपाठ करते थे। वे पवित्र अग्नि के सामने बठकर भजन गीत गाते थे। वे जाति प्रथा के विरोधी थे। कूका गुरु स्वय अत्यन्त सादा सरल और पवित्र जीवन व्यतीत करते थे।

सरकार गुरु रामसिंह के बढते हुए प्रभाव के प्रति सदिग्ध हो गयी और उन्हें उनके गाव भैनी मे जाकर बन्द कर दिया। इससे उनकी ख्याति और प्रतिष्ठा में वृद्धि ही हुई। सरकार ने कूका लोगो पर जो अमानुषिक अत्याचार किये और अनेक कूका लोगो को जेलो म ठूस दिया परन्तु सरकार के इस दमन चक्र के बावजूद कूका लोगो की शक्ति कम न हुई। सन् १८७१ मे कूका लोगो ने अपनी गतिविधियो के कार्य क्षेत्र म वृद्धि की। उन्होने नेपाल काश्मीर भूटान और काबुल के शासको से मित्रता स्थापित कर ली।

कूका लोगो और सरकार के बीच असली सघर्ष तब आरम्भ हुआ, जब सरकार ने गाय वध सम्बन्धी नीति का अनुसरण किया। ब्रिटिश सरकार ने पजाब

में अनेक बूचड़खाना की स्थापना की और काफी मात्रा में गोवध हुआ। इससे गैर मुस्लिम जनता में भारी रोष फैल गया। कूकों ने बूचड़ों को हटाने का काम आरम्भ कर दिया। बूचड़ हत्याकांड के अपराध में १४ सितम्बर १८७१ ई० चार कूकों को फाँसी पर लटका दिया गया। पाँच कूकों को रायकोट और लुधियाना में फाँसी का दण्ड दिया गया। मलेरकोटला में भी कूकों ने संघर्ष किया। तत्पश्चात् मलौद के दुर्ग में संघर्ष हुआ। १५ जनवरी १८७२ ई० को उन्होंने मलेरकोटला के दुर्ग पर आक्रमण किया जिसमें आठ व्यक्ति हताहत हुए। १७ जनवरी १८७२ ई० को लुधियाना के कमिश्नर की आज्ञा से ४९ कूकों को बाँधकर सात तोपों के सामने उड़ा दिया गया। कूकों ने आगे पीठ करने के बजाय सीना दिया और कहा 'वीर नाम मृत्यु के आगे पीठ नहीं दिखाते।' इस नृशंस हत्याकांड की खबर देश में भीषण प्रतिक्रिया हुई। कूका नामधारी पर सरकारी अत्याचार और अधिक बढ़ गये। गुरु रामसिंह व उनके ११ अन्य नामधारियों को बन्दी बनाकर देश से निर्वासित कर रंगून भेजकर कैद कर दिया गया। कूकों ने अपने गुरु रामसिंह से सम्पर्क स्थापित करने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु वे असफल ही रहे। गुरु रामसिंह के जीवन के अन्तिम दिन अत्यन्त कष्टमय थे। उनकी मृत्यु २९ नवम्बर १८८५ ई० को हुई थी।

नामधारियों के साथ अंग्रेजों ने अत्यन्त कठोर व्यवहार किया। यह स्थिति सन् १८८५ तक चलती रही। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद नामधारी सिक्खों ने कांग्रेस के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेना जारी रखा। संघर्ष के दौरान कूकों ने अपने गुरु के आदेशों का पूर्णरूप से पालन किया। उन्होंने सरकारी नौकरियों की परवाह नहीं की। उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के समय विदेशी वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार जारी रखा और विदेशी न्यायालयों की सर्वोपरिता को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने देशभक्तों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा था कि गुरु रामसिंह धर्म को ही आजादी का एक आवश्यक अंग मानते थे। नामधारियों का संगठन अत्यन्त शक्तिशाली हो गया था। महात्मा गांधी ने हमारे देश में जिस असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया उसका मूल या नाव इस कूका-संघर्ष में देखा जा सकता है। असहयोग आन्दोलन में भी पाँच बातों पर ही मुख्य रूप से ध्यान दिया गया था

१ सरकारी नौकरियों का बहिष्कार।
२ सरकारी विद्यालयों का बहिष्कार।
विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।
४ सरकारी सभाओं का बहिष्कार।
५ ऐसी विधियों को मानने से इन्कार जो आत्मा की आवाज के विरुद्ध हों।

(५) वलीउल्ला विद्रोह

वलीउल्ला एक सूफी सन्त थे। उनके अनुयायियों ने सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संघर्ष में बढ़कर भाग लिया था तथा संघर्ष की विफलता के पश्चात् भी वे

क्रान्तिकारी कार्यों में संलग्न रहे। उन्होंने नागपुर तथा बंगाल के न्यायाधीश की हत्या कर दी। ब्रिटिश भारतीय सरकार ने सेना के बल पर इस विद्रोह को दबा दिया।

(६) महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन

महाराष्ट्र के वासुदेव बलवन्त फड़के ने क्रान्तिकारी कार्यों का प्रारम्भ किया। सन् १८ ६ में पूना में भयंकर डकैती पड़ी। इसमें अनेक व्यक्ति मारे गये किन्तु सरकार ने उन्हें पहुँचाने का कोई कार्य नहीं किया। अतः वासुदेव बलवन्त फड़के के मन में प्रतिशोध की भावना जगी और उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़कर क्रान्तिकारी गतिविधियों का सूत्रपात करने के लिए क्रान्तिकारी दल का संगठन किया और अंग्रेजों के खिलाफ कार्यवाही आरम्भ की। अंग्रेजों ने इस क्रान्तिकारी को गिरफ्तार कर लिया और उस पर अनेक अभियोग लगाकर मुकदमा चला दिया। न्यायालय के सम्मुख श्री फड़के ने जो वक्तव्य दिया उसमें उनके उद्देश्य स्पष्ट रूप से उजागर होते हैं। उन्होंने कहा, "भारतीय आज मृत्यु के द्वार पर खड़े हैं। अंग्रेजी सरकार ने जनता को इतना अधिक त्रस्त किया है कि वह मरने की स्थिति में और भूख मरने में पड़ी रहती है। इस परतन्त्रता की अपेक्षा मृत्यु अधिक सम्मानजनक है। यदि मैं सफल हो जाता तो एक महान् कार्य कर डालता। मेरा यह उद्देश्य था कि मैं स्वतन्त्र भारत में गणराज्य की स्थापना करूँ। मैंने अपने भाषणों में कई बार जनता को बताया कि उनके कल्याण में अंग्रेज बाधक हैं। किन्तु शासक उन्हें पूर्णतया नष्ट कर देंगे। मैं भारत के नागरिकों से दधीचि ऋषि की तरह क्यों न कष्ट उठाऊँ? यदि इस बलिदान द्वारा मैं अपने देशवासियों की परतन्त्रता नष्ट करने और स्वतन्त्रता पाने में सहायता कर सकता हूँ तो मेरा यह अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो।" न्यायालय ने फड़के को देश निष्कासन का दण्ड दिया। सरकार ने इन्हें अदन की जेल में भेज दिया जहाँ अंग्रेजों की घोर यातनाओं के परिणामस्वरूप १८८० ई० में उनका देहान्त हो गया।

८

भारत म राष्ट्रीयता का उदय

प्रवेश

१६ वी सदी भारतीय नवजागरण की सदी है। इस युग म अभूतपूव राष्ट्रीय जागृति हुई। राष्ट्रीय जागृति का उद्भव किसी एक निश्चित कारण या किसी निश्चित तिथि का परिणाम नहीं था। इसके उन्भव एव विकास म धार्मिक राजनतिक धार्मिक सामाजिक सांस्कृतिक एव शक्षणिक तत्वों का विशेष योग रहा है। डा रघुवंशी एव लाल बहादुर ने इस सम्बन्ध म राष्ट्रीय विकास एव भारतीय संविधान में लिखा है जब भारतीय नवजागरण का काल था। राजा राममोहन राय इस नवयुग के प्रणेता थे। इनके वा भारतीय शिक्षित वग म अग्रेजी साहित्य और विचार धारा का प्रचार एव प्रसार बढ़ा। अग्रेजी विद्वानों ने भी भारतीय साहित्य और सस्कृति की खोज करके भारतीय विद्वानों म उनकी प्राचीन सम्यता और सस्कृति के प्रति अनुराग एव अध्ययन की लगन पदा की। परिणाम स्वरूप देश म नई जागृति की लहर आई और प्रगतिवादी विचारो को प्रेरणा मिली। धार्मिक सुधार आन्दोलन ने भी राष्ट्रीय आत्म सम्मान व देश भक्ति की भावनाए उत्पन्न की जिसका प्रगट रूप हमें राजनतिक आन्दोलन म दिखाई पडता है। विदेशी शासन और विदेशी सभ्यता के प्रगतिशील तत्वो ने देश म नई राष्ट्रीय चेतना और स्वाधीनता की भावना को जन्म दिया। साथ ही साथ विदेशी शासन की प्रतिक्रियावादी दमन और शोषण नीतियो ने हमारी इस चेतना को उस दिशा की ओर मोड़ा जिसका लक्ष्य अनिवाय रूप म राष्ट्रीय आन्दोलन था। राष्ट्रीय जागृति के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं —

(१) सामाजिक एव धार्मिक आन्दोलन—

राष्ट्रीय जागृति का एक प्रमुख कारण भारत म १६ वी सदी म हुए धार्मिक एव सामाजिक सुधार आन्दोलन हैं। राजा राममोहन राय रामकृष्ण परमहस स्वामी विवेकानन्द स्वामी दयानन्द केशव चन्द्र सेन श्रीमती ऐनीबिसेन्ट सर सयद अहमद खा आदि सज्जनो ने भारतीय राष्ट्रीय जागरण म अपनी सामाजिक एव सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से महत्वपूर्ण योग दिया। इन महापुरुषों के कार्यों के फलस्वरूप १६ वीं शताब्दी में भारत म धर्म-सुधार और सामाजिक-सुधार

की एक लहर चल पड़ी। इस शताब्दी में हुए ब्रह्म समाज प्रार्थना समाज आर्य समाज वहाबी आदि धर्म एवं समाज-सुधार आन्दोलनों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति का स्वरूप ही बदल दिया। इन आन्दोलनों के कारण भारतीयों में अपने धर्म को सुधारने और कुरीतियों को दूर करने की भावना उत्पन्न हुई तथा उनमें अपनी सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता की भावना जागृत हुई। अपनी संस्कृति और सभ्यता की श्रेष्ठता की जानकारी ने उनके मन में स्वाभाविक रूप से इस विचारणा को उत्पन्न किया कि वे परतन्त्र क्यों हैं? इस विचारणा ने भारतवासियों में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत किया। १९वीं शताब्दी में भारत में हुए धर्म सुधार और सामाजिक सुधार आन्दोलन का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर इतना व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा कि धर्म सुधार और सामाजिक सुधार के कार्यक्रम भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के ही अंग बन गए।

(२) राजनैतिक एकता की स्थापना—

ब्रिटिश शासन की स्थापना भारतवर्ष के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने भारत को राजनैतिक दृष्टि से एकता प्रदान की। ब्रिटिश शासन की स्थापना के पूर्व भारतवर्ष में छोटे बड़े राज्यों में बंटा रहा था। सम्पूर्ण देश में राजनैतिक एकता का अभाव रहा। अंग्रेजों के पूर्व मुगल बादशाहों ने भारतवर्ष को एक राजनैतिक सूत्र में संगठित करने का प्रयत्न किया था किन्तु उसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली थी। मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् राजनैतिक दृष्टि से भारतवर्ष कई भागों में विभक्त हो गया था। अंग्रेजों ने भारत की राजनैतिक स्थिति का लाभ उठा कर देशी राजाओं महाराजाओं नवाबों आदि को परास्त कर कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कामरूप से लेकर बलोचिस्तान तक सम्पूर्ण भारतवर्ष को अंग्रेजी शासन के अधीन एक राजनैतिक सूत्र में बांध दिया। सम्पूर्ण ब्रिटिश भारतवर्ष में एक ही प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की गई। फलस्वरूप देश में राजनैतिक एवं प्रशासनिक एकता की स्थापना हुई। प्रो० मून ने ठीक ही लिखा है 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने कई अनेकताओं के बावजूद भारत को एक तीसरे दल के अधीन राजनैतिक एकता प्रदान की।' इस राजनैतिक एकता ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया जो भविष्य में राजनैतिक एकता का आधार बन गई। इस राजनैतिक एकता का परिणाम यह हुआ कि स्थानीय भक्ति का स्थान सम्पूर्ण देश के प्रति भक्ति ने ले लिया। इस सम्बन्ध में श्री नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है 'ब्रिटिश प्रशासन द्वारा स्थापित भारत की राजनैतिक एकता यद्यपि सामान्य दासता की एकता थी किन्तु उसने सामान्य राष्ट्रीयता की एकता को जन्म दिया।'

(३) अंग्रेजी शिक्षा एवं साहित्य—

सन् १८१३ के शासन पत्र अधिनियम द्वारा भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ करने का प्रावधान किया गया था। अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ किए जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति पूर्ण रूप से नष्ट हो जाय और एक ऐसे

वर्ग की स्थापना हो जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हो किन्तु रुचि विचार भाषा आदि से अग्रेज हो। अग्रेज बहुत सीमा तक इस मनोरथ मे सफल हुए। भारतवर्ष मे ऐसे व्यक्तियो के वर्ग की स्थापना होनी प्रारम्भ हो गई जो प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को हेय दृष्टि से देखने लगे और अपने आपको पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति मे ढालने लगे।

लेकिन इसका दूसरा पक्ष भी था। अग्रेजी साहित्य स्वतन्त्रता की भावना से ओत प्रोत था अत इसके द्वारा भारतीय नवयुवको मे राष्ट्रीयता व स्वतन्त्रता की भावना जागृत होने लगी। पश्चिमी शिक्षा भारतीयो को स्वतत्रता और राष्ट्रीयता के पश्चिमी सिद्धान्तो के सम्पर्क मे ले आयी। सर रोनाल्डशे का कथन है कि "पश्चिमी शिक्षा की नवीन मदिरा भारतीय युवकों के मस्तिष्क मे पहुँची। उन्होंने फ्रांसीसी क्रान्ति अमेरिकी स्वतत्रता युद्ध आयरिश गृह शासन आन्दोलन के रूप में बहने वाली स्वतन्त्रता सरिता का रसास्वादन किया। उन्होंने बायरन आदि कवियो के गीतो ने उन्हे स्फूर्ति प्रदान की। मिल स्पेंसर आदि दार्शनिकों ने उन्हे प्रकाश दिया और गैरीबाल्डी मेजिनी तथा जार्ज वाशिंगटन आदि देश भक्तो ने उनका पथ प्रदर्शन किया। रामसे मैक्डोनल्ड ने कहा है—स्पेंसर का व्यक्तिवाद और जान मोर्ले का उदारवाद ही ऐसी दो मशीनगन हैं जिन्हे भारत ने हमसे छीन लिया है तथा जिनका प्रयोग वह हमारे ही विरुद्ध कर रहा है। अग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय नौजवानों मे देश की वर्तमान राजनीति से असन्तोष उत्पन्न हुआ और वे प्रशासन मे सुधार करने की माग करने लगे। उनके सकीर्ण विचारो मे परिवर्तन आया तथा उनका दृष्टिकोण व्यापक हो गया। अग्रेजी शिक्षा पाए हुए नवयुवक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के यौद्धिक नेता बन गए। राष्ट्रीयता के योनिवा दादाभाई नौरोजी गोपालकृष्ण गोखले सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि अग्रेजी शिक्षा की ही देन थे।

अग्रेजी भाषा के प्रसार ने देश मे राष्ट्रीय एकता की स्थापना मे महान योग दिया। विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले लोगो को अग्रेजी भाषा के रूप मे सम्पूर्ण भारतवर्ष के व्यक्तियो से पारस्परिक विचार विनिमय करने का एक साधन प्राप्त हो गया जिसके परिणामस्वरूप भारतवासी एक-दूसरे के निकट सम्पर्क मे आ गए। अग्रेजी भाषा ने भारतीयो को एक मच पर आने सामान्य समस्याओ पर विचार करने और कार्य करने की सामान्य योजना के निर्माण के लिए पथ प्रशस्त किया। सर हेनरी काटन ने इस सम्बन्ध मे लिखा है "यह कथन शिक्षा विशेषत पाश्चात्य शिक्षा का परिणाम है कि विविधता मे अग भारतवर्ष एकता के सूत्र मे बध सका। विभिन्न भाषाओं के होते एकता का कोई दूसरा सूत्र नहीं था। सक्षेप मे पाश्चात्य शिक्षा और पाश्चात्य सम्पर्क ने ही निर्मित भारतीय राष्ट्रीयता को नवजीवन प्रदान किया तथा लार्ड मैकाले की इस कल्पना को साकार कर दिया जिसमें उसने कामना की थी कि अग्रेजी इतिहास में वह गर्व का दिन होगा जब पाश्चात्य ज्ञान मे शिक्षित होकर भारतीय पाश्चात्य सस्थाओ की माग करेंगे।

अनेक भारतीय विद्वानों ने भी अंग्रेजी शिक्षा एवं पश्चिम से सम्पर्क के महत्व को स्वीकार किया है। डा० जकारिया ने लिखा है कि अंग्रेजों ने सन् १८३३ में अंग्रेजी शिक्षा का जो कार्यक्रम आरंभ किया था उससे अधिक हितकर और कोई कार्य उन्होंने भारतवर्ष में नहीं किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है अंग्रेजी लेखकों की रचनाएँ मानव प्रेम न्याय तथा स्वतन्त्रता की भावनाओं से परिपूर्ण थी। उनके अध्ययन से हम प्राचीन युग को बढ़ाने वाली महान् साहित्यिक परम्परा का ज्ञान हुआ। इस सम्बन्ध की मानव स्वतन्त्रता सम्बन्धी कविताओं में हमको इस शक्ति का आभास प्राप्त हुआ। इन्हीं की कुछ रचनाओं में हम सभ्यता की भावना प्राप्त हुई। इन रचनाओं ने भारतीयों की कल्पना को उत्तेजित किया। हम विश्वास हो गया कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह के लिए सर्व धर्म का सहयोग आवश्यक है। हमने अनुभव किया कि इंग्लैण्ड की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर हमारे साथ है। संक्षेप में अंग्रेजी शिक्षा एवं पश्चिमी साहित्य हमारी राष्ट्रीय जागृति के महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुए।

(४) ऐतिहासिक अनुसंधान—

भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों के शोध कार्यों का राष्ट्रीय जागृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैक्समूलर कीथ आदि पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन साहित्य धर्म और संस्कृति के सम्बन्ध में गोधकार्य किया और भारतीयों के सम्मुख उनके राजनैतिक सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास का एसा विवरण प्रस्तुत किया जो किसी भी रूप में समकालीन योरोपियन सभ्यताओं से पिछड़ा नहीं था। इन अनुसंधानों के परिणामस्वरूप भारत की प्राचीन आध्यात्मिक श्रेष्ठता और देदीप्यमान सभ्यता के चिह्न भारतीयों के सम्मुख आए। अत उनके मन में अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न हुई। श्री मजूमदार ने ठीक ही लिखा है यह खोज भारतीयों के हृदय में चेतना उत्पन्न करने में असफल नहीं हो सकती थी जिसके परिणामस्वरूप उनके हृदय राष्ट्रीयता की भावना और तीव्र देशभक्ति से भर गए। इन विद्वानों की रचनाओं से पश्चिमी दुनिया की अपेक्षा भारत की ही संस्कृति भाषा की सभ्यता भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक तथा साहित्यिक महत्व के दर्शन हुए। रानाडे हरप्रसाद भण्डारकर राजेन्द्रलाल मित्र आदि भारतीयों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया।

(५) भारतीय प्रेस तथा साहित्य का प्रभाव—

भारतीय प्रेस समाचार पत्र तथा साहित्य ने भी राष्ट्रीय जागृति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तत्व का काम किया है। १८५७ ई० के पश्चात् भारतीय पत्रकारिता और साहित्य का तीव्र गति से विकास हुआ। कहा जाता है कि १८७७ ई० तक भारतवर्ष में ६४४ समाचार पत्र हो गए थे जिनमें से चार सौ से अधिक देशी भाषाओं में थे। फिलिप्स के अनुसार सन् १८७७ में देशी भाषाओं में बम्बई प्रेसीडेंसी विभाग और उत्तर भारत से ६२ बंगाल से २८ और दक्षिण भारत से १९ समाचार पत्र प्रकाशित होते थे जिनके नियमित पाठकों की संख्या एक लाख

से प्रमिक थी। पत्रों ने शिक्षित भारतीयों में देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावनाओं को जगाया तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की बुराइयों का भंडाफोड़ किया। अमृत बाजार पत्रिका, ट्रिब्यून, इंडियन मिरर, हिन्दू, बम्बई समाचार, केसरी, समाचार दर्पण आदि पत्र जनता में राष्ट्रभक्ति उत्पन्न कर रहे थे। समाचार पत्रों के अतिरिक्त राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने में साहित्यकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। साहित्यकारों ने नाटकों, उपन्यासों, लेखों आदि के माध्यम द्वारा भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का भगीरथ कार्य किया। श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा रचित आनन्दमठ देश प्रेम का ग्रन्थ है। उसे क्रान्तिकारियों की बाइबल कहा जाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर और डी० एल० राय की कविताओं, गीतों व संगीत ने राष्ट्रीय साहित्य को पर्याप्त सामग्री प्रदान की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित भारत दुर्दशा और दीनबन्धु द्वारा रचित नीलदर्पण ने भारतीयों को स्वदेश प्रेम की वाणी सुनाई। भारत बाबू की रचनाओं ने प्राचीन भारत के गौरव को प्रदर्शित किया तथा भविष्य को उज्ज्वल बनाने की प्रेरणा दी। विष्णुशास्त्री ने मराठी में व भारती ने तमिल में राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण उत्कृष्ट साहित्य की रचना कर भारतवासियों के हृदय में राष्ट्रीय जागृति की तीव्र उमंग उत्पन्न कर दी।

(६) आर्थिक शोषण—

अंग्रेज पूंजीपतियों के हितार्थ ब्रिटिश सरकार ने मुक्त व्यापार की नीति अपनाई। भारत के बने हुए माल पर इंगलैंड में आयात पर भारी कर लगा दिया। इस विमाता समान व्यवहार से भारत के हस्त उद्योग नष्ट हो गए। होरेस विल्सन ने लिखा है "पेसली और मानचेस्टर के कारखाने भारत के स्वदेश उद्योगों को बलिदान करके बनाए गए।" अंग्रेजों की आर्थिक नीति भारतवर्ष के लिए अत्यन्त बुरी सिद्ध हुई। भारत का धन विदेशों को जाने लगा। देश में भयंकर बेकारी फैलने लगी तथा निर्धनता बढ़ने लगी। सर विलियम डिग्बी ने भारत की आर्थिक दशा का विवरण इन शब्दों में किया "करीब ४ करोड़ मनुष्य भारत में ऐसे हैं जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल सकता। ऐसे पतन का दूसरा दृश्य इस समय किसी सभ्य और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं देता।" ड्यूक आफ आरगाइल ने लिखा "भारत की जनता महा दरिद्र है। रहन सहन का स्तर तेजी से गिरता जा रहा है। उसका उचित कारण नहीं मिलता है।" देश में कृषि की अवस्था भी अच्छी नहीं थी। सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं थी। दुर्भिक्ष और सूखे देश में सर्वत्र व्याप्त थे। भारतीय शासन भी बड़ा खर्चीला था। मनमाना व्यय बहुत था। अनेक प्रकार से भारत का धन बाहर चला जा रहा था। आर्थिक शोषण की नीति का भारतीय कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बड़े रोचक शब्दों में वर्णन किया है—

> अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
> पै धन विदेश चलि जात यहै है ख्वारी॥

शिक्षित वर्ग की दशा खराब होती जा रही थी। उनके लिए ऊँची नौकरी के द्वार बन्द थे। छोटी नौकरी का वेतन बहुत कम था। नौकरियों में भारतवासियों के साथ भेदभाव का व्यवहार होता था। इन सब बातों से भारतीय जनता में असन्तोष व रोष बढ़ा और वे सरकार की आलोचना करने लगे। उनमें यह भावना फैलने लगी कि इन दुखों का कारण ब्रिटिश शासन है एवं यदि अंग्रेजों को यहां से निकाल दिया जाए तो देश खुशहाल हो सकता है। गुरुमुख निहाल सिंह ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है "इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि देश की बिगड़ती आर्थिक दशा तथा सरकार की राष्ट्र विरोधी आर्थिक नीति और अंग्रेज विरोधी विचारों का राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने में काफी हाथ था। इस तथ्य को गरट ने भी स्वीकार किया है। वह लिखते हैं "सरकार की राष्ट्र विरोधी आर्थिक नीति तथा भारतीयों को ऊँचे ऊँचे पदों से वंचित रखने की नीति ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भारतीयों की भावनाओं को भड़काया और राष्ट्रवाद को जन्म दिया।" संक्षेप में भारतीयों ने इस सत्य को समझ लिया था कि उनकी इस हीन स्थिति का दोष विदेशी शासन पर है और उसका अन्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(७) लार्ड लिटन का दमनकारी शासन —

लार्ड लिटन का अन्यायपूर्ण शासन भी राष्ट्रीय जागृति का एक कारण था। कभी कभी दुष्ट शासक भी राजनैतिक प्रगति के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं, इस उक्ति को लार्ड लिटन ने भारतवर्ष में अपने शासन में चरितार्थ किया। उसने अपनी अन्यायपूर्ण एवं साम्राज्यवादी नीतियों के परिणामस्वरूप शिक्षित भारतीयों में इस सीमा तक नए जीवन की लहर फूंक दी जो वर्षों तक के आंदोलन से भी सम्भव नहीं हो पाती। उसके शासन-काल में १८७६ ई० में भारतीय लोक सेवा में सम्मिलित होने की आयु २१ वर्ष से घटाकर १९ वर्ष कर दी गई। परिणामस्वरूप भारतीयों के लिए प्रतिद्वन्द्वी परीक्षा में सम्मिलित होना अत्यन्त कठिन हो गया। इससे भारतीयों में काफी रोष फैला। लार्ड लिटन ने जनवरी १८७७ ई० में एक भव्य शाही दरबार का आयोजन किया था जिसमें महारानी विक्टोरिया ने भारत की महारानी की उपाधि धारण की थी। इस दरबार में धन का काफी अपव्यय हुआ था। दक्षिणी भारत में उस समय भीषण अकाल पड़ रहा था। इसमें काफी संख्या में लोग मृत्यु का ग्रास बन रहे थे।

ब्रिटिश सरकार ने लोगों को अकाल से बचाने के लिए बहुत कम सहायता दी। इसलिए कलकत्ता के एक पत्रकार ने दिल्ली दरबार की आलोचना करते हुए लिखा कि "जब रोम में आग लग रही थी तब नीरो बांसुरी बजा रहा था।" वायसराय की स्वेच्छाचारिता ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी में सरकार विरोधी भावनाएं जाग्रत की। उन्होंने सोचा यदि एक स्वेच्छाचारी वायसराय की प्रशंसा के लिए देश के राजा तथा अमीर उमरावों को एकत्रित किया जा सकता है तो देशवासियों को न्यायसंगत ढंग से स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए क्यों नहीं संगठित किया जा

सकता। दुर्भिक्ष काल में ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों के प्रति अपनाई गई उदासीन नीति के फलस्वरूप भारतीयों में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा का भाव पैदा हुआ और उनमें अन्याय के विरुद्ध जागृति की लहर दौड़ गई। इसी काल में जबकि भारतीय जनता भूख से तड़प रही थी भारतवर्ष से इंगलैंड को अस्सी लाख टन अन्न का निर्यात किया गया। यह दृश्य भारतीयों के लिए असहनीय था। उनमें असन्तोष फैला और वे अन्याय के विरुद्ध जाग उठे। लार्ड लिटन की अफगानिस्तान की नीति से भी भारतीयों में असंतोष की वृद्धि हुई। लार्ड लिटन ने ब्रिटिश साम्राज्य की विस्तारवादी नीति का अनुकरण करते हुए अफगानिस्तान को अधीन बनाने के लिए कदम उठाया। उसने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। युद्ध से भारत को कोई लाभ नहीं हुआ उलटा काफी व्यय हुआ। भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति पहले ही शोचनीय थी अतः अफगानिस्तान युद्ध का २ करोड़ स्टर्लिंग का व्यय भारतीय जनता में ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध असंतोष फैलाने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ।

इसके साथ ही लिटन ने अपने कुछ अन्य निरंकुश कार्यक्रमों को आलोचना से बचाने के लिए कुछ अनुचित कदम भी उठाए। उसने भारतीय शस्त्र अधिनियम स्वीकृत किया जिसके द्वारा भारतीयों को बिना लाइसेंस के शस्त्र रखने की मनाही कर दी गई। इस अधिनियम को यूरोपीय जातियों पर लागू नहीं किया गया। भारतीयों ने इस कार्य को बड़ा अपमानजनक समझा। सन् १८७८ में उसने वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम पारित किया जिसका उद्देश्य प्रेस की स्वतन्त्रता को समाप्त कर देना था। लार्ड लिटन के इस कार्य से समस्त देश में विरोध की लहर फैल गई। लार्ड लिटन के उपरोक्त अप्रिय और अन्य कार्यों ने ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीय जनता में उग्र असन्तोष जागृत कर दिया। सर विलियम वेडरबर्न ने सच ही कहा था, "लार्ड लिटन के शासन काल के अन्त में स्थिति विद्रोह की सीमा तक पहुँच गई थी।" लार्ड लिटन ने कपास सीमा शुल्क की भी समाप्ति कर दी जिससे भारतीय व्यापार को काफी हानि पहुँची। इस कार्य से भारतीयों के मस्तिष्क में यह विचार जागृत हो गया कि लार्ड लिटन के हृदय में भारतीयों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है।

(न) इलबर्ट बिल सम्बन्धी विवाद—

लार्ड रिपन के पूर्व अंग्रेज अपराधियों से सम्बन्धित फौजदारी मामले केवल यूरोपीय न्यायाधीश ही सुन सकते थे और निर्णय दे सकते थे। इस विभेद को हटाने के लिए तथा न्याय व्यवस्था में निष्पक्षता लाकर विधि विहित शासन स्थापित करने के लिए लार्ड रिपन के शासन काल में एक विधेयक पारित कराने का प्रयत्न किया गया। १८८३ ई० में लार्ड रिपन की परिषद् के विधि सदस्य मि० इलबर्ट ने परिषद् में एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य भारतीय न्यायाधीशों को भी यूरोपियन अपराधियों के मुकदमे सुनने का अधिकार देना था।

लेकिन यह विधेयक एक भारी विवाद का कारण बन गया। भारत में रहने वाले अंग्रेजों ने इस विधेयक को अपना जातीय अपमान समझा और इसके विरोध में आन्दोलन करने के लिए १।। लाख से भी अधिक रुपया का चन्दा इकट्ठा किया। भारत और इंग्लैण्ड में विधेयक के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए यूरोपियन डिफेन्स एसोसिएशन का संगठन किया। विधेयक की आलोचना करने के लिए अनेक सभाओं का भी आयोजन किया गया। उन्होंने लार्ड रिपन और उसकी कार्यकारिणी के सदस्यों के सामाजिक बहिष्कार का भी षड्यन्त्र तैयार किया। उन्होंने गवर्नर जनरल के स्वागत का भी बहिष्कार किया। सर हेनरी काटन ने यह भी रहस्योद्घाटन किया कि कलकत्ते के कुछ अंग्रेजों ने सरकारी भवन के संतरियों को वश में करके लार्ड रिपन को जहाज से वापस इंग्लैण्ड भेजने का भी षड्यन्त्र रचा था। यह षड्यन्त्र बंगाल के गवर्नर और पुलिस कमिश्नर की जानकारी में था। कुछ अंग्रेजों ने यह भी प्रचार किया कि गोरी जाति का अपमान करने के लिए भारतीय काले न्यायाधीश उनकी स्त्रियों को सजा देंगे और उनकी गोरी औरतों को अपने घर में रखेंगे। अंग्रेजों ने यह भी कहा कि ये भारतीय न्यायाधीश गोरे अभियुक्तों को सजा देने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इस आन्दोलन के आगे झुक कर सरकार को विधेयक का मूल रूप वापस लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। यह निश्चित किया गया कि केवल भारतीय जिलाधीश व सेशन जज ही यूरोपियन अपराधियों के मुकदमे सुनने के अधिकारी होंगे। यूरोपियन अपराधियों को अपने मुकदमे के लिए जूरी द्वारा की माँग करने का पूर्ण अधिकार दिया गया तथा निश्चित किया गया कि जूरी में कम से कम आधे सदस्य यूरोपियन होंगे।

इल्बर्ट बिल की घटना ने भारतीयों के दिल पर करारी चोट की और उनकी आँखें खोल दीं। उन्होंने यह जान लिया कि जब तक वे विदेशी साम्राज्य के अधीन हैं तब तक उन्हें यह अपमान और अन्याय सहना ही पड़ेगा। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा, "कोई भी स्वाभिमानी भारतीय शान्त मन से चुपचाप नहीं बैठा रह सकता। जो इल्बर्ट बिल विवाद समझने में समर्थ थे उनके लिए यह देश भक्ति का महान आह्वान था।" इल्बर्ट बिल द्वारा भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में योगदान को हेनरी काटन ने भी स्वीकार किया है। उसने लिखा है, "इस विधेयक के विरोध में किए गए यूरोपीयन आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीय विचारधारा को जितनी एकता प्रदान की उतनी तो विधेयक पारित होकर भी नहीं कर सकता था।" इल्बर्ट बिल की घटना ने भारतीय शिक्षित वर्ग को संगठित कर राजनैतिक आन्दोलन की आवश्यकता का भान कराया। इस विधेयक का वापस लिया जाना इस बात का द्योतक था कि भारतीयों में किसी संगठित प्रयास की कमी ही यूरोपियनों की सफलता का कारण था। उनको यह भी स्पष्ट हो गया कि यदि राजनैतिक सुधारों की प्राप्ति करना है तो एक देशव्यापी आन्दोलन करना होगा और उसके लिए एक राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता होगी। श्री ए. सी. मजूमदार ने लिखा

है भारतीयों ने यह अनुभव किया कि यदि राजनैतिक प्रगति करनी है तो उसे केवल एक राष्ट्रीय सभा से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस सभा का सम्बन्ध विभिन्न प्रान्तों की स्वतन्त्र राजनीति से न होकर देश की एक व्यापक राजनीति से होना चाहिए। अंग्रेजों की इस नीति का विरोध करने के लिए ही सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने २८ दिसम्बर १८८३ से ३० दिसम्बर १८८३ ई० तक कलकत्ता के अल्बर्ट हाल में एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया था। गुरुमुख निहालसिंह ने इस सम्बन्ध में लिखा है "इल्बर्ट बिल विवाद" के सम्बन्ध में आंग्ल भारतीय आन्दोलन इनकी संकीर्णता तथा स्वार्थपरता जाति विषयक और शासक वर्ग के अभिमान की नींव पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

(९) अंग्रेजी शासन की स्वेच्छाचारिता व निरंकुशता

असन्तोष विरोध को जन्म देता है। यही अंग्रेजों के शासन में हुआ। सन् १८५८ की विक्टोरिया घोषणा में भारतीयों को काफी आश्वासन दिए गए थे। यह कहा गया था कि उनके साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। स्वतन्त्रता एवं समानता का वचन दिया गया था किन्तु उनमें से एक भी वचन और आश्वासन को पूरा नहीं किया गया। ब्रिटिश शासकों ने स्वेच्छाचारिता और अनुत्तरदायित्व का मार्ग अपनाया अतः भारतीयों में असन्तोष की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। अंग्रेजी शासन में भारतीय परम्पराओं के अनुपालन पर कोई ध्यान नहीं दिया एवं सारे देश में परिषदों की विदेशी व्यवस्था स्थापित कर दी गई। पादरी लोग भारतीय धर्म के विरुद्ध प्रचार करने लगे। अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा पद्धति कृषि तथा उद्योग की उन्नति सिंचाई और सफाई की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। प्रत्येक क्षेत्र में अंग्रेजों ने अपनी मनमानी करने का रुख अपनाया। भारतीयों का शासन में कोई विशेष भाग नहीं दिया जाता था और न ही उनसे कोई परामर्श तक लिया जाता था। इस प्रकार अंग्रेजों के इस दृष्टिकोण ने भारतवासियों में अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता को प्राप्त करने की उत्सुकता जागृत कर दी।

(१०) यातायात के साधन

यातायात के साधनों के विकास ने राष्ट्रीय जागृति में महत्वपूर्ण योग दिया। यातायात के द्रुतगामी साधनों ने दूरी को कम कर दिया। रेल और बसों की यात्रा ने विभिन्न प्रान्तों के व्यक्तियों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में ला दिया तथा वे एक दूसरे के विचारों एवं समस्याओं को समझने लगे। देश के नेता सुविधापूर्वक देश के एक कोने से दूसरे कोने में भ्रमण करने लगे। देश के विभिन्न भागों के नेताओं तथा जनता में निकट सम्पर्क स्थापित हो गया। फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिला। गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों में आवागमन के साधनों ने इस विशाल देश को एक कड़ी में जोड़ दिया तथा भौगोलिक एकता को वास्तविकता में बदल दिया। डाक व्यवस्था से राष्ट्रवादियों का एक दूसरे से पत्र व्यवहार करना और राजनैतिक कार्यों के सम्बन्ध में विचार विमर्श करना सरल हो गया। फलस्वरूप राष्ट्रीय एकता की भावना के विकास में सहायता मिली।

(११) जाति विभेद की नीति

गरेट के अनुसार भारतीय राष्ट्रीयता के उत्थान का प्रमुख कारण यूरोपियन एवं भारतीयों के मध्य जातीय कटुता थी। भारतीयों में प्रस रोष फरने और अंग्रेजों का विरोध करने का प्रमुख कारण भारतीयों से किया गया दुर्व्यवहार था। अंग्रेज शासकों ने भेदभाव की नीति को अपनाया। स जाति विभेद नीति के आधार थे

(१) भारतीय केवल भय और दंड की भाषा को ही समझ सकते हैं।

(२) एक यूरोपियन का जीवन अनेकों भारतीयों के बराबर है।

(३) यूरोपियन भारत में लोकहित के दृष्टिकोण से नहीं किन्तु निजी स्वार्थ की सिद्धि हेतु आए।

अंग्रेज भारतीयों को आधा वनमानुष आधा नीग्रो समझते थे। वे भारतीयों को काले हब्शी मानते थे जो पत्थरों की पूजा करते थे और विच्छु की तरह घास के घरों में रहते थे। भारतीयों को बारम्बार उनकी हीनता का बोध कराया जाता था। उनके साथ रेलगाड़ियों, रेस्टोरेन्ट आदि स्थानों पर दुर्व्यवहार किया जाता था। न्याय के मामलों में भी जाति विभेद का स्थान दिया गया था। सर थियोडोर मोरिसन के अनुसार भारत में घोर अदालती पापाचार है। यह एक निन्दनीय सत्य है जिसको छुपाया नहीं जा सकता कि अंग्रेज भारतीयों की हत्या बारम्बार करते हैं। उदाहरणार्थ एक बार एक अंग्रेजी सैनिक ने एक भारतीय रसोइये को इसलिए मार डाला कि वह उसके लिए एक भारतीय स्त्री न ला सका। अंग्रेजों ने अकारण ही अनेक भारतीयों की हत्याएं की लेकिन उनको कोई दंड नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में हेनरी काटन ने लिखा है यदि बाग के रोपक पर किसी असहाय कुली को निर्दयता पूर्वक पीटने का अभियोग चलाया जाता तो उसका निर्णय करने के लिए बाग के रोपकों की जूरी बनाई जाती थी। यह पूरी स्वाभाविक रूप में अभियुक्त के पक्ष में होती थी। यदि किसी कारण से दोष सिद्ध हो जाता तो अंग्रेजों का सारा जनमत उस निर्णय की निन्दा करता। आंग्ल भारतीय समाचार पत्र इस विरोध को प्रकट करते थे। अपराधी के न्याय के लिए चन्दा एकत्रित करते थे। प्रभावशाली प्रक्रिया द्वारा स्मरण पत्र तैयार किए जाते तथा उनमें अपराधी के छुटकारे के लिए निवेदन किया जाता था। जाति विभेद की उपरोक्त नीति और न्यायिक मामलों में जाति-विभेद के फलस्वरूप जातीय कटुता में वृद्धि हुई। अंग्रेजों के प्रति भारतीयों के मन में घृणा की भावना जागृत हो गई। अंग्रेजों के शासन के प्रति उनके हृदय में रोष की ज्वाला धधक उठी। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय जागरण में वृद्धि में भी काफी सहयोग मिला।

(१२) सन् १८५७ का स्वतन्त्रता संघर्ष

राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करने का महत्वपूर्ण कारण १८५७ ई० का संघर्ष था। यद्यपि यह संघर्ष असफल हो गया था तो भी राष्ट्रीय जागरण

पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। सन् १८५७ ई० के संघर्ष के बाद ही भारतवर्ष ने नवयुग में प्रवेश किया। इसने प्राचीन रूढ़ियों और सामन्तवादी प्रथाओं का अन्त किया। संघर्ष को दबाने के लिए अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों के कारण घृणा की भावना विकसित हुई। एक लेखक ने लिखा है कि संघर्ष के बाद भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति एक स्थायी घृणा की भावना आ गई थी और भारतीयों में अपनी विवशता का ध्यान आते ही अंग्रेजों से बदला लेने की भावना बलवती हो उठती थी।

(१३) विदेशी घटनाओं का प्रभाव

विदेश में घटित कुछ घटनाओं ने भी भारत की राष्ट्रीय जागृति में योग दिया। सन् १८९६ ई० में एबीसीनिया ने इटली को पराजित किया तथा १९०४ में जापान ने रूस को हरा दिया। इन घटनाओं ने यह साबित कर दिया कि गोरी जातियाँ अपराजेय नहीं हैं। इस तथ्य ने भारतवासियों की अपने को हीन समझने की मनोवृत्ति को दूर कर दिया तथा उनमें आत्म-विश्वास की भावना को जाग्रत किया जो राष्ट्रीय जागरण का हेतु बना।

(१४) सरकारी नौकरियों में अन्यायपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण नीति

यद्यपि सन् १८३३ के अधिनियम द्वारा सरकारी पदों पर योग्यता के आधार पर नियुक्ति करने का आश्वासन दिया गया था तथापि व्यवहार में भारतीयों को उच्च पद पर नियुक्त नहीं किया जाता था। सेवाओं के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं का संचालन इस ढंग से किया जाता था कि भारतीयों की आई० सी० एस० जैसे उच्च पदों पर नियुक्ति असम्भव हो जाती। परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी था तथा परीक्षाएँ इंग्लैण्ड में होती थीं। यदि किसी प्रकार कोई भारतीय विद्यार्थी परीक्षा में भाग लेकर सफल हो भी जाता था तो किसी न किसी बहाने से उसे नौकरी से पृथक् कर दिया जाता था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा अरविन्द घोष भी सरकार की इस नीति के शिकार हुए थे। इनको कम उम्र तथा असफल घुड़सवारी के कारण सरकारी सेवाओं से वंचित कर दिया गया था। सरकार की इस नीति ने भारतीय नवयुवकों को अंग्रेजों के प्रति विद्रोही बना दिया। सन् १८७६ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने ब्रिटिश अन्याय का विरोध करने के लिए इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की। इसके बाद इन्होंने दौरे किए और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनमत जाग्रत किया। इन अंग्रेज विरोधी आन्दोलनों के फलस्वरूप भारत में राष्ट्रीय जागृति का विकास हुआ।

(१५) भारत में नवयुग का सूत्रपात

१८वीं शताब्दी में विश्व इतिहास में नवयुग का सूत्रपात हुआ था। भारत भी नवयुग की प्रवृत्तियों से अधिक समय तक अछूता नहीं रह सका। भारत में १९वीं सदी में नवयुग का आगमन हुआ। इसे पश्चिमी देशों की क्रान्तियों से अनेक प्रेरणाएँ मिलीं तथा अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की महानता का भी ज्ञान प्राप्त

हुआ। अपनी वर्तमान दशा को जब उन्होंने यूरोपीय प्रगति और भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में देखा तो उन्हें बड़ी आत्म ग्लानि होने लगी। वे प्रगति के लिए बेचैन हो उठे। उन्होंने अनुभव किया कि धार्मिक सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता आवश्यक है।

(१६) राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

१८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस ने राष्ट्रीय जागृति में महान् योग दिया। कांग्रेस संगठन ने राष्ट्रीय आन्दोलन का उचित और सही नेतृत्व प्रदान किया। दादाभाई नौरोजी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी गोपालकृष्ण गोखले आदि नेताओं ने अपने कार्यों द्वारा राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा दिया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को सही मार्ग पर चलाया।

(१७) क्रान्तिकारी देश भक्त

राष्ट्रीय जागृति के विकास में क्रान्तिकारी देश भक्तों का भी महत्त्वपूर्ण योग रहा है। अंग्रेजों के घोर दमन के परिणामस्वरूप जब जब भारतीयों में निराशा की भावना घर करने लगी क्रान्तिकारी देश भक्तों ने अपने कार्यों व बलिदान से राष्ट्रीय जीवन में नई प्रेरणा और स्फूर्ति पैदा की। नामधारी सिक्खों वासुदेव बलवन्त फड़के दामोदर चापेकर श्यामजी कृष्ण वर्मा आदि क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय जागृति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसकी विस्तृत चर्चा आगे की जायगी।

उक्त चर्चा से स्पष्ट है कि विश्व के अन्य देशों में राष्ट्रीय जागरण की तरह भारतवर्ष में भी राष्ट्रीय जागरण के मूल में अनेक कारण विद्यमान रहे हैं। भारतीय राष्ट्रीय जागृति किसी एक कारण का परिणाम न होकर अनेक तथ्यों के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम थी। इस कार्य में न केवल भारतीयों का ही योगदान रहा था अपितु अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों का भी हाथ रहा था। भारतीयों का अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण भारतीयों के प्रति अंग्रेजों की अन्यायपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण नीति अंग्रेजों द्वारा भारत में पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार आदि काफी सीमा तक भारतीयों में राष्ट्रीय जागृति के लिए उत्तरदायी रहे हैं और इसलिए अनेक विचारक भ्रमवश भारतीय राष्ट्रीय जागरण को अंग्रेजों द्वारा पालित शिशु की संज्ञा देते हैं। परन्तु मूल रूप में भारत की राष्ट्रीय जागृति भारतीयों का ही प्रयत्न था।

९

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

प्रवेश

हमारी संस्कृति में प्राचीन काल से ही दो धाराएं प्रवाहित रही हैं। एक राम कृष्ण, गुरु गोविन्द सिंह से लेकर तिलक, भगतसिंह, अशफाक उल्ला और सुभाष बोस की क्रान्तिधारा तथा दूसरी बुद्ध, चैतन्य और महात्मा गांधी की अहिंसामय धारा। स्वतन्त्रता भी हमें इन दो धाराओं की सम्मिलित शक्ति और तपबल से प्राप्त हुई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को सबसे पहला धक्का १८५७ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम से लगा। सन् १८५७ का भीषण संग्राम विस्तृत स्तर पर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक महान् और सीधी चुनौती थी जिससे अंग्रेजी साम्राज्य जड़ समेत डोल उठा। प्लासी के युद्ध के १०० वर्ष बाद तक अंग्रेजी सरकार के कारनामों के विरुद्ध भारत में असन्तोष की आग सुलग रही थी। अंग्रेज नहीं जानते थे कि भारतीयों में भी आत्मसम्मान का भाव हो सकता है, वे उन्हें अतिशय दीन हीन और नगण्य समझकर और स्वयं सत्ता के नशे में चूर होकर चैन की बंसी बजा रहे थे।

भारत के लोगों को अंग्रेजी साम्राज्य की नीतियों का ज्यों-ज्यों यथार्थ ज्ञान होता गया त्यों त्यों उनके मन में विद्रोह पनपता गया। अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा और असन्तोष जड़ पकड़ने लगे। अनुशासन के नाम पर अंग्रेजों ने आतंक और दमन नीति का सहारा लिया। एक भय की सिहरन भारतीय जनता के रक्त में दौड़ गयी। असन्तोष के ज्वालामुखी के विस्फोट के लिए एक नाजुक अवसर की प्रतीक्षा थी। यह नाजुक क्षण १८५७ ई० में आया और गंगा से नर्मदा तक भारत की भूमि इस विस्फोट की ज्वाला से प्रकम्पित उठी। सन् १८५७ के सशस्त्र संग्राम ने देश में ऐसी प्रवृत्तियों के बीज बो दिये जो अंधकार को छिन्न भिन्न करने वाली थीं। सशस्त्र संग्राम की समाप्ति के साथ ही देश भर में एक मानसिक और सामाजिक क्रान्ति के अंकुर उद्भूत हो गए जो सैकड़ों विघ्न बाधाएं आने पर भी निरन्तर पनपते और वृक्ष रूप में परिणत हो गए। भारत के इतिहास में सन् १८५७ से लेकर सन् १८८५ के काल को जागरण का उपाख्यान कहा जा सकता है।

उस समय जागृति की जो लहर प्रकट हुई वह मूल रूप से मानसिक थी। एक लम्बे समय से निरन्तर अंग्रेजों से पराजित होते रहने का परिणाम यह हुआ कि सचमुच भारतवासी अपने को अंग्रेजों से घटिया और उनको योग्यतर मानने लगे। यह मानसिक दासता थी जो इनकी राजनैतिक और सामाजिक दासता की जननी बन

जाती है। क्रान्ति के प्रचार और क्रान्ति की घटनाओं ने तो उस मनोवृत्ति को ठोकर पहुंचाई ही थी। देश के असंतोष को शान्त करने के लिए महारानी विक्टोरिया की तरफ से जो घोषणा प्रकाशित हुई उसने भी देश की मनोवृत्ति को बदलने में पर्याप्त सहायता दी। उस घोषणा में स्वीकार कर लिया गया था कि भारत में राजनीतिक अधिकारों की दृष्टि से भारतवासी समान हैं। इंग्लैंड के शासन की ओर से ऐसी घोषणा यदि क्रान्ति से पहले हुई होती तो शायद उसका भारत की मनोवृत्ति पर कोई असर नहीं होता परन्तु क्रान्ति के पश्चात् समानता की घोषणा से देशवासियों पर चमत्कारिक असर हुआ और उन्होंने यह अनुभव किया कि इंग्लैंड के शासन को भारतवासियों के समान अधिकार मानने ही पड़े। यह उस क्रान्ति का ही परिणाम था जिससे भारतवासियों ने पहली बार रूप में अपनी शक्ति का अनुभव किया। इसमें सन्देह नहीं कि अपनी शक्ति की अनुभूति ही जनता के जागरण का मूल कारण हुआ करती है। इस क्रान्ति से प्रभावित होकर शिक्षित भारतीयों ने आन्दोलन के नये-नये नये ढंग और नये दंग सीखना शुरू कर दिये। इंग्लैंड के राजनीतिक आन्दोलनों और राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरणा ग्रहण करने के परिणामस्वरूप भारत में राजनीतिक संगठनों का विकास होने लगा। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण संगठनों की चर्चा नीचे की जा रही है।

(१) ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन

राष्ट्रीय कांग्रेस की पूर्वगामी संस्थाओं के अन्तर्गत सबसे प्रथम एवं प्रमुख संस्था ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन थी। इसकी स्थापना अक्टूबर १८५१ ई० में कलकत्ते में हुई थी। इस संस्था ने देश के अन्य भागों में अपनी शाखाएं खोलने का प्रयत्न किया किन्तु उसमें वह असफल ही रही। इस संस्था का उद्देश्य सरकारी विधियों और शासन कार्य की समय समय पर आलोचना करना था और भारतीयों के लिए अधिकारों की आवाज बुलन्द करना था। इस संस्था ने ब्रिटिश संसद को १८५२ ई० में एक स्मृतिपत्र (मेमोरेन्डम) भी प्रस्तुत किया। इस संस्था ने विधान परिषदों में भारतीयों को सम्मिलित करने, लोक सेवा के लिये भारत में प्रतियोगिता परीक्षाओं के आयोजन की व्यवस्था करने आदि की मांग की। इस संस्था को भारत में राजनीतिक चेतना जागृत करने में कुछ सफलता मिली। इस संस्था को राजेन्द्र लाल, प्यारेलाल, हरिश्चन्द्र मुखर्जी, रामगोपाल घोष आदि का सुयोग्य निर्देशन प्राप्त हुआ था परन्तु दुर्भाग्यवश यह संस्था अधिक समय तक कायम नहीं रह सकी।

(२) इंडियन लीग

ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन के असफल हो जाने के पश्चात् बंगाल के कुछ उत्साही और प्रगतिशील व्यक्तियों द्वारा कलकत्ता में १८७५ ई० में एक संगठन इंडिया लीग की स्थापना की गयी जिसका उद्देश्य भारतीय जनता में राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा देना और उनमें राजनीतिक जागृति उत्पन्न करना था। यह संस्था भी थोड़े समय तक ही अपना अस्तित्व कायम रख पाई।

(३) इंडियन एसोसिएशन

श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में २६ जुलाई १८७६ ई० को कलकत्ता के एल्बर्ट हाल में एक सार्वजनिक सभा की स्थापना की गई थी। इस संस्था का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार की दमनकारी तथा साम्राज्यवादी नीति का विरोध करना देश में सबल लोकमत का निर्माण करना भारत की विभिन्न जातियों के व्यक्तियों को समान राजनीतिक हितों और आकांक्षाओं के आधार पर संगठित करना हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करना और सार्वजनिक आन्दोलनों में किसानों का सहयोग प्राप्त करना था। यह शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली पहली संस्था थी। इस संस्था ने १८७६ ई० में ब्रिटिश सरकार द्वारा लोकसेवा में प्रवेश की आयु में कमी करने के निर्णय के विरुद्ध संघर्ष करने का निर्णय किया। इस कार्य के लिए श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सम्पूर्ण देश का दौरा किया। इस संस्था ने लार्ड लिटन के शासनकाल में स्वीकृत शस्त्र अधिनियम और वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम जैसे प्रतिक्रियावादी कानूनों के विरुद्ध संघर्ष किया। इसने सन् १८८३ में २८ दिसम्बर से ३० दिसम्बर तक एक राष्ट्र-सम्मेलन का भी आयोजन किया। इस सम्मेलन में भारतीय जनता से यह अनुरोध किया गया कि वे देश की उन्नति के लिए आपस में एक हो जाएँ और अपना एक सुदृढ़ संगठन स्थापित करें। सन् १८८४ में २४ दिसम्बर को भारतीय परिषद् ने लार्ड डफरिन के स्वागत में एक मानपत्र भेंट किया। इसमें भारतीय परिषद् ने प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के सुधार और पुनर्निर्माण का प्रश्न उठाया तथा यह माँग की कि सदस्य निर्वाचित किये जायें और उन्हें व्यवस्थापिका-सभा में प्रश्न करने और बजट पर नियन्त्रण करने की शक्ति प्रदान की जाय। दिसम्बर १८८५ ई० में भारतीय-परिषद् ने एक राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जिसमें बम्बई बनारस प्रयाग और आसाम आदि के लगभग २ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इसमें बंगाल की मुस्लिम एसोसिएशन ने भी सहयोग दिया। नेपाल के राजदूत और मि० काटन सम्मानित अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए। यह सम्मेलन सफल रहा। इस सम्मेलन में व्यवस्थापिका-सभाओं के सुधार शस्त्र-कानून में सुधार और राष्ट्रीय व्यय कम करने के प्रश्नों पर विचार किया गया। प्रशासकीय विभाग से न्याय-विभाग को पृथक करने पुलिस व्यवस्था में सुधार करने लोकसेवा परीक्षाएं भारत में ही आयोजित करने पर जोर दिया गया। यह कहा जाता है कि यदि राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना न होती तो इन्डियन एसोसिएशन ही अखिल भारतीय राजनैतिक संस्था का स्वरूप ग्रहण करती।

(४) बम्बई प्रेसिडेंसी एसोसिएशन

सन् १८५१ में कलकत्ता में ब्रिटिश एसोसिएशन की स्थापना के कुछ समय पश्चात् बम्बई में भी इस संगठन की स्थापना की गयी परन्तु यह कुछ समय बाद निष्क्रिय हो गयी। श्री नौरोजी फरदनजी ने इसको सजीव करने का प्रयास किया किन्तु उनको इसमें सफलता नहीं मिली। अतः बदरुद्दीन तैयबजी और फ़िरोज

शाह मेहता ने १८८५ ई० में बम्बई प्रेसिडेंसी एसोसिएशन की स्थापना की। इस संस्था ने राजनैतिक जागरण की दिशा में बहुत सफल प्रयास किया।

(५) पूना सार्वजनिक सभा

महादेव गोविन्द रानाडे ने १८७१ ई० में महाराष्ट्र में राजनैतिक जागृति उत्पन्न करने और समाज सुधार का काम करने के उद्देश्य से पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना की। यह सभा १९वीं सदी के अन्त तक काम करती रही।

इसी प्रकार मद्रास में महाजन-सभा और १८८४ ई० में बंगाल में नेशनल-लीग की स्थापना की गयी।

यद्यपि उक्त सभी संस्थाएं राजनैतिक उद्देश्य से स्थापित हुई थीं तथापि इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इनके सामने एक भारतीय राष्ट्र का या राष्ट्रीय स्वाधीनता का लक्ष्य विद्यमान था। यद्यपि एक राष्ट्र और राष्ट्रीय स्वाधीनता के भाव राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द जैसे महान पुरुषों के लेखों और भाषणों में व्यक्त हो चुके थे तथापि राजनीति में अभी उनका प्रश्न सम्भव नहीं हो पाया था। उस समय की राजनीति की दो सीमाएं थीं। प्रायः सभी संस्थाएं अपने प्रान्त की समस्याओं पर विचार करती थीं और वे समस्याएं भी नौकरियां सम्बन्धी शिकायतों अथवा आत्मशोधन तक ही सीमित रहती थीं। इनमें भाग लेने वालों में बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की होती थी जिनका सरकारी नौकरियों से कोई सम्बंध नहीं था। एक अन्य विशेषता यह थी कि ये सभी संस्थाएं अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों ने बनाई थीं और चिरकाल तक उनमें अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग ही रहे।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

उक्त राजनैतिक संस्थाओं ने यद्यपि महत्वपूर्ण कार्य किया परन्तु उनकी अपनी सीमाएं थीं। भारतीय नेताओं ने यह अनुभव किया कि राजनैतिक प्रगति एक राष्ट्रीय सभा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इस सभा का सदस्य विभिन्न प्रान्तों की स्वतन्त्र राजनीति से न होकर देश की एक व्यापक राजनीति में ही होना चाहिए। परन्तु इस दिशा में उठाए गए कदमों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का श्रेय अवकाश प्राप्त सरकारी अफसर ह्यूम को है इसलिए ह्यूम को ही राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्मदाता माना जाता है। १मार्च १८८३ ई० को ह्यूम ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने देश के शिक्षित नवयुवकों से मातृभूमि की उन्नति के लिए प्रयत्न करने की अपील की। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि यदि ५० शिक्षित नवयुवक ही अपने स्वार्थों को त्याग कर देश की स्वाधीनता के लिए डट कर प्रयास करें तो आगे का काम सरल हो सकता है। उन्होंने आगे लिखा कि यदि आप सीमित स्वार्थों का त्याग कर मातृभूमि की सेवा करने को कटिबद्ध नहीं होंगे तो वर्तमान समय में उज्ज्वल भविष्य की आशा लगाना व्यर्थ ही है। पत्र का अन्त अत्यन्त मार्मिक है "आपके कन्धों पर रखा हुआ जुआ तब तक

विद्यमान रहेगा जबकि आप इस प्रकार सत्य को समझ कर उसके अनुसार काय करने को उद्यत न होंगे। आन्तरिक लगन तथा निःस्वार्थ कर्म ही स्थायी मत तथा स्वतन्त्रता के अनुकूल पथ-प्रदर्शक है। ह्यूम सामाजिक सुधार आन्दोलन के लिए देश व्यापी संस्था की योजना पर विचार करने लगे और उन्होंने इस प्रश्न पर तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन से वार्तालाप भी की। लार्ड डफरिन ने उनके सुझाव को सहानुभूति प्रदान करते हुए राजनैतिक मंच के रूप में संस्था [illegible] का सुझाव दिया। इस बात के सम्बन्ध में कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष उमेशचन्द्र बनर्जी ने लिखा है, ह्यूम का विचार था कि भारत के प्रमुख व्यक्ति वर्ष में एक बार एकत्र होकर सामाजिक विषयों पर चर्चा किया करें। वे नहीं चाहते थे कि उनकी चर्चा का विषय राजनीति रहे क्योंकि मद्रास कलकत्ता और बम्बई में पहले से ही राजनैतिक संस्थाएँ विद्यमान थी। लार्ड डफरिन ने ह्यूम के विचारों को राजनैतिक दिशा प्रदान की। उन्होंने कहा कि इस मंच को यहाँ वैधानिक विरोधी दल की तरह काय करते रहना चाहिए। उनका यह भी मत था कि व्यक्ति वर्ष में एक बार राजनीतिक प्रतिनिधि सम्मेलन में मिलें और सरकार को बताएँ कि शासन में क्या क्या कमियाँ हैं और उनमें क्या क्या सुधार करने चाहिए। ह्यूम ने दादाभाई नौरोजी, दीवान बहादुर रघुनाथराव एवं उमेशचन्द्र बनर्जी से परामर्श किया एवं इन्होंने लार्ड डफरिन के विचारों का समर्थन किया। सितम्बर १८८४ में ह्यूम ने इण्डियन नेशनल यूनियन नामक एक संस्था की स्थापना की। इसके पश्चात् ह्यूम इंग्लैण्ड गये और वहाँ लार्ड रिपन [illegible] आदि से इस विषय पर विचार विमर्श किया। वहाँ से लौटकर इण्डियन नेशनल यूनियन का नाम बदल कर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस रखा एवं इसका प्रथम अधिवेशन २५ से २८ दिसम्बर तक पूना में करने और समस्त भारत के सभी क्षेत्रों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से सन् १८८५ में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और ह्यूम के हस्ताक्षरों से युक्त एक घोषणा पत्र जारी किया गया जिसमें निम्नलिखित बातों का मुख्य रूप से समावेश किया गया —

(१) देशहित के उद्देश्य से रत व्यक्तियों में आपस में सम्पर्क स्थापित करने का अवसर प्रदान करना।

(२) आगामी वर्षों में राजनैतिक कार्यक्रमों की रूपरेखा एवं प्रक्रिया का निर्णय करना तथा उन पर वाद विवाद करना।

(३) सभा द्वारा एक ऐसी संसद का प्रारम्भ किया जाना जो इस बात का उत्तर होगा कि भारतीय लोग अभी किसी भी प्रकार की प्रतिनिधि संस्था चलाने के योग्य नहीं हैं।

(४) सभा का आयोजन पूना में किया जाए जिसकी स्वागत समिति के रूप में पूना-सार्वजनिक सभा काय करेगी।

पूना में हैजा फैल जाने के कारण सभा का अधिवेशन पूना के स्थान पर बम्बई में किया गया। यह सम्मेलन २८ दिसम्बर १८८५ ई को दिन के १२ बा

गोकुलदास तेजपाल संस्कृत पाठशाला के विशाल भवन में हुआ। अधिवेशन की अध्यक्षता कलकत्ते के प्रसिद्ध बैरिस्टर उमेशचन्द्र बनर्जी ने की। इस अधिवेशन में देश के विभिन्न भागों से ७२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें भारत के अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति यथा दादाभाई नौरोजी फीरोजशाह मेहता वी राघवाचार्य एस सुब्रह्मण्यम् दिनशावाचा काशीनाथ तेलंग आदि प्रमुख थे। यह सम्मेलन अत्यधिक सफल रहा। उमेशचन्द्र बनर्जी के अनुसार भारत के इतिहास में ऐसा महत्वपूर्ण विस्तृत प्रतिनिधित्वपूर्ण सम्मेलन पहले कभी न हुआ था। इस प्रकार इस महान संस्था का जन्म हुआ जिसके नेतृत्व में ६२ वर्ष तक भारतवर्ष में स्वतन्त्रता संग्राम चलता रहा।

कांग्रेस के उद्देश्य

कांग्रेस की स्थापना के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो व्याख्याएं प्रस्तुत की जाती हैं। प्रथम धारणा के अनुसार कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा करना मात्र था। दूसरा मत इस तथ्य का चित्रण करता है कि कांग्रेस की स्थापना के मूल में भारतीय राष्ट्रीयता है। जो विचारक प्रथम मत के समर्थक हैं वे अपने पक्ष में दो तथ्य रखते हैं

(१) कांग्रेस के जन्मदाता ह्यूम अवकाश प्राप्त अंग्रेज पदाधिकारी थे और उन्हें तात्कालिक गवर्नर जनरल लार्ड डफरिन का आशीर्वाद तथा अनेक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का समर्थन प्राप्त था। यह कहा जाता है कि ह्यूम ने ब्रिटिश शासकों की पूर्व निश्चित गुप्त योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए ही अथक परिश्रम किया।

(२) सन् १८५७ के सशस्त्र संग्राम ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयों में रोष और असंतोष की भावना काफी प्रबल थी तथा वह कभी भी पुनः सशस्त्र संघर्ष का रूप ले सकती थी। भारतीयों में नव जागृत राष्ट्रीय भावनाओं का विकास हो रहा था। जिससे अंग्रेजी साम्राज्य के भविष्य को खतरा था। लार्ड लिटन के दमनकारी शासन की समाप्ति पर भारत क्रांति के बहुत निकट पहुँच चुका था। भारतीय जनता की दरिद्रता और भुखमरी तथा शिक्षित भारतीयों का असंतोष कभी भी क्रान्ति का स्वरूप ग्रहण कर सकता था। ह्यूम इस बात से भलीभांति परिचित थे कि राजनीतिक अशान्ति धीरे धीरे बढ़ रही है। दक्षिण के किसान विद्रोह और बंगाल के क्रान्तिकारियों की गतिविधियों ने इस भावना को और अधिक बलवती बना दिया। जन आन्दोलन की बढ़ती शक्ति को कुचलने में ह्यूम को असफलता ही नजर आ रही थी। अतः उसने इस असंतोष की सरिता को वैधानिक स्वरूप या वैधानिक दिशा प्रदान करने के लिए ही कांग्रेस की स्थापना की। ह्यूम के जीवनी लेखक सर विलियम वेडरबर्न ने इस सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि भारतीयों की उत्पाती और शक्तिशाली भावनाओं के निष्कासन के लिए एक

नली की आवश्यकता थी और यह रक्षा नली कांग्रेस से अच्छी और कोई संस्था सिद्ध नहीं हो सकती थी। इस तथ्य की पुष्टि ह्यूम द्वारा सर आकलैंड कालविन को लिखे गए पत्र द्वारा भी होती है जिसमें ह्यूम ने लिखा था कि कांग्रेस की स्थापना की योजना का उद्देश्य अंग्रेजी शासकों के कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न एक प्रबल और उमड़ती हुई शक्ति के निष्कासन के लिए रक्षा नली का निर्माण करना था। लार्ड डफरिन ने भी जैसाकि पहिले ही बताया जा चुका है कांग्रेस की स्थापना को इसी उद्देश्य की पूर्ति के रूप में स्वीकृति दी थी। इस विचारधारा की पुष्टि लाला लाजपतराय नन्दलाल चटर्जी और रजनी पामदत्त के विचारों से होती है। लाला लाजपतराय ने 'यंग इंडिया' में लिखा है "राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्य को खतरे से बचाना था। भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयास करना नहीं अंग्रेजी साम्राज्य के हितों की पुष्टि करना था और इस सत्य से इन्कार भी नहीं किया जा सकता कि कांग्रेस ने इसका पालन नहीं किया। नन्दलाल चटर्जी का कहना है कि उस समय ऐसे आक्रमण का विशेष भय था जिसके निवारण के लिए भारतीय आन्दोलन को सही दिशा में बदलना आवश्यक था। उनके मतानुसार उस समय अंग्रेज रूसियों के भय के कारण भारत की राजनैतिक स्थिति सुधारने में प्रयत्नशील थे और यही कारण है कि जब रूसी आक्रमण के भय का अन्त हो गया तो भारत सरकार का व्यवहार कांग्रेस के प्रति एकाएक बदल गया। रजनी पामदत्त ने तो यहां तक लिखा है कि कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश सरकार की गुप्त योजना के कारण की गई थी।

दूसरी विचारधारा के अनुसार कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीयता को एक देश व्यापी संगठन द्वारा व्यक्त करना था। इसके मूल में सच्ची देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान थी। श्रीमती एनीबिसेन्ट ने लिखा है कि राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना मातृभूमि की रक्षा हेतु १७ प्रमुख भारतीयों द्वारा तथा ह्यूम द्वारा की गई थी। ह्यूम के विचार उच्च थे अतः कांग्रेस की स्थापना के सम्बन्ध में उनके उद्देश्य और लक्ष्य महान एवं पवित्र थे। ह्यूम वास्तविक अर्थों में भारतीयों की दशा में सुधार करना चाहते थे। अतः कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के निमित्त नहीं की गई थी। ह्यूम के लिए यह कहना है कि उन्होंने पूर्व निश्चित गुप्त योजना या ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सुरक्षा नली के रूप में कांग्रेस की स्थापना की एक उदारवादी तथा मानवतावादी व्यक्ति के प्रति अन्याय करना होगा। ह्यूम की मनोभावना का पता उनके १८८८ ई० की कांग्रेस अधिवेशन में दिए गए भाषण से चलता है। अपने भाषण में ह्यूम ने कहा था, "हमारे शिक्षित भारतीयों ने अलग अलग रूप में हमारे अखबारों ने व्यापक रूप में तथा हमारी राष्ट्रीय महासभा के समस्त प्रतिनिधियों ने एक स्वर में सरकार को समझाने की चेष्टा की है किन्तु सरकार ने जैसाकि प्रायः स्वेच्छाचारी सरकार का रवैया होता है समझने से इन्कार कर दिया। अब हमारा कार्य यह है कि देश में अलख जगाएं ताकि हर भारतीय जिसने भारत माता का दूध पिया है हमारा

साथी सहयोगी तथा सहायक बन जाय और यदि आवश्यकता पड़े तो गावस्टेन और उसके बहादुर साथियों की भांति स्वतन्त्रता न्याय तथा अधिकारों के लिये जो महासंग्राम हम छेड़ने जा रहे हैं उसका सैनिक बन जाए। श्री उमेशचन्द्र बनर्जी ने भी कांग्रेस की स्थापना के सन्दर्भ में कहा था कि इस संस्था का मुख्य उद्देश्य प्रमुख भारतीय राजनीतिज्ञों को सामाजिक समस्याओं पर विचार करने के लिए एक वर्ष में एक बार एकत्रित करना था। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय कांग्रेस एक सामाजिक संस्था के रूप में कार्य करने वाली संस्था के रूप में उद्भूत हुई। श्री गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है यह सम्भव है कि ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने में कांग्रेस का प्रयोग एक सुरक्षा नली की तरह करने के विचार ह्यूम तथा वेडरबर्न के हृदय में हो किन्तु इस बात पर विश्वास करना असम्भव ही है कि दादाभाई नौरोजी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी उमेशचन्द्र बनर्जी फीरोजशाह मेहता और रानाडे जैसे महान् भारतीय नेता भी इसके साधन मात्र थे और वे भी ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने का लक्ष्य रखते थे।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कांग्रेस की स्थापना के मूल में सामाजिक समस्याओं पर विचार करने और रक्षा नली के रूप में कार्य करने की भावना अवश्य निहित थी किन्तु धीरे २ कांग्रेस का उद्देश्य राजनैतिक होता गया और वह एक राष्ट्रवादी संस्था बन गयी। श्री जकारिया ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि भारतीयों और ब्रिटिश समर्थकों के परिणामस्वरूप इस महान् संस्था का जन्म हुआ। इस कार्य में इन्हें प्रमुख प्रेरणा संकीर्ण राष्ट्रीय भावनाओं से नहीं अपितु सत्य और न्याय के उदात्त विचारों के प्रति सच्ची लगन और भक्ति से मिली जिनके समर्थन को वे अपने देश के लिए गौरव की बात मानते थे और जो पिछली शताब्दी में दोनों देशों के पारस्परिक सहयोग से किए गए कार्यों के सुखद परिणाम थे। उमेशचन्द्र बनर्जी द्वारा कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में सभापति-पद से दिये गये भाषण में कांग्रेस के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाए गए थे—

१ देशहित के लिए काम करने वालों में मित्रता और घनिष्ठता बढ़ाना।
२ समस्त देश भक्तों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री व्यवहार द्वारा वंश धर्म प्रान्त सम्बन्धी तमाम पूर्व दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय एकता की भावना का विस्तार करना।
३ महत्त्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर सम्मतियां संग्रहीत करना।
४ देशहित के लिये साधनों और दिशाओं का निर्णय करना।

कांग्रेस के उक्त उद्देश्यों से यह स्पष्ट पता चलता है कि इसका प्रारम्भिक लक्ष्य सामाजिक था तथा यह देशहित की दृष्टि से भारत में सामाजिक और राष्ट्रीय एकता लाना चाहती थी। इस प्रकार राष्ट्रहित की दिशा में अग्रसर होना चाहती थी। इसका प्रारम्भिक उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध अथवा राष्ट्रीय

आन्दोलन का नेतृत्व करना नहीं था परन्तु कालान्तर में इसका उद्देश्य राजनैतिक हो गया और अन्तिम लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्ति हो गया।

कांग्रेस का राष्ट्रवादी स्वरूप

कांग्रेस के राष्ट्रवादी स्वरूप के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही आलोचकों की कमी नहीं रही है। कुछ लोग इसे 'बनावटी कांग्रेस' कहते हैं यद्यपि इसके निर्माण एवं विकास में अंग्रेजों, मराठों और पारसियों का उतना ही हाथ रहा है जितना बंगालियों का। कुछ लोगों ने इसे हिन्दू कांग्रेस की संज्ञा दी तो कुछ ने इसे केवल पढ़े लिखे भारतीयों की सभा कहकर इसके राष्ट्रीय स्वरूप को नकारने का प्रयत्न किया। परन्तु इसके संगठन एवं उद्देश्यों पर दृष्टि डालने से यह सिद्ध हो जाता है कि कांग्रेस का जन्म राष्ट्रीय संस्था के रूप में हुआ। इसके प्रथम अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले प्रतिनिधि विभिन्न धर्मों, वर्गों एवं सम्प्रदायों के थे। प्रारम्भ में मुस्लिम प्रतिनिधियों की संख्या कुछ कम थी। पहले अधिवेशन में दो, द्वितीय में तैंतीस और छठे अधिवेशन में एक सौ छप्पन प्रतिनिधि आये थे। तत्कालीन मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद कांग्रेस से दूर थे और उन्होंने राजा शिव प्रसाद की सहायता से परम राजभक्तों की एक संस्था भी बनाई थी। कांग्रेस वास्तव में पूरी तरह लोक प्रतिनिधि संस्था थी जिसके प्रतिनिधि राष्ट्र के सर्वोत्तम विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे।

इसके सम्मेलनों में जो प्रतिनिधि विभिन्न स्थानों से आते थे प्रत्येक जाति के शिक्षित व्यक्ति होते थे तथा विश्वास की भावना कांग्रेस में प्रकट करते थे। सन् १९०७ तक लगभग सभी भारतीय इसकी परिधि के सम्पर्क में आ गये थे। ह्यूम, विलियम वेडरबर्न, सर हेनरी कॉटन, मि. एन्ड्रयू यूल और नार्टन जैसे योग्य एवं उदारचेता अंग्रेज भारतीय कांग्रेस में सम्मिलित थे। इसके अधिवेशनों की अध्यक्षता भारतीय, ईसाई, पारसी, मुसलमान तथा अंग्रेजों द्वारा सम्पन्न हुई थी। ज्यों ज्यों यह बलवान होता गया कांग्रेस का राष्ट्रीय स्वरूप और भी अधिक निखरता गया तथा बाद [illegible] मध्य में इसने स्थायी राष्ट्रीय संस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इसने सारे देश की रचनात्मक आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए शान्तिपूर्ण प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। इसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। इसकी स्थापना के बाद भारत का जनमत मूक नहीं रहा। श्री मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में कहा, भारतीय जनता को इस महान् संस्था के द्वारा अब एक जिह्वा मिल गया है जिसके द्वारा हम आवाज से कहते हैं कि यह हमारे राजनैतिक अधिकारों का आधार है। कांग्रेस के कार्यों के फलस्वरूप प्रबल जनमत का विकास सम्भव हुआ। सर हेनरी कॉटन ने इस सम्बन्ध में लिखा "कांग्रेस के प्रयत्न किसी भी समय सरकारी नीति में परिवर्तन लाने में सफल नहीं हुए लेकिन भारत देश के जनमत के विकास में और स्वाभिमानियों के चरित्र निर्माण में निश्चित रूप से इन्होंने महत्ता प्राप्त की है। कांग्रेस एक शक्ति बन गयी। उसका प्रचार देश के एक कोने से दूसरे कोने में गूंजने लगा जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता एवं जनता के उच्च आदर्शों का आविर्भाव हुआ।

हमे यहाँ इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि कांग्रेस की लोकप्रियता इस काल मे शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रही। प्रारम्भ से ही कांग्रेस शिक्षित वर्ग की संस्था थी। देशहित मे रुचि रखने वाले शिक्षित भारतीय इसमे रुचि लेते थे। इसके द्वारा राजनीतिक अधिकारो की माग किए जाने के कारण जनसाधारण का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट होने लगा था। परन्तु यह मानना पडेगा कि इस युग मे शहरो मे रहने वाले मध्यमवर्गीय शिक्षित वर्ग के लोग ही कांग्रेस से सम्बन्धित रहे। किसान वर्ग तथा देहाती जनता का कांग्रेस से सम्बन्ध स्थापित नही हो पाया था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कांग्रेस ने यद्यपि एक राष्ट्रीय संस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया था परन्तु देशी रियासतो पर इसका प्रभाव नही के बराबर था।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रारंभ से ही इसका प्रचार इंगलैंड मे भी होने लगा था। १८८१ ई० मे ह्यूम ने इंगलैंड जाकर अपने विचारो से कुछ प्रमुख व्यक्तियो को अवगत कराया। उन्होने अंग्रेज शासको और राजनीतिज्ञो को प्रभावित करने की योजना बनायी। सन् १८८९ मे कांग्रेस ने एक प्रतिनिधि मण्डल इंगलैंड भेजा जिसने इंगलैंड, वेल्स एवं स्काटलैंड के निवासियो मे कांग्रेस-सम्बन्धी कार्यों का प्रचार किया तथा उन्हे परिषद् सुधार योजना के सम्बन्ध मे अपने विचारो और कार्यक्रमो से अवगत कराया। इसी उद्देश्य से एक समिति का भी निर्माण किया गया जिसके सदस्य जार्ज यूल, ह्यूम, जे० ऐडम, मि० नार्टन तथा जे० ई० हावर्ड थे। इन लोगो ने इंगलैंड जाकर बडे उत्साह से कार्य किया। इंगलैंड की लोकसभा के सदस्यों की एक समिति बनायी गयी जिसका उद्देश्य भारतीय समस्याओं पर विचार विमर्श करना था। जनमत को आकृष्ट करने के लिए 'इंडिया' नामक एक समाचार पत्र का भी प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की विचारधारा के प्रचार के लिए भाषणो, पुस्तिकाओ तथा पत्रिकाओ का भी सहारा लिया गया। इन प्रचार कार्यों के फलस्वरूप ब्रिटेन के निवासी भी कांग्रेस के कार्यों मे विशेष रुचि लेने लगे तथा कांग्रेस द्वारा पारित सुधार प्रस्तावो का समर्थन करने लगे। इस प्रकार कांग्रेस न केवल भारत मे ही बल्कि इंगलैंड मे भी लोकप्रिय बन गयी तथा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रतिनिधि के रूप मे इसने अपना कार्य प्रारंभ किया।

संक्षेप मे कांग्रेस के प्रचार ने देश मे राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता और जन सेवा के उच्च आदर्शो की स्थापना की। सन् १८८६ मे लार्ड लैंसडाउन की सरकार ने यह स्वीकार किया कि कांग्रेस देश की एक शक्तिशाली उत्तरदायी राजनैतिक पार्टी है।

कांग्रेस इतिहास के चरण

कांग्रेस के इतिहास को तीन चरणो मे विभक्त किया जाता है

(१) प्रथम चरण

सन् १८८५ से सन् १९०५ तक। इस काल में कांग्रेस ने उग्रवादी रूप

धारण नहीं किया था और अंग्रेजी सरकार के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करना ही कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य था।

(२) द्वितीय चरण

सन १९०५ से सन् १९१८ तक। इस काल में कांग्रेस ने उग्रवादी रूप धारण कर लिया। इसी काल में मुसलमानों ने कांग्रेस से पृथक मुस्लिम लीग का निर्माण किया।

(३) तृतीय चरण

सन् १९१९ से सन १९४७ तक। यह चरण गांधी युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस काल में स्वराज्य पार्टी का गठन हुआ, मुस्लिम लीग भी शक्तिशाली होती गयी और अन्त में गांधीजी के नेतृत्व में विभाजित भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की।

कांग्रेस के कार्य

कांग्रेस ने शासन के सभी क्षेत्रों में सुधारों की माँग की। उनकी मुख्य मांगों को ना० रघुवंशी एवं लालबहादुर ने इस प्रकार व्यक्त किया है, धारासभाओं का विस्तार हो और उसमें जनता के निर्वाचित सदस्य हों, केन्द्रीय और प्रान्तीय कार्यकारिणी सभाओं में भारतीयों की संख्या में वृद्धि, जूरी द्वारा न्याय व्यवस्था का प्रचार, भारत मन्त्री की परिषद् और प्रिवी-कौंसिल में भारतीयों की नियुक्ति, भारतीय सिविल सर्विस की परीक्षा भारत में भी हो, भारतीयों के लिए सैनिक शिक्षा की योजना और नौकरियों का भारतीयकरण। परन्तु सरकार की नीतियों से निराश होकर कांग्रेसी नेताओं को अन्त में यह विश्वास हो गया कि बिना स्वशासन प्राप्त किये भारतीयों की समस्याएं हल नहीं हो सकतीं। अतः सन् १९०६ में कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस ने प्रथम बार स्वशासन की माँग को अपने प्रस्ताव में प्रस्तुत किया।

राजनैतिक तथा प्रशासकीय मांगों के अतिरिक्त कांग्रेस ने जनता की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया। उसने देश की दरिद्र जनता की दशा सुधारने का भरसक प्रयत्न किया और जनता के कष्टों के विरुद्ध आवाज उठाई। जनता का आर्थिक स्तर ऊंचा उठाने के लिए कांग्रेस ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए थे —

१ विदेशियों को कम संख्या में नियुक्त करके शासन के भारी व्यय में कमी करना

२ भूमि कर और जनता पर लगाए गए दूसरे करों में कमी करना

३ सिंचाई का उचित प्रबन्ध करना

४ किसानों को महाजनों के चंगुल से बचाने के लिए कृषि बैंकों की स्थापना करना

५ प्राचीन उद्योगों को पुनः जीवन देना व नये उद्योगों की स्थापना करना और

६ इंगलैंड द्वारा भारत के शोषण पर तथा विदेशों में भेजे जाने वाले गल्ले के निर्यात पर रोक लगाना।

कांग्रेस ने अंग्रेजों की साम्राज्यवादी एवं आर्थिक शोषण की नीति का भी विरोध किया। विदेशी प्रतियोगिता से भारतीय उद्योगों को बचाने के लिए कांग्रेस ने सरकार से विदेशी माल पर ऊंचे कर लगाने की भी मांग की। सरकार की नीति इसके बिल्कुल विपरीत थी। लार्ड लिटन के शासन काल में विदेशी माल पर आयात कर नाममात्र का थ। भारतीय कारखानों में तैयार होने वाले कपड़ा पर भारी कर लगा दिए गए थे। कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में श्री दिनशा वाचा ने ऐसे करों का घोर विरोध किया था और कहा था कि सरकार की नीति भारत में सूती कपड़े के कारखानों का चौपट कर देने की है कांग्रेस ने विदेशी उपनिवेशों में बसे भारतीयों के हितों की ओर भी ध्यान दिया। ग्यारहवें अधिवेशन में इसने दक्षिणी अफ्रीका के उपनिवेशों में भारतवासियों की उपेक्षा करने वाले कानूनों का विरोध किया तथा ब्रिटिश सरकार से इंगलैंड के नागरिकों द्वारा भारतीयों पर किए जाने वाले अत्याचारों को रोकने की विनम्र प्रार्थना की।

कांग्रेसी नेताओं ने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए ब्रिटिश नौकरशाही की दमन नीति का भी डट कर विरोध किया था। लिटन के शस्त्र कानून जैसे प्रतिक्रियावादी कानून को भारतीय जनता के लिए अपमानजनक घोषित किया तथा उसे रद्द करने की मांग की। समय समय पर कांग्रेस ने नजरबन्दी कानूनों का भी विरोध किया तथा सरकार को चेतावनी दी कि उसकी दमन नीति उसी के लिए घातक सिद्ध होगी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सन् १८६६ के अधिवेशन में सरकार की निन्दा करते हुए कहा यह ब्रिटिश सरकार जो प्रेस का गला घोटती और हैबियस कारपस पर प्रहार करती है भारतवासियों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता तक का दमन करती है। लार्ड कर्जन के काल में कांग्रेस ने सरकार की साम्राज्यवादी व अत्याचारी दमन नीतियों का सफलतापूर्वक भंडाफोड़ किया। संक्षेप में जनता की भलाई से सम्बन्धित ऐसा कोई प्रश्न नहीं था जिस पर कांग्रेस का ध्यान नहीं गया हो।

कांग्रेस की कार्य पद्धति

उग्रवादी विचारधारा के व्यक्ति कांग्रेसी नेताओं द्वारा अपनाई गयी शान्ति प्रिय नीति की निन्दा करते हैं परन्तु यह उचित नहीं है। कांग्रेस का आरम्भिक काल भारतीय राष्ट्रीयता का विचाराधीन युग था और इस युग में संवैधानिक आंदोलन की नीति ही उचित थी। श्री गोपालकृष्ण गोखले ने ठीक ही कहा था हम भिखमंगे नहीं हैं और हमारी नीति भिखारीपन की नहीं है। हम विदेशी दरबार में अपनी जनता के राजदूत हैं। हमारा काम अपने देश की जनता के हितों की देखभाल करना है और उसके लिए जितना अधिक से अधिक प्राप्त कर सकते हैं प्राप्त करना है। आन्दोलन हिंसा शक्ति प्रयोग रक्तपात आदि से कांग्रेस का कोई सम्बन्ध नहीं था।

प्रारम्भिक काल में कांग्रेस आन्दोलन शिक्षित वर्ग का आन्दोलन था एवं इसके नेता संवैधानिक ढंग से ही शासन सुधार में विश्वास करते थे। कांग्रेस अपने अधिवेशनों में सुधारों के प्रस्ताव पारित करती थी सरकार के पास आवेदन-पत्र भेजती थी और कभी-कभी इंगलैंड के शासक वर्ग के समक्ष प्रतिनिधि मण्डल भी भेजती थी।

कांग्रेस की सफलता

कांग्रेस की कार्य पद्धति अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई फिर भी देश की राजनैतिक शिक्षा के हेतु कांग्रेस का यह कार्य काफी उपयोगी सिद्ध हुआ। अपने प्रचार से कांग्रेस ने ब्रिटिश संसद द्वारा भारत के शासन की जांच करवाने में सफलता भी प्राप्त की। सन् १८९७ का वेल्बी कमीशन जिसने भारत सरकार के व्यय की जांच पड़ताल की कांग्रेस के प्रयत्नों का ही परिणाम था। कांग्रेस के प्रचार ने सरकार की निरंकुशता को भी ढीला किया। सन् १८९२ का परिषद् अधिनियम कांग्रेस की महान् सफलता थी। कांग्रेस ने प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं तथा शासन सम्बन्धी सुधारों की मांग का प्रचलित किया। इसने सरकार के कुछ प्रतिक्रियावादी कानूनों का सफलतापूर्वक विरोध किया। सन् १८ में बंगाल सरकार ने अपने अफसरों को कांग्रेस अधिवेशन में दर्शक के रूप में भाग न लेने का आदेश दिया। कांग्रेस ने इसकी घोर निन्दा करके इसे रद्द करवाया। सन् १८९४ में केन्द्रीय सरकार ने सन् १८७९ के लीगल प्रैक्टीशनर्स एक्ट में संशोधन करने के लिए व्यवस्थापिका सभा में एक विधेयक प्रस्तुत किया। इस संशोधन से वकीलों को जिलाधीशों व रेवेन्यू कमिश्नरों के अधीन रहना पड़ता और राजनीतिक क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने पर भी रोक लग जाती। कांग्रेस ने इसका कड़ा विरोध किया। इसके परिणाम स्वरूप विधेयक वापिस ले लिया गया।

कांग्रेस के प्रयत्नों के फलस्वरूप ब्रिटिश जनता का ध्यान भारतीय राजनीतिक समस्याओं की ओर आकृष्ट हुआ और ब्रिटिश लोकसभा के कुछ सदस्यों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति सहानुभूति प्रकट की। मजदूर दल के नेता चार्ल्स ब्रैडला ने तो उन्हें रूप से हिन्दुस्तानी सदस्य की उपाधि धारण की। सन् १८८८ में कांग्रेस की एक समिति इंगलैंड में भी स्थापित की गयी। कांग्रेस ने इस संस्था को ४५ रु देना स्वीकार किया। इस समिति की कार्यवाही में बहुत से अंग्रेजी नेताओं ने भाग लिया और उन्होंने अपने लेखों द्वारा इंगलैंड की जनता का ध्यान भारतीय राजनीतिक मांगों की ओर आकर्षित किया। यह समिति 'इंडिया' नामक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती थी और समय-समय पर भारतीय समस्याओं पर सार्वजनिक भाषणों का आयोजन करती थी। १८९३ ई० में ब्रिटिश संसद् के कुछ सदस्यों यथा सर विलियम वडरबर्न और डब्ल्यू एस केन ने एक भारतीय संसदीय समिति की स्थापना की। समिति का उद्देश्य ब्रिटिश लोकसभा में भारत के राजनीतिक सुधारों के प्रश्नों पर हलचल करना था।

कांग्रेस इस समिति को भारतीय समस्याओं पर आवश्यक सामग्री की जानकारी देती थी। अपनी मांगों को इंगलैंड में लोकप्रिय बनाने व अपने आन्दोलन के विरुद्ध झूठे प्रचारों को रोकने हेतु कांग्रेस इंगलैंड में प्रतिनिधिमंडल भी भेजती थी। इन उपायों से कांग्रेस ने अपने जीवन के पहले बीस वर्षों में भी भारतीय राष्ट्रीयता की आवाज़ को बुलन्द किया। कांग्रेस एवं उसके नेताओं द्वारा प्राप्त सफलता का वर्णन करते हुए रघुवंशी एवं लाल बहादुर ने लिखा है "राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक काल के नेताओं की बड़ी आलोचना करना सरल है। लेकिन हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनके प्रयत्न परिश्रम के बिना राष्ट्रीयता का बीज जो बाद में राष्ट्र लेश का एक शक्तिशाली वृक्ष सिद्ध हुआ न पनपने पाता।

संक्षेप में अपने शैशवकाल में कांग्रेस ने जन आन्दोलन का रूप भले ही ग्रहण न किया हो किन्तु हमें यह अवश्य मानना होगा कि भारतीय राष्ट्रीयता की आवाज़ सर्वप्रथम उसने ही बुलन्द की। कांग्रेस के उन दिनों के नेता ही भारतीय राष्ट्रीयता के जनक माने जाते हैं। भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का श्रेय भी कांग्रेस को ही प्राप्त है। कांग्रेस ने सरकार की आलोचना करने तथा भारतीयों की मांगों को प्रकाश में लाने के लिए एक प्लेटफार्म का काम किया। भारत ने अपनी आवाज़ को इस महान् कांग्रेस में पाया। प्रजातान्त्रिक संस्थाओं एवं संसदात्मक पद्धति का प्रारम्भ कांग्रेस की मांगों का ही परिणाम था। थोड़े में कांग्रेस ने सन् १८८५ से सन् १६०५ तक के काल में भारतीय राष्ट्रीयता की नींव डालने में महान सफलता प्राप्त की। सर हेनरी काटन ने ठीक ही कहा था "इस संगठन के नेता देश में एक शक्ति बन गए हैं जिनकी आवाज़ देश के एक कोने से दूसरे कोने तक निनादित होती है।"

कांग्रेस के प्रति सरकारी दृष्टिकोण

प्रारम्भ में कांग्रेस के प्रति सरकारी दृष्टिकोण उदार एवं अच्छा था। उच्च राज्य कर्मचारी कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेते थे तथा अपने विचार प्रकट करते थे। कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले ४० प्रतिनिधियों को गवर्नर जनरल लार्ड डफरिन ने राजधानी के आदरणीय अतिथि के रूप में कलकत्ता में एक भोज दिया था। किन्तु यह स्थिति अधिक काल तक नहीं रही। सरकार ने शीघ्र ही कांग्रेस के कार्यों के प्रति घृणापूर्ण दृष्टिकोण अपना लिया एवं उसके विरुद्ध कार्य प्रारम्भ कर दिया। लार्ड डफरिन ने कांग्रेस को राजद्रोही एवं मुट्ठी भर भारतीयों की संस्था की संज्ञा दी। डफरिन के अनुसार कांग्रेस कुछ पढ़े लिखे भारतीयों की संस्था थी और जिसको किसी भी तरह प्रशासन पर नियन्त्रण करने की शक्ति प्रदान नहीं की जा सकती थी। उत्तर प्रदेश के गवर्नर श्री कालविन ने स्पष्ट रूप से इलाहाबाद में सम्मेलन न होने देने के लिए हर सम्भव रुकावटें डालीं। सरकारी अधिकारियों के प्रकोप के कारण स्वागत समिति के अध्यक्ष को अधिवेशन के लिए उचित स्थान निश्चित करने में बड़ी कठिनाई हुई। दरभंगा के महाराजा ने सरकारी भवन के सामने का लाउथर भवन खरीद कर स्वागत

समिति को कांग्रेस सम्मेलन के लिए दे दिया। गवर्नर के लिए यह अपमानजनक बात थी अतः उसने एक आदेश-पत्र द्वारा सरकारी कर्मचारियों का कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने से मनाही कर दी तथा स्वयं भी अधिवेशन के समय देहात के दौरे पर चला गया।

मद्रास के एक सम्भ्रान्त नागरिक को जिलाधीश के आदेश की अवहेलना कर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के दण्डस्वरूप २ रु की जमानत देने को कहा गया। १८६ में बंगाल सरकार ने एक सरकारी आज्ञा प्रसारित कर सरकारी कर्मचारियों को दर्शक के रूप में भी कांग्रेस अधिवेशन में जाने से रोक दिया। १८६१ ई में भारतीय सरकार ने एक आज्ञा द्वारा देशी राज्यों में मुक्त पत्रकारिता पर पाबन्दी लगा दी। १८६७ में भारतीय पनल कोड में धारा १२४ (अ) और १५३ (अ) का समावेश किया गया। सरकार को इन धाराओं के अन्तर्गत भाषण एवं राजनैतिक गतिविधियों को रोकने के लिए विशेष शक्ति प्राप्त हो गयी। लॉर्ड कर्जन ने अपने शासन-काल में अनेक ऐसे कदम उठाये जिनके फलस्वरूप राष्ट्र की आत्मा जागृत हो उठी और राष्ट्रीय आन्दोलन ने नया स्वरूप ग्रहण कर लिया।

१८९२ ई० का भारतीय परिषद्-अधिनियम

पूर्वगामी शासन सुधार

सन् १८६१ ई० के अधिनियम द्वारा स्थापित शासन-यन्त्र में पहला परिवर्तन १८६९ ई० में भारत शासन अधिनियम द्वारा किया गया। भारत मन्त्री को परिषद् में रिक्त स्थान की पूर्ति करने का अधिकार दिया गया। परिषद् के सदस्यों के कार्यकाल की अवधि दस वर्ष निश्चित कर दी गयी। सन् १८७० में भारतीय परिषद् अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम द्वारा सपरिषद् गवर्नर जनरल को कुछ विषयों में नियम बनाने एवं भारतीय नागरिक सेवा में भारतीयों को नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया। १८७४ ई० के भारतीय परिषद् अधिनियम ने ब्रिटिश सरकार को गवर्नर जनरल की परिषद् के लिए छठा सदस्य (सार्वजनिक निर्माण-कार्य सम्बन्धी) नियुक्त करने का अधिकार दिया। सन १८७६ ई० के भारतीय परिषद् अधिनियम ने भारत मन्त्री को अधिक से अधिक विशेष योग्यता वाले ३ विशिष्ट व्यक्तियों को परिषद् का सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया। सन् १८७६ में राजकीय उपाधि अधिनियम बना। इसके अनुसार ब्रिटिश ताज की पूरी उपाधि यह हुई "ईश्वरानुग्रहीता ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के संयुक्त राज्य की महारानी धर्म रक्षिका एवं भारत की साम्राज्ञी विक्टोरिया।" इसका प्रभाव यह हुआ कि देशी राज्य भारतीय साम्राज्य सीमा में आ गये एवं भारतीय शासक सर्वोच्च सत्ता के मित्र के स्थान पर साम्राज्याधीन नरेश हो गये। भारतीय शासन में सुधार के लिए भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार ने अगला कदम सन १८८८ ई० में उठाया जिसके फलस्वरूप १८९२ ई० का भारतीय परिषद् अधिनियम पारित हुआ।

१८९२ ई० के अधिनियम की स्वीकृति के कारण

(१) सन् १८९२ के अधिनियम को पारित करने का पहला कारण देश में होने वाली राष्ट्रीय जागृति थी। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय चेतना का विकास तेजी से हुआ। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द आदि ने देश में सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों को जन्म दिया। ये आंदोलन मुख्यतः धार्मिक होने के साथ राष्ट्रीय भी थे। इन्होंने भारतीयों में राष्ट्रीय भावना जगा दी। धर्म ने राष्ट्रीयता को पोषित किया। इन्हीं वर्षों में भारतवर्ष में पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार हुआ। उसके द्वारा भारतवासी सर्वोत्तम अंग्रेजी विचारों के सम्पर्क में आये। (मिल्टन, बर्क, मिल आदि के

ग्रन्थो के) पश्चिमी शिक्षा ने भारतीयों में स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता, स्वशासन आदि के जीवन प्रेरक विचार भरे। फलतः वे देश की तत्कालीन राजनतिक स्थिति से असन्तुष्ट हो गये और स्वशासी संस्थाओं की माँग करने लगे। अंग्रेजी सत्ता ने भारतीयों को परस्पर निकट आने, विचार करने एवं सभा सम्मेलनों में मिलकर कार्यक्रम बनाने का अवसर दिया। पश्चिमी सम्पर्क ने इन्हें स्वतन्त्रता का मूल्य सिखाया। उनके मस्तिष्क से दीनतापूर्ण एवं दास्य मनोवृत्ति को दूर किया। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों में राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न किया। उनको फ्रांस की क्रान्ति की समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व सिद्धान्त ने बहुत अधिक प्रभावित किया। अतः यह स्वाभाविक ही था कि वे अपनी स्थिति सुधारने के लिए अधिक यत्नशील हों। देश में उस समय यातायात और संचार के साधनों का भी तेजी से विकास हुआ जिससे देश में राष्ट्रीय एकता को बल मिला। अंग्रेजों की प्रशासकीय एवं आर्थिक नीति ने भी भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की। समाचारपत्र एवं पत्रिकाएँ भी राष्ट्रीय चेतना में प्रमुख रूप से सहायक हुईं। अंग्रेजों की जातीय कटुता की भावना ने भी राष्ट्रीय एकता की भावना में वृद्धि की। वे भारतीयों को ऐसा जन्तु समझते थे जो आधा वन मानुष एवं आधा नीग्रो हो। अंग्रेजों की मनमानी और आतंकपूर्ण नीति ने भी राष्ट्रीय भावना का विकास किया। अंग्रेजों ने १८७८ ई० में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट एवं भारतीय शस्त्र कानून पारित किये एवं भारतीयों का दमन किया। इल्बर्ट बिल विवाद ने भी अंग्रेजों के प्रति भारतीयों के दिलों में घृणा पैदा की। इन सब कारणों से भारतीयों में राजनैतिक चेतना का विकास हुआ और वे शासन में भाग प्राप्त करने की माँग करने लगे।

(२) भारतवर्ष में अनेक राजनैतिक संस्थाओं का निर्माण भी हुआ और इन संस्थाओं ने ब्रिटिश सरकार से भारतीयों को प्रशासन में अधिक भाग देने एवं प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना करने की माँग की। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस ने अपने शैशव काल में आवेदन एवं निवेदन की नीति से काम किया। उसने प्रारम्भ से ही विधान परिषद् में विस्तार की माँग की। कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में शासन सुधार से सम्बन्धित जो प्रस्ताव स्वीकृत किये। इन प्रस्तावों पर एलफिन्सटन कालेज के अंग्रेज आचार्य के निवास-स्थान पर अधिवेशन के प्रारम्भ होने से पूर्व चर्चा एवं बहस हो चुकी थी। इन प्रस्तावों द्वारा सरकार से भारतीय शासन की जाँच करने के लिए एक शाही आयोग की नियुक्ति करने, भारत मन्त्री और उसकी भारतीय-परिषद् को भंग करने तथा प्रान्तीय विधान परिषदों की त्रुटियों को दूर करने के उद्देश्य से निर्वाचित सदस्य रखने, प्रश्न पूछने का अधिकार देने, बजट स्वीकृत करने तथा बहुमत के आधार पर निर्णय करने की प्रथा का प्रारम्भ करने, संयुक्त प्रान्त और पंजाब में परिषदों की स्थापना करने, भारतीय नागरिक सेवा की प्रतियोगिता परीक्षा भारत में भी करने तथा परीक्षार्थियों की आयु बढ़ाने और भारत के सैनिक व्यय में कमी करने की माँग की गयी। कांग्रेस ने ये सभी प्रस्ताव देश की अन्य राजनीतिक संस्थाओं के पास भेजे तथा उनसे

यह अनुरोध किया कि वे भी काग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रस्तावो का समर्थन कर सरकार के पास भेजें।

काग्रेस के दूसरे अधिवेशन म दादाभाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण म उक्त मागो को पुन दोहराया। इस अधिवेशन म शासन-व्यवस्था म सुधार लाने की दृष्टि स निम्नलिखित प्रस्ताव भी स्वीकृत किए गए —

(१) शाही परिषद् और प्रान्तीय परिषदो के सम्बन्ध म एक विस्तृत योजना बनायी जाय जिसम गर सरकारी सदस्यो का निर्वाचन परीक्षा रूप से करने की पद्धति अपनायी जाय तथा परिषदो क प्रस्तावो को सरकार द्वारा अस्वीकृत करने की स्थिति म अपील करने की छूट दी जाय।

(२) भारतीय नागरिक सेवाओ के लिए प्रतियोगिता परीक्षाए इगलड और भारत में एक साथ ही आयोजित की जाए।

(३) प्रान्तीय सेवाओ के लिए भी प्रतियोगिता परीक्षाए आयोजित की जाए।

(४) भारतीयो को सेना म स्वयसेवको की भाति भर्ती होने का अवसर दिया जाय। —

(५) मुकद्दमो की सुनवाई मे न्यायालयो म जूरी प्रथा को अधिक से अधिक अपनाया जाय और उनके निर्णयो को मान्यता दी जाए।

(६) इन प्रस्तावो के सम्बन्ध म काग्रेस का एक प्रतिनिधि मडल वायसराय से मिला।

काग्रेस क तीसरे अधिवेशन म गत अधिवेशन के प्रस्तावो को दोहराने के साथ ही साथ कुछ और नए प्रस्ताव स्वीकृत किए गए जिन म निम्नलिखित प्रस्ताव मुख्य हैं —

(१) सनिक अधिकारियो की शिक्षा के लिए भारत म एक सनिक महाविद्यालय की स्थापना की जाय और

(२) शस्त्र-कानून म सशोधन किया जाय।

काग्रेस का चतुर्थ अधिवेशन १८८८ ई० म इलाहाबाद म श्री यूल के सभापतित्व म सम्पन्न हुआ। श्री यूल न परिषद् के विस्तार की माग करते हुए कहा कि "हम यह चाहते है कि विधान-परिषद् का इतना विकास हो कि जिसमे उसमे देश के विभिन्न हितो का प्रतिनिधित्व हो सके। हम चाहते है कि परिषद् के आधे सदस्य निर्वाचित और आधे सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत हो। हम प्रश्न पूछने का अधिकार भी चाहते हैं। यही हमारी मागो का सार है। हम यह प्रस्ताव करते है कि नगरपालिका क सदस्य चेम्बर आफ कामर्स और व्यापारी सघ तथा वे सभी व्यक्ति जो शिक्षा और आय सबधी योग्यताए पूरी करते हो निर्वाचन का काम करें। इस प्रकार काग्रेस और अन्य सस्थाओ

के द्वारा शासन-सुधार की माँग ने ब्रिटिश सरकार को नए सुधार घोषित करने के लिए प्रेरित किया।

(३) भारत सरकार भी सुधारों के पक्ष में थी। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डफरिन विधान-परिषदों के विस्तार के द्वारा गृह सरकार के विरुद्ध भारत सरकार की शक्ति बढ़ाना चाहता था। चूँकि वह भारत मन्त्री के नियन्त्रण से अत्यधिक परेशान था इसलिए उसने अपनी परिषद् की एक समिति नियुक्त की और उस समिति के सुझाव सन् १८८८ में भारत मन्त्री के सम्मुख पेश किए। उसने सुझाव दिया कि भारत सरकार अपने किसी भी तरह के उत्तरदायित्व को कम किए बिना भारतीयों को शासन में अधिक भाग दे। विधान परिषद को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् से प्रश्न पूछने का अधिकार दे। प्रान्तों की विधान सभाओं का विस्तार किया जाय और उनमें कुछ निर्वाचित सदस्य सम्मिलित किए जाएं। किन्तु किसी भी तरह संसदीय-शासन की स्थापना न की जाय क्योंकि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग है और ब्रिटिश सरकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह विरोधी जातियों में न्याय स्थापित करे। १८८९ में लार्ड डफरिन के स्थान पर लार्ड लैंसडौन भारतवर्ष के गवर्नर जनरल बन कर आए। उन्होंने भी इसी प्रकार के प्रस्ताव भारत मन्त्री के पास भेजे। इस प्रकार भारत सरकार भी शासन में सुधारों के पक्ष में थी। इसलिए सुधार लागू करना आवश्यक था।

(४) कुछ ब्रिटिश उदारवादी संसद सदस्य भी भारतीय शासन में भारतीयों को हिस्सा दिलाने के पक्ष में थे। चार्ल्स ब्रैडला ने कांग्रेस की इन माँगों को एक प्रस्ताव के रूप में हाऊस आफ कामन्स में रखा परन्तु हाऊस आफ कामन्स ने इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इतना होते हुए भी संसद के उदारवादी सदस्य ब्रिटिश सरकार पर भारत में शासन सुधार के लिए दबाव डालते थे। परिणामस्वरूप नए सुधार घोषित करना अनिवार्य था।

उक्त परिस्थितियों में भारत मंत्री ने सन् १८९१ में भारतवर्ष के शासन सुधार के लिए चेष्टा की किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। सन् १८९२ में लार्ड कर्जन ने पुनः भारतीय शासन सुधार के लिए संसद में एक प्रस्ताव पेश किया। उन्होंने अपने २८ मार्च १८९२ ई० के हाऊस आफ कामन्स में दिए गए भाषण में इस बात पर बल दिया कि १८६१ ई० का सुधार अधिनियम अपने उद्देश्यों में बहुत अधिक सफल रहा। किन्तु उस अधिनियम द्वारा विधान परिषद के सदस्यों के कार्यों पर बहुत अधिक सीमाएं लगा दी गई थीं। फिर भी उनसे काफी लाभ हुआ। अब वह समय आ गया है जबकि उसमें और अधिक सुधार करने की आवश्यकता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि सदस्यों को प्रश्न पूछने, बजट पर वादविवाद करने और सदस्यों की संख्या बढ़ाने से पर्याप्त लाभ होगा। यह अधिनियम संसद् से पारित होने के पश्चात् शाही स्वीकृति प्राप्त कर १८९२ ई० का अधिनियम बन गया।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार थे

(१) अधिनियम के द्वारा विधान परिषद् के कार्यों में वृद्धि कर दी गयी। सदस्यों को वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् से प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। प्रश्न पूछने के लिए ६ दिन का पूर्व सूचना देना आवश्यक था। विधान परिषद् को इस बात का अधिकार था कि वह किसी भी प्रश्न के सम्बन्ध में अनुमति प्रदान न करे। प्रश्न के उत्तर में विवाद करने का अधिकार नहीं था। वह सीमाओं में रहते हुए विधान परिषद् को बजट पर बहस करने का अधिकार दे दिया गया। परन्तु सदस्य को प्रश्न सुझाव उपस्थित करने की इजाजत नहीं थी। बजट के सम्बन्ध में सदस्यों को कोई भी प्रस्ताव पारित करने का अधिकार नहीं था।

(२) अधिनियम के द्वारा विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी। अधिनियम में यह कहा गया कि वायसराय को कानून बनाने के लिए अपनी कार्यकारिणी परिषद् का विस्तार करने का अधिकार होगा। उसे इस हेतु कम से कम १ और अधिक से अधिक १६ सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार होगा। मनोनीत सदस्यों में से कम से कम १ सदस्य गैर सरकारी होने चाहिए। बम्बई और मद्रास के गवर्नरों को भी अपनी परिषदों में कम से कम ८ और अधिक से अधिक २० सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया। बंगाल के लिए अधिकतम संख्या २० तथा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लिए १५ सदस्यों की संख्या निश्चित की गयी। प्रान्तों में अतिरिक्त सदस्यों का /५ भाग गैर-सरकारी सदस्यों का होना आवश्यक था। गवर्नर जनरल को अपनी परिषद् की सहायता से सदस्यों की नियुक्ति के बारे में भारत मंत्री की पूर्व अनुमति से नियम बनाने का अधिकार दिया गया। कांग्रेस के दबाव के परिणामस्वरूप सरकार ने इन नियमों के आधीन निर्वाचन की अनुमति के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी। यद्यपि इस प्रकार के निर्वाचित सदस्य अपने स्थान तभी ग्रहण कर सकेंगे जब वे सरकार द्वारा मनोनीत हो जाएंगे। सरकार ने इस बारे में यह आश्वासन दिया कि इस धारा के अधीन गवर्नर जनरल के लिए यह संभव होगा कि वह ऐसा प्रबन्ध कर दे कि उन व्यक्तियों को जो निर्वाचन के द्वारा निर्वाचित हुए हों उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाए एवं वह उन्हें मनोनीत कर दे। निर्वाचन के नियमों के अनुसार विश्वविद्यालय, जिला बोर्डों, नगरपालिकाओं, चैम्बर आफ कामर्स तथा प्रान्तीय परिषदों के कुछ सदस्यों को निर्वाचन करने का अधिकार दिया गया। गवर्नर जनरल और लेफ्टिनेंट गवर्नर को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी परिषद् में रिक्त स्थानों की पूर्ति कर सकें। यदि कोई सदस्य लगातार दो महीनों तक विधान परिषद् की बैठक में उपस्थित नहीं होता तो उसका स्थान रिक्त घोषित किया जा सकता है। सदस्य की मृत्यु या उसके त्याग-पत्र के कारण भी उसका स्थान रिक्त घोषित किया जा सकता था। रिक्त स्थानों की पूर्ति मनोनयन द्वारा की जा सकती था।

(३) प्रान्तीय विधान परिषदो को नये कानून बनाने और पुराने कानूनो को आवश्यकता के अनुसार रद्द व परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया। इस के लिए गवनर जनरल की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक था। प्रान्तो क इस अधिकार से गवनर जनरल और उसकी विधान परिषद के अधिकारो म किसी प्रकार की को कमी नही आयी। गवनर जनरल और उसकी विधान परिषद को आव श्यकता होने पर प्रान्तो के लिए कानून बनाने का अधिकार प्राप्त था।

अधिनियम के दोष

यद्यपि १ ६ ई का शासन अधिनियम भारी आन्दोलन और धयपूर्ण प्रतीक्षा का परिणाम था फिर भी इससे भारतीयो की आकाक्षाओ की सतुष्टि नहीं हुई। इसम अनक त्रुटिया और दोष थे

(१) निर्वाचन की पद्धति अस्पष्ट थी। जो व्यक्ति विधान परिषदों के लिए निर्वाचित होते थे, वे जनता क वास्तविक प्रतिनिधि न होते थे। व निर्वाचन के अधिकार क रूप म विधान परिषद की बठको म सम्मिलित नहीं हो सकते थे। निर्वाचित प्रतिनिधि को जब गवनर जनरल विधानसभा म मनोनीत करता था तभी वह बठको मे भाग ले सकता था। निर्वाचन के नियम भी ठीक नही थे। कुछ वर्गों को काफी प्रतिनिधित्व प्राप्त था तथा कुछ को थोडा भी प्रतिनिधित्व प्राप्त न था। उदाहरण क लिए बम्बई विधान परिषद म ८ स्थानो म से दो यूरोपीय व्यापारियों का प्राप्त थ किन्तु भारतीय व्यापारियो को एक स्थान भी नही दिया गया था। सिंध को दो स्थान प्राप्त थ किन्तु पूना तथा सतारा को एक भी स्थान नहीं दिया गया था। गोखले न इस सम्बन्ध म लिखा है अधिनियम की वास्तविक क्रियाशीलता उसके खोखलेपन को प्रकट करती है। बम्बई प्रान्त को ८ स्थान दिये गये। दो स्थान तो भारत सरकार के द्वारा अपने नियमानुसार बम्बई विश्वविद्यालय एव बम्बई कारपोरेशन को दिये गये। बम्बई सरकार न दो स्थान यूरोप के व्यापारी वर्ग को एक स्थान दक्षिण के जमीदारो का एक स्थान सिन्ध क जमीदारो को एव दो स्थान सामान्य जनता को दिये गये। स्पष्ट है कि उसम सार्वजनिक प्रतिनिधित्व प्राय शून्य सा था।[1]

(२) विधान परिषदो में सदस्य सख्या की वद्धि अत्यन्त तुच्छ थी। गर सरकारी सदस्यो की सख्या भी बहुत कम थी। केन्द्र म २४ सरकारी सदस्यो म १४ सरकार के थे ४ निर्वाचित सरकारी थे और शेष मनोनीत गर सरकारी थ। इस प्रकार चुने हुए सदस्यो की सरकार विशेष परवाह नहीं करती थी और वह सरकारी अधिकारियों की सहायता से अपनी इच्छा के अनुसार काय करने की स्थिति म थी। व्यवस्थापिका-सभाओ के वाद विवाद केवल एक औपचारिकता मात्र रह गये थे।

(३) विधान परिषद के काय भी अत्यन्त सीमित थे। पूरक प्रश्न नहीं पूछे

---

१ सेठी एव महाजन द्वारा उद्धत कास्टीटयूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया (१ ५४) पृ ५६

जा सकते थे। अध्यक्ष किसी प्रश्न के पूछे जाने से इन्कार भी कर सकता था तथा उसके निर्णय के विरुद्ध कोई प्रतिकार न था। पूरक प्रश्न के सम्बन्ध में लार्ड लैन्सडौन ने १८६२ ई० में इस प्रकार विचार व्यक्त किये—"प्रश्न इस प्रकार के होने चाहिए जिनमें केवल सम्मति प्रकट करने की प्रार्थना हो। उनमें किसी प्रकार की तर्क भावना कल्पना तथा मान हानिपूर्ण भाषा का प्रयोग नहीं होना चाहिए।"[१] सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मतानुसार "इन बन्धनों के कारण एक उपयोगी व्यवस्थापिका का उद्देश्य ही व्यर्थ हो गया।" विधान परिषद को बजट पर कोई नियन्त्रण प्राप्त नहीं था। सदस्य बजट में कोई कटौती नहीं कर सकते थे। केवल अपने सुझाव दे सकते थे। नियम के अनुसार बजट पर चर्चा की जा सकती थी किन्तु तभी जब कार्यकारिणी अनुमानित आंकड़ों का निश्चित कर देती थी। दादाभाई नौरोजी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के १८६३ ई० के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—"१८६२ ई० के अधिनियम के अनुसार किसी भी सदस्य को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी भी प्रकार का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सके अथवा इस प्रकार की वित्तीय चर्चा में गुटबन्दी कर सके। इस अधिनियम के अनुसार अथवा इसके अधीन नियमों के सम्बन्ध में किसी भी प्रश्न का उत्तर देने में इस अधिकार का प्रयोग कर सके। इस प्रकार वित्तीय चर्चा अथवा प्रश्न पूछने की दी गयी सुविधायें अथवा अधिकारों के सम्बन्ध में अनुचित व्यवस्था है। इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों में किसी प्रकार का संशोधन और सन्नोधन ऐसी बैठकों में नहीं किया जाएगा जो विधि या नियम बनाने के लिए बुलायी गई हो। इस प्रकार हम एक स्वेच्छाचारी शासन के आधीन चल रहे हैं।" मदनमोहन मालवीय के अनुसार "इस अधिनियम से भारतीयों को उनके देश की शासन व्यवस्था में कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त न हुआ।" सी० वाई० चिन्तामणि के अनुसार "सदस्यों को जो सुविधायें एवं अवसर प्राप्त हुए थे अत्यन्त सीमित थे।" श्री रमेशचन्द्रदत्त के अनुसार "१८६२ ई० का अधिनियम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की मांगों की अपेक्षा बहुत कम था।"

(४) एक आलोचक के अनुसार १८६२ ई० का अधिनियम एक प्रकार के समझौते का प्रयत्न था जो एक ओर परिषद् के सम्बन्ध में सरकारी दृष्टिकोण व्यवस्थापिका सभाओं के लघुरूप में प्रस्तुत करता था तथा दूसरी ओर उसके सम्बन्ध में शिक्षित भारतीय दृष्टिकोण उनकी अपरिपक्व अवस्था को प्रकट करता था। इस प्रकार दोनों दृष्टिकोणों का अन्तर स्पष्ट लक्षित होता था। जिसका पहला पग एक ऐसे रास्ते पर था जो अन्ततः राजनीतिक गतिरोध के रूप में तथा एक गला घोटने वाले सरकार के प्रबन्ध विभाग के रूप में प्रकट होता था। शिक्षित वर्ग की सीमाएं विस्तृत करने के सम्बन्ध में कोई भी प्रयास नहीं किया गया जिससे वे उत्तरदायी सरकार के कार्य में किसी प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें अथवा उसके नियन्त्रण के लिए भावी निर्वाचक दल की नींव स्थापना कर सकें। इस प्रकार अधिनियम के

---

१ अनिलचन्द्र बनर्जी—इंडियन कांस्टीट्यूशनल डाक्यूमेन्टस (१७५७–१९३९) पृ० १२६

द्वारा जानबूझकर निर्वाचन के म व म ेरी की गयी। इस प्रकार सन् १८९२ का अधिनियम अपर्याप्त तथा असन्तोषजनक था।

अधिनियम का महत्व

अधिनियम की आलोचना के परिणामस्वरूप हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिये कि इस अधिनियम का को महत्व नहीं है। इस अधिनियम का भारतीय सविधान के विकास के इतिहास म काफी महत्व है। इस अधिनियम के द्वारा यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया कि भारत के केन्द्रीय व प्रान्तीय शासन म ऐसी विधानसभाए होनी चाहिए जिनमे भारतीय जनता के प्रतिनिधि बठें और वे शासन के बारे म गवनर जनरल और गवनर से प्रश्न पूछें।

सन् १ ९२ का अधिनिम १८६१ ई के अधिनियम से एक कदम आगे भी था। विधान परिष मे भारतीय सदस्यो की सख्या म वृद्धि हुई। उनको बजट पर बहस करने एव प्रश्न पूछने का अधिकार प्राप्त हुआ तथा भारतवष में ससदीय सरकार की अप्रत्यक्ष रूप से नीव रख दी गयी चाहे ब्रिटिश सरकार लगातार इस बात से स्पष्ट इन्कार करती रही हो। इस अधिनियम द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रथा भी प्रारम्भ हुई जो अपने आप म एक महत्वपूर्ण बात थी।

इस अधिनियम का महत्व इस बात म भी है कि यह भारतीयो के स्वतन्त्रता सग्राम की प्रथम विजय थी। भारतीय राष्ट्रीय भावना अभी अपनी शैशवावस्था में थी और यह अधिनियम भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सदस्य नों की प्रथम स्पष्ट फल प्राप्ति थी। इस अधिनियम के द्वारा भारतवष म निरकुश शासन की नीव थोडी बहुत हिली तथा मनमाने ही भारतवष की शासन प्रणाली ससदात्मक सरकार के आदश की ओर अग्रसर हो चली।



शासन से सम्बन्धित परिवर्तन और राष्ट्रीय आंदोलन

(सन् १८९२ ई० से सन् १९०९ ई० तक)

प्रवेश

सन् १८९२ ई० से १९०९ ई० का समय भारत के संवैधानिक और राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के इतिहास में अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस युग में शासन का केन्द्रीयकरण और अधिकारीकरण करने की दृष्टि से सरकार ने अनेक शासकीय कार्य किए जिनमें अधिकांश के साथ लार्ड कर्जन का नाम जुड़ा हुआ है। इस काल में भारतीयों में आत्म विश्वास और पौरुष की भावना जागृत होने के साथ ही लोगों में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए बलिदान करने की तत्परता भी पैदा हुई। इसी काल में उदार राष्ट्रीयता का स्थान शौर्यपूर्ण राष्ट्रीयता और आतंकवादी तथा अराजकतावादी राष्ट्रीयता ने ग्रहण किया। कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गया—नरम दल और गरम दल। ब्रिटिश सरकार ने उग्रता और क्रान्तिकारी विचार को रोकने के लिए नरम दल के लोगों को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया। अंग्रेजों ने फूट डालो और राज्य करो की नीति को व्यावहारिक रूप देना प्रारम्भ कर मुसलमानों को प्रोत्साहन देकर मुस्लिम लीग की स्थापना करायी और देश में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने की नीति का श्रीगणेश किया। हम यहाँ संक्षेप में शासन का केन्द्रीयकरण और अधिकारीकरण, उदार राष्ट्रीयता, उग्र राष्ट्रीयता, क्रान्तिकारी आंदोलन और मुस्लिम लीग की स्थापना आदि की चर्चा करेंगे।

शासन का केन्द्रीयकरण और अधिकारीकरण

इस युग में शासन में अनेक परिवर्तन और सुधार हुए। इन परिवर्तनों के मूल में भारतीयों के प्रति साथ ही उनकी योग्यता और भलाई के प्रति अविश्वास की भावना थी। प्रशासन में कुशलता और निपुणता लाने का भी उद्देश्य कुछ सीमा तक निहित था। सेना का एकीकरण करने की दृष्टि से उसका पुनः संगठन किया गया। किचनर (सेनापति) ने सेना की सुधार-योजना सन् १९०३ में सरकार के सम्मुख रखी जो सन् १९०८ के पश्चात् के वर्षों में क्रियान्वित की गयी। एक प्रधान सैन्य केन्द्र की स्थापना की गयी, सैनिक अधिकारियों के शिक्षण के लिए क्वेटा में एक विद्यालय की स्थापना की गयी। इन सुधारों के फलस्वरूप भारतीय

सेना की शक्ति और कार्यक्षमता में वृद्धि हुई परन्तु सैन्य व्यय काफी बढ़ गया। लार्ड कर्जन ने पंजाब और सीमा प्रान्तीय जिलों से ब्रिटिश नियन्त्रण समाप्त करने और एक नया प्रान्त—उत्तरी सीमाप्रान्त बनाने की योजना भारत मन्त्री के सम्मुख रखी जो स्वीकृत करली गयी तथा १९०१ ई० में नया प्रान्त अस्तित्व में आ गया। सरकार ने इस काल में सड़कों और रेलों का निर्माण कर भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर सुरक्षा व्यवस्था को भी सुदृढ़ कर लिया। लार्ड कर्जन ने शिक्षा कृषि सिंचाई पुरातत्व खाना आदि विषयों में निरीक्षण और नियन्त्रण के लिए विशेषज्ञों की नियुक्तियाँ कीं। उसने शिक्षा पुरातत्व वाणिज्य एवं गुप्तचर विभागों के लिए पृथक पृथक डाइरेक्टर जनरल कृषि और सिंचाई के लिए इन्सपेक्टर जनरल भी नियुक्त किए। लार्ड कर्जन ने १८८२ ई० की वित्तीय विकेन्द्रीकरण की नीति को जारी रखा किन्तु उसके दोषों को दूर करने की दृष्टि से सन १९०४ में अर्ध स्थायी बन्दोबस्त किया। इसमें प्रत्येक प्रांत का राजस्व में भाग निश्चित कर दिया गया। परिणामस्वरूप अनिश्चितता दूर हो गयी और मितव्ययिता को प्रोत्साहन मिला। यह व्यवस्था १९१२ ई० तक बनी रही।

एकीकरण की नीति के साथ अधिकारीकरण की नीति को भी अपनाया गया। सरकारी अधिकारियों को स्थानीय संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में नियुक्त किया गया। परीक्षा में प्रतिद्वंद्विता के आधार पर नियुक्ति के स्थान पर नाम निर्देशन की नीति को प्रारम्भ किया गया। उच्चतम स्थान अंग्रेजों के लिए सुरक्षित किए गए। लार्ड कर्जन ने कलकत्ता कारपोरेशन अधिनियम (१८९९) में संशोधन कर सदस्यों की संख्या ७५ से घटाकर ५० कर दी। भारतीयों को कारपोरेशन और उसकी समितियों में अल्पसंख्यक बना दिया गया तथा ब्रिटिश सदस्यों का निश्चित बहुमत बना दिया गया। १९०४ ई० के भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालय की सीनेट आदि का यूरोपीयकरण करके विश्वविद्यालयों को पूर्ण रूप से सरकारी विश्वविद्यालय बना दिया गया।

पुलिस रेलवे मालगुजारी भूमि आदि के क्षेत्र में भी शासन सुधार किए गए। सन् १९०२ में नियुक्त पुलिस कमीशन की सिफारिशों में से अधिकांश को स्वीकार कर उन्हें १९०५ में कार्यान्वित कर दिया गया। स्वीकृत सिफारिशों में से कुछ इस प्रकार थीं वेतन बढ़ाए जाएं पुलिस शक्ति में वृद्धि की जाय अधिकारियों एवं सिपाहियों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाएं अपराधियों की खोज के लिए प्रांतीय विभाग स्थापित किए जाएं आदि। पुलिस शासन के पुनर्गठन के फलस्वरूप सरकारी व्यय काफी बढ़ गया परन्तु पुलिस दल की कुशलता में वृद्धि नहीं हुई। रेलवे प्रशासन को सुधारने की दृष्टि से सन् १९०५ में रेलवे बोर्ड की स्थापना की गयी। १९०८ ई० में बोर्ड एवं उसके सहायकों को एक पृथक रेलवे विभाग में परिवर्तित कर दिया गया।

इस युग में वैधानिक महत्व के भी अनेक कार्य हुए। सन् १८९३ ई० में इण्डियन सिविल सर्विस के लिए भारत में समकालिक परीक्षा का प्रस्ताव स्वीकृत

हुआ। महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई तथा ५५ पौंड के व्यय से कलकत्ता में उनका मेमोरियल हाल बनाया गया। १ जनवरी १९०३ को बकिंघम दिल्ली दरबार हुआ जिसमें १ = पौंड खर्च हुआ। सन् १९०४ एवं १९०७ के भारतीय परिषद् अधिनियम बने। प्रथम अधिनियम द्वारा सम्राट को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में उद्योग और व्यवसाय के लिए छठा सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। द्वितीय अधिनियम द्वारा भारत मंत्री की परिषद् के संगठन में परिवर्तन किया गया। सदस्यों की संख्या घोल कर दी गयी। कार्य-काल १ से ■ वर्ष और वेतन १२ पौंड प्रति वर्ष से १० पौंड कर दिया गया। इस काल में गवर्नर जनरल की परिषद् के सदस्यों की स्थिति का तथा भारत मंत्री और गवर्नर जनरल के आपसी सम्बन्धों की स्थिति का भी स्पष्टीकरण हुआ।

राष्ट्रीय आंदोलन संवैधानिक आन्दोलन

कांग्रेस में फूट

सन् १८९२ से १९०८ ई० का समय कांग्रेस के इतिहास में विशेष महत्त्व का है। इस काल के प्रारम्भ में कांग्रेस ■ उदारवादियों का प्रभाव था किन्तु शनैः शनैः उग्रवादियों का जोर बढ़ने लगा। उग्रवादियों ने उदारवादियों की नीतियों की आलोचना करना प्रारम्भ कर दिया तथा कांग्रेस पर उग्र राजनैतिक कार्यक्रम अपनाने का दबाव डालना प्रारम्भ किया। उन्होंने कांग्रेस के सामने स्वदेशी और बहिष्कार का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। १९०६ ई० के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव पारित हो गए। फीरोजशाह मेहता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि पुराने नेता यह अनुभव करने लगे कि कलकत्ते में उक्त प्रस्ताव पारित करके वे बहुत आगे बढ़ गए हैं जो उचित नहीं है और वे इन प्रस्तावों को बदलने की कोशिश करने लगे। उग्रवादी इस कारण बड़े नाराज हुए। अगला अधिवेशन सूरत में होना निश्चित हुआ। उग्रवादी सूरत में अधिवेशन होने के विरुद्ध थे क्योंकि उन्हें यह भय था कि सूरत अधिवेशन में नरम विचार वालों का बहुमत होगा। उग्रवादी बालगंगाधर तिलक को कांग्रेस ■ अध्यक्ष बनाना चाहते थे किन्तु उदारवादी इसके विरुद्ध थे। स्वागत समिति ने डा० रासबिहारी घोष को अध्यक्ष मनोनीत किया परन्तु उग्रवादियों को यह पसन्द नहीं आया। ७ दिसम्बर १९०७ ई० को डा० रासबिहारी घोष ने अपना स्वागत भाषण पढ़ा। इसके पश्चात् अध्यक्ष पद के लिए रासबिहारी घोष का नाम प्रस्तुत किया गया। जब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी रासबिहारी घोष के नाम का अनुमोदन करने के लिए खड़े हुए तो उग्रवादियों ने अधिवेशन स्थल में अव्यवस्था पैदा कर दी। उग्रवादियों ने अधिवेशन से अपने आपको पृथक कर लिया। इस प्रकार सूरत अधिवेशन में कांग्रेस में फूट पड़ गयी। कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गयी। नरम दल का नेतृत्व गोपालकृष्ण गोखले और उग्रवादियों का नेतृत्व बालगंगाधर तिलक ने सम्भाला। यहाँ हम उदारवादियों एवं उग्रवादियों की नीतियों उद्देश्यों कार्यक्रमों और सिद्धान्तों का सविस्तार वर्णन करने के साथ साथ प्रमुख व्यक्तियों का भी परिचय प्रस्तुत करेंगे।

पहले हम उदारवाद की चर्चा करेंगे।

(अ) उदार राष्ट्रीयता

सन् १९ ५ तक का राष्ट्रीय आदोलन का चरण उदारवाद का युग था। इस युग में भारतीय राजनीति में एसे व्यक्तियों का प्रभाव था जो विशाल बुद्धि के ऐसे अंग्रेजों के प्रति श्रद्धा रखते थे जिनका उदारवादी विचारधारा में विश्वास था और जो बहिष्कार और सरकार से असहयोग के क्रान्तिकारी विचारों से भड़कते थे। दादाभाई नौरोजी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी फीरोजशाह मेहता लाल मोहन घोष रासबिहारी गोपालकृष्ण गोखले आदि नेता उदारवादी युग के प्रमुख स्तम्भ थे। ये मुख्यतः व्यापारी वकील शिक्षक सम्पादक आदि वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे।

उदारवाद का उदय और विकास मुख्यतः १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हुआ था और इसके विकास में दो बातों का प्रमुख रूप से योग रहा था। प्रथम भारत का ब्रिटिश जातियों के सम्पर्क में आना। द्वितीय पाश्चात्य शिक्षा का भारतीयों पर प्रभाव। उदारवाद के पोषक उच्च शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। उनका दृष्टिकोण सर्वथा वैधानिक था। वे जिस वातावरण में पले थे उसमें सक्रिय राजनीतिक विचारधारा को स्थान नहीं था। इस वातावरण की नाम रोल ने शा म मनोरंजक व्याख्या की है अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय समाज की पुरानी बोतल में नई शराब भरने का काम किया जिसके कारण नई पीढ़ी के दिमाग पलट गए। १९वीं शताब्दी के मध्य तक बौद्धिक अराजकता का काल प्रारम्भ हो गया था जिसने नई पीढ़ी को प्रभावित किया। पाश्चात्य सभ्यता एक फैशन की वस्तु बन गयी थी और इसने अपने प्रशंसकों को अपने देश की ऊँची आवाज में निन्दा करने को प्रेरित किया। पश्चिम की हर चीज के प्रति जितना तीव्र अनुराग उनमें होता था उतनी तीव्रता से वे पूर्व की प्रत्येक वस्तु की निन्दा करते थे। परन्तु यही शिक्षा भारत में राष्ट्रीयता के विकास के लिए वरदान सिद्ध हुई।

उदार राष्ट्रीयता मनोवृत्ति

उदारवादी पूर्ण राजभक्त थे। इनकी राजभक्ति के बारे में कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए। यह स्थिति स्वाभाविक थी। सभी उदारवादी विचारक उच्च वर्ग के थे और पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा में रंगे हुए थे। इनके हृदय में ब्रिटिश राज के उपकारों के प्रति कृतज्ञता के भाव थे। वे ब्रिटिश शासन को भारत के लिए हितकर समझते थे और इसीलिए खुलकर ब्रिटिश शासन की सराहना करते थे। ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता में उदारवादियों की अटल श्रद्धा थी इसी कारण उसके प्रति उनके हृदय में प्रशंसा और राजभक्ति की भावना उद्भूत हुई थी। डा० पट्टाभि सितारमैया ने कांग्रेस के इतिहास में ठीक ही लिखा है राष्ट्रीय नेताओं का जोर इस बात पर होता था कि निश्चय रूप से अंग्रेज न्यायप्रिय और सच्चे होते हैं और यदि उन्हें भारत की समस्याओं का सही सही ज्ञान हो जाय तो वे सच्चाई से कभी

नहीं हटते। १८९३ ई० के कांग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष सरदार दयालसिंह मजीठिया ने कहा था कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए कीर्ति कलश है।

उक्त चर्चा से हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि कांग्रेस के उदार नेताओं को ब्रिटिश नौकरशाही की गलतियों का ज्ञान नहीं था। वे उसकी त्रुटियों को अच्छी तरह जानते थे। फिर भी उनका यह विश्वास था कि यदि भारत की समस्या को स्पष्टतः और प्रबलता पूर्वक ब्रिटेन की संसद में रख दिया जाय तो वह मांग करेगी कि भारत की परिस्थितियों में परिवर्तन किया जाय। फीरोजशाह मेहता ने कहा था "मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अंत में हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।" सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के निम्न शब्द उदार वादियों की मनोवृत्ति को भलीभांति स्पष्ट कर देते हैं "अंग्रेजों के न्याय बुद्धि और दयाभावना में हमारी दृढ़ आस्था है। संसार की महानतम प्रतिनिधि-सभा संसदों की जननी ब्रिटिश कामन सभा के प्रति हमारे हृदय में असीम श्रद्धा है। अंग्रेजों ने सर्वत्र प्रतिनिधि शासन पर ही शासन की रचना की है।"

उदार राष्ट्रीय विचारों की विशेषताएं

(१) पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्थाओं के पोषक उदारवादी नेता पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से पूर्ण रूप से प्रभावित थे। वे अंग्रेजों के प्रति श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति थे। उनको पश्चिमी देशों में शिक्षा-दीक्षा मिली थी, परिणामस्वरूप उन्हें पश्चिम में पाई जाने वाली संस्थाओं में पूर्ण विश्वास था।

(२) ब्रिटेन और भारत का सम्बन्ध उदारवादी नेता ब्रिटेन और भारत के सम्बन्धों को बड़ी श्रद्धा से देखते थे। वे देश में नयी राजनीतिक चेतना का सूत्रपात करने के लिए अपने को और देश को अंग्रेजों का आभारी समझते थे। कांग्रेस के जन्म के लिए भी वे अपने को अंग्रेजों का ही कृतज्ञ समझते थे। उनका विश्वास था कि भारत का भविष्य ब्रिटेन से जुड़ा हुआ है।

(३) नैतिक प्रभाव व प्रार्थना पर विश्वास उदारवादी नेताओं को अंग्रेजों पर दबाव डालने और उनसे प्रार्थना करने पर अटूट विश्वास था। उस काल में जो नेता प्रभावपूर्ण भावुक भाषा में प्रार्थना पर अपनी मांगों को स्वीकृत कराने के लिए प्रभाव डाल सकता था वह उतना ही सफल और कुशल नेता समझा जाता था।

(४) अंग्रेजी सिंहासन की छत्रछाया में स्वशासन की मांग कांग्रेस उदारवादी अंग्रेजों के सिंहासन की छत्रछाया में स्वशासन चाहते थे। कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने जोरदार शब्दों में कहा था "स्वशासन एक प्राकृतिक देन है, ईश्वरीय शक्ति की कामना है। प्रत्येक राष्ट्र को स्वयं अपने भाग्य का निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए। यही प्रकृति का नियम है।" ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद करने का स्वप्न में भी विचार नहीं था अतः पूर्ण स्वतन्त्रता का स्वप्न भी उनके मस्तिष्क में नहीं था। दादाभाई नौरोजी ने १९०६ ई० में अपने अध्यक्षीय भाषण में उपनिवेशों के जैसे स्वशासन न

स्वराज्य का जिक्र किया था। उन्होंने कहा था "हमारा उद्देश्य संयुक्त राज्य के समान स्वराज्य प्राप्त करना है।" स्वशासन अथवा स्वराज्य से उदारवादियों का आशय पूर्ण स्वाधीनता नहीं था। वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद करने का विचार तो उदारवादियों के मस्तिष्क में आया ही न था। सम्भवतः उन्होंने यह भी कभी नहीं सोचा था कि औपनिवेशिक स्वराज्य किसे कहते हैं। उदारवादियों का उद्देश्य भारत में प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना करना था।

(५) **व्यवस्थित विकास में विश्वास**—वास्तव में उदारवादी राजनीतिज्ञ इस बात को भलीभाँति समझते थे कि प्रतिनिधिक शासन के संभाव्य वे केवल एक छलांग में नहीं पहुँच सकते थे इसलिए उन्होंने सरकार से ऐसी कोई प्रार्थना नहीं की कि वह उन्हें तुरन्त ही प्रतिनिधि शासन प्रदान कर दे। क्रमिक विकास में ही उनका विश्वास था। इसलिए वे ही उस प्रकार की विधायक थी। इसलिए पर सस्ता जमाने की नीति के वे कायल नहीं थे। उस समय के कांग्रेसी नेताओं की यही माँगें होती थीं कि सरकारी नौकरियों का दरवाजा भारतीयों के लिए बन्द नहीं होना चाहिए।

उदारवादियों के साधन

उदार राष्ट्रवादियों के साधन भी विचारधारा के सर्वथा अनुरूप थे। वे क्रान्ति एवं हिंसा से घृणा करते थे। वे भारत और ब्रिटेन के बीच सम्बन्धों में सामंजस्य बनाए रखना चाहते थे। वे इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि भारत और ब्रिटेन के हित एक दूसरे के विरोधी हैं और दोनों में वैर भाव सा है। अतः क्रान्तिकारी साधनों में उनका विश्वास नहीं था। पहले से स्थापित की हुई व्यवस्था में आकस्मिक आमूल परिवर्तन करना तो उनके विश्वास की सीमाओं के बाहर की बात थी। उनके हृदय में हिंसा के प्रति घोर घृणा के भाव थे और वे किसी भी स्तर पर इस चीज को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

उन्होंने तीन चीजों का कड़ा विरोध किया था। विद्रोह, विदेशी आक्रमण की सहायता करना और अपराध को आश्रय देना। उदारवादी संवैधानिक आन्दोलन की तकनीक में विश्वास करते थे। ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति और न्यायप्रियता की दृष्टिकोण के अनुकूल ही उन्होंने संवैधानिक आन्दोलन की तकनीक को अपनाया। उन्होंने ऐसा प्रत्येक योजना अथवा साधन को सतर्कता पूर्ण ढंग से अस्वीकार किया जिसके लिए कहा गया थी कि ब्रिटिश सरकार उसका विरोध करेगी। उन्होंने सरकार के कोप से बचने का मार्ग अपनाया। वे सरकार के कोप का भाजन नहीं बनना चाहते थे और फलस्वरूप दमन और अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करना ललकारना भी उनके कार्यक्रम में नहीं था। उनकी प्रवृत्ति राजनीतिक भिक्षावृत्ति की सी थी। अंग्रेजों की न्याय प्रियता में उन्हें पूरा विश्वास था। अतः उन्होंने सरकारी अधिकारियों के ध्यान को सार्वजनिक भाषणों, स्मरण पत्रों, प्रस्तावों, आवेदन पत्रों तथा शिष्टमण्डलों द्वारा आकर्षित

करने तथा जनता और सम्राट के सामने भारत की समस्याओं को ठीक उपस्थित करने के इरादे से कई शिष्टमण्डल भेजे। राष्ट्रवादी अंग्रेजों के सामने इस प्रकार से पेश आते थे मानो उनमें साहस और पौरुष का बिल्कुल ही अभाव हो। वे सरकार के पास रियायतों व सुधारों के लिए अत्यन्त विनीत भाव से हाथ जोड़कर जाने में यकीन करते थे। उनका आवेदनों और याचनाओं में कितना विश्वास था यह पं. मदनमोहन मालवीय के निम्न कथन से स्पष्ट है जो उन्होंने कांग्रेस के तृतीय अधिवेशन में कहे थे—"यद्यपि प्रथम प्रयत्नों में अभी तक हमें सफलता नहीं मिली है फिर भी हम सरकार के समीप पुनः जाना चाहिए और निवेदन करना चाहिए कि वह हमारी मांगों अथवा हमारी प्रार्थनाओं पर शीघ्रातिशीघ्र विचार करे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उदारवादी संवैधानिक तरीकों में विश्वास रखते थे।

उदार राष्ट्रीयता की त्रुटियां

आधुनिक दृष्टिकोण से उदार राष्ट्रवादियों के विचारों का मूल्यांकन करने पर उनकी विचारधारा में अनेक त्रुटियां दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) साधन राष्ट्रीय स्वाभिमान के अनुकूल नहीं

कांग्रेस के शुरू के दिनों में राष्ट्रवादियों ने जो काम किए और उनके निमित्त जो साधन अपनाए वे राष्ट्रीय स्वाभिमान के अनुकूल नहीं थे। कभी कभी तो लोग उन्हें अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते थे।

(२) ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति मिथ्या धारणा और यथार्थवाद का अभाव

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का क्या वास्तविक आधार था अथवा उसकी क्या प्रकृति थी इस बात को उदारवादी नेता समझ नहीं सके। वे इस तथ्य को भलीभांति हृदयंगम नहीं कर सके कि जिस ब्रिटिश साम्राज्य की प्रशंसा करते थे वह प्रधानतः उसकी नींव सहृदयता पर नहीं शोषण पर है और वह भारतीय जनता के रक्त से सींची गई है। यह भी उनका आधारहीन और मिथ्या अनुमान ही था कि ब्रिटेन और भारत के हित एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। वे ब्रिटिश शासकों के कुटिल दांवपेचों को समझने में सर्वथा असफल रहे और शायद इसी कमजोरी के कारण वे कल्पना लोक में ही विचरण करते रहे और यथार्थ के धरातल पर उतरने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। यथार्थ से दूर होने के कारण यह विचारधारा ऐसे लोगों के गले उतर नहीं सकी जिनमें अदम्य राष्ट्रभक्ति थी स्वशासन में असीम अनुराग था और भावना थी जल्द से जल्द मातृभूमि को विदेशी पंजे से छुटकारा दिलाने की।

(३) कृतज्ञता की भावना भ्रान्तिजन्य

ब्रिटिश शासन के वरदानों के प्रति प्रशंसा और कृतज्ञता की भावना भ्रान्तिजन्य थी। वे इस कटु सत्य को हृदयंगम करने में असफल हुए थे कि भारत ब्रिटिश पूंजीवाद के लाभार्थ अंग्रेजों का एक उपनिवेश मात्र था। इसलिए अगर वह

भारतीय जनता को अपने हितार्थ कुछ अपूर्ण रियायतें प्रदान भी करना तो इसमें राष्ट्रवादियों में कृतज्ञता के भाव का होना आवश्यक नहीं था।

(४) व्यावहारिक दूरदर्शिता की कमी

उदारवादियों की स्थिति बड़ी अजीब थी। वे अंग्रेजों को समझने में सर्वथा असफल रहे। इससे तो यही जाहिर होता है कि चाहे वे कितने ही शिक्षित और अदम्य देशभक्त भी क्यों न थे उनमें व्यावहारिक दूरदर्शिता का अभाव था इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। यदि भारत में बड़े बड़े सुधार कर दिए जाते और भारतीयों को अपने देश का प्रबन्ध आप करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाती तो ब्रिटेन भारत को अनिश्चित काल तक आर्थिक दासता के पाश में जकड़ न रख सकता था। यह एक स्पष्ट सी बात थी परन्तु उदार राष्ट्रवादी इसे नहीं समझ सके।

(५) वास्तविकता से एकदम पृथक

यह धारणा वास्तविकता से कोसों दूर और आधारहीन थी। अंग्रेज भारतीयों पर जुल्म ढाते थे परन्तु उदारवादियों को अंग्रेजों की न्याय-व्यवस्था पर विश्वास बना रहा। अंग्रेज जन अधिकारों के नाम पर किसी भी प्रकार की रियायत देने को तैयार नहीं थे फिर भी अंग्रेजों की जनतन्त्रीय पद्धति पर उनका विश्वास बना रहा। वे अपने इस विश्वास से कभी नहीं डिगे कि अंग्रेज एक जनतन्त्रीय जाति है और वह भारत में धीरे धीरे जनतन्त्र की स्थापना के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक होगी। उनका यह विश्वास कितना आधारहीन कितना भ्रान्तिजनक और कितना अयथार्थ था।

(६) उदारवादियों का प्रभावशाली भूमिका के निर्वाह में असफल रहना

उदारवादियों के क्रियाकलापों से सुधारों में कोई परिवर्तन की गुंजाइश मालूम नहीं होती थी। अंग्रेज उनकी मांगों पर कान ही नहीं देते थे और उदारवादी बराबर याचना करते रहते थे। अतः देश उदारवादियों के प्रयासों से सन्तुष्ट और सन्तुष्ट नहीं हो सका।

(७) उदारवादियों के तरीके देश की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं

उदारवादियों ने जिस तरह से संवैधानिक उपायों का पल्ला पकड़ा वे देश की जनता को भा नहीं सके। देश का जनमत इस पक्ष में था कि ऐसी समय नीति अपनायी जाय जिससे अंग्रेजों से बदले का पाई-पाई का हिसाब चुकता किया जा सके। देश का जन मानस अंग्रेजों से प्रतिशोध लेने के लिए उग्र था और एक समय में उदारवादियों द्वारा अपनाए गए संवैधानिक तरीकों को कायरता की संज्ञा दी जाने लगी। इस प्रकार उदारवादियों के साधन देश की मिट्टी के अनुकूल न थे।

(८) राजनीतिक भिक्षावृत्ति की दुर्बलता

सच बात तो यह है कि इन नेताओं ने जिन साधनों और उपायों का प्रयोग किया वह हल्के थे एवं उनका सारा प्रभाव जाता रहा था। वे ब्रिटेन के द्वार पर

भिक्षा मांगकर वहाँ की जनता की आत्मा को प्रार्थनाओं और आवेदनों से जागृत कर प्रतिनिधि-शासन में पूर्ण करने की आशा करते थे। यह उनकी दुर्बलता का प्रमाण था कि उन्होंने अपनी शक्ति पर भरोसा करके साम्राज्यवादियों को चुनौती देने की बजाय अपने शासकों की अनुकम्पा पर ही विश्वास किया।

(९) उदारवादियों में त्याग और बलिदान की कमी

गुरुमुख निहालसिंह का यह कथन सर्वथा युक्तिसंगत है कि सम्भवतः गोखले को छोड़कर नरम नेताओं में व्यक्तिगत बलिदान करने और आपत्तियाँ सहने को कोई भी तैयार नहीं था। उनमें से ऐसे लोग बहुत कम थे जो दीर्घ कारावास देश निर्वासन अथवा सरकार द्वारा अपनी सम्पत्ति का अपहरण किया जाना शान्तिपूर्वक सहन कर लेते। ये सब चीजें उस आगामी पीढ़ी के लिए जिसने महात्मा गांधी की पताका के नीचे काम किया था अति सामान्य हो गयी।

(१०) युवक शक्ति के आक्रोश को शान्ति नहीं

उदारवादियों के वैधानिक तरीकों में युवक शक्ति के आक्रोश को शान्ति नहीं मिली और कालान्तर में यही युवक आक्रोश आतंकवाद के रूप में भड़क उठा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उदारवादी अपनी राजभक्ति की भावना से ग्रस्त होने के कारण राष्ट्रीय रंगमंच पर विशेष सक्रिय नहीं हो सके।

उदार राष्ट्रीयता की देन

चाहे उदारवादियों से राष्ट्र के बहुमत का सन्तोष नहीं हुआ परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम उन प्रारम्भिक देशभक्तों की अवहेलना कर दें। अगर ऐसा हुआ तो यह हमारे इतिहास में काला दिन होगा। वस्तुतः भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के इन मार्गदर्शकों के कार्यों को सर्वथा निरर्थक नहीं कहा जा सकता। उनके दूरगामी और महत्त्वपूर्ण परिणाम प्रकट हुए। वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को उदारवादियों की निम्नलिखित देन है —

(१) भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा

राष्ट्रीय आन्दोलन को उनकी वास्तविक देन यह है कि उन्होंने भारतीय जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान की और उसमें प्रजातान्त्रिक आदर्शों का प्रसार किया और धीरे धीरे भारतीयों की इसी जागृति ने राष्ट्रीय संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। देश इसके लिए उनका सदैव ऋणी रहेगा।

(२) जन अधिकारों का संरक्षण

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उदारवादी राजभक्ति की भावना से ओत प्रोत थे परन्तु इस सत्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने जन अधिकारों का संरक्षण भी किया।

(३) भारतीय राष्ट्रीयता के प्रणेता

यह बात तो मुक्त कण्ठ से स्वीकार करनी पड़ेगी कि भारत की प्रथम राष्ट्रीय संस्था के प्रणेता उदार राष्ट्रवादी ही थे। उन्होंने देशवासियों को शिक्षा दी कि

वे प्रान्तीय और साम्प्रदायिक धरातलों से ऊपर उठें तथा सामान्य राष्ट्रीयता की भावना को अपने हृदय में विकसित कर। अन्त में गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों में दोहराया जा सकता है प्रारम्भिक कांग्रेस ने राजभक्ति को प्रतिनाओं नरम नीति आवेदन ही नहीं अपितु भिक्षा वृत्ति के बावजूद भी उन दिनों राष्ट्रीय जागरण राजनीतिक शिक्षा भारतीयों को एकता के सूत्र में गुंथित करने और उनमें सामान्य भारतीय राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने में कठिन परिश्रम किया था। डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है शुरू के कांग्रेसियों की भीरुता और भिक्षा वृत्ति को उपहास की दृष्टि से देखना अत्यन्त सुगम है पर तु उस समय जब भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में कोई नहीं था उन लोगों ने जो कुछ ग्रहण किया था उसके लिए हम उन्हें दोष नहीं दे सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में ६ फीट जो ईट चूना और पत्थर गड़े हुए हैं क्या उन पर कोई दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वही तो है जिसके ऊपर सारी इमारत खड़ी हो सकती है। पहले उपनिवेशों के ढंग का स्वशासन फिर मात्रा में क्रमागत पूर्ण शासन इसके बाद स्वराज्य और सबके ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें एक के बाद एक बन सकी हैं।

(४) भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का आधार

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की नींव डालने का श्रेय उदारवादियों को ही है। उन्होंने ही भारतीयों को अपने अधिकारों के लिए सरकार से लड़ना सिखाया। उनकी नीतियों में ही परिवर्तन लाकर बाद में कांग्रेस ने अपना उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य तथा पूर्ण स्वाधीनता घोषित किया। श्रीमती एनीबेसेंट लिखती हैं कि नरम दल के नेताओं ने ही हमको इस योग्य बनाया कि हम स्वतन्त्रता की माँग सरकार के सामने रख सकें।

उदार राष्ट्रीयता के जनक

दादाभाई नौरोजी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी फीरोजशाह मेहता रासबिहारी बोस लालमोहन घोष गोपालकृष्ण गोखले उदारवाद के प्रमुख स्तम्भ थे। यहाँ हम इन उदारवादियों में से कुछ के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

दादाभाई नौरोजी

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण के नेताओं में दादाभाई नौरोजी का नाम सर्वप्रथम आता है। उन्होंने ६१ वर्ष तक राष्ट्र की सेवा की ४ वर्ष तक कांग्रेस की स्थापना के पूर्व तथा २१ वर्ष तक उसके पश्चात्। उन्हें प्यार और आदर से भारत का ग्रैण्ड ओल्ड मैन कहा जाता है। डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने उनके बारे में लिखा है कि राष्ट्र के गण्यमान्य नेताओं की सूची में पहला नाम दादाभाई नौरोजी का है जिन्होंने कांग्रेस के साथ उसके जन्म से सम्पर्क स्थापित कर जीवन पर्यन्त उसकी सेवा की और जो विकास के सब पहलुओं में उसके साथ रहे। उन्होंने कांग्रेस को प्रशासन सम्बन्धी शिकायतों को दूर करवाने वाली संस्था की तुच्छ स्थिति से उठाकर राष्ट्रीय संस्था की गौरवपूर्ण स्थिति तक पहुँचाया

जिसने स्वराज्य को अपना निश्चित उद्देश्य बनाकर उसकी प्राप्ति के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया। श्री कार्त्र चिन्तामणि ने उनके सम्बन्ध में लिखा है “६० वर्षों तक दादाभाई नौरोजी विकट परिस्थितियों से लड़ते हुए पूर्ण निःस्वार्थ और विश्वास के साथ एक उद्देश्य के लिए मातृभूमि की सेवा करते रहे। वे आत्माओं में महान्, विचारों में अत्यधिक उदार तथा अजातशत्रु थे। व्यक्तिगत चरित्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र में महान् दादाभाई नौरोजी अपने देशवासियों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श थे।

नौरोजी का जन्म बम्बई के एक पारसी धार्मिक परिवार में ४ सितम्बर १८२५ ई० में हुआ था। जब वे चार वर्ष के थे तभी उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उनकी माता ने कष्ट उठाकर उन्हें अच्छी शिक्षा दिलायी। वे एल्फिन्स्टन विद्यालय के विशिष्ट विद्यार्थी थे। बम्बई के प्रधान न्यायाधीश सर अर्स्किन पेरी चाहते थे कि वे इंग्लैण्ड में वकालत की शिक्षा प्राप्त करें; किन्तु अपने परिवार के पुराने विचारों के कारण वे विलायत न जा सके। सन् १८५० ई० में एल्फिन्स्टन विद्यालय में गणित और प्राकृतिक विज्ञान के सहायक प्राध्यापक नियुक्त हुए। यह स्थान अब तक किसी भारतीय को नहीं मिला था। सन् १८५६ में उन्होंने इस नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और एक पारसी कम्पनी कैमा एण्ड संस के व्यापार की देखभाल करने के लिए इंग्लैण्ड चले गए। इस कम्पनी में वे साझीदार भी थे। १८७४ ई० में उन्होंने बड़ौदा राज्य की दीवानी स्वीकार कर ली। यहाँ पर वे अधिक दिनों तक नहीं रह सके क्योंकि अंग्रेज रेजीडेंट कर्नल फेरी से उनका मतभेद रहता था। इसके पश्चात् मृत्यु तक व्यापार और राजनीति ही उनके मुख्य कार्य रहे। जून १९१७ ई० को बम्बई में उनकी मृत्यु हो गयी। वे प्रथम भारतीय थे जो ब्रिटिश लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे।

उनके जीवन का कार्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। उनको अनेक पत्रों और लगभग तीस संस्थाओं को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है जिनमें से अधिकांश का लक्ष्य राजनीतिक अथवा सामाजिक सुधार था। उन्होंने स्त्री शिक्षा और स्वातन्त्र्य के लिए विशेष रूप से काम किया था। १८६६ ई० में उन्होंने इंग्लैण्ड में ईस्ट इंडियन एसोसिएशन जिसका उद्देश्य अंग्रेजी जनता को भारतीय समस्याओं से अवगत कराना था की स्थापना की। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्मदाताओं में से एक थे। उन्होंने सन् १८८६, सन् १८९३ एवं सन् १९ ६ में कांग्रेस के महामन्त्री का पद ग्रहण किया था। उन्होंने भारत और इंग्लैण्ड दोनों में कांग्रेस आन्दोलन की सफलता के लिए भरसक परिश्रम किया। उन्होंने कांग्रेस को स्वदेशी और स्वराज्य के नारे दिए तथा उग्र वैधानिक आंदोलन के मार्ग पर आगे बढ़ाया। लार्ड कर्जन की बंगाल विभाजन नीति से वे अत्यन्त दुःखी हुए तथा उसके विरोध में उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। उनकी लेखनी ने भी भारत की उन्नति के लिए अथक परिश्रम किया। उन्होंने बताया कि भारत में अंग्रेजी शासन उनके कुशासन का स्वरूप था और विदेशी शासन के अन्तर्गत भारत को अपनी सुरक्षा के मूल्य में

भुखमरी और लानत की मौत मिली थी। लार्ड कर्जन के सभापतित्व में शाही आयोग के समक्ष गवाही देते हुए उन्होंने ब्रिटिश शासन की तीव्र आलोचना की और बताया कि इंगलैण्ड ने भारत का कितना आर्थिक शोषण किया है। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे पूर्णतया विश्वास करने लगे थे कि स्वशासन ही भारत की समस्या का निदान है। वे जनता के सच्चे सेवक थे और गोखले के शब्दों में उनका जीवन देश भक्ति का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण था। उन्होंने देशवासियों के हृदयों में वह स्थान ग्रहण कर लिया था जिसके लिए मनुष्य के शासक भी ईर्ष्या कर सकते हैं।

~~दादाभाई नौरोजी~~ पक्के उदारवादी थे। उन्हें अंग्रेजों की न्यायपरायणता में पूरा विश्वास था। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के वे महान् प्रशंसक थे। उनके विचार में भारत का ब्रिटेन से सम्बन्ध हितकर था। क्रमिक सुधारों तथा संवैधानिक विधियों में उनको पूर्ण विश्वास था। प्रारम्भ में उनकी भाषा बड़ी ही शान्त और संयत थी लेकिन आगे चलकर सरकार की प्रतिगामी नीति के कारण उनके स्वभाव तथा भाषा में उग्रता आ गयी थी।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

बनर्जी महान् शिक्षा प्रेमी एवं प्रखर वक्ता थे। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश में सुरेन्द्रनाथ से बढ़कर और कोई प्रसिद्ध नहीं था। सर हेनरी काटन ने उनके सम्बन्ध में लिखा है "शिक्षित वर्ग ही देश की बुद्धि और वाणी है। अब बंगाली बाबू पेशावर से लेकर चटगाँव तक जनता पर शासन करते हैं। और आजकल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नाम मुल्तान और दक्षिण की जनता को समान रूप से उत्साहित करता है। भारत में यदि किसी एक व्यक्ति को राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्मदाता कहा जा सकता है तो वे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे।

उनका जन्म एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में १८४८ ई० में हुआ था। उनके पिता अपने समय के एक प्रतिष्ठित डाक्टर थे। बी.ए. पास करने के बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जी १८६९ ई० में इंगलैण्ड में नागरिक सेवा की प्रतियोगिता में सफल हुए परन्तु उनका सरकारी सेवा का जीवन अल्पकाल का ही रहा। अंग्रेज अफसरों की सहानुभूति और प्रशंसा उन्हें प्राप्त न थी फलस्वरूप एक साधारण बात पर उन्हें नौकरी से पृथक् कर दिया गया। उन्हें विलायत में वकालत पढ़ने की भी आज्ञा नहीं मिली। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों के फलस्वरूप वे कलकत्ता के मेट्रोपोलिटन विद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक नियुक्त हुए। सन् १८७५ के पश्चात् शिक्षा पत्रकारिता और राजनीति से ही उनका सम्बन्ध रहा और थोड़े ही दिनों में वे देश के एक महान नेता बन गए। उन्होंने रिपन कालेज की भी स्थापना की जिसका नाम अब उन्हीं के नाम पर है। उन्होंने बंगाली पत्र का सम्पादन किया और इसके द्वारा जनमत को काफी जागरूक किया। सन् १८७६ में उन्होंने इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की। सन् १८८३ में उन पर अदालत की मानहानि का मुकदमा चलाया गया। उनकी हमदर्दी में भारत में अनेक प्रदर्शन हुए। सन् १८८

एवं ८५ के मध्य उन्होंने देश के शिक्षित मध्यम वर्ग को राजनीतिक आन्दोलन की कला में पारंगत किया और आगे चलकर वे शीघ्र ही कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में से एक हो गए। वे दो बार कांग्रेस अध्यक्ष के पद पर आसीन हुए। बंगाल विधानसभा के सदस्य के रूप में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वे दो बार इंग्लैंड भी गए और अपनी योग्यता और वक्तृत्व शक्ति से अंग्रेजों के दिल में सम्मान प्राप्त कर लिया।

सुरेन्द्रनाथ भारतीय ग्लैडस्टोन के नाम से प्रसिद्ध थे। सन् १८९० में वे कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य बने। बंगाल विभाजन विरोधी आन्दोलन के समय आप सर्वप्रिय नेता थे। बाद में राजनीतिक अनिवार्यता से प्रेरित होकर वे माण्टफोर्ड सुधार योजना के पश्चात् कांग्रेस से अलग हो गए। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में आप मन्त्रिमण्डल के कार्यों में अधिक व्यस्त रहे। ६ अगस्त १९२५ ई० को आपका स्वर्गवास हो गया। उनके जन्म-सेवा के ५० वर्षों में वास्तविक रूप में उन्हें आधुनिक भारत के निर्माताओं में स्थान मिलता है। वे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति श्रद्धा की भावना रखते थे और उसका निर्मूलन करने के विरोधी थे। परन्तु उसके आधार को विस्तृत करना और उसमें सुधार लाना उनके राजनीतिक जीवन के विशेष उद्देश्य थे। उनकी आत्मा अधिक उदार थी। उनका चरित्र प्रशंसनीय था और वे भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे।

गोपालकृष्ण गोखले

गोखले भारतीय राजनीति के महान् उदारवादी नेता, व्यावहारिक आदर्शवादी, उदार बुद्धिजीवी तथा राजनीतिक गुरु माने जाते हैं तथा इनका स्थान भारतीय राष्ट्र निर्माताओं की प्रथम श्रेणी में आता है। वे बम्बई प्रान्त के रत्नागिरि जिले के एक गाँव में महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में ९ मई १८६६ ई० को पैदा हुए थे। जब उनकी आयु १८ वर्ष की हो गई थी तभी उनके पिताजी का देहान्त हो गया और गोखले को अपनी शिक्षा प्राप्त करने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा। वे प्रायः सड़क की बत्ती की रोशनी में बैठकर पढ़ते थे तथा स्वयं हाथ से खाना पका कर खाते थे। शिक्षा समाप्त करने के बाद वे सरकारी नौकरी न करके पूना के एक अंग्रेजी स्कूल में अध्यापक हो गए। यह स्कूल आगे चलकर प्रसिद्ध फर्ग्यूसन महाविद्यालय के रूप में विकसित हुआ और गोखले सन् १९०२ में उसके आचार्य पद से रिटायर हुए। जब वे इस स्कूल की नौकरी पर नियुक्त हुए थे तभी उनका सम्पर्क श्री रानाडे से हुआ था। वे गोखले की बुद्धिमत्ता और कर्त्तव्यपरायणता से अत्यन्त प्रभावित हुए और गोखले को उन्होंने सार्वजनिक सभा का मन्त्री बनवा दिया। यह सभा बम्बई प्रदेश की मुख्य राजनीतिक संस्था थी और शीघ्र ही गोखले प्रान्त के मुख्य व्यक्तियों में गिने जाने लगे। ३१ वर्ष की आयु में ही दक्षिण सभा ने उन्हें इंग्लैंड में वेल्बी आयोग के समक्ष अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए भेजा। नौकरियों का भारतीयकरण करने तथा सेना के व्यय को कम करने के सम्बन्ध में उनके तर्कों ने आयुक्त को अत्यन्त प्रभावित किया था।

सन् १८९९ में वे बम्बई व्यवस्थापिका सभा के लिए प्रान्त के केन्द्रीय-क्षेत्र की नगरपालिकाओं के प्रतिनिधि चुने गए। सन् १९०२ में वे केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा के सदस्य चुने गए। गोखले से प्रभावित होकर लार्ड कर्जन ने उन्हें लिखा था "ईश्वर ने आपको असाधारण योग्यता दी है और आपने इसको बिना किसी शर्त के देश सेवा में लगा दिया है।" १९०५ में आप बनारस कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए। उस समय आपकी आयु ३९ वर्ष की थी। अधिवेशन के अवसर पर दिया गया भाषण कांग्रेस मंच पर दिए गए महान् भाषणों में गिना जाता है। १९०५-१९०७ में उन्होंने सरकार की प्रतिक्रियावादी नीतियों का घोर विरोध किया। उनके जीवन का सबसे अधिक स्मरणीय कार्य भारत सेवक समाज है जिसकी स्थापना उन्होंने सन् १९०५ में की। इस संस्था ने देश सेवकों को मातृ भूमि की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की शिक्षा दी है। गोखले ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष अफ्रीका में बसे भारतीयों के हितों की रक्षा में बिताए। १९ फरवरी सन् १९१५ को उनका देहावसान हो गया।

गोखले कर्मठ तथा परिश्रमी व्यक्ति थे। उनका ज्ञान विशाल तथा बहुमुखी था। वे इतने ईमानदार बुद्धिजीवी थे कि बिना पूरी तरह सोचे समझे कोई विचार अभिव्यक्त नहीं करते थे। गोखले न्यायाधीश रानाडे के राजनीतिक तथा आध्यात्मिक शिष्य थे। वे उदारवादी थे। वे क्रमिक सुधारों के पक्ष में थे। वे एकाएक स्वशासन की मांग को अव्यावहारिक मानते थे। उन्हें संवैधानिक विधियों में पूरा विश्वास था। उन्हें अंग्रेजों की न्याय प्रियता में विश्वास था। वे सोचते थे कि जिस दिन अंग्रेजों को विश्वास हो जाएगा कि भारतीय स्वशासन के लिए सक्षम हैं वे उन्हें यह अधिकार दे देंगे। उनके विचार में भारत का ब्रिटेन से घनिष्ठ सम्बन्ध उसके लिए हितकारी होगा। उदारवादी विचारों के कारण कांग्रेस के बीच वे बहुत लोकप्रिय नहीं थे। वे साधारणतः सरकार तथा जनता के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे। उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि वे जनता की आकांक्षाएं वायसराय तक पहुँचाते थे और सरकार की कठिनाइयां कांग्रेस तक। इस कारण कभी कभी दोनों उनके विरुद्ध हो जाते थे जनता उनकी उदारवादिता के कारण तथा सरकार उग्रवादिता के कारण। लेकिन वे अपने पक्ष से कभी विचलित नहीं होते थे। वे सच्चे देशभक्त थे। मातृ भूमि की सेवा उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था।

गोखले एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे। एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ की भाँति वे परिस्थितियों के अनुसार विचारों और मांगों का संशोधित करने के पक्ष में थे। गोपालकृष्ण गोखले एक राजनीतिक संत थे। वे सार्वजनिक जीवन को आध्यात्मिकता से अनुरंजित करना चाहते थे। उनकी धार्मिक वृत्ति और साधुवृत्ति के कारण ही महात्मा गांधी ने उन्हें राजगुरु के रूप में स्वीकार किया था। गांधीजी के शब्दों में "मुझे लोकमान्य तिलक महासागर की तरह लगे जिसमें कोई आसानी से नहीं उतर सकता पर गोखले

गगा के समान थे जो सब को अपने पास बुलाती है। राजनीतिक क्षेत्र में उनके जीवन काल में और उसके अनन्तर गोखले का मेरे हृदय में जो स्थान रहा है वह अपूर्व है। गोखले और तिलक की तुलना करते हुए डा. पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है कि गोखले नरम थे और तिलक गरम। गोखले वर्तमान में सुधार चाहते थे जबकि तिलक उसके पुनर्निर्माण के पक्ष में थे। गोखले को नौकरशाही के साथ काम करना पड़ता था तो तिलक को नौकरशाही से भिड़न्त रहती थी। गोखले सम्भवतः सहयोग चाहते थे। तिलक का झुकाव अड़गा नीति की तरफ था। गोखले का लक्ष्य था स्वशासन जिसके योग्य लोग अपने को अंग्रेजों की कसौटियों पर खरा बनाएं किन्तु तिलक का उद्देश्य था स्वराज्य जिसे विदेशियों के विरोध के बावजूद भारतीयों को प्राप्त करना था।

गोखले का जीवन द्वेष एवं घृणा से दूर था और वे शासन व्यवस्था में वैधानिक उपायों द्वारा सुधार लाना चाहते थे। वे राजनीति और नैतिकता में कोई भेद नहीं समझते थे और उन्होंने भारतीय राजनीति को अपने उच्च चरित्र और आदर्शों से प्रभावित किया था। वे हिन्दू मुस्लिम एकता और जनता की राजनीतिक शिक्षा के पुजारी थे। उनके जीवन काल में उग्रवादी नेताओं ने उनकी नीति की तीव्र आलोचना की। उनकी यहां एक विशेष कमी थी कि उनमें दिखावा नहीं था। वे सच्ची लगन से जिससे जनता का वास्तविक हित हो काम करना जानते थे। जो आलोचक उन्हें पहले छिपे हुए राजद्रोही कहते थे उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके माहात्म्य और विवेक ऐश्वर्य को समझने लगे। बाल गंगाधर तिलक ने उनको भारत का हीरा, महाराष्ट्र का लाल और कार्यकर्ताओं का राजा स्वीकार किया। लाला लाजपतराय के विचार में वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से कांग्रेस के नरमदलीय तत्वों में से थे। उनकी देशभक्ति बड़ी ऊंची दर्जे की थी। यद्यपि उनमें सफल नायक बनने की सम्भवतः योग्यता न थी और वे जनप्रिय नेता भी नहीं थे लेकिन यदि राजनीति में सहनशीलता और सहिष्णुता के सिद्धान्तों का कोई महत्त्व है तो वे महात्मा गांधी से पूर्व भारत के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे।

(ब) उग्र राष्ट्रीयता

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के दूसरे चरण की शुरुआत उग्रवादी राजनीति के उदय से होती है। प्रथम चरण में कांग्रेस पर उदारवादियों का प्रभुत्व था जिन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर असीम विश्वास था। वे वैधानिक तथा कानूनी साधनों द्वारा राजनीतिक और प्रशासकीय सुधारों की प्राप्ति चाहते थे। उदारवादी विचारधारा का प्रभाव कांग्रेस पर मुख्यतः १९०५ ई. तक और उसके कुछ बाद भी बना रहा। लेकिन १९वीं और बीसवीं शताब्दी में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं जिनके कारण लोगों का उदारवादियों की गतिविधियों पर से विश्वास उठ गया और वे राजनीति में सक्रिय प्रतिरोध के लिए आतुर हो उठे। उन्होंने सीमित सुधारों के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य की मांग करना प्रारम्भ कर दिया।

तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय के नेतृत्व में उग्रवादियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को नया मोड़ दिया।

उग्रवाद के विकास के समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ

उग्रवाद के विकास के समय की राजनीतिक परिस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन करने पर निम्न सत्य सामने आते हैं —

(१) सन् १८६२ के अधिनियम के पारित हो जाने से देश में इस भावना को बल मिला कि अंग्रेजों से संघर्ष करने पर कुछ राजनीतिक हितों की प्राप्ति की जा सकती है। उस समय के राष्ट्रवादियों की पुकार भी यही थी कि अंग्रेजों से संघर्ष करके उन्हें पूरी तरह मजबूर कर दिया जाए तथा स्वराज्य की दिशा में कारगर कदम उठाए जाएं।

(२) ब्रिटिश शासकों के निरंकुशतावाद के खिलाफ घृणा का घोर वातावरण था और देश के राष्ट्रवाद की यही माँग थी कि जितना जल्दी हो उतना सक्रिय प्रतिरोध किया जाए और इसी जन असंतोष ने उग्रवाद के लिए रास्ता बनाया। लोगों में यह भावना जाग्रत हुई कि पराधीनता सबसे बड़ा अभिशाप है अतः जितना जल्दी हो परतन्त्रता से मुक्ति मिले और पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति हो। इस प्रकार देश के कोने कोने से स्वराज्य की आवाज आ रही थी और उस समय का प्रबल राष्ट्रवाद किसी भी कीमत पर अपने इस उद्देश्य (पूर्ण स्वराज्य) की पूर्ति के लिए बेचैन था। इस बेचैनी ने जनता के सम्मुख केवल दो विकल्प प्रस्तुत कर दिए

(१) या तो वह अपने राष्ट्रवाद के सरि प्रवाह को कुण्ठित कर दे।

(२) या वह उदारवादी असफल तरीकों को छोड़कर एक नूतन उग्रवादी विचारधारा से अपना सामंजस्य स्थापित करे जो युग की पुकार थी। भारतीय राष्ट्रवाद ने समय की परिस्थितियों और तत्कालीन माहौल को पहचान कर उग्रवाद की तरफ उन्मुख होने में ही अपना कल्याण समझा।

(३) इस समय ऐसे जन सेवकों का प्रादुर्भाव हो चुका था जो देशभक्ति से ओतप्रोत थे जो सीमित स्वार्थों की परिधि से उठकर राष्ट्र के जीवन के साथ आत्मीयता का संबंध स्थापित कर चुके थे और जो मातृभूमि को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने के लिए दृढ़ संकल्प थे। इन जन नायकों ने अपने कार्यों से अपने आदर्शों से और नेतृत्व शक्ति के बल पर देश में अद्भुत जोश का संचार कर दिया और राष्ट्र एक नए युग की चुनौतियों को स्वीकार करने की दिशा में अपनी भावी रण-नीति निर्धारित करने के लिए सजग हो गया।

उग्रवाद के जन्म के कारण

(१) टोरी कुशासन

सन १८६२ ई. से १८९६ के मध्य के वर्षों में इंगलैंड के शासन पर टोरी दल का प्रभुत्व था। इन वर्षों में शासक वर्ग ने भारत में ऐसे कानून प्रचलित किए जिससे जनता और नौकरशाही में खुला विरोध आरम्भ हो गया। कुशासन के फलस्वरूप

राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्र भावना का समावेश हो गया। श्री गोखले ने कांग्रेस के ग्राठवें अधिवेशन (१८९२) में लार्ड लैन्सडाउन की सरकार (१८८८-१८९४ ई०) को चेतावनी देते हुए कहा था कि उसकी शिक्षा, स्थानीय स्वशासन और नौकरियों में भारतीयों की भर्ती में सम्बन्धित नीतियाँ संकट का आह्वान कर रही हैं। लार्ड एल्गिन के शासन काल (१८९४-१८९८ ई०) में अंग्रेज अधिकारियों की दमन नीति के फलस्वरूप देश के राजनीतिक क्षितिज पर काले बादल मंडराने लगे थे। नाटू बन्धुओं की नजरबन्दी और बालगंगाधर तिलक की कैद से स्पष्ट था कि नए भारत के निर्माण में रोड़े अटकाए जा रहे थे। १८९८ में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में भी आर० सी० दत्त ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि पिछले दो वर्षों में भारतीय जनता में असन्तोष की और भी वृद्धि हुई है। लार्ड कर्जन के शासन काल (१८९९-१९०५) में तो एकाएक तूफान सा आ गया था। कांग्रेस की बाढ़ को समाप्त करने के समय लार्ड कर्जन को यह विश्वास हो गया था कि वह कांग्रेस को शान्ति से समाप्त करने में सफल हो सकेगा किन्तु उसका कार्य भारतीय राष्ट्रीयता के लिए सबसे अधिक पोषक तत्त्व सिद्ध हुआ। उसका ग्राफीशियल सीक्रेट्स बिल, जिसमें अभियोक्ता को अपराधी के विरुद्ध प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं थी किन्तु अपराधी को अपने को निरपराधी सिद्ध करने की आवश्यकता थी, सब न्याय-सिद्धान्तों के विपरीत था। उसका १९०४ ई० का विश्वविद्यालय शिक्षा सम्बन्धी अधिनियम जिसमें उच्च शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण कड़ा किया गया था भारत के राष्ट्रीय हितों को नकारने के उद्देश्य से बनाया गया था। अधिनियम का भारतीय शिक्षित वर्ग ने विरोध किया। कर्जन ने कलकत्ता कारपोरेशन पर भी सरकारी नियन्त्रण लगाकर स्वशासन की प्रगति में बाधा डालने का प्रयास किया। उसके बंग भंग के कुत्सित कार्य ने तो विद्रोह की भावना के लिए आग में घी डालने का काम किया। इस सम्बन्ध में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा, "विभाजन की घोषणा एक बम के गोले की भाँति गिरी। हमें ऐसा लगा कि हम अपमानित, उपेक्षित और प्रवंचित किए गए हैं।"

(२) आर्थिक असन्तोष

अधिक दरिद्रता और आर्थिक असन्तोष क्रान्ति को जन्म देते हैं। १९वीं शताब्दी के अन्तिम काल में भारत और आर्थिक असन्तोष व्याप्त था और निम्न मध्यम वर्ग में बेकारी की समस्या उग्र रूप धारण कर रही थी। अकाल, भूचालों आदि के कारण जनता में असन्तोष अधिक बढ़ गया। शिक्षित वर्ग के असन्तोष और जनता के कष्टों ने उग्रविचारी राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन दिया। दादाभाई नौरोजी, रमेशचन्द्र दत्त और विलियम डिग्बी द्वारा रचित पुस्तकों ने अंग्रेज विरोधी भावना को प्रोत्साहित किया। इन पुस्तकों ने हमारे उग्र राष्ट्रीय विचारों के उत्थान में क्रान्तिकारी काम किया। उदारवादी विचारों के होते हुए भी उन्होंने राजनीतिक और आर्थिक राष्ट्रीय विचारों को एक ठोस आधार प्रदान किया। भारत की दरिद्रता और अंग्रेजी शासन उनके लेखों के आधार बने।

(३) धार्मिक पुनरुत्थान

धार्मिक पुनरुत्थान ने शिक्षित वर्ग में पाश्चात्य शिक्षा सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया उत्पन्न की। आर्य समाज रामकृष्ण मिशन थियोसोफीकल सोसायटी आदि धार्मिक सामाजिक संस्थाओं के प्रचार ने जनता का ध्यान अपने प्राचीन गौरव की ओर आकर्षित किया। स्वामी विवेकानन्द जैसे महान् नेताओं ने जनता में अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने के प्रति आत्म विश्वास जागृत किया। भारतीय जनजीवन में एक नवीन जागृति एवं नयी स्फूर्ति उत्पन्न हुई। इस समय राष्ट्रीय साहित्य का भी विकास हुआ। इस युग का बंगला साहित्य देशभक्ति की उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत था। बंकिमचन्द्र का आनन्दमठ सामयिक रूप से प्रभावी पुस्तक थी और उनका प्रसिद्ध गीत वन्दे मातरम् राष्ट्र गीत बन गया था।

(४) कर्जन की प्रतिगामी नीति

लार्ड कर्जन की शासन नीति से भी भारत में उग्रवादी राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन मिला। उसने शासन में केन्द्रीयकरण की नीति अपनायी। उसने कलकत्ता नगर निगम अधिनियम (१८९९ ई०) पारित कर निगम की प्रजातान्त्रिक प्रणाली को समाप्त कर दिया और भारतीय विश्वविद्यालय-अधिनियम पारित करके महाविद्यालयों पर सरकारी नियन्त्रण को बढ़ा दिया। साम्राज्यवादी वैदेशिक नीति अपना कर सैनिक व्यय में काफी वृद्धि की। उसके विचार में भारतीयों की जाति न केवल पिछड़ी हुई थी बल्कि उत्तरदायी पदों के भी अयोग्य थी। कर्जन के इन सब कार्यों से उग्रवादी राष्ट्रीयता को काफी प्रोत्साहन मिला।

(५) जाति भेद की नीति

उग्रवाद के उदय का एक कारण अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी जाति भेद की नीति थी। अंग्रेज लोग भारतीयों को निम्न प्रजाति का समझते थे तथा उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे। आंग्ल भारतीय समाचारपत्र खुले रूप में अंग्रेजों को भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करने को प्रोत्साहन देते थे। सरकार की ओर से भी उन्हें प्रोत्साहन मिलता था। अंग्रेज भारतीयों के साथ अशिष्ट व्यवहार करते थे। किसी भारतीय की हत्या कर देने पर भी अंग्रेजों को नाम मात्र की सजा दी जाती थी। लार्ड कर्जन की नीतियों ने जातिभेद की नीति को काफी प्रोत्साहित किया था। कर्जन की मान्यता थी कि पश्चिमी लोगों में सभ्यता और पूर्वी लोगों में मक्कारी पायी जाती है। जाति भेद की नीति ने भारतीयों में प्रतिशोध की भावना को उभारा और उन्हें उग्रवादी बना दिया।

(६) भिक्षावृत्ति नीति पर से विश्वास का समाप्ति

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ के वर्षों ने भिक्षा वृत्ति की नीति को अपनाया था। किन्तु उस नीति से अंग्रेजों की जन विरोधी शासन प्रणाली में परिवर्तन नहीं आया। लार्ड कर्जन के शासन-काल में इस नीति का उल्टा ही प्रभाव पड़ा। भारत वासी नागरिकों की मांगों के प्रति सरकार का रुख दिन प्रतिदिन अधिक कठोर

चला गया। फलतः नवयुवकों के हृदय में सरकार की नीति के प्रति असंतोष तथा रोष उत्पन्न होना प्रारम्भ हो गया और उनका विश्वास अंग्रेजों पर से उठता चला गया। तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय जैसे नेताओं ने यह अनुभव किया कि उदारवादियों द्वारा प्रतिपादित नीति का अनुसरण करने से कोई लाभ नहीं मिलेगा। अतः उनके नेतृत्व में नवयुवकों ने उग्र कार्यक्रम तथा क्रांतिकारी साधनों को अपनाने का निश्चय किया। इस समय तक नवयुवकों को यह विश्वास हो गया था कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों के कष्टों के प्रति पूर्णतया उदासीन है अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उन्हें अपने ही पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा।

(७) विदेशी प्रभाव

विदेशी घटनाओं ने भी देश को हीनता और निराशा की भावनाओं को दूर किया। सन् १८८४ में एबीसीनिया जैसे छोटे से देश की सेना ने इटली जैसे शक्तिशाली राष्ट्र की सेना को पराजित किया। इस घटना के फलस्वरूप भारतीयों के हृदय से अंग्रेजी शासन की सैनिक शक्ति का भय दूर हो गया। मिश्र, फारस, टर्की के स्वातन्त्र्य संघर्षों से भारतीयों को और अधिक प्रेरणा मिली। १९०५ ई० में जापान ने रूस को पराजित कर दिया। इस घटना से भी भारतीय जनता अत्यन्त प्रभावित हुई। देश के शिक्षित नवयुवक जापान की इस तीव्र प्रगति के कारणों को जानने के लिए उत्सुक हो उठे। उनके हृदय पर जापान के त्याग और देश भक्ति की भावना का गहरा प्रभाव पड़ा। दक्षिण अफ्रीका में श्वेत जातियों के भारतीयों के प्रति अपमानतापूर्ण व्यवहार ने भी भारतवासियों की भावनाओं में घी की आहुति डालने का काम किया। सन् १८९४ में नटाल में भारतीयों को मताधिकार से वंचित कर दिया गया था तथा १८९७ ई० में उनके ऊपर स्वामी गुलाम का एक अधिनियम थोप दिया गया था। इन समस्त कारणों के फलस्वरूप भारतीयों के मन में असन्तोष की चिनगारी को तेजी से सुलगाने एवं ज्वलित करने में सहायता मिली एवं देश में उग्रवाद का पौधा फूलने फलने लगा।

उग्रवादी आंदोलन का विकास

उग्रवादी आंदोलन का प्रारम्भ सन् १८९६-९७ ई० के दक्षिण के भयंकर अकाल के फलस्वरूप हुआ। ऐसा भयंकर अकाल अभी तक इससे पहले न कभी देखा न जाना और न ही सुना गया था। अकाल में मृत्यु को रोकने एवं जनता की सहायता करने का सरकारी कार्य अत्यन्त प्रभावहीन था। जिस समय गरीब जनता भूख से तड़प-तड़प कर मक्खियों की भांति मर रही थी, लार्ड एल्गिन सैनिक कार्यों पर असंख्य रुपया खर्च कर रहे थे। बालगंगाधर तिलक ने दक्षिण के किसानों में लगानबन्दी आंदोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने प्रजा को चेतावनी दी कि वह कायरता और भूख से जान न दे और लगान चुकाने के लिए अपनी सम्पत्ति न बेचे। उन्होंने कहा था क्या तुम उस समय भी साहसी नहीं बन सकते जब मौत तुम्हारे ऊपर नाच रही है।

१८९७ ई॰ के भूचाल और प्लेग ने दक्षिण भारत की जनता के कष्टों को और भी भयंकर रूप दे दिया। पूना में प्लेग का कोप अधिक था और सरकार ने एक ब्रिटिश रजीमेण्ट के द्वारा भांति भांति से सफाई के काम कराए किन्तु सनिकों के दुर्व्यवहार से जनता और भी क्रुद्ध हुई। सैनिक घरों में घुस जाते थे। वे अनेक प्रकार के दुर्व्यवहार करते थे। वे लोग मन्दिरों में घुसकर देवी देवताओं पर चढ़े हुए नवेद्य को भी खा जाते थे। विक्टोरिया की जयन्ती के अवसर पर दो नव युवकों ने प्रसन्न एवं बदनाम प्लेग कमिश्नर मि॰ रण्ड और ब्रिटिश रजीमेंट के लेफ्टिनेन्ट मि॰ आयस्ट को गोली मार दी। बम्बई सरकार ने विद्रोह के षडयन्त्र का सन्देह किया। नत्थू बन्धुओं का जिनका हत्या से कोई सम्बन्ध नहीं था नजर बन्द कर लिया गया। तिलक को १८ माह का सख्त कैद की सजा दी गयी। इन घटनाओं से उग्रवादी आंदोलन को काफी शक्ति प्राप्त हुई। कांग्रेस के १३वें अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था तिलक की कैद पर सम्पूर्ण राष्ट्र रो रहा है। सरकार की दमनकारी नीति ने असन्तोष की चिनगारी को और भी सुलगा दिया। लार्ड एल्गिन ने अवकाश ग्रहण करते समय शिमला के यूनाइटेड सर्विसेज क्लब में भाषण देते हुए एक बेवकूफी की घोषणा की कि हिन्दुस्तान तलवार के जोर से जीता गया था और तलवार के जोर से ही उसकी रक्षा की जायगी। १८९८ ई॰ में शराब के नशे में पागल तीन ब्रिटिश सैनिकों ने कलकत्ता के डाक्टर सुरेशचन्द्र सरकार पर खूनी हमला किया। इससे बंगाल की जनता में क्रोध की लहर दौड़ गयी। भारतीयों को उस समय और भी अधिक दुःख हुआ जब कलकत्ता उच्च न्यायालय ने जिसमें अधिकतर अंग्रेज न्यायाधिकारी ही थे इन अपराधियों को हत्या के अपराध से पूर्णतः मुक्त कर दिया और उन्हें केवल सख्त हमले का ही दोषी ठहराया।

बंगाल विभाजन और स्वदेशी आन्दोलन

बंगाल का प्रान्त सब से बड़ा प्रान्त था जिसमें चार प्रदेश थे बंगाल बिहार उड़ीसा और छोटा नागपुर। सन् १९०१ की जनगणना के अनुसार इसकी जन संख्या आठ करोड़ थी जिसमें एक तिहाई मुसलमान थे। सरकार के समक्ष इस प्रान्त के विभाजन का प्रश्न पहले से ही था। सन् १८९२ में दीवानी और सैनिक विभाग के विशेषज्ञों की एक समिति में इस प्रश्न के शासन पर उत्तर पूर्वी सीमा सुरक्षा के दृष्टिकोण से विचार किया गया था। शासन की सुविधा के लिए उनकी राय में लुशाई पहाड़ियों और चिटगांव कमिश्नरी को आसाम के सुपुर्द कर देना आवश्यक था। सरकार ने इस ओर उस समय कोई ध्यान नहीं दिया। इसके पश्चात् १८९६ ई॰ में सर विलियम वार्ड ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। वे चाहते थे कि ढाका और मयमनसिंह के जिले आसाम में मिला दिए जाएं। परन्तु सर विलियम मार्कम ने जो उनके पश्चात् वहां के गवर्नर हुए इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सन् १९०३ में सर एण्ड्रयू फ्रेजर ने सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि पूर्वी बंगाल के कुछ भाग आसाम को दे दिए जाएं। लार्ड कर्जन ने इस सिद्धान्त को

स्वीकार कर लिया तथा बंगाल के विभाजन की १९०४ ई० में घोषणा कर दी। बंगाल विभाजन का कारण यह बताया गया कि एक पुरुष के कन्धों पर बंगाल प्रदेश का शासन भारी बोझ है। उस प्रदेश के गवर्नर का अधिकांश समय कलकत्ता में ही व्यतीत होता है क्योंकि वह देश की राजधानी है। वह अन्य भागों के शासन पर उचित ध्यान नहीं दे पाता है। इसका परिणाम यह है कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल के शासन में व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव है। अंग्रेज सरकार की नीति का समर्थन करने वाले 'कलकत्ता रिव्यू' ने लिखा, 'बंगाल व हिन्दुस्तान प्रान्त का विभाजन शासन की सुविधा के लिए बहुत जरूरी है और अधिकारियों की कठिनाइयों में रुचि रखने वाले व्यक्ति इस बात से सहमत हैं'।

पर इस विभाजन की असली योजना को गुप्त रखा गया जिससे यह प्रकट होता है कि बंगाल का विभाजन शासन की सुविधा की दृष्टि से नहीं किया गया था। इसका एक मूल उद्देश्य बंगाल में उभरती हुई राष्ट्रीय भावना का दमन करना था तथा हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट पैदा करके एक नया प्रान्त बनाना था जिसमें मुसलमानों की प्रधानता रहे। हिन्दुओं की ओर से स्वशासन की आवाज सुनायी देने लगी थी और मुसलमान अपने नेता सैयद अहमद खाँ द्वारा स्वामिभक्ति की नीति का पालन कर रहे थे। यह अंग्रेजी शासन के लिए अपशकुन था अतः इसका एक उपाय यही था कि भारतवासियों को एक दूसरे के विरुद्ध उभारा जाए। बंगाल का विभाजन भारत की राष्ट्रीयता को एक चुनौती थी। देश ने इस चुनौती को स्वीकार किया। परिणामस्वरूप भारत में एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिससे देश की स्वतन्त्रता में बड़ा योग मिला।

१९ जुलाई १९०५ ई० को लार्ड कर्जन ने बंगाल विभाजन की घोषणा की। पूर्वी बंगाल और आसाम के नए प्रदेश का निर्माण किया गया और उसका पृथक् लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त किया गया। नए प्रान्त में बंगाल के पूर्वी भाग ढाका, चिटगाँव, राजशाही, माल्दा और त्रिपुरा के राज्य ब्रह्मपुत्र और सुरमा घाटी के जिलों के साथ मिला दिए गए। शेष जिले बिहार और उड़ीसा के प्रान्तों के साथ बंगाल प्रान्त के नाम से रहे। इस विभाजन से पूर्वी बंगाल में बंगालियों की प्रभुता समाप्त हो गया और कलकत्ता के उच्च न्यायालय का प्रभाव क्षेत्र भी संकुचित हो गया। बंगाल विभाजन की घोषणा से सम्पूर्ण देश की राष्ट्रीय भावनाओं को गहरी ठेस पहुँची। डॉ० जकारिया के शब्दों में 'यह कार्य अपने उद्देश्य और प्रभाव से एक धूर्ततापूर्ण कार्य था।'

बंगाल विभाजन के प्रस्ताव के सामने आने पर कलकत्ता में महाराजा जितीन्द्र मोहन ठाकुर की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया जिसमें सरकार से बंगाल विभाजन के सम्बन्ध में कुछ संशोधन तथा परिवर्तन करने की प्रार्थना की गयी। लॉर्ड कर्जन ने इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। पुनः ७ अगस्त को कलकत्ता में एक विराट जनसभा का आयोजन किया गया। इसके

प्रतिदिन समस्त बंगाल में जन सभाएं हुई। इन सभाओं में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को स्वीकृत किया गया। जन विरोध के बावजूद योजना को १६ अक्टूबर १९०५ ई० को क्रियान्वित कर दिया गया। बंगाली जनता ने १६ अक्टूबर शोक दिवस के रूप में मनाया। इस अवसर पर चार कार्यक्रमों को अपनाया गया था।

१. विभाजित प्रान्तों की एकता के प्रतीक स्वरूप पुरुषों की कलाइयों में लाल धागे बांधे गए।

२. हड़ताल और उपवास।

३. फैडरेशन हाल का शिलान्यास किया गया जिसमें सभी जिलों की मूर्तियों को रखा गया था और पृथक किए हुए जिलों की मूर्तियों को पुनः एकता तक ढका रखा जाना था।

४. बुनकर उद्योग की सहायता के उद्देश्य से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा एक राष्ट्रीय निधि की स्थापना की गयी।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा विपिनचन्द्र पाल ने नए प्रान्त का दौरा कर विभिन्न स्थानों पर सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया और जनता से विदेशी माल के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग करने की प्रार्थना की। राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी अपने अधिवेशनों (१९०५ और १९०६) में बंगाल विभाजन का जोरदार शब्दों में विरोध किया। नवयुवकों तथा विद्यार्थियों में यह आन्दोलन काफी लोकप्रिय हुआ। वन्देमातरम् के गान से सारा बंगाल गूंज उठा और सार्वजनिक सभाओं के आयोजन ने एक नया वातावरण पैदा कर दिया। श्री रघुवंशी एवं लाल बहादुर ने जनभावना का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। वे लिखते हैं, "प्रातःकाल से ही शहरों की सड़कें वन्देमातरम् के नारे से गूंज उठी थीं। झुंड के झुंड नदी के किनारे एकत्रित हो रहे थे और प्रत्येक एक दूसरे की कलाई में राखी बांध रहे थे। ग्राम महिलाएं ने वीरता भरे गीत गा गाकर जनता में देशभक्ति की भावना जागृत की। तदुपरान्त विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और प्रान्त के कोने कोने में तथा प्रान्त के बाहर सभाएं की गयीं। सरकारी दमन ने आन्दोलन को और भी शक्तिशाली बनाया। मन्दिरों के पुजारियों तक ने आन्दोलन का साथ दिया। इस आन्दोलन में विद्यार्थियों ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक कार्य किया। उन्होंने विदेशी माल की होलियां जलाई और विदेशी माल की दुकानों पर धरना दिया। वन्देमातरम् के गीत पर नियन्त्रण तथा आन्दोलनकारियों की गिरफ्तारियों से आन्दोलन ने और भी उग्र रूप धारण किया। पूर्वी बंगाल के गवर्नर सर फुलर की कहावत कि "उनके दो बीवियां हैं एक हिन्दू एक मुसलमान किन्तु वह दूसरी को अधिक चाहता है" ने विभिन्न वर्ग की भावनाओं को अत्यधिक उत्तेजित किया और आन्दोलन में तीव्र क्रान्तिकारी भावना की जागृति हुई। विदेशी माल का बहिष्कार एक धार्मिक प्रतिज्ञा बन गई और प्रत्येक बंगाली जिह्वा पर यह वचन थे कि "ईश्वर को साक्षी करके हम प्रतिज्ञा करते हैं कि जहांतक सम्भव और

व्यावहारिक हो सकता हम देश का बना हुआ माल ही प्रयोग करेंगे और विदेशी माल का बहिष्कार करेंगे। भगवान हमारी सहायता करे।

आन्दोलन के साथ सरकारी दमन नीति भी जारी रही। हिंदू जनता को तीव्र दमन का शिकार बनाया गया। ममनसिंह जिले में दो लड़कों पर केवल इसलिए जुर्माना कर दिया गया कि वे वन्देमातरम् का गान कर रहे थे। सार्वजनिक सभाओं को भंग किया गया अध्यापकों को चेतावनियां दी गयीं एवं देश भक्तों को नाना प्रकार की अनोखी सजाएं दी गयीं। फुलर ने मुसलमानों के प्रति खुला आम पक्षपात आरम्भ कर दिया। हिन्दुओं पर अत्याचार किया गया उनका रक्तपात हुआ और मुसलमान अत्याचारियों को उनके तिरस्कृत कार्यों के लिए कोई दंड नहीं दिया गया। एक स्थान पर मुसलमानों ने ढोल बजा बजा कर यह घोषणा की कि सरकार ने उन्हें हिन्दुओं को लूटने की आज्ञा दे दी है। उन्होंने यह भी प्रचार किया कि उन्हें सरकार से हिंदू विधवाओं के साथ विवाह करने की अनुमति मिल गयी है।

एक मुसलमान अपराधी ने अपने सहधर्मियों की एक भीड़ के सामने एक सूचना पढ़ते हुए कहा कि सरकार तथा ढाका के नवाब बहादुर की आज्ञाओं के अनुसार कोई भी मनुष्य हिंदुओं को लूटने और उन पर अत्याचार करने के लिए दंडित नहीं किया जाएगा। इस घटना के पश्चात् शीघ्र ही मुसलमानों ने एक मंदिर में काली की मूर्ति को तोड़ डाला और हिंदू व्यापारियों की दुकानें लूट लीं। मोहन सिंह ने सत्य ही लिखा है कि "यह दमन काल की घटनाएं सभी सम्बन्धित पक्षों के लिए निन्दनीय हैं। हिन्दुओं के लिए उनकी भीरुता के कारण क्योंकि उन्होंने मन्दिरों के अपवित्रीकरण मूर्तियों के खंडन और स्त्रियों के अपहरण के विरुद्ध बल का प्रयोग नहीं किया स्थानीय मुस्लिम जनता के लिए नीच व्यक्तियों के कार्यों के कारण एवं अंग्रेजी सरकार के लिए इस कारण कि उसके प्रशासन में इस प्रकार की घटनाएं बिना रोकटोक बहुत दिनों तक होती रहीं।

बंगाल के विभाजन का भारतीय राजनीति और राष्ट्रीय आन्दोलन पर अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। बंग भंग आन्दोलन ने सोयी हुई जनता को जगा दिया। स्वदेशी आन्दोलन और वन्देमातरम् के नारे ने जनता की सुप्त शक्तियों को जागृत कर दिया।

राष्ट्रीय एकता की प्रबल भावना ने उनकी स्वतन्त्रता प्राप्ति की इच्छा को काफी दृढ़ बना दिया। बंगाल विभाजन की घटना ने भारतीय राजनीति में उग्रवादिता की प्रगति को तीव्रता प्रदान की। भारतीयों का अंग्रेजों की सत्यनिष्ठा और न्यायप्रियता से विश्वास उठ गया भिक्षावृत्ति के उपायों से उनका विश्वास समाप्त हो गया। फलतः उन्होंने उग्रवादी उपायों को अपनाना आवश्यक समझा और भारतीय राजनीति में गरम दल वालों का बोलबाला हो गया। बंग भंग विरोधी आंदोलन ने क्रांतिकारी आन्दोलन को भी जन्म दिया। बंग विच्छेद के फलस्वरूप भारतीय राजनीति में स्वदेशी आंदोलन का समावेश हुआ। इस अंतर्गत

विदेशी माल का बहिष्कार स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग तथा स्वदेशी-संस्थाओं पर बल दिया जाता था। आगे चलकर महात्मा गांधी ने स्वदेशी आंदोलन को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के एक प्रमुख अस्त्र के रूप में अपनाया। बंग भंग की अवधि में लॉर्ड कर्जन ने फूट डालो और शासन करो की नीति को अपनाकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच खाई उत्पन्न की। कई स्थानों पर दंगे हुए तथा हिन्दुओं के साथ घोर अन्याय किया गया। इस आंदोलन के कारण पुनः एक बार हिन्दू धर्म अपने सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा को आंकने में कुछ हद तक समर्थ बनने की तैयारी करने लगा। अन्ततः यह आन्दोलन भारत के राष्ट्रीय क्षितिज पर अत्यन्त सफल आंदोलन कहा जा सकता है जिसने देश की धड़कनों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर राष्ट्र को नया जीवन प्रदान किया।

उग्रवादी राष्ट्रीयता का उद्देश्य और कार्य प्रणाली

उग्रवादियों का उद्देश्य स्वराज्य की प्राप्ति थी। उनके अग्रणी नेता तिलक का कहना था "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा।" अरविंद घोष ने भी कहा था "स्वतन्त्रता हमारे जीवन का लक्ष्य है और हिन्दू धर्म के माध्यम से ही इस आकांक्षा की पूर्ति हो सकती है।" सर हेनरी काटन ने उग्रवादियों के उद्देश्य का वर्णन इस प्रकार किया है "वे भारतवर्ष में एक पूर्णतः स्वतन्त्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करना चाहते थे।" तात्पर्य यह है कि उग्रवादियों का लक्ष्य स्वतन्त्रता प्राप्ति था। वे स्वतन्त्रता के महान् उपासक थे। वे उदारवादियों की भांति स्वशासन चाहते थे परन्तु शासन संस्थाओं की रचना भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं के अनुसार करना चाहते थे तथा ब्रिटेन से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद चाहते थे। थियोडोर एल० शे के तिलक के सम्बन्ध में व्यक्त विचार से उग्रवादियों का उद्देश्य और भी स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने लिखा है "इस नेता को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि स्वराज्य भारत के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि नैतिक दृष्टि से भी सर्वथा उचित है। उन्होंने लोगों को उपदेश दिया कि हम स्वराज्य की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि हम यूरोपीय ढंग की नकल करना चाहते हैं बल्कि जीवन के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार स्वराज्य हमारी एक अनिवार्य नैतिक आवश्यकता है।" संक्षेप में उग्रवादियों के लिए स्वराज्य केवल एक राजनीतिक ही नहीं वरन् नैतिक और धार्मिक आवश्यकता थी जिसकी प्राप्ति उनका चरम उद्देश्य था।

उग्रवादी उदारवादियों के तरीकों में विश्वास नहीं करते थे। राजनीतिक भिक्षावृत्ति उनको मान्य नहीं थी। उनका विश्वास था कि राजनीतिक सत्ता प्रार्थना करने से प्राप्त नहीं हो सकती। तिलक ने कहा था "हमारा उद्देश्य आत्मनिर्भरता है भिक्षावृत्ति नहीं।" इसी प्रकार विपिनचन्द्र पाल का कहना था "अगर सरकार स्वतः एवं स्वराज्य का दान देती है तो मैं उसे धन्यवाद [illegible] गा लेकिन मैं उसे स्वीकार नहीं करूंगा जबतक कि मैं उसे स्वयं हासिल न कर पाऊं।" उग्रवादी व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थक थे। इस उद्देश्य से वे भारतीयों को राष्ट्रीयता तथा

देश भक्ति की भावना से प्रेरित कर सगठित राजनैतिक आन्दोलन के लिए तैयार करना चाहते थे। उनका विश्वास सगठन शक्ति और आत्म निर्भरता में था। उग्रवादियों का विश्वास था कि प्रार्थनापत्र, निवेदन भाषण देने और प्रस्ताव पारित करने से स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसके लिए जनता को जागृत कर राजनैतिक आन्दोलन का सचालन कर सरकार पर अधिक से अधिक दबाव डालना होगा तथा देशवासियों को मातृभूमि के लिए कष्ट सहन करना होगा और त्याग करना पड़ेगा।

उग्रवादियों का विश्वास सक्रिय विरोध एव सत्याग्रह में था। लाला लाजपत राय ने सक्रिय विरोध के दो लक्षण बतलाए थे। पहला भारतीयों के मन में घर की हुई ब्रिटिश शासकों की सर्वशक्तिसम्पन्न और परोपकारिता की भावना को दूर करना, दूसरा देशवासियों में स्वतन्त्रता के लिए भावपूर्ण प्रेम और त्याग व कष्ट सहन के लिए तत्पर रहने की भावना को जागृत करना। उग्रवादियों के सक्रिय कार्यक्रम में तीन बातें बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा सम्मिलित थी। बहिष्कार से तात्पर्य विदेशी वस्तुओं, विदेशी सरकार तथा उसकी नौकरी का बहिष्कार था। स्वदेशी से तात्पर्य स्वदेशी वस्तुओं, स्वदेशी सरकार एव स्वदेशी व्यवस्था की स्थापना से था।

उग्रवादी राष्ट्रीयता की विशेषताए

१ उग्र राष्ट्रवादी पाश्चात्य सभ्यता एव संस्कृति से घृणा करते थे और भारतीय सभ्यता एव संस्कृति को श्रेष्ठ मानते थे। धार्मिक जागृति से इन्हें विशेष प्रेरणा मिली थी।

२ उग्रवादी स्वराज्य के अतिरिक्त अपनी संस्कृति एव परम्पराओं के अनुरूप देशवासियों का चरित्र निर्माण करना चाहते थे।

३ उग्रवादियों को ब्रिटिश जाति की सर्वशक्तिशालिता, न्यायप्रियता एव परोपकारिता में तनिक भी विश्वास नहीं था।

४ उग्रवादी ईश्वर, देश एवं आत्मनिर्भरता में विश्वास करते थे।

५ उग्रवादियों को यह विश्वास था कि भारत और ब्रिटेन के आर्थिक हितों में विरोध है। अतः वे जल्द से जल्द ब्रिटेन से आर्थिक एव व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद के पक्ष में थे।

६ भारतीयों में नयी राष्ट्रीयता को जगाना और त्याग व कष्ट सहन के मार्ग को अपनाना उग्रवादियों के प्रमुख साधन थे।

७ उग्रवादियों को उदारवादियों की भीख मागने की नीति में विश्वास नहीं था। वे सक्रिय राजनैतिक आन्दोलन में विश्वास करते थे।

उदारवादियों और उग्रवादियों में अन्तर

उग्रवाद के विभिन्न पहलुओं को जान लेने के बाद उदारवाद से उसका अन्तर जान लेना अधिक सुविधाजनक होगा। उदारवादी एव उग्रवादी कांग्रेस के ही दो भाग

थे जिन्हें नरमपंथी और गरमपंथी कहा जाता है। दोनों दलों में भिन्न अन्तर था —

१ उदारवादी स्वभाव से नरम थे और वे अंग्रेजों की भलमनसाहत पर पूरा भरोसा करते थे। इसके विपरीत उग्रवादी क्रांतिकारी स्वभाव के विचारों के थे।

२ उदारवादियों पर पाश्चात्य संस्कृति का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है जबकि उग्रवादी हिन्दू राष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित थे।

३ उदारवादी ब्रिटिश राज्य को भारत के लिए वरदान समझते थे और इसके जारी रहने में ही भारत का कल्याण समझते थे। इसके विपरीत उग्रवादी इस ब्रिटिश नौकरशाही के राज्य को भारत के लिए महान् अभिशाप समझते थे और भारत की सर्वांगीण प्रगति के लिए जितना जल्दी सम्भव हो इसको समाप्त करना आवश्यक समझते थे।

४ उदारवादी क्रान्तिकारियों की गतिविधियों को देश के हितों के विरुद्ध समझते थे। इसके विपरीत उग्रवादी क्रांतिकारी एवं राष्ट्रवादी तत्त्वों की गतिविधियों को देश के लिए हितकर समझते थे।

५ उग्रवादियों के पास सामाजिक आर्थिक राजनीतिक स्वदेशी स्वावलम्बन आदि सभी दृष्टियों से ठोस कार्यक्रम था इसके विपरीत उदारवादियों के पास संसदीय क्षेत्रों में सरकार की गतिविधियों की गुणावगुण के आधार पर आलोचना करने के अलावा और कोई कार्यक्रम नहीं था।

६ उदारवादियों का लक्ष्य वैधानिक स्वराज्य की प्राप्ति था इसके विपरीत उग्रवादी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते थे।

७ उदारवादी प्रार्थनापत्र आवेदन भेजने और अन्य संवैधानिक तरीकों को अपनाने में विश्वास करते थे इसके विपरीत उग्रवादी अधिकारों की प्राप्ति के लिए ताल ठोक कर राजनीतिक संघर्ष में विश्वास करते थे। उदारवादी किसी भी परिस्थिति में ऐसे साधनों का सहारा नहीं लेना चाहते थे जिससे अंग्रेजों की कठिनाइयाँ बढ़ें इसके विपरीत उग्रवादी अंग्रेजों की किसी भी कमजोरी का लाभ उठाकर उन्हें और अधिक कमजोर बनाने से नहीं हिचकते थे।

८ उदारवादियों का कार्यक्षेत्र संसदीय गतिविधियों तक ही सीमित था इसके विपरीत उग्रवादी गाँव गाँव नगर-नगर तक को अपने कार्य क्षेत्र में शामिल करना चाहते थे।

९ *उदारवादियों के असन्तोष में उच्चवर्ग और शिक्षित वर्ग के असन्तोष की* झलक मिलती है इसके विपरीत उग्रवादियों के असन्तोष में मध्यमवर्गीय और जनसाधारण का असन्तोष मुखर हुआ था।

१ उदारवादी वृद्ध राजनीतिक आरामकुर्सी पर बैठकर समस्याओं का समाधान चाहता था उग्रवादी पुरुषार्थ की भावना को संजोकर राष्ट्रीय भावना को पूर्ण करना चाहते थे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक बुद्धि-पक्ष था तो दूसरा भाव-पक्ष। पहला जहां कुछ मानसिक सुविधाएं प्राप्त करना चाहता था वहां दूसरे का उद्देश्य राष्ट्र में मानसिक परिवर्तन करना था। एक सम्पूर्ण रूप से पाश्चात्य संस्कृति का उपासक था तो दूसरा पक्ष भारतीय संस्कृति का अनन्य साधक था। एक पक्ष में विश्वास की कमी थी तो दूसरा पक्ष सम्पूर्ण आत्मविश्वास को संजोकर अपने रागात्मक तरीकों को सफल बनाने में जुटा हुआ था। पहला पक्ष देश की भूमि के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में ज्यादा सफल नहीं हुआ दूसरा पक्ष अपने आकर्षक कार्यक्रमों के कारण देश की जनता का विश्वास-सम्पादन करने में पूर्ण रूप से सफल हुआ। एक का नेतृत्व शिक्षित और उच्च वर्ग के लोगों के हाथ में था तो दूसरे का नेतृत्व मध्यमवर्गीय और साधारण व्यक्तियों के हाथ में था। एक पक्ष भारतीय संस्कारों के ज्यादा अनुकूल नहीं था तो दूसरा पक्ष ज्यादा अनुकूल था।

निष्कर्ष यह है कि साधनों विचारों और लक्ष्यों में आमूलचूल भेद होने पर भी दोनों ही पक्ष एक दूसरे के विरोधी नहीं थे प्रत्युत पूरक थे। दोनों का ही लक्ष्य स्वाभाविक रूप से देश में राष्ट्रीयता की शक्तियों को मजबूत बनाना था और दोनों ही पक्षों के नेता राष्ट्र-हित की अनन्य भावना से प्रेरित होने के कारण उच्चकोटि के देशभक्त थे। भारत की सभी मोर्चों पर प्रगति चाहते थे। अन्तर केवल जन-हृदय के स्पन्दन को आंकने का था और इसी बात ने उनको अलग अलग राह का राही बनने के लिए विवश कर दिया था। उदारवादियों और उग्रवादियों में जो मूलभूत अन्तर था उसका एक मात्र पक्ष सांस्कृतिक पक्ष था। इसी पक्ष के कारण उन्होंने विभिन्न स्वभाव विचार साधन कार्यक्रम लक्ष्य कार्य क्षेत्र और जन असंतोष को मापने के साधनों का अवलम्बन किया।

उग्रवादी राष्ट्रीयता के अग्रदूत

बालगंगाधर तिलक लाला लाजपतराय और विपिनचन्द्र पाल उग्रवादी राष्ट्रीयता के अग्रदूत कहे जाते हैं। हम यहां इनकी चर्चा करेंगे।

बालगंगाधर तिलक

तिलक को भारतीय उग्र राष्ट्रवाद का जनक कहा जाता है। भारत में उग्रवादी राष्ट्रीयता का प्रारम्भ ही महाराष्ट्र में हुआ जिसे तिलक ने नेतृत्व प्रदान किया। तिलक ने भारतीय राजनीति को एक नयी दिशा प्रदान की। उनके प्रभाव से कांग्रेस में उदारवादियों के स्थान पर उग्रवादियों का प्रभाव बढ़ा। तिलक को अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा कांग्रेस की भिक्षा-वृत्ति की नीति में तनिक भी विश्वास नहीं था। उनका कहना था, स्वतन्त्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और उसे हम लेकर ही रहेंगे। तिलक सिर्फ महाराष्ट्र के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत के एकछत्र नेता थे। उनकी विलक्षण बुद्धि और अप्रतिहत इच्छा शक्ति देश सेवा की वेदी पर न्योछावर थी। उनके अभूतपूर्व

बलिदानो ने उन्हे पहले महाराष्ट्र का और बाद म सम्पूर्ण भारत का छत्र रहित सम्राट बना दिया था।

तिलक का जन्म १८५६ ई म एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार म हुआ था। उनका सावजनिक जीवन पूना मे स्थापित यू इंगिलश स्कूल क साथ प्रारम्भ हुआ। उसी समय उन्होने अपने मित्र आगरकर की सहायता से केसरी और मराठा नामक पत्रो का प्रकाशन शुरू किया। इन पत्रो द्वारा महाराष्ट्र म राष्ट्रीय भावना की जागृति को बहुत अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। आपत्तिजनक प्रकाशन के आरोप पर तिलक को १०१ दिन का कठोर कारावास दिया गया। इस घटना न उनकी तथा समाचारपत्रो की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा दी। सन् १८६ मे तिलक दक्षिण शिक्षा समिति से पृथक होकर काग्रेस मे सम्मिलित हो गए। उन्होने काग्रेस की उदारवादी नीति का विरोध किया और भारतीय राजनीति म उग्रवाद को जन्म दिया। उन्होने आन्दोलन का सुसगठित करने के उद्देश्य से महाराष्ट्र म नवयुवको क बीच काय करना आरम्भ किया। नवयुवको म आत्मविश्वास आत्मबलिदान तथा उत्साह उत्पन्न करने के उद्देश्य से तिलक ने गौवध विरोधी समितियो अखाडो और लाठी क्लबो की स्थापना की। १८६३ ई म तिलक ने बडी धूमधाम से समस्त महाराष्ट्र म गणपति उत्सव मनाया जिसके द्वारा नवयुवको को सम्मिलित रूप म काय करने की शिक्षा दी गयी। सन् १८६५ मे उन्होने शिवाजी उत्सव का आयोजन किया। इससे जनता को प्रेरणा दी गई कि वह शिवाजी की भाँति काय करने के लिए तयार हो तथा देश को विदेशी-सत्ता से मुक्ति दिलवाने का प्रयत्न करे। इसी समय महाराष्ट्र मे भीषण अकाल पडा तथा प्लग का प्रकोप हुआ। सरकार के रवये स जनता म बडा असन्तोष फला और रैण्ड तथा आयस्ट की हत्या कर दी गयी। यद्यपि तिलक का इन हत्याओ स कोई सम्बन्ध न था फिर भी सरकार की आँखो मे बराबर खटकते रहने के कारण उन्हे गिरफ्तार कर १८ मास के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। जल से मुक्त होने पर जनता ने तिलक का हार्दिक स्वागत किया। उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गई तथा व महाराष्ट्र के एकछत्र नेता बन गए।

अब तिलक उग्रवादी बन गए और अपने काय मे पुन जुट गये। सन् १६०५ म बगाल विभाजन के अवसर पर तिलक ने बगाल के नेताओ का साथ दिया और अपने पत्रो द्वारा उन्होने सरकार की कटु निन्दा की। सन् १६०७ मे काग्रेस का सूरत म अधिवेशन हुआ जहा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि तिलक तथा उनके साथियो को काग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद करना पडा। सन् १६०८ मे तिलक को राजद्रोह के अपराध म पुन बन्दी बना लिया गया और 6 वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड देकर उन्हे माण्डले जेल म भेज दिया। माण्डले जेल मे उन्होने गीतारहस्य तथा दी आर्कटिक होम आफ दी वेदाज नामक ग्रंथों की रचना की। जेल से मुक्त होने पर व भारत लौटे। उन्होने १६१६ ई में एनी

बिसेंट द्वारा संचालित होम रूल आन्दोलन का समर्थन किया तथा अपना सक्रिय सहयोग दिया। इसी वर्ष उग्रवादियों तथा उदारवादियों में समझौता हुआ और तिलक अपने साथियों सहित कांग्रेस में आ मिले। २४ जुलाई १९ को उनका देहावसान हो गया।

गांधीजी ने तिलक को आधुनिक भारत का निर्माता कहा है। गांधीजी के शब्दों में अशिक्षित जनता ... आत्मा है। वस्तुतः भारत के राजनैतिक नेताओं में तिलक का अत्यन्त ऊँचा स्थान है। वे उग्र राष्ट्रवादी आन्दोलन के जन्मदाता थे। राष्ट्रीयता के सच्चे पुजारी रहे हैं। उनमें नीति प्रति, दृढ़ निष्ठा और उच्च चरित्र का त्रिगुणात्मक संयोग था। उनकी बुद्धि, निष्ठा और पाण्डित्य ने ... असीम शक्ति ने उनको जनता का प्रिय नेता बना दिया था। एक अमरीकी विद्वान ने कहा है कि "जब भारत में आधुनिक राजनीतिक जागृति प्रारम्भ हुई तो सर्वप्रथम तिलक ने ही स्वराज्य की आवश्यकता और उसके लाभों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने सर्वप्रथम ही स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग, राष्ट्रीय शिक्षा, जनप्रिय संयुक्त राजनीतिक मोर्चे आदि आन्दोलन के उपायों की नींव डाली जिनके द्वारा स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण सहायता मिली। वे भारत में हिन्दू धर्म के महान् पुजारी थे जिसका आधार कट्टर हिन्दू धर्म था।

तिलक का कहना था कि स्वराज्य भारत के लिए केवल आवश्यक ही नहीं बल्कि नैतिक दृष्टिकोण से भी सर्वथा उचित है। तिलक यथार्थवादी राजनीतिज्ञ तथा एक व्यावहारिक व्यक्ति थे। उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम विकसित किया, सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों का समर्थन किया और जनजीवन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आर्थिक कार्यक्रम तैयार किया। विश्व राजनीति में स्वतन्त्र भारत की भूमिका के विषय में उन्होंने कहा था "एशिया और संसार की शान्ति के दृष्टिकोण से यह बात नितान्त आवश्यक है कि भारत को आत्मनिर्भर अथवा स्वतन्त्र करके पूर्व में स्वतन्त्रता का गढ़ बना लिया जाए।" उनका विश्वास था कि भारत फिर संसार का गुरु बन सकता है। सर वेलेन्टाइन शिरोल ने तिलक को भारतीय अशान्ति का जन्मदाता कहा है। उनके अनुसार तिलक सरकार के प्रति जनता में द्वेष फैलाने वाले सबसे खतरनाक अग्रदूत थे। वे भारत में अशान्ति उत्पन्न करना चाहते थे। शिरोल के इस कथन को हम कदापि स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। भारतीयों ने तो उन्हें उनके आत्म त्याग, बलिदान, योग्यता और बुद्धिमत्ता के कारण लोकमान्य की उपाधि से विभूषित किया था। उनको एक महान् देशभक्त के रूप में देखा था जो भारतीयों की दुर्दशा देखकर रोता था और जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था भारत के लिए स्वराज्य की प्राप्ति।

लाला लाजपतराय

लाला लाजपतराय की गणना महान् देशभक्तों तथा स्वतन्त्रता के अग्रदूतों में की जाती है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में उग्रवादी राष्ट्रीयता के वे प्रमुख प्रवक्ता

थे। लालाजी का जन्म १८६५ ई० में पंजाब के लुधियाना जिले के एक साधारण वैश्य परिवार में हुआ था। उनके पिता शिक्षक थे। लालाजी ने राजकीय कालेज लाहौर में उच्च शिक्षा प्राप्त की। सन् १८८५ में वकालत पास कर उन्होंने हिसार में वकालत प्रारंभ की। अपनी योग्यता तथा वाक्शक्ति से उन्होंने वकालत में बड़ी ख्याति और सम्पत्ति प्राप्त की। उन दिनों पंजाब में आर्यसमाज का आन्दोलन व्यापक रूप से फैल रहा था। लाला लाजपतराय इस आन्दोलन से काफी प्रभावित हुए तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य बन गए। स्वामीजी के प्रभाव से उनमें उग्र राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हुई और उन्होंने तिलक के कार्यक्रम को अपना कर उग्र विचारों का फैलाना प्रारंभ किया। उन्होंने पंजाब में वही स्थान प्राप्त किया जो तिलक ने महाराष्ट्र में प्राप्त किया था।

१८८८ में वे कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उन्होंने तिलक के साथ राष्ट्रीय दल की स्थापना की। सन् १९०१ में उन्होंने दुर्भिक्ष आयोग के सामने अपनी गवाही दी जिसका सरकारी नीति पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वे एक शिष्ट मंडल में गोखले के साथ इंग्लैंड गये जहां उन्होंने कांग्रेस के दृष्टिकोण को जनता के सामने रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इंग्लैंड से वापस आने पर उन्होंने देशवासियों को बताया कि उन्हें आत्मनिर्भर बनना चाहिए। सन् १९०५ के बनारस अधिवेशन में उन्होंने स्पष्टरूप से कहा कि भारत स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहता है तो उसको अनुनय से भिक्षावृत्ति की नीति का परित्याग कर स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। सन् १९०७ में पंजाब के उपनिवेशन अधिनियम के विरोध में लालाजी और उनके साथियों ने एक व्यापक आन्दोलन चलाया। सरकार ने उन्हें देश से निर्वासित कर दिया। वे अमेरिका चले गए, जहां भी उन्होंने अपना काम जारी रखा। उन्होंने यंग इण्डिया पत्र का सम्पादन किया और तरुण भारत नामक पुस्तक भी लिखी। उस पुस्तक को सरकार ने जब्त कर लिया। लेकिन अमेरिका और इंगलैंड में यह पुस्तक बहुत प्रसिद्ध हुई। सन् १९२० में वे स्वदेश वापस आए। उन्हें कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का सभापति चुना गया। उन्होंने पंजाब में असहयोग आन्दोलन का सफल संचालन किया। उनका कथन था हम अपने चेहरे सरकारी भवनों की ओर से मोड़कर जनता के झोपड़ों की ओर करना चाहते हैं। वे स्वराज्यदल के कार्यक्रम का समर्थन देते थे। १९२३ ई० में वे केन्द्रीय धारासभा में चुने गये और कुछ समय तक दल के उपनेता भी रहे। परन्तु थोड़ी ही अवधि में स्वराज्य दल से पृथक होकर उन्होंने राष्ट्रीय दल का संगठन किया। सन् १९२८ में साइमन कमीशन के विरोध में लाहौर में जुलूस निकाला गया जिसका लालाजी ने नेतृत्व किया। एक गोरे सार्जेंट ने उनकी छाती पर लाठी के प्रहार किए जो घातक सिद्ध हुए। उस दिन लालाजी ने कहा था मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील सिद्ध होगी। १७ नवम्बर १९२८ ई० को लालाजी का देहावसान हो गया।

लाला लाजपतराय एक महान् आर्यसमाजी थे। वे दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त थे। वे प्राचीन हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू धर्म के कट्टर पोषक थे। उन्होंने भारत की प्राचीन परम्परा, स्वराज्य तथा स्वदेशी आन्दोलन पर विशेष बल दिया। उन्होंने मेजिनी, गैरीबाल्डी, शिवाजी, श्रीकृष्ण तथा स्वामी दयानन्द की जीवनियाँ, भगवद् गीता का सन्देश, ब्रिटेन का भारत के प्रति ऋण, दुःखी भारत, हिन्दू एकता और तरुण भारत आदि महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की। वे राजनीति में धर्म को पूर्णतया पृथक् रखने के पक्ष में थे। वे हिन्दू मुस्लिम एकता के समर्थक थे किन्तु मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए वे हिन्दुओं के हितों का बलिदान नहीं चाहते थे। जब मुसलमानों में राष्ट्रीय भावना के स्थान पर साम्प्रदायिक भावना का वेग बढ़ा और कांग्रेस इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकी तो वे हिन्दू महासभा की ओर आकर्षित हुए और हिन्दू राष्ट्रीयता के समर्थक बन गए। लालाजी उच्चकोटि के सार्वजनिक वक्ता भी थे। उनके भाषण ओजपूर्ण तथा जोशीले होते थे। सी० वाई० चिन्तामणि का तो कहना था कि मैं सार्वजनिक वक्ता के रूप में गोखले जी और लाजपतराय का एक साथ स्मरण करता हूँ। लाजपतराय एक महान् समाज सुधारक भी थे। उन्होंने दलितोद्धार तथा अछूतोद्धार के लिए सराहनीय कार्य किया। उन्होंने सर्वेंट्स आफ पीपुल्स सोसायटी की स्थापना की और अनाथ बच्चों तथा बीमार स्त्रियों के लिए कई औषधालयों का निर्माण करवाया। लाल बाल पाल की टोली के 'लाल' लाला लाजपतराय ही थे। भारतीय जनता ने उन्हें 'शेरे पंजाब' की उपाधि से सुशोभित किया था।

विपिनचन्द्र पाल

विपिनचन्द्र पाल एक उच्चकोटि के नेता थे। उनका जन्म आसाम के सिलहट जिले में १८५८ ई० में हुआ था। उन्होंने पहली बार सन् १८८७ के कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया। सन् १९०५ के बंगाल विभाजन के विरुद्ध आन्दोलन का उन्होंने नेतृत्व किया। सन् १९०७ में उन्हें अरविन्द घोष के विरुद्ध चल रहे अभियोग के सम्बन्ध में गवाही देने के लिए बुलाया गया लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया। उन पर न्यायालय की मान हानि का मुकदमा चलाया गया और छः मास की सजा दी गयी। सन् १९०८ में जेल से मुक्ति पाने पर वे इंग्लैंड चले गए और तीन वर्षों तक वहीं रह कर उन्होंने ब्रिटेन की राजनीति का अध्ययन किया। वे महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के विरोधी थे। अतः सन् १९२० में जब गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन चलाया तो वे कांग्रेस से अलग हो गए। सन् १९२८ ई० के सर्वदल सम्मेलन में उन्होंने भाग लिया। सन् १९३२ में उनका स्वर्गवास हो गया।

विपिनचन्द्र पाल भारतीय राजनीति में उग्रवादी विचारधारा के पोषक थे। उनका नाम उन तीन महान् उग्रवादी नेताओं लाल बाल पाल में लिया जाता है जिनके सहयोग से सर्वप्रथम देश में भावात्मक और व्यावहारिक एकता की स्थापना

हुई थी। विपिनचन्द्र पाल भारत में सत्य राष्ट्रवाद के प्रतिपादक थे। उनका स्वराज्य से आशय पूर्ण स्वाधीनता से था। प्रार्थनापत्र देने तथा पद प्राप्ति की राजनीति का अन्त करने में विश्वास रखते थे। उनका कहना था हम स्वराज्य जनता के प्रयत्नों द्वारा प्राप्त करना चाहिए सरकार के उपहार तथा पुरस्कार-स्वरूप नहीं। यदि सरकार आज मुझे यह कहे जो स्वराज्य ले लो तो मैं उत्तर दूंगा उपहार के लिए धन्यवाद परन्तु मुझे वह स्वीकार नहीं है जो मैंने अपने बाहुबल से न लिया हो। आगे उन्होंने कहा था हम देश में इस प्रकार कार्य करेंगे जनता के साधनों को इस प्रकार संयोजित करेंगे, जाति की स्वातन्त्र्य भावना का इस प्रकार विकास करेंगे कि प्रत्येक विरोधी शक्ति को अपनी इच्छाओं के सम्मुख अवश्य झुका दें। उनके कार्यक्रम थे बहिष्कार राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह। वे हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण के समर्थक थे। उनका विचार था कि विशुद्ध धर्म तथा पाश्चात्य राजनतिक आदर्शों के मध्य समन्वय सम्भव है। उन्होंने स्वाधीनता तथा अधिकार के विचारों की भारत की धार्मिक परम्परा के अनुकूल व्याख्या की थी। वे सत्ता के विकेन्द्रीकरण को आवश्यक मानते थे। उनकी योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश के लिए एक संघ होगा जो स्वायत्तशासी प्रान्तों जिलों तथा ग्रामों में विभाजित होगा। उन्होंने राष्ट्रमण्डल की भाँति एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का भी विचार प्रस्तुत किया था।

(३) राष्ट्रीय आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन

१९वीं सदी के अन्तिम दशक में देश में अराजकतावादी तथा आतंकवादी सक्रिय होने लगे थे। १८९४ ई० में चापेकर बन्धुओं ने महाराष्ट्र में हिन्दू धर्म-संरक्षण सभा स्थापित की। शिवाजी उत्सवों में भाषण देते हुए चापेकर बन्धुओं ने कहा "केवल बैठे बैठे शिवाजी की गाथा को दोहराने से स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। हमें तो शिवाजी और बाजीराव प्रथम की तरह कमर बाँधकर भयानक कार्यों में जुट जाना चाहिए। मित्रो अब आपको स्वतन्त्रता के लिए ढाल तलवार उठा लेनी होगी हमें शत्रु के सैकड़ों सिरों को काट डालना होगा। सुनो हम राष्ट्र युद्ध के मैदान में अपने जीवन की आहुति दे देंगे लोगों और आज हम उन लोगों के रक्त-पात से जो हमारे धर्म को नष्ट कर रहे हैं या आघात पहुँचा रहे हैं पृथ्वी को रंग देंगे। चुप मत बैठो बेकार पृथ्वी का बोझ मत बनो। हमारे देश का नाम हिन्दुस्तान है फिर यहाँ अंग्रेज राज्य क्या कर रहे हैं? २२ जून १८९७ ई० को दामोदर चापेकर ने पूना के प्लेग कमिश्नर रैंड तथा एक लेफ्टीनेन्ट की हत्या कर दी। फलस्वरूप दामोदर चापेकर तथा उनके कुछ अन्य साथियों को फाँसी का दण्ड दिया गया।

इसी काल में श्यामजीकृष्ण वर्मा ने भी क्रान्तिकारी गतिविधियों में काफी योगदान किया। श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने प्रवासी भारतीयों में क्रान्ति की लहर पैदा की और उसको बहुत अच्छे ढंग से संगठित किया। उन्होंने इंग्लैंड में इंडिया हाउस की नींव डाली जो बाद में भारतीय

क्रान्तिकारियों का केन्द्र-स्थान बन गया। श्यामजीकृष्ण वर्मा ने क्रान्ति भाव उत्पन्न करने के लिए १९०५ में समाजवादी समाचार-पत्र का निकालना प्रारम्भ किया। स्वदेश में इस काल में क्रान्तिकारियों की गतिविधियों और बलिदानों ने देश की जनता में अभूतपूर्व राष्ट्रीय चेतना पैदा करदी और उनमें अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की भावना जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन को और बढ़ावा मिला। महाराष्ट्र और बंगाल इसके प्रमुख केन्द्र बन गये। भारत के अन्य प्रान्तों में भी आतंकवादी सक्रिय हुए। आतंकवादी विचारधारा के नेता बारीन्द्र घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे। इन दोनों ने युगान्तर और सन्ध्या नामक क्रान्तिकारी पत्रों द्वारा उग्र राष्ट्रवाद और आतंकवाद का प्रचार किया। इन्हें आतंकवाद का अग्रदूत कहा जाता है। क्रान्ति प्रवक्ताओं के आह्वान ने नवयुवकों को क्रान्तिकारी मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित किया, इसके लिए गुप्त तथा गुप्त संगठन स्थापित किए गए और डाके डाले, हत्या तथा बमबाजी के कार्य प्रारम्भ हुए। धीरे धीरे क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जोर पकड़ लिया तथा यह देश के विभिन्न भागों में फैल गया।

आतंकवाद के प्रादुर्भाव के कारण

उग्रवाद का जन्म इन चार कारणों से हुआ साधारणतः आतंकवाद के जन्म के लिए उत्तरदायी थे। लेकिन तत्कालीन सरकारी नीति तथा कुछ घटनाओं ने इसे विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। क्रान्तिकारी आन्दोलन को बढ़ावा देने में निम्नलिखित कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

(१) मध्यवर्गीय आन्दोलन

क्रान्ति आन्दोलन बंगाल में मध्यम वर्ग में पनपा। इसमें शिक्षित पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नवयुवकों ने भाग लिया। सर वैलेन्टाइन शिरोल (लन्दन टाइम्स के संवाददाता) के अनुसार आतंकवाद का जन्म पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के विरुद्ध कट्टर-पंथी ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। लेकिन यह कथन पूर्णतः सत्य नहीं है क्योंकि सरकार के मतानुसार क्रान्तिकारी-आन्दोलन केवल ब्राह्मणों द्वारा आयोजित षड्यन्त्र नहीं था। बंगाल और पंजाब में इसके नेता अन्य जाति के भी थे।

(२) आर्थिक कारण

उन्नीसवीं-शती के अन्तिम चरण में भारत में आर्थिक असन्तोष की लहर फैली हुई थी। अकाल और महामारी के कारण जनता की दशा बिगड़ती जा रही थी। अधिक दरिद्रता और अधिक असन्तोष क्रान्ति को जन्म देते हैं। भारत में यही हुआ था। आर्थिक कारणों ने भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया।

(३) सरकार की प्रतिक्रियावादी तथा दमनकारी नीति

क्रान्तिकारी आन्दोलन का जन्म कई कारणों से हुआ। लेकिन लार्ड कर्जन की नीति ने इसे विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। उसने। आन्दोलन को क्रान्तिकारी

मंजिल को लार्ड कर्जन की ही देन कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। उसके आफिशियल सीक्रेट्स एक्ट भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम तथा बंगाल विभाजन जैसे कार्यों ने आतंकवादी आन्दोलन को बढ़ाने में विशेष योग दिया। इन कार्यों के विरुद्ध आयोजित जन आन्दोलन को सरकार ने निर्ममता से कुचलना चाहा। फलस्वरूप आन्दोलन का उग्र और उत्तेजित प्रचार हुआ। बहुत से नवयुवकों ने सभा जुलूस बहिष्कार आदि तरीकों को असफल होते देख आतंकवादी साधनों को अपनाना शुरू कर दिया। डा० पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है कि सन् १६०७ और १६०८ ई० में बने राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम समाचार पत्रों के अधिनियम तथा अन्य दमनकारी कानूनों ने सिवा ऐसे आन्दोलन के जिसे नौकरशाही सहन कर सकती हो किसी भी अन्य प्रकार के राजनीतिक आन्दोलन का खुले रूप में चलना असम्भव बना दिया। अतः विशेषकर बंगाल में तथा अन्य प्रान्तों में भी क्रान्तिकारी संगठन बने जो छुपकर अपना कार्य करते तथा प्रचार करते थे। सन् १६०८ ई० में भारत सचिव लार्ड मोर्ले ने वायसराय लार्ड मिन्टो को लिखा था "राजद्रोह और अन्य अपराधों के सम्बन्ध में जो दिल दहला देने वाले दण्ड दिए जा रहे हैं उनके कारण मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ। हम व्यवस्था चाहते हैं लेकिन व्यवस्था लाने के लिए घोर कठोरता के उपयोग से सफलता नहीं मिलेगी। इसका परिणाम उल्टा होगा और लोग बम का सहारा लेंगे।" माण्टेग्यू ने भी यह स्वीकार किया था कि "दण्ड संहिता की सजाओं ने और चाबुक चलाने की नीति ने साधारण और बिगड़े नवयुवकों को शहीद बनाया और विघ्नकारी पत्रों की संख्या बढ़ा दी।" स्पष्ट है कि भारत में आतंकवाद के उदय और विस्तार के मूल में सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति थी।

(४) संवैधानिक आन्दोलन की विफलता

उदारवादियों की असफलता के कारण युवकों की वैधानिक मार्ग में कोई विश्वास नहीं रहा। उन्हें विश्वास हो गया कि हाथ पैर जोड़ने और प्रार्थनापत्र प्रेषित करने से स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। इसके लिए शक्ति का संचय करना तथा उग्र साधनों का सहारा लेना होगा।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास

देश के विभिन्न भागों में क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास काफी तेजी से हुआ।

बंगाल

बंगाल क्रान्तिकारी आन्दोलन का केन्द्र था। यहाँ के उग्र विचारों के समाचार पत्रों ने इस कार्य में अपना अपूर्व योग दिया था। 'युगान्तर' नामक पत्र ने जिसे १६०६ ई० में अरविन्द घोष के छोटे भाई वारीन्द्रकुमार घोष और स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई भूपेन्द्र दत्त ने आरम्भ किया था स्वतन्त्रतापूर्वक क्रान्तिकारी प्रचार करना आरम्भ कर दिया था। यह शीघ्र ही इतना प्रसिद्ध हो गया कि इसकी बिक्री ५ ... से ऊपर हो गयी। इससे पूर्व कोई भारतीय पत्र इतना नहीं बिकता था।

सन्ध्या' तथा नवशक्ति जैसे दूसरे पत्र भी काफी प्रसिद्ध हो गये थे। देश भक्ति से ओत प्रोत गीतों और साहित्य ने क्रान्तिकारी भावना को और भी प्रोत्साहन दिया। बारीन्द्र संघर्षशील राष्ट्रीयता के अग्रदूत बन गये। वे देश की जनता का आह्वान करते थे "मित्रो! सदियों और हजारों व्यक्तियों की दासता अपने रुधिर की धार से बहाने को तैयार हो जाओ।" उनके एक साथी हेमचन्द्र दास क्रान्तिकारियों से बम बनाने की कला सीखने के लिए पेरिस गये। अनुशीलन समिति नामक एक क्रान्तिकारी संस्था का संगठन किया गया। इस समिति की विभिन्न स्थानों पर ५०० शाखाएं थीं ढाका और कलकत्ता इसके मुख्य केन्द्र थे। १९०७ ई० में गवर्नर की गाड़ी को उड़ा देने के षड्यन्त्र से क्रान्तिकारी कार्यों का सूत्रपात हुआ। ६ सितम्बर को मिदनापुर के पास वह गाड़ी जिसमें गवर्नर सफर कर रहा था वास्तव में पटरी से उतार दी गयी। २३ दिसम्बर १९०७ ई० को ढाका के मजिस्ट्रेट को फरीदपुर जिले के स्टेशन पर गोली मार दी गयी। ३० अप्रैल १९०८ ई० को मुजफ्फरपुर के न्यायाधीश किंग्सफोर्ड की हत्या का प्रयत्न किया गया। गाड़ी में किंग्सफोर्ड के स्थान पर दो अंग्रेज महिलाएं थीं जिनकी मृत्यु हो गयी। अपराध के लिए १९ वर्षीय युवक खुदीराम बोस पकड़ा गया और उसे फांसी की सजा दी गयी। खुदीराम के बलिदान का भारतीय युवकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी सम्बन्ध में सर वेलेंटाइन शिरोल ने लिखा है "इस प्रकार वह बंगाल के राष्ट्रवादियों के लिए राष्ट्रीय वीर और शहीद हो गया। विद्यार्थियों और अन्य व्यक्तियों ने उसके लिए शोक के वस्त्र धारण किये। दो तीन दिन के लिए स्कूल बन्द कर दिए गए और उनकी स्मृति में श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गयीं। बहुत से लोगों ने उसके चित्र वेचे तथा ऐसी धोतियाँ पहनी जिनके किनारे पर खुदीराम बोस का नाम अंकित था।" कलकत्ता के मानिकतल्ला मोहल्ले में पुलिस ने हथियारों का एक कारखाना भी पकड़ा। सम्राट के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अपराध में तीस व्यक्तियों को सजाएं दी गयीं। मुकद्दमे की सुनवाई के समय अदालत से बाहर निकलते हुए पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट को गोली मार दी गयी यह घटना अलीपुर षड्यन्त्र के नाम से प्रसिद्ध है।

पंजाब

पंजाब में सरकार के उपनिवेशन अधिनियम के कारण किसानों में असंतोष फैल रहा था। अधिनियम का उद्देश्य चुनाव क्षेत्र में भूमि की चकबन्दी को हतोत्साहित करना तथा सम्पत्ति के विभाजन के अधिकारों में हस्तक्षेप करना था। अतएव इसके विरुद्ध काफी असंतोष था। मई १९०७ ई० लाला लाजपतराय को पंजाब से निर्वासित किया गया। इससे जनता में और भी असंतोष बढ़ा क्योंकि लालाजी पंजाब के वयोवृद्ध और लोकप्रिय नेता थे। लालाजी के देश निकाले के फलस्वरूप पंजाब में उत्तेजना बढ़ी। वायसराय ने उपनिवेशीकरण विधेयक को रद्द करके बड़ी बुद्धिमानी दिखायी और इस तरह परिस्थिति बिगड़ने से बच गयी।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी ने हिन्दू जनता विशेषतः ब्राह्मणों में उत्तेजना उत्पन्न की। उन्हें तिलक द्वारा सम्पादित केसरी पत्रिका से प्रेरणा मिलती थी जिसकी बिक्री सन् १९०७ में प्रति सप्ताह २ होती थी। इस पत्र में निरन्तर इस स्तम्भ पर लेख लिखे जाते थे कि रूसी ढंग की शासन व्यवस्था आवश्यक रूप से रूसी ढंग के आन्दोलन को जन्म देगी। क्रान्तिकारी संगठनों का केन्द्र नासिक था। इसी गुप्त संगठनों के आधार पर ही अभिनव भारत नामक संस्था की स्थापना की गयी। यह संस्था आतंकवादी कार्यों से सरकार को नष्ट करने का प्रचार करती थी। गणेश सावरकर इस संगठन की मुख्य शक्ति थे। ९ जून १९०९ को उनको काले पानी की सजा हुई। नासिक के जिलाधीश मि जैक्सन को जिन्होंने उनके मुकदमे का फैसला दिया था २१ दिसम्बर १९०९ ई को उन्हीं के विदाई सम्मान में आयोजित एक पार्टी में गोली मार दी गयी। पुलिस ने इस सम्बन्ध में संस्था के अनेक सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया जिसमें से २७ को लम्बी और कठिन सजाएं दी गयी। उनमें से तीन को फाँसी दी गयी। ग्वालियर और सतारा में भी संस्था के सदस्यों को षडयन्त्र और क्रान्तिकारी कार्यों के अपराध में सजाएं दी गयी। नवम्बर १९०९ ई में लॉर्ड मिन्टो और उनकी धर्मपत्नी को जब वे अहमदाबाद की गाड़ी में जा रहे थे मारने का प्रयास किया गया परन्तु सफलता नहीं मिली।

मद्रास

मद्रास में भी क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। सन् १९०७ में विपिनचन्द्रपाल ने मद्रास का दौरा कर अपने विचारों का प्रचार किया तथा नवयुवकों को विशेष रूप से प्रभावित किया। विपिनचन्द्र पाल को बन्दी बना लिया गया तथा कारावास का दंड दिया गया। उनके मुक्त होने पर एक सभा का आयोजन किया गया। सरकार ने सभा के आयोजकों को बन्दी बना लिया। इसकी प्रतिक्रिया में टिनेवली में उपद्रव हुआ। सरकार ने पत्र सम्पादकों तथा आन्दोलनकारी नेताओं को बन्दी बना लिया तथा उन पर मुकदमा चलाया। फलतः नवयुवकों में जोश आ गया व संगठित होने लगे और बाद में उन्होंने टिनेवली के मजिस्ट्रेट को गोली से मार डाला।

विदेशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन

भारत की स्वतन्त्रता के लिए क्रांतिकारी संस्थाएं विदेशों में भी कार्य कर रही थी। श्यामजीकृष्ण वर्मा ने जनवरी १९०५ ई में अपने सभापतित्व में इण्डिया होमरूल सोसाइटी की स्थापना की। उन्होंने इस समिति के पत्र इण्डियन सोशलाजिस्ट का भी सम्पादन किया। पी एस आर राना ने श्यामजीकृष्ण वर्मा की क्रान्तिकारी योजना में पूर्ण सहयोग दिया। इण्डिया-सोसायटी ने भारतीयों को

विदेश में क्रांति करने की कला में योग्यता पाने के लिए छात्रवृत्तियाँ देने की घोषणा की। फलस्वरूप में ही इण्डिया हाउस क्रांतिकारी व्यक्तियों का केन्द्र बन गयी। सावरकर के छोटे भाई विनायक दामोदर सावरकर भी १९०६ में लन्दन पहुँचे और इण्डिया हाउस आन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बन गए। वे भारत में अपने मराठा-साथियों को क्रांतिकारी साहित्य, हथियार आदि गुप्त रूप से भेजते थे। इस सोसाइटी के एक सदस्य श्री मदनलाल ढींगरा ने १ जुलाई १९०९ को सर विलियम कर्जन वायली की हत्या कर दी जो भारत मंत्री के ए० डी० सी० थे। यह घटना भारत सरकार की दमन नीति और नवयुवकों को फाँसियाँ देने के विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया थी। ढींगरा को इस अपराध की सजा मृत्यु दी गयी और विनायक सावरकर को भी काले पानी की सजा देकर अण्डमान भेज दिया गया।

क्रांतिकारी आन्दोलन की असफलता

क्रांतिकारी आन्दोलन का कोई प्रभावशाली परिणाम नहीं निकला। क्रांतिकारियों का अपना केन्द्रीय संगठन नहीं था और न ही विभिन्न प्रान्तों के क्रांतिकारी नेताओं में पारस्परिक मेल था। जनता पर भी इनका कोई प्रभाव न था और इनके समर्थक केवल मध्यम वर्ग में शिक्षित नवयुवक ही थे। समाज का उच्च वर्ग हिंसा के नाम से घबराता था और वह स्वयं खुलकर क्रांतिकारियों का विरोध करता था। उच्च वर्ग के नेताओं ने सरकार को क्रांतिकारी विचारों को दबाने का परामर्श दिया। अंग्रेजी सरकार ने भी क्रांतिकारी देशभक्तों के विरुद्ध घोर दमनात्मक कार्यवाहियाँ कीं। अनेक दमनकारी कानूनों का निर्माण किया गया। सरकार ने राजद्रोहात्मक सभाओं को रोकने के उद्देश्य से १९०७ ई० में सिडीशस मीटिंग्स एक्ट बनाया और लागू किया। सन् १९०८ में पुराने फौजदारी कानून का संशोधन किया और नये कानून के अनुसार सरकार को कुछ संस्थाएँ गैर-कानूनी घोषित करने का अधिकार प्राप्त हो गया। १९०८ ई० के समाचारपत्र सम्बन्धी कानून और १९१० ई० के प्रेस सम्बन्धी कानूनों का प्रयोग कर उग्र विचारधारा के पत्र बन्द कर दिए गए और प्रकाशन तथा छपाई पर कड़ा नियन्त्रण लागू कर दिया गया। १९११ ई० के विद्रोहात्मक सभाओं सम्बन्धी कानून द्वारा सरकार को जन-सभाओं पर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्राप्त हो गया। राजनीतिक डकैतियों को दबाने हेतु एक विशेष कानून भी बनाया गया। १८१८ ई० के पुराने बंगाल रेगुलेशन को भी प्रयोग में लाया गया। सरकार ने स्वच्छन्दतापूर्वक देशभक्तों को अण्डमान की यात्रा करवाई। लॉर्ड मोर्ले ने यह स्वीकार किया कि भारत सरकार रूसी सरकार की भाँति सन्देहयुक्त व्यक्तियों को रेल के डिब्बे में बन्द करके साइबेरिया जैसे कारागारों में भेजने का काम कर रही थी।

क्रांतिकारियों की कार्य प्रणाली

क्रांतिकारियों का कहना था कि ब्रिटिश शासन पाशविक शक्ति पर आधारित है एवं हम यदि स्वयं शासकों को हटाने के लिए पाशविक बल का प्रयोग

करते हैं तो वह उचित ही है। उनका तर्क था कि जो लक्ष्य अनेक युक्तियुक्त तथा नतिक बातों के प्रभाव से नहीं प्राप्त हो सकता वह गोली और बम के प्रयोग से हो सकता है। उनका मंत्र था तलवार हाथ में लो और सरकार को मिटा दो।
उनकी कार्य प्रणाली के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें सम्मिलित थीं —

(१) पत्रों की सहायता से प्रचार द्वारा शिक्षित लोगों के मस्तिष्क में दासता के प्रति घृणा उत्पन्न करना।

(२) संगीत नाट्य एवं साहित्य द्वारा बेकार और भूख से त्रस्त लोगों को निडर बनाकर उनमें मातृभूमि और स्वतन्त्रता की भावना भरना।

(३) जनता को प्रदर्शनों एवं आन्दोलनों में व्यस्त रखना।

(४) बम बनाना बन्दूक आदि शस्त्र चोरी से उपलब्ध करना तथा विदेशों से शस्त्र प्राप्त करना और

(५) चन्दा-ग्रहण दान तथा क्रान्तिकारी डकैतियों द्वारा धन का प्रबन्ध करना।

राजद्रोह-सम्बन्धी जाँच समिति ने अपने प्रतिवेदन में क्रान्तिकारी कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया था। क्रान्तिकारी साहित्य द्वारा अपने विचारों का प्रचार करते थे तथा शिवाजी और भवानी की पूजा द्वारा विदेशी शासकों के हृदय में आतंक उत्पन्न करते थे। क्रान्तिकारियों को आदेश था कि वे अवसर मृत्यु की परछाई की भाँति छिपे रहें और विदेशी अधिकारियों पर घातक हमले करें। उन्हें अपने उन भाइयों को याद रखना था जो जेलों में सड़ रहे थे या मर गए थे या पागल हो गए थे। जाँच-समिति ने अपने प्रतिवेदन में क्रान्तिकारियों द्वारा प्रकाशित पुस्तक के सार का उल्लेख इन शब्दों में किया — यूरोपियनों को गोली से मारने के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है। छुपे ढंग से शस्त्र हथियार तैयार किए जा सकते हैं और भारतीयों को हथियार बनाने का कार्य सीखने के लिए विदेशों में भेजा जा सकता है। भारतीय सैनिकों की सहायता अवश्य ली जानी चाहिए और उन्हें देशवासियों के कष्टों की दुर्दशा के बारे में समझाना चाहिए। शिवाजी की वीरता अवश्य ही याद रहे। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक व्यय के लिए चन्दा किया जाए परन्तु जैसे ही काम बढ़े, समाज (अर्थात् धनिकों) से शक्ति द्वारा धन प्राप्त किया जाना जरूरी है। चूँकि इस धन का प्रयोग समाज-कल्याण के लिए होगा अतः ऐसा करना उचित है। राजनीतिक डकैती में कोई पाप नहीं लगता।

क्रान्तिकारी तथा उग्रवादी आन्दोलन में अन्तर

क्रान्तिकारियों तथा उग्रवादियों के मौलिक उद्देश्य तथा विचारधारा समान थी। दोनों गहरी धार्मिक भावना से प्रेरित थे। दोनों ही अंग्रेजों की न्यायप्रियता राजनीतिक भिक्षावृत्ति एवं पाश्चात्य-सभ्यता के विरोधी थे। उनका लक्ष्य एक था भारत को स्वतन्त्र बनाकर उसके प्राचीन गौरव और समृद्धि को प्राप्त करना। पर उनकी कार्य विधि में अन्तर था। उग्रवादी राजनीतिक आन्दोलन और राष्ट्रनिर्माण विदेशी

माल और संस्थाओं का बहिष्कार तथा स्वदेशी प्रचार जैसे उपायों में विश्वास करते थे। इसके विपरीत क्रांतिकारी पश्चिमी क्रान्तिकारी तरीकों में तथा आतंकवाद में विश्वास रखते थे। वे राजनीतिक हत्याओं, डकैतियों, रेलगाड़ियों पर बम फेंकने में विश्वास करते थे तथा राजनीतिक हत्याओं की शिक्षा और शारीरिक प्रशिक्षण के मार्ग का अनुसरण करते थे।

(४) मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय एवं लीग की स्थापना

कांग्रेस में उग्रवादियों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण देश की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आ रहा था। नए गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो इससे काफी चिंतित थे। उन्होंने भारत मंत्री को एक सन्देश भेजा जिसमें उन्होंने कांग्रेस को मान्यता देने और उससे सहयोग करने का सुझाव दिया। उन्होंने कांग्रेस के विपरीत में देशी राजाओं की प्रिवी कौंसिल बनाने का सुझाव भी भारत मंत्री के सम्मुख रखा। परन्तु भारत मंत्री ने मिन्टो की बात को स्वीकार नहीं किया क्योंकि कांग्रेस को मान्यता देने से मुसलमान भी अंग्रेजों के विरोधी हो जाएंगे। शासन सुधार के प्रश्न पर विचार विमर्श चल रहा था और मिन्टो किसी प्रकार मुसलमानों को अपने पक्ष में करने की योजना पर विचार करने लगा। लार्ड मिन्टो के इस विचार की जानकारी मुसलमान नेताओं को मिली और वे सक्रिय हो गए। सन् १८६२ के अधिनियम द्वारा स्वीकृत प्रतिनिधित्व पद्धति को व्यावहारिक स्वरूप प्राप्त हो गया था और मुसलमान नेता यह समझते थे कि निर्वाचन के सिद्धान्त को नये सुधारों में और भी व्यापक बनाया जायगा। अतः आगा खां के नेतृत्व में विभिन्न वर्गों के ३५ मुसलमानों का प्रतिनिधि मण्डल गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो से १ अक्टूबर १९०६ ई० के दिन शिमला में मिला। प्रतिनिधिमण्डल ने सभी निर्वाचित संस्थाओं में पृथक प्रतिनिधित्व देने और उनके राजनीतिक महत्त्व के आधार पर संख्या के आधार से अधिक प्रतिनिधित्व देने की मांग की। लार्ड मिन्टो ने उनकी बात को बड़े ध्यान से सुना।

लार्ड मिन्टो के सहानुभूतिपूर्ण रुख से प्रोत्साहित होकर नवाब सलीमुल्लाह ने ९ नवम्बर १९०६ ई० को एक पत्र प्रसारित कर एक मुस्लिम संगठन बनाने का प्रस्ताव रखा। दिसम्बर १९०६ ई० में ढाका में मुसलमानों का एक सम्मेलन हुआ तथा ३० दिसम्बर १९०६ ई० को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। लीग के प्रमुख तीन उद्देश्य रखे गए थे (१) भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति भक्ति भावना का विकास करना (२) भारतीय मुसलमानों के राजनैतिक और अन्य अधिकारों की रक्षा करना तथा उनकी भावनाओं और मांगों को विनम्रतापूर्ण भाषा में सरकार के सम्मुख रखना और (३) मुसलमानों और अन्य सम्प्रदायों के मध्य मित्रतापूर्ण सद्भावना का विकास करना।

मुस्लिम लीग का जन्म अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति की महान् सफलता थी। आगा खां प्रतिनिधि मंडल ने अद्भुत सफलता प्राप्त की

आगा खाँ प्रतिनिधिमण्डल भेजने के सम्बन्ध में अलीगढ़ विद्यालय के आचार्य आर्चिबाल्ड और गवर्नर जनरल के सचिव डनलप स्मिथ में विचार विमर्श हुआ था। आर्चिबाल्ड ने अगस्त १९०६ के पत्र में नवाब मोहसिन उल मुल्क को विस्तृत निर्देशन दिए थे। नवाब मोहसिन ने प्रतिनिधि मण्डल के मिलने की योजना बनायी थी तथा वायसराय ने मुसलमानों की माँगों के सम्बन्ध में पूर्ण सहमति व्यक्त की थी। लार्ड मिन्टो ने प्रतिनिधि मण्डल को चाय पार्टी से सम्मानित किया और उस दिन को भारतीय इतिहास के एक महत्वपूर्ण दिन की संज्ञा दी।

स्पष्ट है कि भारतीय मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा से पृथक रखने का कार्य अंग्रेजों द्वारा किया गया था। रमजे मैक्डानल्ड ने इस बात को स्वीकार किया है। मुस्लिम लीग का निर्माण अंग्रेजों की फूट डालो एवं राज करो के सिद्धान्त को भारत में लागू करने की योजना का प्रथम चरण स्वीकार किया जा सकता है।



१२

मॉर्ले-मिंटो सुधार

प्रवेश

१८९२ ई० के भारतीय परिषद् अधिनियम से भारतीयों को सन्तोष नहीं हुआ था फिर भी देश के वातावरण में सन् १८९२ से सन् १९०४ तक विशुद्ध शान्ति रही जो आने वाले झंझावात की द्योतक थी। १९०५ ई० में यह झंझावात फूट पड़ा और इसका प्रकोप सर्वत्र हुआ। उग्रवादियों और क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को नई शक्ति प्रदान की। ब्रिटिश सरकार ने एक ओर घोर दमन का सहारा लिया तथा दूसरी ओर शासन में सुधार प्रस्तावित कर उदारवादियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया। फलस्वरूप ब्रिटिश संसद ने भारतीय शासन में सुधार करने के लिए एक अधिनियम पारित किया जो भारतीय संवैधानिक विकास के इतिहास में मॉर्ले-मिंटो सुधार-अधिनियम के नाम से प्रसिद्ध है।

अधिनियम स्वीकृति के कारण

सन् १९०९ में भारतीय परिषद् अधिनियम स्वीकार किया गया। इस अधिनियम के निर्माण के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं —

(१) अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को लोकतन्त्र के आदर्शों से परिचित कराया था। वे स्वतन्त्रता एवं समानता के महत्त्व को समझने लग गए थे। अतः १८९२ ई० के सुधारों से उन्हें कोई सन्तोष नहीं हुआ था तथा वे अधिक सुधारों की माँग कर रहे थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस निरन्तर यही माँग कर रही थी कि १८९२ ई० में प्रदत्त सुधार अपर्याप्त हैं, अतएव अधिक सुधार किए जाने चाहिए। १८९६ ई० के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में प्रतिनिधि संस्थाओं में निर्वाचन-पद्धति के समावेश की माँग की गयी। १९०५ ई० में कांग्रेस ने हाउस ऑफ कामन्स में भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने, गवर्नर जनरल एवं गवर्नरों की परिषदों में भारतीयों को नियुक्त करने की माँग की। फलतः ब्रिटिश सरकार के लिए भारतीयों को सन्तुष्ट करने के लिए सुधार करना जरूरी हो गया।

(२) लॉर्ड कर्जन के सात वर्ष के शासनकाल में भारतीयों के ऊपर काफी अत्याचार किए गए थे। लार्ड कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण

कलकत्ता निगम अधिनियम भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम बंग भंग आदि कार्यों ने जनता में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध काफी रोष पैदा कर दिया था। लार्ड कर्जन के शासन द्वारा भारतीयों के दिल पर जो घाव हो गए थे उनको भरने के लिए अधिनियम का निर्माण आवश्यक समझा गया।

(३) सन् १८९२ और सन् १९०९ के बीच का समय भारतीय राजनीति में तूफान एवं दबाव का समय था। देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात हो चुका था। कांग्रेस में भी उग्रपन्थ का विकास हो गया था और तिलक ने स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है का उद्घोष किया था। फलस्वरूप भारत सरकार को कुछ शासन सुधार प्रदान कर नरमपन्थीय भारतीयों का विश्वास और सद्भावना प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत हुआ। मार्ले ने २३ फरवरी १९०९ को हाउस आफ लार्ड्स में बोलते हुए मत व्यक्त किया "इस प्रकार की योजना पर विचार करते समय हम तीन प्रकार के लोगों का ध्यान रखना होगा। एक और उग्रवादी हैं जो ऐसा मोहक स्वप्न देखते हैं कि किसी दिन वे हमको भारत से खदेड़ देंगे। एक दूसरा समुदाय भी है जो इस प्रकार के विचार नहीं रखता परन्तु यह आशा रखता है कि भारत को औपनिवेशिक ढंग का स्वराज्य मिलेगा। इसके बाद तीसरा वर्ग है जो इससे अधिक कुछ नहीं मांगता कि उसे हमारे प्रशासन में सहयोग का अवसर दिया जाए। मेरा विश्वास है सुधारों का यह प्रभाव होगा कि वह दूसरा वर्ग जो औपनिवेशिक स्वराज्य की आशा करता है तीसरे वर्ग में सम्मिलित हो जाएगा जो इतने से ही सन्तुष्ट हो जाएगा कि उसे उचित और पूरे तरीके से शासन में सम्मिलित कर लिया जाए।"[1]

(४) अंग्रेजों की भारतीयों के प्रति दुर्व्यवहार व अपमानजनक नीति भी भारतीयों में जागृति पैदा कर रही थी। अफ्रीका में भारतीयों के प्रति रंगभेद की नीति अपनाकर उनको तरह-तरह से अपमानित व पीड़ित किया जाता था। भारत में इसी समय अकाल पड़ा और उसमें देश की आर्थिक दशा बहुत खराब हो गई। अंग्रेजों ने अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए कुछ नहीं किया। शिक्षित वर्ग में भी बेकारी थी। उसमें असन्तोष था। उनको ऊंची नौकरियाँ प्राप्त नहीं हो रही थी। इसलिए वह भारतीय जनता को अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित कर रहे थे। भारतीय जागृति को रोकने के लिए और शिक्षित-वर्ग को सन्तुष्ट करने के लिए कुछ सुधार करना आवश्यक समझा गया। पंजाब और बंगाल में १९०८ ई० में जो दमनकारी घटनाएं हुईं उनके परिणामस्वरूप भारतीय नागरिक अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए थे। अंग्रेजों के प्रति उसमें वैमनस्य की जो लहर उत्पन्न हो गयी थी उसको समाप्त करने की दृष्टि से भी भारतीयों को

---

१ पन्नालाल मित्तल एवं वेदीशरण मित्तल द्वारा उद्धृत भारतीय राजनीति का विकास एवं संविधान पृ० १९६

शासन में भाग देना आवश्यक समझा गया। इसलिए १९०९ का अधिनियम पारित किया गया।

(५) सन् १९०६ में इंगलैंड में भी सरकार में परिवर्तन हुआ था। सन् १९०६ के निर्वाचन में अनुदार दल की पराजय हुई और उदार दल के हाथ में शासन सत्ता आयी। उदार दल की प्रारम्भ से ही भारतीयों की मांगों के प्रति हमदर्दी थी। थी मार्ले नये भारत-मंत्री बने। वे प्रयत्न उदार विचारों के व्यक्ति थे और भारतीय शासन में परिवर्तन करने के लिए प्रयत्न लालायित थे। मार्ले ने भारतीयों को सन्तुष्ट करने के लिए एक विधेयक ब्रिटिश-संसद में प्रस्तुत किया जो स्वीकृत कर लिया गया। इस विधेयक को मार्ले-मिंटो सुधार अधिनियम या १९०९ का अधिनियम कहा जाता है।

अधिनियम के मुख्य उपबंध

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित थे —

(१) इस अधिनियम के अनुसार विधान परिषदों की सदस्य संख्या में वृद्धि कर दी गयी। केन्द्रीय विधान परिषद् में गवर्नर जनरल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या १६ से बढ़ाकर ६० कर दी गयी। मद्रास बम्बई उत्तरप्रदेश और बंगाल की विधान परिषदों की सदस्य संख्या ५० तक बढ़ा दी गयी। पंजाब आसाम तथा बर्मा की विधान परिषदों की संख्या ३० तक बढ़ा दी गयी। आगे आने वाले वर्षों में भी केन्द्रीय विधान परिषद् एवं प्रान्तों की विधान परिषदों की सदस्य-संख्या में कुछ वृद्धि की गई।

(२) केन्द्रीय विधान परिषद् में सरकारी बहुमत रखा गया। केन्द्रीय विधान परिषद् में चार प्रकार के सदस्य थे। पदेन सदस्य मनोनीत सरकारी अधिकारी मनोनीत गैरसरकारी अधिकारी और निर्वाचित सदस्य। गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी-परिषद् के सदस्य पदेन सदस्य थे। जिन सरकारी अधिकारियों को भारत सरकार विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत करती थी वे सब मनोनीत सरकारी अधिकारी कहे जाते थे। ऐसे व्यक्ति जो सरकारी अधिकारी नहीं थे परन्तु जनता में प्रभावशाली व्यक्ति होते थे उनको भी सरकार मनोनीत करती थी एवं वे मनोनीत गैर सरकारी अधिकारी कहलाते थे। जो सदस्य निर्वाचित होते थे वे निर्वाचित सदस्य कहे जाते थे। केन्द्रीय विधान परिषद के ६६ सदस्यों में से ३७ सरकारी अधिकारी थे ५ सदस्य मनोनीत गैर सरकारी सदस्य थे तथा २७ निर्वाचित सदस्य थे। २७ निर्वाचित सदस्यों में से ५ मुसलमानों द्वारा ६ हिन्दू जमींदारों द्वारा एक मुस्लिम जमींदारों द्वारा एक बंगाल के वाणिज्य मण्डल द्वारा तथा शेष सदस्य प्रान्तीय विधानसभाओं द्वारा निर्वाचित किए जाते थे। सदस्यता की अवधि ३ वर्ष थी।

(३) इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में गैर-सरकारी बहुमत रखा गया। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रान्तीय परिषदों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत

कर दिया गया था। सरकारी अधिकारी और सरकार द्वारा मनोनीत किए गए गैर-सरकारी अधिकारी दोनों संयुक्त रूप से निर्वाचित सदस्यों से निश्चित रूप से अधिक थे। उदाहरण के लिए मद्रास की विधान परिषद् में २१ सरकारी अधिकारी तथा २ गैर-सरकारी सदस्य थे। गवर्नर और गवर्नर की कार्यकारिणी-परिषद् के ३ सदस्य और एडवोकेट जनरल पदेन सदस्य थे। शेष १६ अधिकारियों को गवर्नर मनोनीत करता था। २६ गैर-सरकारी सदस्यों में से ५ मनोनीत तथा २१ निर्वाचित सदस्य थे। स्पष्ट है कि मनोनीत सदस्य थे और २१ निर्वाचित सदस्य तथा इस प्रकार प्रान्तीय विधान परिषद् में मनोनीत सदस्यों का बहुमत था। यही बात अन्य प्रान्तों के सम्बन्ध में भी थी।

(४) इस अधिनियम द्वारा भारत में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली प्रारम्भ की गई। भारत सरकार के मतानुसार क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व भारतीय जनता के अनुकूल नहीं था। वर्गों तथा हितों के द्वारा प्रतिनिधित्व ही एकमात्र ऐसा व्यावहारिक तरीका था जिससे भारतीय विधान परिषदों के विधान में निर्वाचन के लिए नियमों को लागू किया जा सकता था।[1] अतः साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली का प्रारम्भ किया गया। मुसलमानों को अपने अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों, वाणिज्य मण्डल, स्वशासी-संस्थाओं को कुछ सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। राजनीतिक अपराधियों पर अयोग्यताएं लगायी गयी। वे निर्वाचन में खड़े नहीं हो सकते थे। सर्वोच्च सरकारी अधिकारी इन अयोग्यताओं को हटा सकते थे।

(५) विधान परिषदों के कार्य-क्षेत्र में काफी वृद्धि कर दी गयी।[2] केन्द्रीय विधान परिषद् के सदस्यों को बजट पर बहस करने तथा प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया था। जो ऋण स्थानीय सरकारों को दिए जाते थे उनके सम्बन्ध में या अतिरिक्त अनुदानों के सम्बन्ध में परिवर्तन करने के भी प्रस्ताव प्रस्तुत किए जा सकते थे। विधान परिषदों को सार्वजनिक महत्त्व के विषयों पर प्रस्ताव पारित करने और मतदान करने का अधिकार दिया गया। सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया किन्तु पूरक प्रश्न मूल प्रश्नकर्ता ही पूछ सकता था। सम्बन्धित विभाग का अधिकृत सदस्य पूरक प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार कर सकता था तथा वह उसके लिए समय भी मांग सकता था। सदस्यों के प्रस्ताव पारित करने, प्रश्न पूछने और दूसरे अधिकारों पर काफी सीमाएं लगा दी गयी थी। बजट का काफी भाग ऐसा था जिस पर केवल बहस की जा सकती थी मतदान नहीं।

1 Government of India Reform Despatch, 1908 Banerjee A. C. Indian Constitutional Document (1757 1939) P. 219

2. Art. 5 (I d 2) The Indian Councils Act Banerjee A.C. Op Cit. P. 236

(६) इस अधिनियम के द्वारा बम्बई बगाल एव मद्रास की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यो की सख्या बढाकर चार चार कर दी गयी।[1] गवनर जनरल सहित परिषद् को यह अधिकार दिया गया कि वह ब्रिटिश ससद् की स्वीकृति स अन्य प्रान्तो क लिए भी कार्यकारिणी परिषद् का निमाण कर सकेगा।[2]

(७) इस अधिनियम के द्वारा भेदभाव क आधार पर सीमित मताधिकार प्रदान किया गया। मताधिकार की योग्यताए अनेक प्रकार के भेदभावो पर आधारित थी और प्रत्येक प्रात में भिन्न भिन्न थी।

सुधारो की आलोचना

सन १६ ६ क अधिनियम के सुधार काफी त्रुटिपूर्ण थे। इनम अनेक कमिया थी। जिनम कुछ निम्नलिखित हैं —

(१) सन् १६ ६ के सुधारो के द्वारा भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना नही हो पायी। भारतीयो को यह आशा थी कि नये सुधारों के द्वारा भारतवष म उत्तरदायी शासन की स्थापना होगी पर तु एसा नही हुआ। भारत म ब्रिटिश सरकार उत्तरदायी शासन की स्थापना नही करना चाहती थी। लाड मार्ले ने हाउस आफ लाडस मे भाषण देते हुए उक्त बात को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि यदि सुधारो के विषय में यह कहा जाए कि इनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप स भारत मे ससदीय सरकार की स्थापना होती है तब मुझे ऐसे काय स कोई सम्ब ध नही है।[3] अत इन सुधारों से भारतीय सन्तुष्ट नही हुए। डा जकारिया के शब्दो म इन सुधारो द्वारा जो चीज भारतीयो को दी गई वह बिल्कुल अवास्तविक थी। मजूमदार के शब्दो मे यह केवल चन्द्रमा की चमक की भाति थ। इन सुधारो के सम्बन्ध म यह भी मत व्यक्त किया गया कि भारतीयो ने १० पौंड का चक प्रस्तुत किया परन्तु उन्हे १ पौंड दिया गया। इसलिए ये सुधार भारतीयो को सतुष्ट न कर पाए और भारतीय राजनीतिक समस्या का हल नहीं हुआ।

(२) इस अधिनियम के द्वारा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली प्रारम्भ हुई। मुसलमानो को अलग प्रतिनिधित्व दिया गया। इस प्रकार मुसलमानो एव हिन्दुओ को पृथक करने का प्रयास आरम्भ हुआ। निर्वाचन प्रणाली भी अप्रत्यक्ष थी। लोग स्थानीय सस्थाओ के सदस्यो का निर्वाचन करते थ। स्थानीय सस्थाओ के सदस्य निर्वाचक मडल के सदस्यो को निर्वाचित करते थे और वह निर्वाचक मडल प्रान्तीय विधानसभाओ के सदस्यो का निर्वाचन करता था। इस प्रकार विधानसभाओं के सदस्यो का जनता से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही था और वे जनता के प्रति कोई उत्तरदायित्व अनुभव नही करत थे। १६१८ ई क सुधार प्रतिवेदन

1 Art (I) The I d a C oncl Act Banerjee A C P 234
2 Ar 3(2) Ib d P 35
3 L rd Morl y on Ref ms 1908 Banerjee A C Op C t P 229

मे लिखा गया है सभावित मूल मतदाता तथा विधान परिषद् मे बठने वाले प्रतिनिधि के बीच पूर्ण रूप स कोई सम्बन्ध न ो था तथा सभावित मूल मतदाता विधान परिषद् की कायवाहियो पर कोई प्रभाव न ीं रखता था। इन परिस्थितियो में उन लोगो का न कोई उत्तरदायित्व है तथा न कोई राजनीतिक िा ही जो नाम मात्र से मत का प्रयोग करते हैं। अभी ऐसे मतदाताओं का अस्तित्व तयार करना है जिन पर उत्तरदायी सरकार के भार का वहन करने की योग्यता हो।[1]

(३) इस अधिनियम की एक बुराई यह थी कि इसम केन्द्रीय विधान परिषद् मे सरकारी बहुमत रखा गया था। इसके फलस्वरूप केन्द्र म सरकारी अधिकारी मनमानी कर सकते थ। यद्यपि भारतीय सरकार ने केन्द्रीय विधान परिषद् मे गर सरकारी बहुमत रखने के लिए अपना प्रस्ताव भेजा था किन्तु भारत मन्त्री लाड मार्ले इसके लिए तयार नही हुए। उनका कहना था कि प्रान्तों मे गर सरकारी बहुमत रखा गया है और केन्द्रीय सरकार को शरण लेने के लिए केन्द्रीय विधानपरिषद् म सरकारी बहुमत का रखना आवश्यक है। यद्यपि प्रान्तीय विधानसभाओ मे गर सरकारी बहुमत रखा गया था किन्तु उसका परिणाम भी शून्य ही था। प्रान्तीय विधानसभाओ म सरकारी अधिकारी और सरकार द्वारा मनोनीत गर सरकारी सदस्यो का बहुमत था। इसलिए निर्वाचित सदस्य कुछ भी नहा कर सकते थे। इसके अतिरिक्त निर्वाचित सदस्य विभिन्न सम्प्रदायो का प्रतिनिधित्व करते थे। उनका उद्देश्य अपने अपने हितों क लिए अधिक सुविधा प्राप्त करना था। अत व सरकार क विरुद्ध संयुक्त नहीं हो सकते थे। श्रीराम शर्मा ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि यूरोपियन निर्वाचित सदस्य सरकार क लिए इतने ही अच्छे थे जितने कि सरकारी अधिकारी। मुसलमानो और जमीदारों को ब्रिटिश साम्राज्य की सेवा के कारण मताधिकार दिया गया था इसलिए वे अधिक राजभक्ति दिखाकर अपने भविष्य को और उज्ज्वल बनाना चाहते थे।[2] सरकारी अधिकारियो को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता न थी और इस प्रकार विधान परिषदें सरकार के हाथ का खिलौना मात्र थीं।

(४) इस अधिनियम की एक बुराई यह थी कि विधान परिषदों की शक्तियाँ बहुत ही सीमित थी। सदस्य कार्यकारिणी परिषद् से प्रशासन के मामले म प्रश्न पूछ सकते थे किन्तु कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों के लिए उनका उत्तर देना अनिवार्य नहीं था। विधान परिषद् को बजट पर बहस करने का अधिकार था किन्तु केन्द्रीय या प्रान्तीय-सरकार के एक रुपये पर भी उनका सीधा नियन्त्रण न था। सरकार को अपने विधेयक स्वीकार कराने मे भी कभी कोई कठिनाई नहा होती थी क्योंकि

1 M t F d Rep t Il ly—M t R f ms B je AC Op Ct p 275
2 C tt on l H t y f I d P 127

सरकारी सदस्य सरकार की सहायता के लिए सदा तैयार रहते थे। श्री पुन्न या ने लिखा है कि चाहे गैर सरकारी सदस्य कितने ही अच्छे तर्क अपने मत के समर्थन में दें किन्तु जिस समय विधेयक पर मतदान होता था तो सरकारी दल सामने आता और विधेयक को अपने पक्ष में पारित करवा लेता था।[1] श्री राम शर्मा ने भी लिखा है कि विधान परिषदों के वाद विवादों में कुछ भी रस नहीं था। परिषद की कार्यवाही में वास्तविकता नहीं थी। सरकार भारतीय सदस्यों को किन्तु अन्त में बोलने की आज्ञा देती थी और उनके विचारों की बिल्कुल परवाह नहीं करती थी। इसलिए भारतीयों को बहुत दुःख होता था।[2] श्री गोखले ने सुधारों की शिकायत करते हुए मत व्यक्त किया कि जब सरकार किसी विधेयक को पारित कराने के लिए निश्चय कर लेती है तो एक बार इरादा कर लेती है तो फिर गैर सरकारी सदस्य चाहे जितना कहें उससे सरकार के रुख में कोई परिवर्तन नहीं होता है।[3]

(५) गवर्नर जनरल और गवर्नरों ने विधान परिषदों की कार्यवाहियों के नियम व विनियम इस तरह बनाए कि उनके द्वारा सदस्यों के अधिकार और अधिक सीमित हो गए। इन नियमों के द्वारा अनेक राजनैतिक नेताओं को निर्वाचन में भाग लेने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया। श्री विश्वनारायण ने लिखा है ये सुधार कई प्रकार से अपूर्ण तथा दोषपूर्ण हैं किन्तु हमारी शिकायत उन नियमों तथा व्यवस्था के विरुद्ध है जो अत्यन्त दोषपूर्ण है। उनसे सुधार योजना का तत्व ही नष्ट हो गई है।[4]

इस अधिनियम के द्वारा विधान परिषदों को कोई वास्तविक शक्ति नहीं दी गयी। उनको केवल सलाह देने वाली समितियाँ बनाया गया। इसलिए कि कूपलैंड ने लिखा है कि ये विधान परिषदें संसद न होकर केवल दरबार थी। उनमें हाथ में मनमानी करने वाली सरकार को बदलने की कोई शक्ति नहीं थी।[5] सर दाटल कूपर ने ठीक ही लिखा है भारत सरकार अब भी पूर्णरूप से एक निरंकुश दरबारी सरकार के समान बनी रही जो राजा की भाँति दरबारियों से विचार विमर्श करती थी परन्तु उनके मत पर चलने के लिए विवश नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप दरबारी असन्तुष्ट और बेचैन होने लगे थे।[6]

(६) इस अधिनियम में इस बात का संकेत नहीं किया गया था कि भारत में ब्रिटिश शासन का क्या उद्देश्य था। क्या यह उद्देश्य उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की

1 P[illegible] Constitutional [illegible]tory of Ind a P 305
2 Shr Ram Sha ma Co stitut on l H story of Ind a P 127
3 अग्रवाल आर सी द्वारा उद्धृत भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन पृ १६
4 महाजन एव सेठी द्वारा उद्धृत भारत का संवैधानिक विकास पृ ४७
5 Coupla d The Ind a Problem P 25
6 Mo tagu Chelmsford Report

स्थापना करना था ? यदि हाँ तो कितने समय में तथा किन कारणों से ? इस अधिनियम में इस बात का कोई वर्णन नहीं था। कीथ ने १९०९ ई० के सुधारों की आलोचना करते हुए लिखा है "१९०९ ई० के सुधार अपने उद्देश्य में असफल हुए यदि वह उद्देश्य स्वराज्य के आन्दोलन को रोकना था।"[1] कीथ ने फिर लिखा है "उनसे गरम दल की मांग स्पष्ट रूप से पूर्ण नहीं की जा सकती थी। इसका अवश्यंभावी परिणाम यह हुआ कि नीति पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण पुनः लागू करवा दिया गया तथा स्थानीय सरकारों को पुनः स्मरण करवा दिया गया कि इनके अधिकारी व्यवस्थापिका सभाओं में भारतीय सरकार के निश्चयों के सम्बन्ध में आलोचनात्मक रवैया न अपनाएं।"[2]

अधिनियम का महत्त्व

उक्त आलोचना से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि १९०९ का अधिनियम नगण्य था। १९०९ ई० के सुधार १८९२ के अधिनियम के सुधारों से निश्चय ही बहुत आगे थे। विधान परिषदों का विस्तार किया गया और उनमें निर्वाचित सदस्य ले लिए गए। १८९२ ई० के अधिनियम के अनुसार जहां जिला बोर्डों, नगरपालिकाओं, विश्वविद्यालयों आदि को केन्द्रीय विधान परिषदों के लिए नामों की सिफारिश करने का अधिकार दिया गया था वहाँ १९०९ ई० के अधिनियम के द्वारा उनको निर्वाचन का अधिकार दे दिया गया। इस प्रकार अप्रत्यक्ष निर्वाचन का सिद्धान्त सर्वप्रथम स्वीकार किया गया। इस अधिनियम के द्वारा सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने, बजट पर मतदान करने और सार्वजनिक मांगों पर प्रस्ताव पारित करने का अधिकार भी दिया गया। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में भी एक भारतीय को लिया गया। दो भारतीयों को भारत मन्त्री की परिषद् में सम्मिलित किया गया। इस प्रकार इन सुधारों द्वारा भारतीयों को प्रशासन में अधिक भाग लेने का अवसर अवश्य प्राप्त हुआ। श्रीराम शर्मा ने सुधारों के सम्बन्ध में लिखा है "यद्यपि विधान परिषद् के सदस्य सरकार से अपनी बात नहीं मनवा सकते थे परन्तु उन्होंने राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करने के लिए इन विधान परिषदों का सार्वजनिक मंच के रूप में अच्छा प्रयोग किया। वे इनके द्वारा जनता को सरकार के विरुद्ध जगाने में सफल रहे।"[3] १९०९ ई० के सुधारों ने देश को ऐसी अवस्था पर लाकर पहुँचा दिया जहाँ से पीछे जाना सम्भव नहीं था और आगे जाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं रह गया था।

---

1 K th A B C st t t l H st y f I d P 232
2 Ib d P 237
3 Co st t t l H t y f I d P 128

सन् १९१० से सन् १९१९ की राजनीति

प्रवेश

भारत में ब्रिटिश शासन के इतिहास में १९१ ई० से १९१९ ई० तक का युग सबसे छोटा होते हुए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण है। इस युग के महत्व पर प्रकाश डालते हुए श्री गुरुमुख निहालसिंह ने लिखा है "इस युग में ब्रिटिश सम्राट ने भारत भूमि पर पहली बार पदार्पण किया। साम्राज्यीय परिषदों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भारत को पहली बार बराबरी का स्थान दिया गया। उप भारत मन्त्री के पद पर प्रथम बार एक भारतवासी की नियुक्ति की गयी तथा पहली बार ब्रिटिश सरकार ने भारत में अपना लक्ष्य उत्तरदायी राजनैतिक संस्थाओं की स्थापना करना बताया और स्वशासी प्रान्तों के संघीय भारत का चित्र क्षितिज पर उठता हुआ दिखाई दिया। इसी समय जनता की इच्छाओं के अनुसार बंगाल के विभाजन में संशोधन हुआ, भारत की राजधानी का स्थानान्तरण कलकत्ता से दिल्ली कर दिया गया और वहाँ एक नया साम्राज्यीय नगर बसाने का निर्णय किया गया। राष्ट्रवादियों के उदार और उग्र पक्ष और साथ ही मुस्लिम लीग में ऐक्य हुआ और राष्ट्र के शीर्षस्थ नेताओं ने परस्पर मिलकर राजनीतिक प्रगति के लिए एक सर्वमान्य योजना बनायी। इसी समय में ब्रिटिश राज्य को बलपूर्वक उखाड़ फेंकने के लिए सन् सत्तावन के बाद सबसे बड़ा षड्यन्त्र रचा गया। होमरूल प्राप्त करने के लिए और जन विरोधी विधियों को कार्यान्वित होने से रोकने के लिए एक बहुत बड़ा संगठित आन्दोलन किया गया। इसी काल में एक ब्रिटिश जनरल की आज्ञानुसार सिक्खों के तीर्थ स्थल अमृतसर में जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ। पंजाब में मार्शल ला की घोषणा की गयी और शासन का कार्य फौजी अधिकारियों को सौंप दिया गया तथा दमन की [illegible] नीति [illegible] गयी। सन् १९१४-१९१८ के यूरोपीय महायुद्ध का भारत पर भी प्रभाव पड़ा और देश को धन और जन की बहुत बड़ी बलि देनी पड़ी। इसी समय इन्फ्लूएंजा का भीषण प्रकोप हुआ और लोगों के कष्ट कई गुने बढ़ गये। इन बातों के अतिरिक्त प्रशासकीय एवं संवैधानिक महत्व के कितने ही परिवर्तन हुए [illegible] विकेन्द्रीकरण की नीति का विकास हुआ। १९११ ई० में भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम बना। १९१२ ई० में भारतीय शासन अधिनियम बना। लोकसेवा आयोग की नियुक्ति हुई और उसका प्रतिवेदन सामने आया। मि

माँटेग्यू और ब्रिटिश शिष्टमण्डल के अन्य सदस्य भारत आए। १९१८ ई. में भारत के संवैधानिक सुधारों पर प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ तथा सन् १९१५, १६ और १९१९ ई. में भारतीय शासन अधिनियम बनाए गए।[1]

(१) निष्प्राण उदासीनता के वर्ष

मिंटो-मार्ले सुधारों के पश्चात् तथा प्रथम महायुद्ध से पूर्व के वर्ष भारतीय राजनीति में शान्ति काल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन वर्षों में देश में राजनीतिक गतिविधियाँ दबी दबी सी थीं। शान्त गतिविधियों का कारण मिंटो मार्ले सुधार अधिनियम का क्रियान्वित होना नहीं था। सूरत विच्छेद के पश्चात् कांग्रेस का नेतृत्व उदारवादियों के हाथ में था जिनका संवैधानिक उपायों में पूर्ण विश्वास था तथा वे लोग यह जानते हुए भी कि मिंटो-मार्ले सुधार अपूर्ण हैं नये सुधारों को क्रियान्वित करने में सहयोग देने की नीति का पालन कर रहे थे। उग्रवादी नेतृत्व विहीन थे। बाल गंगाधर तिलक जेल में थे अरविन्द घोष ने राजनीतिक जीवन से सन्यास ग्रहण कर लिया था। मिंटो के उत्तराधिकारी लार्ड हार्डिंग की उदारवादी और प्रगतिशील नीति ने भी शान्ति का वातावरण बनाए रखने में काफी मदद की। हार्डिंग ने शासन में सुधार करने की नीति अपनायी। बंगाल विभाजन रद्द किया दिल्ली को राजधानी बनाया और प्रांतीय स्वायत्तता के विचारों का समर्थन किया। सरकार ने इन वर्षों में आतंककारी राष्ट्रीय आन्दोलन का भी कठोरता से दमन किया। इन सब कारणों से देश में निष्प्राण उदासीनता का वातावरण बन गया और जनता एक प्रकार से राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति उदासीन हो गई।

(२) प्रथम महायुद्ध और राष्ट्रीय आन्दोलन

सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध का विस्फोट हुआ। अमरीका और ब्रिटेन के नेतृत्व में २२ राष्ट्रों का चार धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध मोर्चा स्थापित हुआ। चार वर्ष तक सम्पूर्ण विश्व महायुद्ध की भीषण ज्वाला में जलता रहा। इस युद्ध का भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर अत्यधिक गहरा प्रभाव पड़ा। प्रथम क्रान्तिकारी पुनः सक्रिय हो उठे। जिनकी विवशता और संकटपूर्ण स्थिति के कारण उनके हृदय में नवजीवन एवं आशा का संचार हुआ। विदेशों में भी क्रांतिकारी संगठनों की स्थापना हुई। १९१४ ई. में लाला हरदयाल ने टर्की जाकर गदर पार्टी की स्थापना की।[2]

---

१ भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास १९६७ पृ. २१७-११

२ लाला हरदयाल ने सन् १९११ में केलीफोर्निया में गदर पार्टी की स्थापना की। इस संस्था ने विदेशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन को एक नई शक्ति प्रदान की। श्री हरदयाल विदेशी सभ्यता के घोर शत्रु थे। उनकी धारणा थी कि भारत की भूमि पर विदेशी शासन एक अभिशाप है और इससे मुक्ति दिलाना ही उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इस दिशा में भारत में कार्य करना कठिन समझ कर वे अमरीका चले गए। उन्होंने गदर पार्टी के पत्र एक गुरमुखी में और दूसरा उर्दू में आरम्भ किए और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध प्रचार किया। कनाडा और अमरीका में बसे भारतवासियों पर उनके कार्यों का गहरा प्रभाव पड़ा।

हरदयाल ने जमनी पहुँच कर वहा भी भारतीय राष्ट्रीयदल की स्थापना की। अनेक क्रान्तिकारी उक्त सगठनो म सम्मिलित थ जिनमे तारकनाथदास चम्पकरमन पिल्ले आदि प्रमुख हैं। द्वितीय युद्ध काल म अग्रजो और भारतीयो म सहयोग का विकास हुआ। लार्ड हार्डिञ्ज की बुद्धिमत्तापूण नीति क फलस्वरूप भारतीयो के हृदयो म अग्रजो की सहृदयता एव यायप्रियता क प्रति कुछ विश्वास बना। इस काल मे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर उदारवादियो के हाथ मे थी जिन्होने प्रजातन्त्र एव मानवता की रक्षा हेतु युद्ध म अग्रजो को सहयोग प्रदान करना उचित समझा। प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर निम्न लिखित प्रतिरिक्त प्रभाव पडे —

(१) देश मे नवचेतना की लहर का प्रसार हुआ। युद्ध म भारतीय सनिको क गौरवपूर्ण कारनामो स देश में आत्मविश्वास का सचार हुआ तथा जनता स्वतत्रता के लिए आकुल हो उठी।

(२) शिक्षित भारतीयो मे व्यापक दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ। देश के नवयुवक अन्य देशो की शासन व्यवस्था स अत्यधिक प्रभावित हुए और व अपने देश में भी स्वशासन की कल्पना सजोने लगे।

(३) भारतीयो को स्वतन्त्रता और स्वशासन क महत्त्व का ज्ञान हुआ। युद्ध काल मे बहुत से शिक्षित भारतीयो ने विदेश-यात्राए की जिसस उन्ह पराधीन देशो की दयनीय स्थिति के अवलोकन का मौका मिला। इससे प्रेरित होकर व भारत भूमि को स्वतन्त्र करने के लिए व्याकुल हो उठे।

(४) गृहशासन आन्दोलन के लिए प्ररणा मिली। आन्दोलन के सचालको को यह विश्वास था कि युद्ध के समय यदि आन्दोलन प्रारम्भ किया जाए तो उसमे सफलता अवश्य मिलेगी। अत यह कहा जा सकता है कि गृहशासन आन्दोलन की मूल प्ररणा महायुद्ध मे निहित थी।

(५) कांग्रेस क रुख मे भी परिवतन आया। उसन स्वशासन की तरफ कार गर ढग से बढन का सकल्प कर लिया।

(६) मेसोपोटामिया की घटनाओ ने सरकार की अकुशलता का भडाफोड कर दिया। इससे जन असतोष में वृद्धि हुई और ब्रिटिश सरकार शीघ्र सुधार के लिए बाध्य हो गयी। एक आयोग की नियुक्ति हुई तथा माटग्यू घोषणा के लिए माग प्रशस्त हुआ।

(७) भारतीय राजनीति के रगमच पर महात्मा गाधी का पदापण हुआ और राष्ट्रीय आन्दोलन में गाधी-युग का सूत्रपात हुआ।

सक्षेप मे युद्ध काल मे ऐसी घटनाए घटी जिन्होने भारतीयो को झकझोर दिया तथा वे निष्प्राण उदासीनता को त्याग कर जाग उठे।

(३) उग्रवादियों और उदारवादियों में मेल

युद्ध के प्रारम्भ होने से कुछ मास पूर्व तिलक को जेल से मुक्त कर दिया गया था। उग्र दल के छुपे हुए सदस्य पुनः प्रकट हो गए और विदेशों में गए हुए सदस्य वापिस भारत आ गए। तिलक यद्यपि वृद्ध हो गये थे परन्तु उनके हृदय में स्वराज्य की भावना अभी भी प्रबल थी और वे स्वराज्य के लिए जन-आन्दोलन का नेतृत्व करने के इच्छुक थे। मित्र देशों की इस घोषणा ने कि युद्ध स्वतन्त्रता, शान्ति, प्रजातन्त्र और आत्म निर्णय के अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है उनके मन में आशा का संचार किया। तिलक ने सम्पूर्ण राजनीतिक स्थिति पर गहन मनन किया और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि उदारवादियों के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस प्रभावहीन हो गयी है, मिन्टो-मार्ले सुधार असन्तोषजनक हैं और मुसलमान भारत के राजनीतिक जीवन में एक प्रभावकारी शक्ति बनते जा रहे हैं। उन्होंने यह अनुभव किया कि कांग्रेस के दोनों अंगों को मिलाकर संगठन को प्रभावशाली बनाना, मुसलमानों और विशेषकर मुस्लिमलीग को कांग्रेस-परिवार में लाना तथा स्वराज्य और संवैधानिक प्रजातन्त्र के लिए आन्दोलन पुनः आरम्भ करना आवश्यक है। श्रीमती ऐनीबिसेन्ट के सहयोग से उन्होंने कांग्रेस के दोनों धड़ों में मेल का प्रयास आरम्भ किया। उदारवादियों विशेषकर श्री गोखले एवं फीरोजशाह मेहता ने इसका विरोध किया। उनको भय था कि तिलक नौकरशाही के विरुद्ध पुनः आन्दोलन आरम्भ कर सकते हैं। शीघ्र ही उदारवादी नेतृत्व विहीन हो गए। फरवरी १९१५ ई० में श्री गोखले एवं नवम्बर १९१५ ई० में फीरोजशाह मेहता की मृत्यु हो गयी। सच्चिदानन्द सिन्हा ने कांग्रेस के कार्यों में रुचि लेना बन्द कर दिया, वाचा वृद्ध हो गए थे, उनकी दृष्टि कमजोर हो गयी थी और मदनमोहन मालवीय उदारवादियों का नेतृत्व करने की स्थिति में नहीं थे। भारतीय राजनीति के रंगमंच पर केवल एक ही व्यक्ति बचा था जो नेतृत्व कर सकता था। वह व्यक्ति था तिलक। श्रीमती बिसेन्ट के प्रयत्नों के फलस्वरूप १९१५ ई० के बम्बई अधिवेशन में कांग्रेस के संविधान में परिवर्तन कर उग्रवादियों के लिए कांग्रेस में प्रवेश के द्वार खोल दिए गए। जनवरी १९१६ ई० में तिलक ने अपने दल सहित मातृ-संस्था में पुनः सम्मिलित होने की घोषणा की। सन् १९१६ के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में जब तिलक भाग लेने पधारे तो उनका अतुल हर्षध्वनि से स्वागत किया गया। इस प्रकार कांग्रेस के दोनों हिस्से उग्रवादी एवं उदारवादी पुनः संयुक्त हो गए जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा प्राप्त हुई।

(४) कांग्रेस लीग समझौता

मिन्टो-मार्ले अधिनियम के पश्चात् मुस्लिम लीग के दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आ गया था। शिक्षित एवं देशभक्त मुसलमानों के प्रवेश के कारण उसके साम्प्रदायिक स्वरूप में कुछ कमी हुई। लीग पृथकता की नीति [redacted] दूर होने लगी और उसमें प्रगतिवादी तथा राष्ट्रवादी नीतियों का समावेश होने लग गया। फलतः वह देश की सर्वप्रमुख राजनीतिक संस्था (कांग्रेस) के अधिक समीप आ गयी

जिससे वह अब तक अछूत का सा व्यवहार करती थी पक्षधर थी लीग ने भी उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए कांग्रेस से सहयोग करने का निश्चय किया।

लीग की विचारधारा में परिवर्तन के कारण

प्रश्न यह है कि मुस्लिम लीग में जिस अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर पूर्ण विश्वास था और जो ब्रिटिश शासकों के प्रति ठकुरसुहाती नीति अपनाने में अपना और मुस्लिम समुदाय का हित समझती थी अचानक परिवर्तन क्यों आ गया? वह साम्प्रदायिकता के स्थान पर प्रगतिशील नीतियों के समर्थक सम्पर्क में क्यों आ गई? इसके निम्न कारण हैं —

(१) विचार दर्शन

इस समझौते के पीछे निहित विचार दर्शन को भी देखना होगा। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ही इस कदम की तरफ बढ़ने में अपना हित क्यों देखा? इसके मूल में कांग्रेस और लीग दोनों का ही विचार दर्शन काम कर रहा था। कांग्रेस का विश्वास था कि मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति जो असन्तोष बढ़ रहा है उसे दृष्टिगत करते हुए मुस्लिम भावनाओं के साथ सामंजस्य स्थापित कर और उसके साथ सहयोग की नीति अपनाकर ब्रिटिश सरकार के प्रतिरोध के लिए संयुक्त मोर्चा स्थापित किया जा सकता है। मुस्लिम लीग में राष्ट्रवादियों के प्रभाव को देखते हुए कांग्रेस का यह विश्वास हो गया था कि लीग अपना साम्प्रदायिक स्वरूप बदलने की दिशा में अग्रसर है अतः राष्ट्रवादी मुसलमानों के साथ सहयोग करने में नीति सम्बंधी कठिनाइयां उत्पन्न नहीं होंगी। तत्कालीन कांग्रेसी नेता इस दृढ़ भावना से भी प्रेरित थे। उनका विश्वास था कि अंग्रेजों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए यदि अपने सिद्धांतों की सीमित मात्रा में बलि भी देनी पड़े तो ऐसा किया जाना चाहिए। इसलिए उन्होंने विधानसभाओं में मुसलमानों के अलग प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को स्वीकार कर लिया जो उनकी नीतियों के विपरीत था। कांग्रेस इस मौके का लाभ उठाकर मुस्लिम लीग के साम्प्रदायिक तत्त्वों को अलग थलग कर उनके अस्तित्व को समाप्त करना चाहती थी। संक्षेप में कांग्रेस एकता के स्वर्णिम अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहती थी और इसलिए उसने मुस्लिम लीग के साथ हाथ मिलाना आवश्यक समझा।

मुस्लिम लीग का भी विचार था कि वर्तमान परिस्थितियों में सरकार उनके प्रति उदासीन हो गयी है अतः अब सरकार पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में कांग्रेस के साथ सहयोग करने के अलावा और कोई दूसरा विकल्प उसको दृष्टिगत नहीं हो रहा था। लीग का दृष्टिकोण स्वार्थों से भी परिपूर्ण था। धर्मनिरपेक्षता अन्य संगठनों से सहयोग आदि उसके दृष्टिकोण जो उसे राष्ट्रवादी दल की पंक्ति में खड़ा कर देते हैं केवल भ्रम थे। वह तो कुछ समय के लिए अपनी साम्प्रदायिक भावना को छोड़कर कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करना चाहती थी।

मुस्लिम लीग चाहती थी कि भारतीय राजनीति की पहल उसके हाथ से न चली जावे। इस समझौते के पीछे मुस्लिम-लीग की आन्तरिक राजनीति भी काम कर रही थी। मुस्लिम लीग उस समय सत्ता संघर्ष के दौर से गुजर रही थी और इस सत्ता संघर्ष में जिसमें था जिन्ना का भविष्य प्रमुख तत्व था समझौते की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जिन्ना मुस्लिम राजनीति की बागडोर अपने हाथ में लेकर अपने विरोधियों को हतप्रभ करना चाहते थे।

(२) बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना

सन् १९११ में बंग भंग को रद्द करने से मुसलमानों का अंग्रेजों पर विश्वास उठ गया। इस समय तक राष्ट्रवादी तत्वों का काफी मात्रा में मुस्लिम लीग में प्रवेश हो गया था फलस्वरूप मुस्लिम लीग पर से अलीगढ़ी साम्प्रदायिक नेतृत्व समाप्त हो गया। राष्ट्रवादी मुसलमानों ने अंग्रेजी सरकार की स्वार्थपूर्ण नीति के कुटिल इरादों को भांप कर अपनी भावी रण नीति निर्धारित करने में अपना हित समझा। ऐसे नेताओं में मौलाना मजहर मयन वाजिद हुसैन महम्मद अली जिन्ना और हसन इमाम के नाम उल्लेखनीय हैं।

(३) समाचारपत्रों का योगदान

मौलाना आजाद द्वारा सम्पादित अल हिलाल और महम्मद अली द्वारा सम्पादित कामरेड समाचारपत्रों ने मुसलमानों में नवचेतना का संचार किया।

(४) यूरोपीय जातियों के विरुद्ध आंदोलन

तुर्की के खलीफा के नेतृत्व में यूरोपीय जातियों के खिलाफ मसलमानों का संगठित आन्दोलन छिड़ा गया। भारतीयों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और वे अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए।

(५) अंग्रेजों द्वारा खलीफा के विरुद्ध संघर्ष

सन् १९१२ १३ में अंग्रेजों द्वारा तुर्की के खलीफा के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने के कारण भारत के मसलमानों में भयंकर रोष उत्पन्न हो गया और उनका रुख अंग्रेज विरोधी हो गया।

(६) अलीगढ़ के कुप्रभाव से मुक्ति

लीग का कार्यालय १९१३ ई. में अलीगढ़ से हटाकर लखनऊ ले जाया गया। मिस्टर बक और आर्चीबाल्ड से इसका सम्पर्क टूट गया और उनका प्रभाव भी समय आने पर समाप्त हो गया। अतः लीग कांग्रेस के निकट आ गयी।

(७) वायसराय का अनुकूल रुख

वायसराय हार्डिंग्ज का रुख कांग्रेस के अधिक अनुकूल था जबकि उसके पूर्व के वायसराय मिंटो ने मसलमानों के प्रति पक्षपात पूर्ण रवैया अपनाया था। सरकार की नीति में परिवर्तन देखकर मसलमान सशंकित हो उठे।

(८) ध्येय की एकता

कांग्रेस और लीग के निकट आने का सबसे बड़ा कारण ध्येय की एकता था। सन् १६१३ में लीग ने एक प्रस्ताव पारित करके इस सत्य को परिभाषित किया कि उसका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। ध्येय की इसी एकता के कारण वह कांग्रेस के अधिक निकट आ गई।

(६) कांग्रेस लीग समझौते का अस्तित्व में आना

मुस्लिम लीग में राष्ट्रवादियों के प्रवेश के कारण मुस्लिम लीग के उद्देश्य में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गए। इसने सन् १६१३ में यह प्रस्ताव पारित किया कि उनका लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति है। १६१५ ई० में बम्बई अधिवेशन में यह तय किया गया कि वह अन्य राजनीतिक दलों के साथ सम्पर्क बढ़ाएगी और भारत में शासन सुधार की योजना तयार करने में कांग्रेस और लीग एक साथ मिलकर काम करेंगे। सुधार योजना को तयार करने के लिए एक संयुक्त समिति का निर्माण किया गया। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर कांग्रेस लीग समझौता संपन्न करने का आधार स्तंभ प्राप्त हो गया। सन् १६१६ में दोनों दलों का संयुक्त अधिवेशन लखनऊ में हुआ। इस अधिवेशन में संयुक्त समिति का प्रतिवेदन स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार कांग्रेस और लीग में एक समझौता सम्पन्न हुआ जिसे लखनऊ पैक्ट की संज्ञा दी जाती है। इस समझौते की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं —

१ केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानसभाओं में ८० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित और २० प्रतिशत सदस्य मनोनीत होने चाहिए।

२ केन्द्रीय विधानसभा की सदस्य-संख्या १५० और मुख्य प्रांतीय विधान सभाओं की सदस्य-संख्या कम से कम १२५ और प्रान्तों की सदस्य संख्या ५० से ७५ तक हो।

विधानसभाओं के निर्वाचित-सदस्य को जनता द्वारा चुना जाय और मताधिकार को यथासम्भव विस्तृत रखा जाए।

४ विधानसभाओं में मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व दिया जाए। विभिन्न सभाओं में उनकी संख्या इस प्रकार हो

१ केन्द्रीय विधानसभा में एक तिहाई भाग। २ पंजाब में ५० प्रतिशत ३ संयुक्त प्रान्त में ३० प्रतिशत ४ बंगाल में ४० प्रतिशत ५ बिहार में २५ प्रतिशत ६ बम्बई में एक तिहाई ७ मध्य प्रदेश में १५ प्रतिशत और ८ मद्रास में १५ प्रतिशत।

५ केन्द्रीय कार्यकारिणी में भारतीयों को शामिल करने के प्रश्न पर केन्द्रीय शासन गवर्नर जनरल कार्यकारिणी परिषद् की सहायता से करे जिसमें आधे सदस्य भारतीय हों।

अल्पसंख्यकों को किसी विधेयक पर वीटो करने का अधिकार प्रदान किया जाए। यदि उस अल्पसंख्यक समुदाय का ३/४ भाग उस विधेयक के विपक्ष में है तो उसे रद्द समझा जाए और उस पर विधानसभा में विचार न किया जाए।

६ भारत मन्त्री की परिषद् को समाप्त कर दिया जाए और भारत सरकार के साथ उसका वह सम्बन्ध रहे जो औपनिवेशिक मन्त्री का औपनिवेशिक सरकार के साथ होता है।

प्रतिक्रियाएं

कांग्रेस लीग समझौते के सम्बन्ध में काफी प्रतिक्रियाएँ हुईं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा कि भारत के इतिहास में यह एक सुनहरा दिन था। गुरुमुख निहालसिंह के मतानुसार इस प्रकार भारत की दो बड़ी जातियों ने और दो बड़ी राजनीतिक संस्थाओं ने एक ही कार्यक्रम को अपनाया और इस रूप में इनके द्वारा विशेषकर उसी नरम और गरम दल के पुनः एक हो जाने से ब्रिटिश भारत की जनता का राजनीतिक दृष्टिकोण से जागत प्रतिनिधित्व हुआ। डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार समझौता कांग्रेस द्वारा लीग को सन्तुष्ट करने की नीति का प्रारम्भ मात्र था।

समालोचना

कांग्रेस द्वारा साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर अपनी नीति में आधारभूत परिवर्तन कर उसके दबाव को स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस को इस समझौते के फलस्वरूप महान् कीमत चुकानी पड़ी। उसने अपने आधारभूत सिद्धान्तों की बलि दी अप्रत्यक्ष रूप में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के सामने अपना सिर टेक दिया कांग्रेस की तुष्टिकरण की नीति से पाकिस्तान की नींव का आधार प्राप्त हो गया। थोड़े से समय के लिए देश में एकता के वातावरण का संचार हो गया। हिन्दू तथा मुसलमान परस्पर मिलकर स्वराज्य आन्दोलन में अग्रसर हुए। भारतीय राजनीति की पहल एक बार फिर मुस्लिम लीग के हाथ में आ गयी।

(५) गृहशासन आन्दोलन

सन् १९१ से सन् १९१३ के वर्षों में नेताओं की अनुपस्थिति और सरकार की दमन नीति के कारण सारा राष्ट्र निराशा के वातावरण में डूबा हुआ था। राष्ट्र के भाग्याकाश पर घना गहन अन्धकार छाया हुआ था तभी प्रकृति के नियम के अनुसार अन्तरिक्ष में उषा की किरणें दिखाई देने लगी। ६ वर्षों की नजरबन्दी काटकर १९१४ ई० में लोकमान्य तिलक पुनः देश में आ गए, उनकी इन ६ वर्षों की नजरबन्दी में उन पर इतनी कठोरता का बर्ताव किया गया था कि साधारण व्यक्ति तो पागल ही बन जाता। परन्तु लोकमान्य तो मनस्वी थे उन्होंने तो उन ६ वर्षों का ऐसा सदुपयोग किया कि संसार चकित हो गई। माण्डले के किले में वह थे और दूसरा उनका रसोइया था। अन्य किसी मेल जोल के आदमी का प्रवेश

वहां समय नहीं था। ऐसी एकान्त निस्तब्धता में लोकमान्य ने पुस्तकों को अपना साथी बनाया और गीतारहस्य की रचना कर डाली। लोकमान्य ने घोर तपस्या के वातावरण में रहकर जो ग्रंथ लिखा उसके प्रकाशित होने पर देश की समझ में आ गया कि एक तपस्वी पुरुष जेल में रहकर भी संसार की अमूल्य सेवा कर सकता है।

बाहर आकर भी यह मनस्वी आराम से नहीं बैठा। सन् १९१६ के अप्रैल मास में लोकमान्य तिलक ने राजनीतिक जीवन को पुनर्जीवित करने के लिए होम रूल लीग की स्थापना की। उसके मास पश्चात् श्रीमती एनीबिसेन्ट ने इंडियन होमरूल लीग नामक दूसरी संस्था का आयोजन किया। इससे पूर्व श्रीमती एनी बिसेन्ट एक उत्कृष्ट वक्ता और थियोसोफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष की हैसियत से प्रसिद्ध हो चुकी थी। श्रीमती एनीबिसेन्ट का राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश पुराने सिपाही की भांति पूरी तैयारी के साथ हुआ। उन्होंने मद्रास स्टैंडर्ड नामक अंग्रेजी दैनिक को लेकर उसका नाम न्यू इंडिया रख दिया और उसके द्वारा वह सरकार और जनता दोनों को जगाने का कार्य करने लगी। देश में थियोसोफिकल सोसाइटी की जितनी भी शाखाएं थी वे सब होमरूल लीग के कार्यालयों का काम देने लगी। संक्षेप में थोड़े ही समय में कांग्रेस के नेताओं के हाथ से राष्ट्र की टूटती नाव का चप्पू इस तेजस्विनी आयरिश महिला ने अपने हाथ में ले लिया।

श्रीमती एनीबिसेन्ट भारत के जन जीवन के मार्मिक पहलू को स्पर्श करने में पूरी तरह सफल हुई। एक विदेशी महिला होते हुए भी उसकी भावनाओं के उद्रेक ने उसे इस रंग में रंग दिया कि उसे इस देश की मिट्टी के साथ आत्मसात् होना है। वह देश की उच्च आध्यात्मिक नैतिक और गौरवपूर्ण मानवीय परम्पराओं से अत्यधिक प्रभावित हुई और राष्ट्र को अपनी मातृभूमि समझने लगी। परन्तु उसकी भावनाओं का मूल देश विदेशी साम्राज्यवाद का शिकार था। राष्ट्रगौरव के साथ विदेशी हुक्मरान खिलवाड़ कर रहे थे और इस राष्ट्र को सन्द सदव के लिए भुखमरी बेकारी असहायता परावलम्बन और निर्बलता की तरफ धकेल रहे थे। ऐसे समय में भारतीयता से ओतप्रोत एनीबिसेन्ट की आत्मा आहत हुए बिना नहीं रह सकी और वह देश को इस स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए कुछ ठोस कार्यक्रमों का संचालन करने के लिए छटपटाने लगी। भावनाओं के इसी तूफान के फलस्वरूप उसने होमरूल आन्दोलन को जन्म दिया।

उनके देश आयरलैंड में इस समय स्वतन्त्रता के लिए उग्र आंदोलन चल रहा था। आयरिश नेता रेडमाड के नेतृत्व में आयरलैंड में होमरूल लीग की स्थापना हुई थी जो वैधानिक तथा शांतिमय उपायों से गृहशासन या स्वराज्य प्राप्त करना चाहती थी। श्रीमती बिसेन्ट ने इस विचारधारा का अध्ययन करके अपना मार्ग निश्चित किया। इस समय देश में क्रान्तिकारी सक्रिय थे और उग्रवादी नेता कांग्रेस से अलग हो गए थे। इसीलिए श्रीमती बिसेन्ट उग्रवादियों को इकट्ठा कर आयरलैंड की भांति गृहशासन आन्दोलन का सूत्रपात करना चाहती थी।

श्रीमती एनीबिसेन्ट मनस्वी तिलक के जीवन-दर्शन से भी अत्यधिक प्रभावित थी और भारतीय संस्कृति के इस महान् सेवक के साथ काम कर उसके समान ध्येय (स्वराज्य प्राप्त करना) को प्राप्त करना चाहती थीं। इन तत्वों ने बिसेन्ट को होम रूल आन्दोलन का संचालन करने की प्रेरणा दी।

आन्दोलन का उद्देश्य

होमरूल आन्दोलन हिन्दू राष्ट्रवाद से प्रभावित एक संवैधानिक और शान्तिपूर्ण आन्दोलन था। श्रीमती बिसेन्ट शान्तिपूर्ण संवैधानिक तरीकों से भारत में स्वशासन की स्थापना करना चाहती थी। गृहशासन आन्दोलन के निम्न मुख्य उद्देश्य थे—

पहला उद्देश्य स्थानीय संस्थाओं और विधानसभाओं में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का स्वशासन स्थापित करना था। भारत में उसी प्रकार के स्वशासन की स्थापना करना था जैसाकि अन्य औपनिवेशिक राज्यों में था। स्वयं एनीबिसेन्ट के शब्दों में "राजनीतिक सुधारों से हमारा उद्देश्य ग्राम पंचायतों से लेकर जिला नगरपालिका और प्रान्तीय धारासभाओं तक राष्ट्रीय संसद के रूप में स्वशासन की स्थापना है। इस राष्ट्रीय संसद के अधिकार स्वशासित उपनिवेशों की धारासभाओं के समान ही होंगे। उन्हें नाम जो भी दिया जाए और जब साम्राज्ञी संसद में स्वशासित राज्यों के प्रतिनिधि लिए जाएँ तो उसमें भारत के प्रतिनिधि भी शामिल हों।"[3]

दूसरा श्रीमती बिसेन्ट ब्रिटिश साम्राज्य की विरोधिनी नहीं थी। उनका कहना था कि स्वशासित भारत युद्ध में अंग्रेजों के लिए अधिक सहायक सिद्ध होगा। स्वशासन प्रदान करने पर भारतीय पूर्णनिष्ठा के साथ अंग्रेजों को सहयोग देंगे। अतः अंग्रेजी साम्राज्य के हित में ही होगा कि वह भारतीयों को स्वशासन प्रदान करके संतुष्ट रखे।

तीसरा गृहशासन आन्दोलन का अन्य उद्देश्य भारतीय राजनीति की धारा को उग्रवाद की तरफ जाने से रोकना था। श्रीमती बिसेन्ट का विचार था कि अगर भारतीय राजनीति को सशक्त नेतृत्व प्रदान नहीं किया गया तो इस पर क्रांतिकारियों तथा आतंकवादियों का प्रभुत्व हो जायगा। इस उद्देश्य से उन्होंने शान्तिपूर्ण तथा संवैधानिक आन्दोलन चलाना ही उपयुक्त समझा और इस प्रकार उसने उग्रवादियों को आतंकवादियों के प्रभाव से सदा के लिए मुक्त कर दिया। डा. जकारिया ने इसी तथ्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए ठीक ही कहा था "उनकी योजना उग्रवादी राष्ट्रीय व्यक्तियों को क्रांतिकारियों के साथ इकट्ठा होने से रोकने की थी। वे भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य दिलाकर सन्तुष्ट रखना चाहती थीं और कांग्रेस में उग्रवादियों को उदारवादियों के साथ दुबारा लाना चाहती थी।"[4]

चौथा युद्धकाल के दौरान भारतीय राजनीति शिथिल पड़ गयी थी। सक्रिय कार्यक्रम तथा प्रभावकारी नेतृत्व के अभाव में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति अवरुद्ध

3. Annie Besant : India Bond or Free. P. 162-163
4. Zacharia, R. : Renascent India. P. 165

हो गयी थी अतः भारतीय जनता को निष्प्राण अवस्था से जगाना आवश्यक था। श्रीमती बिसेंट ने समय की माँग को पहचान कर होमरूल आन्दोलन द्वारा भारतीयों को झकझोरना चाहा।

आन्दोलन के बढ़ते चरण

होमरूल आन्दोलन की शुरुआत सर्वप्रथम तिलक ने की। यद्यपि वे कांग्रेस में शामिल हो गए थे फिर भी उन्होंने यह अनुभव किया कि कांग्रेस के तत्वावधान में व्यापक राजनीतिक आन्दोलन का संचालन करना संभव नहीं है। अतः उन्होंने होम रूल लीग के तत्वावधान में एक राजनीतिक आन्दोलन चलाया। २३ अप्रैल १६१६ ई० को उन्होंने पूना में होमरूल लीग की स्थापना की। ६ मास बाद श्रीमती बिसेंट ने भी मद्रास में भारतीय होमरूल लीग की स्थापना की। दोनों का उद्देश्य एक ही था। अतः लखनऊ अधिवेशन के बाद दोनों ने ही इस आन्दोलन को सम्मिलित रूप से संचालित करने का निश्चय किया। दोनों नेताओं ने सारे देश का दौरा करके इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए जनमत जागृत किया। समाचारपत्रों ने भी इसमें योगदान दिया। इसमें बिसेंट के दैनिक 'न्यू इंडिया' तथा साप्ताहिक 'कामन वील' और तिलक के दैनिक केसरी एवं साप्ताहिक मराठा ने भारत के लिए स्वशासन का घर घर प्रचार किया। देश के विभिन्न भागों में होमरूल संस्थाएं स्थापित हुई। इसके परिणामस्वरूप सारे देश में उत्तेजना और आशा का वातावरण उपस्थित हो गया। जनता को आशा बंध गयी कि यह आन्दोलन शीघ्र ही कुछ सुपरिणाम लाएगा।

गृहशासन आन्दोलन का दमन

सन् १६१७ में होमरूल आन्दोलन अपने चरम शिखर पर पहुँच गया था। यह शांतिपूर्ण तथा वैधानिक आन्दोलन था। फिर भी ब्रिटिश सरकार ने इसके दमन के लिए अमानुषिकता का व्यवहार किया। श्रीमती बिसेंट और उसके दो सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया। तिलक को पंजाब तथा दिल्ली में प्रवेश करने के लिए मनाही कर दी गयी। श्रीमती बिसेंट और तिलक के समाचारपत्रों से जमानतें मांगी गयी। विद्यार्थियों को आन्दोलन में सम्मिलित होने से रोक दिया गया। जनता को होमरूल लीग की सभाओं में सम्मिलित होने से वंचित कर दिया गया। दमन के इन कार्यों से देश में विरोध और रोष का ज्वार उमड़ पड़ा और देश के विभिन्न भागों में विरोधी सभाएं की गई।

प्रभाव

होमरूल आदोलन को कुचलने के सरकारी प्रयास की घोर निंदा की गयी। तिलक ने सत्याग्रह करने की धमकी दी। कांग्रेस ने सभी नजरबन्द नेताओं को छोड़ने की मांग की। सरकार के लिए इस आन्दोलन की उपेक्षा करना आसान काम नहीं था। उसे युद्ध में भारतीयों की सहायता की आवश्यकता थी। इसलिए भारत मंत्री माटग्यू ने अपनी ऐतिहासिक घोषणा द्वारा युद्धोपरान्त भारत में स्वशासन-स्थापना

का संकेत दिया। सारांश यह कि यह आन्दोलन व्यर्थ नहीं गया। इसने भारतीयों में नव आशा का संचार कर दिया और सरकार को नयी सुधार योजना लागू करने के लिए बाध्य कर दिया।

(६) मेसोपोटामिया की घटना

होमरूल आन्दोलन द्वारा उत्पन्न उत्तजनापूर्ण वातावरण में 'मेसोपोटामिया कमीशन' की रिपोर्ट ने आग में घी का काम किया। इसने भारत सरकार को अकुशल सिद्ध कर दिया तथा शासन में सुधार को अनिवार्य बना दिया। सन् १६१४ में मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध तुर्की ने युद्ध में प्रवेश किया। तुर्की के विरुद्ध युद्ध का संचालन भारत सरकार कर रही थी। संचालन में अनेक दोष थे। सैनिकों के उपचार की समुचित व्यवस्था नहीं थी। सेना को साधारण सुविधाएं भी नहीं दी गयी थीं। इसी कारण इंगलैंड में बड़ा विवाद उठा और मेसोपोटामिया कमीशन की नियुक्ति की गयी। कमीशन ने भारत सरकार को दोषी ठहराया उसकी कड़ी आलोचना की तथा उसे सर्वथा अयोग्य बतलाया। उसने तत्कालीन भारतीय शासन प्रणाली को त्रुटिपूर्ण बतलाया तथा उसमें सुधारों की मांग की। फलस्वरूप भारत-सचिव चेम्बरलेन को त्यागपत्र देना पड़ा और मांटेग्यू ने उसका स्थान ग्रहण किया।

(७) मांटेग्यू घोषणा

सन् १६०६ के सुधारों से राष्ट्रीय नेताओं को बहुत निराशा हुई थी क्योंकि उनके अनुसार वास्तविक नियंत्रण सरकार के पास ही रहा और नौकरशाही के सामने जन प्रतिनिधियों की अवहेलना कर दी गयी। इन सुधारों में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था को स्वीकार करके देश में फूट के बीज बोए। साम्प्रदायिक व्यवस्था के कारण सम्पूर्ण देश में हिंसा का नग्ननृत्य हुआ और करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति की हानि हुई। इन सुधारों से असन्तुष्ट होकर भारतीयों ने होम रूल आन्दोलन चलाया। प्रथम महायुद्ध में जो सेवाएं भारतीयों ने की थीं उनका प्रतिफल उन्हें नहीं मिला। लखनऊ समझौते के बाद कांग्रेस और लीग दोनों एक ही मंच पर आ गई और अंग्रेजों से अधिक सुधारों की मांग करने लगी। अन्त में परिस्थितियों से विवश होकर मांटेग्यू ने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारतीयों को शासन में अधिक भाग देना है और अन्ततोगत्वा एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना है।

घोषणा के अस्तित्व में आने के कारण

इस घोषणा के अस्तित्व में आने के कारणों का ऐतिहासिक सन्दर्भ में अध्ययन करना होगा। वे कौन से तत्त्व थे जिन्होंने इस योजना को अन्तिम रूप दिया। विषय के व्यापक परिप्रेक्ष्य में जाने पर दो तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है।

(१) देश की आन्तरिक घटनाओं का प्रभाव

देश में असन्तोष अपनी चरम सीमा पर था और भारतीय अपनी असन्तोष —— स्थिति को और अधिक समय तक सहन करने को तैयार नहीं थे। श्रीमती एनीबिसेण्ट के प्रयासों के कारण कांग्रेस के उदारवादियों और उग्रवादियों में मेल हो चुका था तथा लीग और कांग्रेस एक मंच पर आकर काम करने को तैयार हो गए थे। होमरूल आंदोलन और मेसोपोटामिया की घटनाओं के कारण सम्पूर्ण देश में उत्तेजक वातावरण छाया हुआ था और सारा देश एक स्वर से इन घटनाओं की जाँच की माँग कर रहा था। इसलिए जैसाकि पहले लिखा गया है ब्रिटिश सरकार को विवश होकर मेसोपोटामिया कमीशन की स्थापना करनी पड़ी। इस कमीशन ने सम्पूर्ण तथ्यों का अवलोकन करके युद्ध संचालन में भारत सरकार की अयोग्यताओं को प्रकट किया तथा भारत सरकार को सर्वथा निकम्मा साबित किया। साथ ही साथ इस बात की भी सिफारिश की कि वर्तमान शासन प्रणाली को बदला जाए और उसके स्थान पर नई शासन प्रणाली लागू की जाए।

(२) इंगलैंड के उदारवादी तत्वों की भूमिका

इंगलैंड के उदारवादी तत्वों ने भी मेसोपोटामिया की घटनाओं को सरकार के लिए अत्यन्त निन्दनीय बताया और भारत सचिव चेम्बरलेन को हटाने की माँग की तथा सुधारों की शीघ्र आवश्यकता पर बल दिया। इन्हीं बातों से प्रेरित होकर चाहे इसकी भूमिका प्रारम्भिक ही क्यों न रही हो ब्रिटिश संसद ने सुधारों की व्यापक स्वीकृति के लिए नए भारत सचिव माँटेग्यू की नियुक्ति की।

घोषणा

परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए माँटेग्यू ने २० अगस्त १९१७ ई० को ब्रिटिश लोकसभा में एक ऐतिहासिक घोषणा की। उन्होंने कहा "सम्राट सरकार की नीति जिससे भारत सरकार भी पूर्णतः सहमत है यह है कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन प्रणाली का धीरे धीरे विकास हो जिससे अधिकाधिक प्रगति करते हुए स्वशासन प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग रूप रहे। उन्होंने यह तय कर लिया है कि जितना शीघ्र हो इस दिशा में ठोस रूप में कुछ कदम उठाये जाएं।

इस घोषणा की सूक्ष्म व्याख्या करने पर निम्न बातें स्पष्ट होती हैं —

(१) भारतीयों को शासन के प्रत्येक विभाग में अधिकाधिक भाग लेने का अधिकार

इस घोषणा में सर्वप्रथम इस तथ्य का उल्लेख किया गया था कि सम्राट तथा भारत सरकार इस बात से सहमत हैं कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े। इस तथ्य का गहराई से विश्लेषण करने पर इस सम्बन्ध में कुछ प्रश्न स्वाभाविक रूप से पैदा होते हैं —

ब्रिटिश सरकार भारतीयों को शासन में भाग लेने-देने के लिए किस स्वरूप का निर्माण करेगी ? वह योग्यता क्रम को प्रमुखता देगी या विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले हिन्दुओं को पुरस्कृत करेगी ? इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं थी। यह स्पष्ट नहीं था कि शासन के कार्यों में भारतीयों की स्थिति महत्वपूर्ण मानी जाएगी। इस प्रकार इस घोषणा में कोई ठोस एवं स्पष्ट व्यवस्था नहीं थी।

(२) उत्तरदायी व्यवस्था से स्वशासन प्रणाली का विकास करना

इस योजना की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें उत्तरदायी शासन का प्रयोग किया गया था। यह भारत के संवैधानिक विकास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शुरुआत थी। उत्तरदायी शासन प्रणाली बहुत कुछ आंशिक स्वतन्त्र अस्तित्व की द्योतक थी। इसका अर्थ तो यही हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों की शासन करने की क्षमता पर विश्वास कर लिया जबकि अब तक उन की यही धारणा थी कि भारतीय उत्तरदायी शासन करने के लिए योग्य नहीं हैं और उनको शासन का भार नहीं सौंपा जा सकता। अब प्रश्न यह है कि ब्रिटिश विचारधारा में परिवर्तन क्यों हुआ और उसने इस योजना में उत्तरदायी शासन की कल्पना क्यों की ? कारण स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रवाद अब आश्वासनों के कल्पित मायाजाल में फँसकर सन्तुष्ट रहने को तैयार नहीं था। वह छोटे मोटे सुधारों को अपनी माँगों का प्रतिफल मानकर चलने को तैयार नहीं था। यदि उसे इस व्यवस्था (उत्तरदायी शासन) का साझीदार नहीं बनाया जाता तो वह किसी भी संघर्ष का वरण करने को तैयार था। इसीलिए अंग्रेजों ने समय की माँग को ध्यान में रखकर ही ऐसी व्यवस्था की थी।

(३) स्वशासन प्रणाली

इस योजना में स्वशासन प्रणाली का भी उल्लेख किया गया था और उसका अन्तिम सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य के साथ जोड़ा गया था। इसका तात्पर्य तो यही हुआ कि सरकार भारत की पूर्ण स्वराज्य की माँग को स्वीकार करने को तैयार नहीं थी हालांकि वह औपनिवेशिक स्वतन्त्रता के सन्दर्भ में विचार करने को अवश्य तैयार थी।

(४) अतिशीघ्र कदम उठाने की व्यवस्था

घोषणा में कहा गया था कि इस दिशा में (उत्तरदायी शासन) में जितना शीघ्र हो ठोस रूप से कुछ कदम बढ़ाए जाएं। इस व्यवस्था का उल्लेख करके सरकार भारतीयों पर मनोविज्ञान के इस रहस्य की छाप छोड़ना चाहती थी कि वह वास्तव में सच्चे दिल से सुधारों का क्रियान्वित करना चाहती है। अब यह उनकी जिम्मेदारी है कि वे इसे सफल बनाने के लिए भरसक सहयोग करें।

(५) ब्रिटिश वचन

यह घोषणा भी ब्रिटेन की माँग करने वालों को छूट दो वाली नीति को चरितार्थ करती है। ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य वास्तव में उत्तरदायी-शासन पद्धति

का विकास करना न होकर भारतीयों को शब्द-जाल से मोहित करके असन्तोष की वेगवती सरिता को दूसरी तरफ प्रवाहित करना था। सरकार इस व्यवस्था से जिसका स्वरूप अत्यन्त अस्पष्ट था और जो अस्पष्ट स्वरूप के कारण विभिन्न व्याख्याओं का आधार बन सकता था विश्व के सामने विशेषकर मित्र राष्ट्रों पर यह प्रकट कर देना चाहती थी कि वह भारत की समस्याओं के प्रति उदासीन नहीं है अपितु वह तो उस स्थिति को (उत्तरदायी शासन व स्वशासन की ओर) भी स्वीकार करने के लिए तैयार है जो एक तरह से उसके बस की बात नहीं है। दूसरी तरफ उसने इसके अस्पष्ट स्वरूप की व्यवस्था करके पहले को भी अपने हाथ से नहीं जाने दिया। घोषणा का जैसा चाहे वैसा उपयोग करके ब्रिटिश सरकार भारतीयों के प्रयत्नों का असफल कर उसे युक्तिसंगत भी करार दे सकती थी।

मुस्लिम-लीग और कांग्रेस के मध्य हुए गठबन्धन में दरार डालने की भी इस योजना में व्यवस्था थी। शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों को शामिल करने के उद्देश्य को भले ही साधारणतया एक पवित्र शुरुआत की संज्ञा के रूप में स्वीकार किया जाता रहा हो परन्तु इसके साम्प्रदायिक पहलू को भी अछूता नहीं रखा जा सकता। क्योंकि यह ब्रिटेन की चिरपरिचित नीति 'फूट डालो और राज करो' का ही एक सवमान्य सिद्धांत था। सरकार को विश्वास था कि इस प्रश्न के माध्यम से वह हिन्दू-मुस्लिम क्षेत्रों में एक बार पुनः विग्रह की लहर फैला सकेगी क्योंकि जब शासन में भारतीयों को शामिल करने का प्रश्न उठेगा तो दोनों ही वर्ग अपने २ हितों के संरक्षण के लिए अपने २ समर्थकों को शामिल करने की माँग करेंगे जिससे वह टकराव के बिन्दु पर खड़ा किया जा सकेगा। मुस्लिम लीग ने बाद में जो कदम उठाए उससे इस बात की पुष्टि होती है।

ब्रिटिश सरकार को यह भी विश्वास था कि इस प्रश्न पर एक सर्वसम्मत निर्णय पर पहुँचना भारतीयों के लिए असम्भव सा है और इस बात का लाभ उठा कर वह उन पर इस बात का दोषारोपण कर सकेगी कि वे उत्तरदायी शासन के योग्य नहीं हैं। जो कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट ही है कि इस योजना को प्रस्तावित करने के पहले ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न कोणों से इसका अध्ययन कर कुछ सूत्रों के आधार पर ही इसको अन्तिम रूप दिया था।

भारत में प्रतिक्रिया

भारत में इस घोषणा पर मिलीजुली प्रतिक्रिया हुई। नरम दल ने उसका स्वागत मैग्नाकार्टा के रूप में किया जबकि उग्रवादियों ने इसको भारतीयों का दागजाल बताकर राष्ट्रीयता को अवरुद्ध करने की दिशा में एक षड्यन्त्र बताया। साधारण भारतीयों ने इसे संवैधानिक सुधारों की दिशा में महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में आंशिक रूप से स्वीकार किया। लेकिन भारतीयों को इस घोषणा से आशा की अपेक्षा निराशा के दर्शन अधिक हुए, क्योंकि प्रस्तावित योजना में भारतीयों की

प्रगति को आंकना ब्रिटिश सरकार के हाथ में रखा गया और एकदम उत्तरदायी सरकार की स्थापना नहीं की गयी जोकि भारतीय राष्ट्रवाद की प्रमुख मांग थी।

घोषणा का मूल्यांकन

संसदीय शासन की स्थापना के संदर्भ में ब्रिटिश दृष्टिकोण कैसा भी क्यों न रहा हो परन्तु हमें इस सत्य को तो स्वीकार करना ही होगा कि भारत के संवैधानिक सुधारों की दिशा में यह घोषणा अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। यह एक क्रान्तिकारी घोषणा थी जिसके द्वारा भारत ने अपने इतिहास के नये युग में प्रवेश किया। इस घोषणा का महत्व महारानी विक्टोरिया की १८५८ ई० की घोषणा के समकक्ष है। ब्रिटिश सरकार ने इसी घोषणा के आधार पर १९१९ ई० का भारत शासन अधिनियम पारित किया जिसका विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में की गई है।

(८) लिबरल फेडरेशन

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे उग्रवादियों का प्रभाव बढ़ने से और श्रीमती ऐनीबेसेन्ट को कांग्रेस का सभापति चुन लिए जाने से उदारवादी १९१७ ई० के कलकत्ता अधिवेशन में सम्मिलित नहीं हुए। इसी समय लार्ड माण्टेग्यू व लार्ड चेम्सफोर्ड सुधारों के विषय में भारतीय नेताओं से बातचीत कर रहे थे। १९१८ ई० में मोण्टफोर्ड सुधार योजना के प्रकाशित हो जाने से नरम और गरम दल में पुनः स्थायी मतभेद उत्पन्न हो गया।

माण्टेग्यू प्रतिवेदन में कहा गया था कि केन्द्रीय सरकार में परिवर्तन करना उसे संकट में डालना और उसकी कार्यकुशलता में कमी लाना था। इस प्रतिवेदन ने कांग्रेस लीग योजना की उन बातों को माना जिसमें साम्राज्य की विभिन्न कौंसिलों में हिन्दू मुस्लिम सदस्यों के अनुपात की बात कही गयी थी। भारत की सरकार भारत मन्त्री के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी रही। होमरूल आन्दोलन से जो आशा शिक्षित वर्ग में उत्पन्न हुई थी उसे इस सुधार योजना से काफी धक्का पहुँचा। नेताओं व पत्रों ने घोषणा की निन्दा की। तिलक ने इसे किसी भी तरह स्वीकार्य नहीं बताया। श्रीमती एनीबिसेन्ट ने कहा इंगलैंड के द्वारा इस योजना को प्रस्तुत करना अनुचित है और भारत द्वारा इसे स्वीकार करना नितान्त अनुचित एवं असम्मानजनीय है। ऐंग्लो इन्डियन पत्रों ने इस योजना के सुझावों को क्रान्तिकारी कहकर प्रचारित किया था। राजनीतिक वातावरण बहुत तीव्र था। सन् १९१८ में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन माटेग्यू घोषणा पर विचार विमर्श के लिए बुलाया गया। उदारवादी दल के नेता सम्मेलन में उपस्थित नहीं हुए। उग्रवादी मोंटफोर्ड योजना के आलोचक थे। उदारवादी इस विरोध से बचना चाहते थे क्योंकि इसमें उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार के आरम्भ करने पर विश्वास प्रकट किया गया था। ये नेता संसद-समिति को प्रभावित करने हेतु इंग्लैंड में एक प्रतिनिधिमंडल भी भेजना चाहते थे। इस प्रकार उग्रवादियों व उदारवादियों में परस्पर मतभेद हो गया था।

उदारवादियों ने नवम्बर १९१८ ई० में बम्बई में एक सभा का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता सुरेन्द्रनाथ ने की। एक अलग सस्था अखिल राष्ट्रीय उदार संघ का गठन किया गया। सम्मेलन ने सुधारों को माना क्योंकि इनके द्वारा शान्तिपूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना का अवसर मिलता था। उदारवादी ऐसा कोई मार्ग नहीं अपनाना चाहते थे जो खतरे से पूर्ण हो और जिसका सफल होने की कोई सम्भावना नहीं हो।[1]

(६) रौलट अधिनियम

युद्ध के पश्चात् लार्ड चेम्सफोर्ड की सरकार सतर्कता का भ्रम करके स्वयं भयभीत हो रही थी। उसे शंका थी कि रूस और अफगानिस्तान के गुप्तचर देश में विद्रोह के बीज बो रहे हैं। युद्ध काल में काबुल भारतीय क्रान्तिकारियों का केन्द्र रहा था। सन् १९१६ में अमानुल्ला (जोकि रूस के पक्ष में था) के अफगानिस्तान के अमीर पद पर आने से सरकार और भी बेचैन हो गयी थी। अमीर को यह विश्वास दिलाया गया था कि भारतीय मुसलमान अपनी सरकार के विरुद्ध विद्रोह का मौका देख रहे हैं। अतः उसने अप्रैल १९१६ ई० में भारत पर आक्रमण किया। परन्तु उसे अपमानित होकर पीछे लौटना पड़ा। उसकी मूर्खता ने भारतीय सरकार की नकामी को और भी बढ़ा दिया। सरकारी दमन के बावजूद श्री तिलक एवं श्रीमती बिसेंट के गृहशासन आन्दोलन का सन् १९१७–१८ में सफल सचालन हुआ था। गवर्नर जनरल ने यह भाँप कर कि भारतीय सुरक्षा अधिनियम जिसके द्वारा भारत सरकार को अत्यधिक शक्तियाँ प्राप्त थी युद्ध के समाप्त होते ही प्रभावकारी नहीं रहेगा अत्यन्त शीघ्रता से दो सकटकालीन फौजदारी कानूनों का निर्माण किया जो रौलट अधिनियमों के नाम से प्रसिद्ध है।

मि० रौलट ब्रिटिश उच्च न्यायालय के एक प्रतिष्ठित न्यायाधीश थे और उनकी अध्यक्षता में भारत सरकार ने भारत के क्रान्तिकारी कार्यों का अध्ययन करने हेतु १ दिसम्बर १९१७ ई० को एक समिति का गठन किया था। १९ जुलाई १९१८ ई० को रौलट समिति का प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ और इसमें युद्ध के अन्त हो जाने के पश्चात भी रक्षा कानूनों की आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया। इस प्रतिवेदन के आधार पर ही रौलट अधिनियम बनाए गए। अधिनियमों के अनुसार मजिस्ट्रेटों को सन्दिग्ध क्रान्तिकारियों को थोड़ी सी जाँच पड़ताल पर ही नजरबन्द करने का अधिकार प्राप्त हो गया। इन कानूनों के अनुसार दो

---

१ उदारवादियों ने सन् १९२० के विधानमण्डलों के चुनावों में भाग लिया जबकि कांग्रेस ने चुनाव का बहिष्कार किया था। जब महात्मा गांधी असहयोग आन्दोलन द्वारा देश भक्तों की परीक्षा कर रहे थे कांग्रेस कार्यकर्ता पुलिस जुल्म के शिकार हो रहे थे उदारवादी सरकार से सहयोग कर रहे थे एवं ब्रिटिश सरकार से पद और सम्मान प्राप्त करने में गौरव अनुभव कर रहे थे। लार्ड सिन्हा को लार्ड की उपाधि और बिहार का प्रथम भारतीय गवर्नर नियुक्त किया गया था सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को नाइट की उपाधि दिया गया।

प्रकार के अधिकार भारतीय सरकार को दिये गए। प्रथम वर्ग के अधिकार निम्नलिखित थे —

१ जमानत अथवा बिना जमानत के मुचलका भरवाना।

२ निवास की सीमा पर प्रतिबन्ध लगाना अथवा निवास-परिवर्तन की सूचना को आवश्यक बनाना।

३ सभाओं तथा पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं वितरण पर रोक लगाना और

४ संदिग्ध व्यक्तियों को समय समय पर सूचना देते रहने का निर्देश देना।

दूसरे वर्ग के अधिकार इस प्रकार थे

१ बन्दी बनाना

२ वारन्ट जारी करके खोज करना

३ बिना भय-दंड के कारावास देना।

इन कानूनों की अवधि तीन वर्ष की थी। ये सरकार की कठोर दमन-नीति के मूल मंत्र थे और उन्होंने गांधीजी को सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन करने की प्रेरणा दी।

गांधीजी द्वारा रोलट अधिनियम का विरोध

गांधीजी १९१४ ई० में अफ्रीका से भारत लौटे थे। भारत में आकर गांधीजी ने देश के किसानों और श्रमिकों की भलाई को दृष्टि में रखते हुए कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने चम्पारन (बिहार) में किसानों के पक्ष में एक सफल आन्दोलन चलाया जिससे देशभर में उनका आदर और सम्मान बढ़ गया। उन्होंने अहमदाबाद के साबरमती स्थान पर अपना आश्रम खोला और वहीं से रोलट विधेयक के विरोध में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया। गांधीजी ने सर्वप्रथम सरकार को उसे वापस लेने का आग्रह किया क्योंकि उससे जनता के साथ विश्वास घात होता था और उसे जनता के विरोध में बनाया गया था। उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि यदि उनका आग्रह स्वीकृत नहीं किया गया तो उन्हें सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ करने पर विवश होना पड़ेगा। उनकी चेतावनी का कोई परिणाम नहीं निकला। फलस्वरूप उन्होंने २८ फरवरी १९१९ ई० को सत्याग्रह का प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित किया। इस प्रतिज्ञापत्र पर लोगों को हस्ताक्षर करने थे व उसे व्यवहार में लाना था। इसका अभिप्राय था कि ये कानून न्याय विरुद्ध हैं स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को कुचलने वाले हैं और व्यक्तियों के साधारणतम अधिकारों के घातक हैं। हम इन कानूनों का उस समय तक जबतक कि वे वापस न लिए जाए उल्लंघन करेंगे। उन्होंने जनता को सत्याग्रह आन्दोलन का पाठ पढ़ाने हेतु सारे देश का भ्रमण आरम्भ किया। उन्होंने बताया कि सत्याग्रह सम्पूर्ण देश के लिए आत्मसंयम और आत्मशुद्धि का कार्य है क्योंकि सभ्यता से उनमें अनेकों बुराइयाँ आ गई हैं। सत्याग्रह द्वारा देश एक ऐसी धार्मिक शक्ति प्राप्त कर सकता है जिससे वह साम्राज्यीय शक्ति का भी सफलता से प्रतिरोध कर सकेगा। सत्याग्रह

असहयोग आन्दोलन का मुख्य आधार था। सत्याग्रह आन्दोलन प्रतिरोधात्मक आन्दोलन है जो आध्यात्मिक शस्त्रों द्वारा लड़ा जाता है। एक सत्याग्रही दमन और अत्याचार के विरुद्ध आत्म त्याग द्वारा संघर्ष करता है। वह पाशविक शक्ति के विरुद्ध आत्मिक शक्ति को खड़ा करता है वह मनुष्य के देवत्व को मनुष्य के पशुत्व के विरुद्ध लाता है वह दमन के विरुद्ध सहिष्णुता का प्रयोग करता है वह शक्ति के विरुद्ध चेतना को न्याय के विरुद्ध विश्वास को असत्य के विरुद्ध सत्य को प्रस्तुत करता है।

(१०) जलियांवाला बाग हत्याकांड

रोलट अधिनियम को सरकार की स्वीकृति मिलने के पश्चात ६ अप्रल १९१९ ई० को देशव्यापी हड़ताल रखने का निश्चय किया गया। जनता ने जुलूस निकाल कर सरकार की निन्दा की। यह प्रथम अवसर था जिसमें अमीर गरीब उच्च निम्न हिन्दू मुसलमान सभी एक साथ थे। यह राजनीति में जनता की आत्मिक शक्ति की प्रथम परीक्षा थी। पुलिस और अधिकारियों ने जब जनता पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तो जनता अपमान और क्रोध की अग्नि से जल उठी और पंजाब में जनता और पुलिस में भयंकर मुठभेड़ हो गई। ९ अप्रल को अमृतसर में एक बम विस्फोट हुआ जिससे कई यूरोपियनों की मृत्यु हो गयी। इस सम्बन्ध में सरकार ने डा० किचलू और डा० सत्यपाल को गिरफ्तार कर लिया एवं उन्हें अज्ञात स्थान पर भेज दिया। फलतः जनता उत्तेजित हो उठी। अमृतसर के नागरिकों ने जुलूस निकाला। पुलिस ने शान्तिपूर्ण जुलूस पर गोली चलायी। दस व्यक्ति मरे एवं कितने ही घायल हुए। जनता की उत्तेजना बढ़ी वह मृतकों के शवों के साथ नगर की ओर चल पड़ी कुछ अंग्रेजों की हत्या करदी गयी तथा कुछ सार्वजनिक भवनों में आग लगा दी गयी। उत्तेजित जनता को नियन्त्रण में करने के लिए अमृतसर नगर को सेना के अधिकार में दे दिया गया। पंजाब में प्रवेश पर रोक लगा दी गयी और इस कारण स्थिति और भी ज्यादा गंभीर हो गयी। पंजाब में अधिकारियों ने मार्शल लॉ लागू कर दिया। गवर्नर सर माइकेल ओ डायर और जनरल डायर वस्तुतः पंजाब के सर्वेसर्वा बन गये।

१२ अप्रल को शहर में धारा १८८ लगा दी गयी तथा जुलूस निकालने व सार्वजनिक सभा करने पर रोक लगा दी गयी परन्तु उसकी पूरी जानकारी जनता को नहीं करवायी गयी। अमृतसर कांग्रेस पार्टी ने १३ अप्रल को सरकार की नीति का विरोध करने के लिए जलियांवाला बाग में सभा का आयोजन करने की घोषणा की। बैसाखी के त्योहार के दिन दोपहर को जब सभा का कार्य शान्तिपूर्ण ढंग से चल रहा था तब जनरल डायर ने २५० सिपाहियों को लेकर बाग में एकत्रित २०००० भोली भाली जनता पर सेना से गोली चलवाकर घोर पाशविक अत्याचार करवाया जिसके फलस्वरूप १५०० व्यक्ति घायल हुए और ३७९ स्त्री पुरुष और बच्चे वहीं पर मर गये। डायर सारे शहर को जलाकर राख का ढेर

बना देना चाहता था। अतः उसने सैनिकों को बारूद समाप्त न होने तक गोली चलाते रहने का आदेश दिया था। निःशस्त्र जनता को तितर बितर होने की उसने कोई चेतावनी नहीं दी तथा घायलों को निर्दयतापूर्वक उसी अवस्था में वहीं छोड़ दिया गया। जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड पूर्व नियोजित योजना का परिणाम था। ६ अप्रैल १९१९ ई० के दिन गवर्नर-भवन में इसकी योजना तैयार की गयी थी। इस षडयन्त्र का जन्मदाता पंजाब का लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर माइकल ओ डायर था, भारत सरकार ने इस षड्यन्त्र की पुष्टि कर दी थी तथा पंजाब के सभी सैनिक और असैनिक अधिकारी इस षडयन्त्र में सम्मिलित थे। इस योजना का एक स्पष्ट उद्देश्य था कि अमृतसर में जनता पर इतना अत्याचार किया जाए कि पंजाब प्रान्त में भय का वातावरण बन जाए।

सम्पूर्ण देश में इस हत्याकाण्ड से सनसनी फैल गया। डायर के प्रशासन की निन्दा की गई। लाहौर में सम्राट और महारानी के चित्र जलाये गए। कसूर एवं गुजरानवाला में लूट पाट की घटनाएं हुई। राष्ट्रीय समाचारपत्रों ने गवर्नर डायर को दण्ड देने एवं वाइसराय को इंग्लैण्ड वापस बुलाने की मांग की। सरकार पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। गुजरानवाला पर हवाई जहाजों से बम गिराए गए। समस्त पंजाब में १५ अप्रैल से मार्शल कानून लागू कर दिया गया। प्रान्त के कोने-कोने में अत्याचार किए गये। यह सब कार्य भारतीय जनता को अपमानित करने के लिए किए गए। सर वेलेन्टाइन शिरोल ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "जनता को खुले आम कोड़े मरवाना, बिना किसी अपराध के गिरफ्तार करना, सम्पत्ति जब्त करना आदि दमनकारी कार्य विद्रोहियों और आतंकवादियों को दण्ड देने के लिए नहीं किए गए थे वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र को अपमानित एवं आतंकित करने के लिए किए गए थे।"

सरकार द्वारा नियुक्त हण्टर समिति के प्रतिवेदन में जान बूझकर जनरल डायर के कारनामों को छिपाया गया और उसमें सत्याग्रह के दोष पर अधिक बल दिया गया था। यद्यपि भारत मन्त्री मोंटेग्यू ने जनरल डायर के अत्याचारपूर्ण कार्यों को अवश्य अंग्रेज सरकार के सिद्धान्तों के विपरीत बता कर निन्दित किया तथापि उसने पंजाब के गवर्नर और वाइसराय की प्रशंसा के पुल बांधे थे। ना फिनल ने हाउस आफ लार्ड्स में जनरल डायर के कार्यों को क्षमा करने का प्रस्ताव रखा जिससे देश के सभी वर्गों की भावनाओं को गहरी ठेस पहुंची। सरकार ने पंजाब के उन दोषी अफसरों को नौकरी से अवकाश ग्रहण कराने के अतिरिक्त उनके विरुद्ध और कुछ कार्यवाही नहीं की। एंग्लो-इंडियन पत्रों ने तो जनरल डायर को अंग्रेजी शासन का रक्षक कहकर बधाई भी दी और उसके सम्मान में एक स्मारक के निर्माण करने के लिए धन एकत्रित करने की अपील की। भारतीय पत्रों ने चेम्सफोर्ड वापस जाओ के नारों से इसका उत्तर दिया। भारतीय जनता उत्तेजित हो रही थी और सम्पूर्ण राष्ट्र में विद्रोहाग्नि भभक रही थी।

(११) खिलाफत आन्दोलन

जलियाँवाला बाग की दुर्घटना के कुछ महीनों उपरान्त ही सेवर्स की सन्धि का समाचार मिला जिसमें मित्र राष्ट्रों ने टर्की के साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया। मुसलमानों का यह दृढ़ विश्वास था कि एशिया माइनर, सीरिया और थ्रेस टर्की के सुल्तान के अधिकार में ही रहेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ। टर्की की सीमाएँ घटा दी गयीं। इससे भारतीय मुसलमानों में क्रोधाग्नि भड़क उठी। मित्र राष्ट्रों ने खलीफा का अपमान किया तथा मुसलमानों की पवित्र भूमि पर अवांछनीय अधिकार स्थापित किया जो खिलाफत आन्दोलन का कारण बन गया। खिलाफत-आन्दोलन का उद्देश्य इस्लाम के खलीफा सुल्तान की शक्ति को पुनः स्थापित करना था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि युद्ध काल में मुस्लिम लीग कांग्रेस के निकट आ गयी थी और सब मुसलमान पर राष्ट्रवादियों का पूर्णतः प्रभाव हो गया था। इस्लाम धर्म के मुल्ला और उलमा आदि सभी धार्मिक नेता खिलाफत आन्दोलन के समर्थक थे। डा० अन्सारी के सभापतित्व में १९१८ ई० की दिल्ली के लीग-अधिवेशन में सत्य के प्रभावशाली शब्दों में खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया गया। इस अधिवेशन में लीग ने भारत में स्वशासन की माँग को भी उठाया। इसी समय मौलाना मोहम्मद उल हसन के नेतृत्व में उलमा-सम्प्रदाय ने राजनीति में प्रवेश किया। उन्होंने जमीयत उल उलमा-ए-हिन्द की स्थापना की। इस संगठन ने मुसलमानों की विचारधारा को राष्ट्रीय अनुरूपता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। खिलाफत आन्दोलन अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दू मुसलमानों की संयुक्त शक्ति की परीक्षा का शुभ आरम्भ था। २४ जनवरी १९१९ ई० को गांधी जी ने दोनों जातियों के नेताओं का एक खिलाफत-सम्मेलन दिल्ली में बुलाया। उन्होंने खिलाफत का समर्थन करने का निश्चय किया और मुसलमान नेताओं ने उन्हें अहिंसात्मक सत्याग्रह में सहयोग देने का आश्वासन दिया। इसी बीच मौलाना शौकतअली और मोहम्मदअली कारावास से छूटने के तुरन्त बाद ही कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी प्रेरणा एवं उत्साह मिला। मार्च १९२० ई० में मोहम्मदअली खिलाफत-प्रतिनिधिमण्डल के नेता होकर मित्र राष्ट्रों से टर्की के लिए और लाभदायक शर्तें स्वीकार कराने हेतु यूरोप गए किन्तु वह निराश होकर वापस लौटना पड़ा। मौलाना मोहम्मदअली ने कामरेड नामक पत्र में मुसलमानों से चन्दा देने के लिए प्रार्थना की। फलस्वरूप प्रति दिन लगभग १५ हजार रुपया उनके कार्यालय में जमा होने लगा। मौलाना शौकतअली ने बालकन राज्यों में टर्की की ओर से लड़ने के लिए स्वयंसेवकों के संगठन के लिए अपने सहधर्मियों से अपील भी की।

रालट-अधिनियम की क्रीड़ति में पंजाब में किए गए अत्याचारों से और खिलाफत आन्दोलन से उत्पन्न राष्ट्रीय उत्तेजना से अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

१४

सन् १६१६ ई० का अधिनियम

प्रवेश

१६१४ ई० में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार का प्रत्येक दृष्टि से सहायता की क्योंकि अग्रजों ने इस युद्ध का उद्देश्य लोकतंत्र का संसार के लिए सुरक्षित करना बताया था। भारतीयों की सहायता के बावजूद भी ब्रिटिश सरकार ने शासन में सुधार की भारतीय मांग की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और निरंतर इस सम्बन्ध में चुप्पी धारण किए रही। भारतीयों ने इस रवैये को अनुचित समझा। १६१६ ई० में भारत सरकार ने भारत मंत्री श्री चेम्बरलेन को भारतीय शासन में सुधार के लिए एक योजना भेजी। परन्तु श्री चेम्बरलेन ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया क्योंकि इस योजना से उनके मतानुसार स्वशासन की दिशा में कोई वास्तविक प्रगति नहीं हो सकती और अनुत्तरदायी आलोचकों की संख्या बढ़ जाने से संकट उत्पन्न हो सकता था। इसी काल में केन्द्रीय विधान परिषद् के १६ निर्वाचित सदस्यों ने भारत मंत्री को सुधारों के प्रस्ताव का एक आवेदन भेजा। इस आवेदन को १६ व्यक्तियों का आवेदन कहा जाता है। भारत मंत्री ने इस आवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसी वर्ष कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने अपने आपसी मतभेदों को दूर कर ब्रिटिश सरकार के सामने कांग्रेस लीग योजना के नाम से सुधारों की एक योजना प्रस्तुत की परन्तु इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला क्योंकि भारत मंत्री श्री चेम्बरलेन किसी एक हल के सम्बन्ध में स्पष्टतया वचन बद्ध होने के लिए तयार नहीं थे। भारत मंत्री केवल यह इच्छा प्रकट करने को तयार थे कि वे स्वराज्य प्राप्ति के लिये स्वतंत्र संस्थाओं के क्रमिक विकास के लिए वचनबद्ध हैं।

श्री चेम्बरलेन को शीघ्र ही त्यागपत्र देना पड़ा और उनके स्थान पर मान्टेग्यू भारत मंत्री बने। वे भारत के महान् मित्र थे और उनके हृदय में भारतीयों के प्रति सहानुभूति की भावना थी। नए भारत मंत्री अपने साथ एक नया दृष्टिकोण लाये थे। अगस्त १६१७ ई० में मान्टेग्यू ने एक घोषणा की जिसमें उन्होंने कहा—ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत में अन्त में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना और भारतीयों को शासन में अधिक भाग देना है परन्तु यह केवल धीरे-धीरे ही हो सकता है। शीघ्र ही मान्टेग्यू लन्दन से एक प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में

प्रस्थान कर १० नवम्बर १९१७ ई० को बम्बई पहुँचे। वे भारत मे लगभग ५॥ महीने रुके। भारत मे निवास करते हुए उनके मन मे एक ही विचार प्रमुख था। मैंने अपना सारा समय यही सोचने म व्यतीत किया है कि किस प्रकार कोई ऐसी वस्तु प्रस्तुत करू जिसे भारत स्वीकार कर ले। हाउस ऑफ कामन्स उसे अस्वीकृत किए बिना ही मुझे तदनुसार स्वीकृति प्रदान कर देगा। मान्टेग्यू ने कठोर परिश्रम किया। उन्होने सारे देश का भ्रमण किया। अनेक प्रतिनिधिमडलो से भेंट की। लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ मिलकर लम्बे विचार तथा अध्ययन करने के पश्चात् मान्टेग्यू ने अपना प्रतिवेदन प्रकाशित किया। इस प्रतिवेदन के आधार पर एक प्रारूप तयार किया गया जो २ जून १९१९ ई को एक विधेयक के रूप म ससद में पेश किया गया और १८ दिसम्बर १९१९ ई को पारित हुआ तथा २३ दिसम्बर १९१९ ई को शाही स्वीकृति प्राप्त कर अधिनियम बन गया।

अधिनियम की स्वीकृति के कारण

१९१९ ई के अधिनियम को स्वीकृति के निम्नलिखित कारण थे —

(१) १९०९ ई के अधिनियम के सुधारों से भारतीय जनता और नेताओं को अत्यधिक निराशा हुई थी। सुधारो की घोषणा के बावजूद वास्तविक नियत्रण सरकार के पास ही बना रहा तथा जनता को कोई वास्तविक शक्ति प्राप्त नही हुई। विधान परिषदें केवल वादविवाद करने वाली सभाओं के स्वरूप थीं। इन सुधारो के द्वारा देश मे साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली प्रारम्भ की गई जिससे मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक होने लगे। साम्प्रदायिक विष का सचार राष्ट्रीय जीवन म प्रारम्भ हो गया। भारतवासी इन सुधारों से असन्तुष्ट थे और यह स्वाभाविक ही था कि वे सुधारो के लिये और प्रयत्न करते। भारतवासियो ने गृहशासन आन्दोलन चलाया और उसके द्वारा सुधारो की माँग की।

(२) सन् १९०९ से सन् १९१९ तक के वर्षों मे देश मे अत्यधिक राजनैतिक जागृति पैदा हुई। कांग्रेस की शक्ति दिन व दिन बढ रही थी। सभी शिक्षित व्यक्ति तेजी से इसमे सम्मिलित हो रहे थे। अशिक्षित जनता को भी इस सस्था ने आकर्षित किया। तिलक एव एनीबिसेन्ट के गृहशासन आन्दोलन ने भारतीय जनता मे अत्यधिक राष्ट्रीय जागृति पैदा कर दी। क्रान्तिकारी आन्दोलन भी तेजी से बढा। लार्ड हार्डिञ्ज की सवारी पर बम फेंका गया। इस अवधि मे क्रान्तिकारियो ने अनेक अग्रेजों की हत्या कर अग्रेजी सरकार को पूर्णत यह अनुभव करवा दिया कि यदि भारतवर्ष को परतन्त्रता की बेडियो में ही सडने दिया गया तो भारतवर्ष अपने शासकों को भी जीवित नहो रहने देगा। फलस्वरूप भारतीयो को सन्तुष्ट करने के लिए कुछ सुधार करना आवश्यक था।

सन् १९१९ के अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

१९१९ ई के अधिनियम के प्रारम्भ में एक प्रस्तावना दी गई थी जिसमे अधिनियम के सिद्धांत एव उद्देश्यों का उल्लेख किया गया था। प्रस्तावना मे कहा

गया था कि जहां तक सम्भव होगा स्थानीय संस्थाओं पर प्रान्तों का नियंत्रण होगा और ऊपर से सरकारी अधिकारियों का कम से कम नियंत्रण होगा। प्रान्तों में सीमित उत्तरदायी सरकार स्थापित की जाएगी और प्रान्तों को पहले की तुलना में अधिक अधिकार भी दिये जाएंगे। भारत सरकार का ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायित्व बना रहेगा। केन्द्रीय विधान परिषद् का विस्तार किया जाएगा ताकि वह भारत सरकार को पहले से अधिक प्रभावित कर सके। भारत सरकार पर भारत मंत्री का नियंत्रण कुछ कम कर दिया जाएगा। सिक्ख, ईसाई और आंग्ल भारतीयों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।

सन् १९१९ के अधिनियम की अन्य मुख्य बातें निम्नलिखित हैं —

(अ) गृह सरकार

(१) इस अधिनियम के अनुसार भारत मंत्री का वेतन भारतीय परिषद् एवं भारतीय दफ्तर का खर्चा इंगलैंड के कोष से दिए जाने की व्यवस्था की गई।

(२) गवर्नर जनरल पर भारत मंत्री के नियंत्रण को अधिक स्पष्ट किया गया। अधिनियम में यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि भारत का गवर्नर जनरल तथा उसके द्वारा गवर्नर अपने शासन सम्बन्धी सभी महत्वपूर्ण विषयों के बारे में भारत मंत्री को सूचित रखेंगे और उसके आदेशों तथा निर्देशों का पालन करेंगे।

(३) भारत मंत्री का हस्तान्तरित विषयों पर नियंत्रण कम कर दिया गया। उसका नियंत्रण निम्नलिखित बातों तक सीमित रहा —

१ ब्रिटेन के साम्राज्य के हितों की रक्षा।

२ प्रान्तों द्वारा न सुलझाए जा सकने वाले प्रश्नों का निर्णय करना

३ गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् को १९१९ के अधिनियम के अन्तर्गत जो अधिकार और शक्तियाँ सौंपी गई हैं, उनकी देखभाल करना और उनके उचित कार्यों का समर्थन करना

४ केन्द्रीय विषयों के शासन की देखभाल करना।

(४) रक्षित विषयों के सम्बन्ध में भी भारत मंत्री के अधिकारों के विषय में कुछ कमी की गई। यह कहा गया कि रक्षित विषयों के सम्बन्ध में भारत मंत्री अधिक हस्तक्षेप न करे एवं वे विषय भारत सरकार की इच्छा पर छोड़ दें।

(५) इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि कुछ विशेष मामलों से सम्बन्धित विधेयक जैसे विदेशी सम्बन्ध, सीमा शुल्क, सैनिक, मुद्रा तथा सार्वजनिक ऋण को केन्द्रीय विधानमंडल में प्रस्तुत करने से पूर्व भारत मंत्री की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक होगा।

(६) भारत मंत्री की स्वीकृति के बिना गवर्नर जनरल को कोई भी महत्वपूर्ण नियुक्ति करने से मना कर दिया गया। भारत मंत्री की पूर्व स्वीकृति के बिना कोई भी महत्वपूर्ण पद कम करने पर रोक लगा दी गई।

(७) भारत-परिषद् के संगठन में सुधार किया गया। भारत-परिषद् में कम से कम ८ और अधिक से अधिक १२ सदस्य रखने की व्यवस्था की गई। इनमें से कम से कम आधे सदस्य ऐसे रखने की व्यवस्था की गई जिनको भारत में सेवा करने का कम से कम दस वर्ष का अनुभव हो। परिषद् के सदस्यों का कार्यकाल ७ वर्ष से घटाकर ५ वर्ष कर दिया गया। उनका वेतन १ पौंड से बढ़ाकर १२०० पौंड कर दिया गया। भारत सरकार के साथ जो पत्र व्यवहार होते थे उनमें गुप्त अति आवश्यक और अन्य मामलों का भेद समाप्त कर दिया गया।

(ब) हाई कमिश्नर

इस अधिनियम के द्वारा एक हाई कमिश्नर का पद स्थापित किया गया। कमिश्नर को भारत सरकार के लिए सभी आवश्यक वस्तुएं लन्दन में खरीदने, इंग्लैंड में पढ़ने वाले भारतीय विद्यार्थियों की सुविधा व आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने आदि का उत्तरदायित्व सौंपा गया। हाई कमिश्नर की नियुक्ति भारत सरकार के द्वारा होती और उसका वेतन भी खजाने से मिलता। हाई कमिश्नर का कार्यकाल ६ वर्ष रखा गया।

(स) केन्द्रीय विधानमंडल

इस अधिनियम के द्वारा केन्द्र में द्विसदनीय विधानमंडल की स्थापना की गई। पहले सदन को विधानसभा और दूसरे सदन को राज्यसभा नाम दिया गया। राज्य परिषद में ६० सदस्य थे जिनमें से ३३ निर्वाचित सदस्य थे, और २७ मनोनीत। २७ मनोनीत सदस्यों में १७ सरकारी अधिकारी और १० गैर सरकारी अधिकारी थे। राज्यसभा के निर्वाचन में मत देने का अधिकार बहुत थोड़े व्यक्तियों को दिया गया। सारे भारत में कुल मिलाकर १७ हजार मतदाता थे। इसमें बड़े बड़े पूंजीपतियों, जमींदारों और व्यापारियों के प्रतिनिधि बनते थे। प्रत्येक प्रान्त में मतदाताओं की योग्यताएं भिन्न भिन्न थीं। मतदाताओं के लिये सम्पत्ति, शिक्षा आदि की योग्यताएं निर्धारित की गई थीं। विधान परिषद् में १४५ सदस्य थे। इनमें से ४१ सदस्य मनोनीत थे और १०४ सदस्य निर्वाचित थे। निर्वाचित सदस्य विभिन्न सम्प्रदायों, हितों और वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे। उनमें से ५२ सामान्य, ३० मुस्लिम, २ सिक्ख, ९ यूरोपियन, ७ जमींदार और ४ भारतीय वाणिज्यिक हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। मनोनीत सदस्यों में से २६ सरकारी अधिकारी और १५ गैर सरकारी अधिकारी थे। विधानसभाओं के मतदाताओं की योग्यता के सम्बन्ध में कुछ शर्तें निर्धारित की गईं, यथा कोई व्यक्ति १५ से २० रु० तक कम से कम कर के रूप में देता हो अथवा ५० से १५० रु० तक भूमिकर देता हो अथवा ऐसे घर का स्वामी हो जिसका किराया १८० रु० हो। मतदाताओं के लिये उक्त योग्यताएं सारे देश में समान न होकर विभिन्न प्रान्तों में पृथक-पृथक थीं। केन्द्रीय सभा का कार्यकाल ३ वर्ष तथा राज्य परिषद् का कार्यकाल ५ वर्ष रखा गया था। गवर्नर जनरल को इस अवधि को बढ़ाने का अधिकार था।

केन्द्रीय विधानसभा को केन्द्रीय सूची में वर्णित सभी विषयों में ब्रिटिश भारत की जनता के लिए विधि निर्माण का अधिकार था। सभा गवर्नर जनरल की पूर्व-स्वीकृति से प्रान्तों के लिये भी विधि निर्माण कर सकती थी। विधानसभा के कार्यों पर अत्यधिक सीमाएं लगाई गई थी। वे १९१९ ई. के अधिनियम में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी, ब्रिटिश संसद द्वारा पारित कानून के विरुद्ध कोई भी कानून पारित नहीं कर सकती थी, भारत के लिये संविधान नहीं बना सकती थी, भारत मंत्री की किसी भी शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी। उसके लिए निम्न विषयों पर विचार करने से पूर्व गवर्नर जनरल की स्वीकृति लेना अनिवार्य था —

१. प्रान्तीय विधानमंडल के किसी भी अधिनियम को रद्द करना अथवा संशोधित करना।
२. गवर्नर जनरल द्वारा बनाए गए किसी अधिनियम या अध्यादेश को रद्द करना अथवा संशोधित करना।
३. ऐसा कोई प्रान्तीय विषय या उसका कोई भाग जिसके बारे में नियमों द्वारा केन्द्रीय विधानमंडल को विधि बनाने से इन्कार कर दिया हो।
४. ब्रिटिश सम्राट की स्थलीय, वायु और जल सेना के अनुशासन अथवा अन्य सम्बन्धित विषयों।
५. विदेशी राजाओं या देशी शासकों के साथ भारत सरकार के संबंधों के बारे में।
६. ब्रिटिश भारत की जनता की धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराओं के सम्बन्ध में और
७. सार्वजनिक ऋण या भारत के राजस्व के बारे में।

केन्द्रीय विधानसभा को कुछ वित्तीय शक्तियाँ भी प्रदान की गई। सभा को बजट पर बहस करने और बजट के कुछ भाग पर मतदान करने का अधिकार दिया गया। बजट को दो भागों में बाँट दिया गया, पहले भाग में निम्नलिखित खर्चे सम्मिलित किये गए —

१. ऋण का ब्याज अथवा डूबत रकमों पर कोई कर।
२. ब्रिटिश सम्राट या भारत मंत्री या उनकी स्वीकृति से नियुक्त किए हुए व्यक्तियों के वेतन तथा पेंशन।
३. सेना, राजनैतिक विभाग तथा ईसाई धर्म पर खर्च होने वाला वेतन।
४. चीफ कमिश्नरों का वेतन। शेष शासन के खर्चे बजट के दूसरे भाग में रख गए। विधानसभा बजट के दूसरे भाग को अस्वीकृत कर सकती थी या उसमें कटौती कर सकती थी, किन्तु किसी राशि को

बढ़ा नहीं सकती थी। विधानमंडल कार्यकारिणी परिषद् से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकती थी। सरकार के विरुद्ध अत्यन्त आवश्यक मामलों पर कामरोको प्रस्ताव रख सकती थी। वह सरकार के पास जनता के हित में कोई अन्य प्रस्ताव भेज सकती थी। विधानमंडल भारत सरकार के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव पारित कर सकता था जिसमें सरकार के किसी कार्य की निन्दा या आलोचना की जा सकती थी। विधानमंडल कार्यकारिणी परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं कर सकती थी।

विधानमंडल के दोनों सदनों को कानून निर्माण के संबंध में समान अधिकार प्राप्त थे। यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों में गतिरोध पैदा हो जाता तथा यदि ६ महीने तक वह दूर नहीं होता तो गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाता और उस बैठक में बहुमत से विधि के भाग्य का निर्णय किया जाता। वित्तीय मामलों में अन्तिम शक्ति विधानसभा के हाथों में थी। *यदि विधानसभा* बजट में कटौती कर देती या उसे अस्वीकृत कर देती तो गवर्नर जनरल उसको बहाल कर सकता था।

(इ) प्रान्तीय विधानमंडल

इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय धारासभाओं की सदस्य-संख्या में काफी वृद्धि कर दी गयी। प्रान्तीय धारासभाओं के ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित तथा ३० प्रतिशत सदस्यों को गवर्नर के द्वारा मनोनीत किए जाने की व्यवस्था की गयी। मनोनीत सदस्यों में से सरकारी एवं कुछ गैर-सरकारी होते थे। धारासभाओं का कार्यकाल तीन वर्ष रखा गया। गवर्नर इस अवधि को बढ़ा सकता था और इस अवधि के पूर्व भी विधानपरिषद् को भंग कर सकता था। धारासभाओं को प्रान्तीय सूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया। विधानसभा को बजट पर वाद विवाद करने और उस पर मतदान का अधिकार भी दिया गया। अस्वीकृत बजट भाग को गवर्नर आवश्यकता के अनुसार बहाल कर सकता था।

(ई) शक्ति विभाजन

इस अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में शक्तियों का विभाजन किया गया। दो प्रकार की सूचियाँ बनायी गयीं—केन्द्रीय सूची और प्रान्तीय सूची। जो विषय सारे भारत के हित के थे उन्हें केन्द्रीय सूची में रखा गया। इस सूची में ४७ विषय थे जैसे सुरक्षा, विदेशी तथा राजनीतिक सम्बन्ध, डाक-तार, सार्वजनिक ऋण, मुद्रा तथा सिक्के, चुंगी, दीवानी तथा फौजदारी कानून तथा उनकी पद्धति, वाणिज्य तथा बीमा। प्रान्तीय सूची में ५१ विषय रखे गए थे। ये विषय स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई, चिकित्सा, शिक्षा, पानी की पूर्ति, भूमिकर, अकाल सहायता, सहकारिता, वन, पुलिस तथा जेल, कानून तथा शान्ति व्यवस्था आदि थे। यह भी व्यवस्था की गयी कि यदि गवर्नर जनरल और

उसकी परिषद् किसी भी विषय को स्थानीय हित से सम्बन्धित घोषित कर दे तो उस विषय पर प्रान्त को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जायगा।

(क) गवर्नर जनरल

अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को अत्यधिक कानूनी और वित्तीय अधिकार दिए गए। गवर्नर जनरल का दोनों सदनों को बन्द बुलाने स्थगित करने तथा सदन को विघटित करने का अधिकार दिया गया। वह विधानमंडल के सामने भाषण दे सकता था। वह केन्द्रीय विधानमंडल के किसी सदन को किसी विधेयक या उसके भाग पर विचार करने से रोक सकता था यदि उसकी सम्मति में उसका प्रभाव ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी भाग की शान्ति और सुरक्षा पर पड़ता है। गवर्नर जनरल को यह भी शक्ति प्रदान की गयी कि वह ऐसे और भी कानून बना सकता है जिन्हें वह ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी भाग की सुरक्षा और शान्ति के लिये जरूरी समझता है जिनको दोनों सदनों में से कोई एक सदन स्वीकार करने से इन्कार करता है अथवा उनके स्वीकार करने में असफल हो जाता है। ऐसे प्रत्येक अधिनियम में सम्राट की स्वीकृति आवश्यक थी। गवर्नर जनरल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया गया। गवर्नर जनरल के द्वारा जारी किये गए अध्यादेश का वही कानूनी महत्त्व था जो भारतीय विधानमंडल के द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक का। इस अध्यादेश की अवधि ६ महीने थी। गवर्नर जनरल को यह भी अधिकार था कि वह किसी ऐसे विधेयक को जिसे विधानमंडल के दोनों सदन स्वीकार कर चुके हों अपनी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति देने से पूर्व उसे पुनः विचार करने के लिये विधानमंडल के पास भेज दे। व्यवस्थापिका सभा के द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक को लागू करने से पूर्व गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी। उसे इस बात का अधिकार था कि वह चाहे तो इसकी अनुमति दे दे या सम्राट की इच्छानुसार स्वीकृति के लिये सुरक्षित कर ले। गवर्नर जनरल को काफी वित्तीय शक्तियाँ प्राप्त थीं। बजट निर्माण पर गवर्नर जनरल का पूर्ण नियन्त्रण था। उसकी आज्ञा के बिना बजट विधानमंडल में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। वह विधानमंडल द्वारा अस्वीकृत माँग को अपनी विशेष शक्तियों द्वारा मंजूरी प्रदान कर सकता था। संक्षेप में वह वित्तीय मामलों में सर्वेसर्वा था।

(ख) दोहरा शासन

१९१९ ई० के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रारम्भ किया गया। इस पद्धति के द्वारा प्रान्तीय सरकारों के विषयों को दो भागों में बाँटा गया हस्तान्तरित और सुरक्षित। सुरक्षित विषय थे—न्याय व्यवस्था, पुलिस, सिंचाई तथा नहरें, भूमि राजस्व-व्यवस्था, भूमि सुधार, कृषि ऋण, अकाल सहायता, समाचार पत्र एवं पुस्तकें, छापाखाना, जेल तथा सुधारगृहों की व्यवस्था, प्रान्तों के उत्तरदायित्व पर ऋण लेना, बम्बई तथा बर्मा के वनों को छोड़कर वन क्षेत्र, कारखानों का निरीक्षण, औद्योगिक बीमा तथा आवास, मजदूरों के झगड़ों का निपटारा, जल शक्ति

शान्ति। हस्तान्तरित विषय थे स्थानीय स्वराज्य सार्वजनिक स्वास्थ्य सफाई तथा औषधालय की व्यवस्था डाक्टरी शिक्षा के लिये व्यवस्था भारतीयों की शिक्षा सार्वजनिक निर्माण कार्य सहकारी संस्थाएं उद्योगों का विकास आदि।

सुरक्षित विषयों की व्यवस्था गवर्नर कार्यकारिणी की सहायता से तथा हस्तान्तरित विषयों की व्यवस्था प्रान्त मंत्रियों की सहायता से करता था। कार्यकारिणी के सदस्यों का गवर्नर मनोनीत करता था और मंत्रिमंडल के सदस्यों का चुनाव गवर्नर केन्द्र विधानमण्डल के सदस्यों में से करता था। गवर्नर को बहुत से विशेषाधिकार दिये गए थे। उसे अधिकार था कि वह कार्यकारिणी परिषद् या मंत्रिमण्डल के सदस्यों के निर्णयों में परिवर्तन कर दे यदि ऐसा करना वह अपने उत्तरदायित्वों का पालन करने के लिए आवश्यक समझे। गवर्नर से यह आशा की गयी थी कि वह मंत्रियों तथा कार्यकारिणी के सदस्यों के बीच संयुक्त परामर्श को प्रोत्साहित करेगा।

अधिनियम के दोष

सन् १९१९ के अधिनियम में अनेक दोष थे। इस अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को वित्तीय तथा विधि विषयों में कुछ भाग तो अवश्य दिया किन्तु अन्तिम निर्णय अपने हाथ में रखा। केन्द्र विधानमण्डल की शक्तियों पर काफी सीमाएं लगायी गयी। साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली का और अधिक प्रसार किया गया। गवर्नर जनरल और गवर्नरों को प्रशासकीय कानूनी और वित्तीय क्षेत्र में अत्यधिक शक्ति प्रदान की गयी। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में दोहरे शासन की स्थापना की गयी जो अपने आप में असंगत और दोषपूर्ण थी।

अधिनियम का महत्व

उक्त दोषों के होते हुए भी यह अधिनियम १९०९ ई० के अधिनियम की तुलना में प्रगतिशील एवं अच्छा था। यद्यपि इसके द्वारा भारत में केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं हुई फिर भी सरकार के सब अनुचित कार्यों की कड़ी आलोचना विधानमण्डल में की जा सकती थी। उससे थोड़ा बहुत ध्यान जनता की तरफ देना सरकार के लिए आवश्यक हो गया। जहाँ प्रजा के हित को नुकसान नहीं पहुँचता था वहाँ विधानमण्डल की इच्छा का ब्रिटिश सरकार अवश्य ध्यान रखती थी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस अधिनियम द्वारा यद्यपि भारत सरकार में उत्तरदायी शासन की स्थापना तो नहीं हुई किन्तु सहानुभूतिपूर्ण सरकार का आरम्भ अवश्य हुआ। मेनकम हेली ने लिखा है लोकमत के प्रति यदि भारत सरकार पूर्ण उत्तरदायी न हो तो भी अपेक्षाकृत अवश्य हो गयी। इसके कार्य जन विचारधारा के यदि प्रतिबिम्ब नहीं तो परिचायक अवश्य हो गए।

दोहरा शासन व्यवहार में

सन् १९१९ का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रान्तीय शासन के क्षेत्र में था इसके द्वारा प्रान्तों में दोहरा शासन जारी किया गया। यह प्रयोग १९३७ तक

चला। सबसे पहले यह बंगाल मद्रास बम्बई बिहार उड़ीसा मध्यप्रदेश और संयुक्त प्रान्त तथा आसाम में प्रारम्भ किया गया। सन् १९३२ में यह उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त में भी लागू किया गया। दोहरे शासन के लिए सन् १९२०-१९२१ के प्रथम निर्वाचन में भारतीय राष्ट्रीय-कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। सन १९२४ में कांग्रेस की ओर से स्वराज्य दल ने दोहरे शासन को असफल बनाने एवं जनता में राष्ट्रीय भावनाओं को फैलाने की दृष्टि से विधानमंडल में प्रवेश हेतु चुनाव लड़ा। विधानमंडलों में पहुँच कर स्वराज्य दल ने दोहरे शासन में परिवर्तन के लिए निरन्तर माँग की। उनकी माँग से विवश होकर सरकार ने 1924 में मुडीमैन समिति नियुक्त की। इस समिति के सभी यूरोपीय सदस्यों ने दोहरे शासन को सफल बनाने के लिए इसमें कुछ परिवर्तनों का सुझाव दिया किन्तु भारतीयों ने दोहरे शासन को सिद्धांत रूप से ही गलत बताया। साइमन कमीशन ने भी दोहरे शासन की आलोचना की। दोहरे शासन को जब व्यावहारिक रूप दिया गया तो उसमें अनेक कमियाँ दृष्टिगत हुईं। फलस्वरूप दोहरा शासन असफल रहा।

दोहरे शासन की असफलता के प्रमुख कारण

दोहरे शासन की असफलता के निम्न कारण थे —

(१) *दोहरा शासन सैद्धांतिक दृष्टि से गलत था। सरकार एक पूर्ण इकाई है* किन्तु दोहरे शासन के अनुसार प्रान्तीय सरकार को दो भागों में बांटा गया। एक भाग विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल था तथा दूसरा भाग अनुत्तरदायी कार्यकारिणी था। इससे सरकार के भीतर संघर्ष एवं मनमुटाव पैदा होना स्वाभाविक था। दोहरे शासन की स्थापना से सरकार की एकता भंग और कार्यकुशलता नष्ट हो गयी। एक प्रान्तीय गवर्नर ने दोहरे शासन को बोझिल जटिल और अव्यवस्थित प्रणाली बताया जिसका कोई न्याय-संगत आधार न था। लार्ड लिटन के अनुसार सरकार के संरक्षित भाग को यद्यपि कोई पसन्द नहीं करता था उसे आदर सब करते थे जबकि हस्तांतरित भाग को न केवल नापसन्द ही किया जाता था अपितु उसे अनावश्यक भी समझा जाता था। दोहरे शासन की स्थापना के पीछे एक भावना कार्य कर रही थी और वह भावना यह थी कि भारतवासी अभी पूर्ण उत्तरदायी शासन के लिये अयोग्य हैं। अतः आरम्भ में उन्हें थोड़े से अधिकार दिए जाए ताकि उन्हें कुछ संतोष हो जाए और वास्तविक शक्ति अंग्रेजों के साथ में ही बनी रहे। भारतीयों को यह बिल्कुल नापसन्द था कि उन्हें प्रारम्भ से ही उत्तरदायी शासन के अयोग्य समझा जाए एवं उन पर संदेह किया जाए।

(२) दोहरा शासन एक बहुत कठिन प्रयोग था और इसकी सफलता गवर्नरों की योग्यता पर निर्भर थी। दोहरे शासन की सफलता के लिये यह आवश्यक था कि गवर्नर हस्तांतरित तथा रक्षित भागों के मतभेदों को किस तरह दूर करे। इसके लिये यह आवश्यक था कि गवर्नरों में जनता की इच्छा और

आकांक्षाओं का समर्थन एवं उनका सम्मान करने की क्षमता हो। तभी वे मंत्रियों की कठिनाइयों को अच्छी प्रकार से समझ सकते थे और उनका हल निकाल सकते थे। गवर्नर यदि मंत्रियों के कार्यों में निरंतर हस्तक्षेप करें, उनका आवश्यक सहयोग न दें तथा अपनी आवश्यक शक्तियों का निरंतर प्रयोग करें तो दोहरा शासन सफल नहीं हो सकता था। अधिकांश गवर्नरों में इस प्रकार के काम को करने के लिए आवश्यक योग्यता की कमी थी और इसलिए दोहरा शासन सफल नहीं हो सकता था।

(३) दोहरे शासन की असफलता [redacted] एक कारण यह था कि गवर्नरों को संवैधानिक अध्यक्ष नहीं बनाया गया था। उन्हें अत्यधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी थीं। प्रारंभिक वर्षों में तो गवर्नरों ने शासन के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं किया किन्तु जब स्वराज्य दल ने विधानमण्डलों में प्रवेश कर लिया और मि० माण्टेग्यू भारत मंत्री नहीं रहे तो गवर्नरों ने मंत्रियों के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया तथा उन्होंने कुछ ऐसे साधन अपनाए जिनके द्वारा उन्होंने सारी शक्तियाँ अपने हाथ में केन्द्रित कर लीं। गवर्नरों ने मंत्रियों से सामूहिक रूप से मिलने की अपेक्षा पृथक्-पृथक् रूप में मिलना आरम्भ किया। सामूहिक विचार के समय मंत्री इकट्ठे होकर गवर्नर से अपनी बात अच्छी तरह मनवा सकते थे। किन्तु जब मंत्री अलग-अलग मिलने लगे तो उनके लिए मंत्रियों की बात की उपेक्षा करना बहुत ही सरल हो गया। गवर्नरों ने इस बात पर भी जोर देना प्रारम्भ कर दिया कि मंत्री केवल उनके परामर्शदाता हैं तथा यह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि वे उनके परामर्श को मानें या न मानें। गवर्नरों ने यह भी नियम बना दिया था कि सचिव सप्ताह में एक बार उनसे मिलें और उनके सम्मुख अपने विभागों के कार्यों के सम्बन्ध में जिनमें उनका मंत्रियों से मतभेद हो सब मामले गवर्नर के निर्णय के लिए रखें। इस कार्य से मंत्रियों की शक्ति बहुत कम हो गयी। सचिव मंत्रियों के विरुद्ध गवर्नर के कान भरने लगे। सचिवों पर मंत्रियों का कोई नियंत्रण नहीं रहा एवं मंत्री महत्त्वहीन बन गए। सचिवों एवं मंत्रियों के आपसी विवादों में भी गवर्नर सचिवों का ही पक्ष लेते थे। गवर्नरों के इस प्रकार के कार्य से दोहरे शासन की बुनियादी भावनाएँ ही नष्ट हो गयीं।

(४) दोहरे शासन की असफलता का एक कारण प्रान्तों की सरकार के दोनों अंगों मंत्रिमंडल और कार्यकारिणी परिषद् में कोई सामंजस्य न होना था। सुधारों के रचयिताओं ने प्रान्तीय सरकार के दोनों भागों में विचार विमर्श का प्रस्ताव किया था। उनका उद्देश्य यह था कि मंत्रियों द्वारा गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों को जनता की इच्छाओं का पता चले और मंत्रिमण्डल के सदस्य परिषद् सदस्यों के अनुभव से कुछ शिक्षा ग्रहण करें। गवर्नरों को दिए जाने वाले निर्देश पत्रों में भी ऐसे ही निर्देश दिए गए थे। किन्तु एक दो प्रान्तों को छोड़ कर अन्य प्रान्तों के गवर्नरों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। मंत्रियों से यह आशा की जाती थी कि वे विधानमंडल में गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् की प्रत्येक

बात का समर्थन करेंगे किन्तु इन विषयों के संबंध में निर्णय लेते समय मंत्रिमंडल के सदस्यों से कोई परामर्श नहीं लिया जाता था। यदि मंत्रिपरिषद् के सदस्य कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की बात का समर्थन नहीं करते थे तो दोनों वर्गों में आपस में झगड़ा बढ़ता था तथा सरकार के संचालन में गतिरोध या असहयोग बढ़ता था। यदि मंत्रिमंडल के सदस्य कार्यकारिणी परिषद् के सब कार्यों का समर्थन करते तो जनता के प्रतिनिधि मंत्रियों पर यह आरोप लगाते कि उन्होंने निर्वाचन के पश्चात सदैव ही नौकरशाही का समर्थन किया है तथा जन आकांक्षाओं की अवहेलना की है। अतः मंत्रियों की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। वे दुविधा ग्रस्त रहते थे किन्तु अपनी स्थिति को सुधारने का उनके पास कोई उपाय नहीं था।

(५) वित्त का बटवारा भी ठीक नहीं था। मंत्रियों को वित्त के मामले में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी। वित्त रक्षित विषय था। वित्त विभाग रक्षित विभागों को हर प्रकार की सुविधाएं प्रदान करता था तथा हस्तांतरित विभागों में हर प्रकार के रोड़े अटकाता था जिससे यह सिद्ध हो जाए कि भारतीय मंत्री अयोग्य हैं। वित्त विभाग हमेशा हस्तांतरित विभागों की मांगों पर विचार करने के पूर्व रक्षित विभागों की सभी मांगें पूरी करने का प्रयास करता था। फलस्वरूप हस्तांतरित विभागों को सदा ही धन का अभाव रहता था। अनेक बार हस्तांतरित विभागों के लिए धन प्राप्त करने के लिए मन्त्रियों को त्याग पत्र की धमकी देनी पड़ती थी।

(६) दोहरे शासन के असफल होने का एक अन्य कारण यह था कि मंत्रियों और कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों में सहयोग की कमी थी। मन्त्री किसी एक दल के प्रतिनिधि नहीं थे। अतः वे किसी कार्यक्रम से बंधे हुए नहीं थे। उनमें गवर्नरों ने सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना पैदा करने का प्रयास भी नहीं किया था। मन्त्रियों में कभी भी सामूहिक विचार विमर्श नहीं होता था। फलस्वरूप एक ही विषय पर उनके भिन्न भिन्न विचार होते थे। कई बार एक मन्त्री दूसरे मन्त्री की योजनाओं की विधानमण्डल में आलोचना कर देता था। मन्त्रियों की जिम्मेदारी विधान परिषद् की तरफ थी। वे जहां तक हो सकता था उसको प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। मन्त्रियों का अपना पद गवर्नरों की कृपा पर निर्भर करता था अतः वे उसको भी प्रसन्न रखने का प्रयास करते थे। इस प्रकार मन्त्रियों में उत्तरदायित्व एवं सहयोग की कमी थी। मन्त्रियों का कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों से भी कोई सहयोग न था। कार्यकारिणी-परिषद् के सदस्य विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। उन्हें इस बात की चिंता नहीं थी कि विधानमण्डल उनके कार्यों से नाराज या खुश है। इस प्रकार मन्त्रि-परिषद् और कार्यकारिणी परिषद के आपसी असहयोग ने सरकार के संचालन में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थीं।

(८) प्रान्तीय विधानपरिषद् की रचना दोषपूर्ण थी। उनमें लगभग १ प्रतिशत सरकारी अधिकारी या सरकार द्वारा मनोनीत गैर सरकारी अधिकारी थे। जो सदस्य निर्वाचित थे वे विभिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व करते थे और अपने अपने सम्प्रदाय को प्रसन्न रखने की नीति अपनाते थे। विधान परिषद् में कोई संगठित दल भी नहीं था। गवर्नर विधानसभा की इच्छा के विरुद्ध किसी भी मन्त्री को सरकारी अधिकारी मनोनीत गैर सरकारी अधिकारी और निर्वाचित सदस्यों के ... पर अपने पद पर बनाये रख सकता था। ऐसी स्थिति में हर मंत्री अपने पद पर बने रहने के लिए गवर्नर की कृपा प्राप्त करने का इच्छुक रहता था।

(६) नये सुधारों के अनुकूल देश में वातावरण भी उत्पन्न नहीं किया गया था। जलियांवाला बाग हत्याकांड ... के पंजाब में अनुचित व्यवहार आदि के कारण महात्मा गांधी को असहयोग आंदोलन चालू करना पड़ा। बाद में स्वराज्य दल ने सरकार से असहयोग आरम्भ किया तथा ऐसे अनेक प्रस्ताव पारित किए जो सरकार की इच्छा के विरुद्ध थे। उसके बाद महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन जारी किया। इन सब कारणों से दोहरा शासन असफल हो गया। ब्रिटिश सरकार भी इन सुधारों के प्रति उदासीन थी। जब माण्टेग्यू भारत मन्त्री के पद पर नहीं रहे तो सुधारों के प्रति ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण ही बदल गया। नए भारत मन्त्री ने यह निर्देश जारी कर दिए कि अब से सुधारों पर इस प्रकार अमल होना चाहिए कि उनसे अधिक नहीं बल्कि कम से कम स्वशासन भारत को मिले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोहरे शासन की असफलता का कारण न केवल इसकी अन्दरूनी बुराइयाँ थीं बल्कि बाहरी परिस्थितियाँ भी थीं और इन सब के लिए मुख्य रूप से ब्रिटिश सरकार ही उत्तरदायी थी। कूपलैण्ड ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि द्वैध शासन असफल रहा क्योंकि वह अपने रचयिताओं के मूल उद्देश्यों को पूर्ण न कर सका। इसने भारतीयों को उत्तरदायी शासन का सही प्रशिक्षण नहीं दिया।[1]

---

1 Coupland Op Cit P 113

१५

कांग्रेस सहयोग से असहयोग की ओर

प्रवेश

ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भारत द्वारा युद्धकाल में की गयी सहायता की काफी सराहना की। भारतीय प्रतिनिधियों को युद्ध सम्मेलनों में अन्य स्वतन्त्र उपनिवेशों के प्रतिनिधियों के समान ही वास्तविक समानता दी गयी। इन सम्मेलनों में भारत मन्त्री मि. मांटेग्यू तथा दो भारतीयों—सहायक भारत मन्त्री एस. पी. सिन्हा और बीकानेर के महाराजा श्री गंगासिंह ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। किन्तु देश में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष तथा तनाव बढ़ रहा था। युद्ध के उपरान्त भारतीय जनता में असन्तोष के कई कारण थे। मोन्टफोर्ड सुधारों से वैधानिक व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन होता न देखकर शिक्षित भारतीयों में असन्तोष बढ़ रहा था। जनता में बलपूर्वक युद्ध में भर्ती किये जाने की स्मृतियां कटुता उत्पन्न कर रही थीं। युद्ध के पश्चात् छ्टनी नीति से जनता में और भी असन्तोष फैला। उस समय सम्पूर्ण भारत आर्थिक संकट और राजनीतिक निराशा में डूबा हुआ था। टर्की के अपमान से भारतीय मुसलमानों में भी अंग्रेजों के प्रति कटुता बढ़ गयी थी। रौलट अधिनियम के निर्माण ने जनता को अंग्रेजों के प्रति विद्रोही बना दिया था। महात्मा गांधी के नेतृत्व ने भी जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन में नई कान फूंक दी। डा. पट्टाभिसीतारम्मैया ने युद्धोत्तर राजनीति में असन्तोष के कारणों का वर्णन बड़े सुन्दर शब्दों में किया है। वे लिखते हैं "विनाशक पंजाब की भूलों और अपूर्ण सुधारों की त्रिवेणी से पानी किनारों से ऊपर बह चला और उनके संगम ने राष्ट्रीय असन्तोष की धारा को आकार एवं प्रकृति में बढ़ा दिया।" युद्धोत्तर असन्तोष को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन में परिवर्तित कर राष्ट्रीय आन्दोलन को नयी गति प्रदान की।

कांग्रेस सहयोग से असहयोग के पथ पर

कांग्रेस ने गांधीजी के सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन के प्रस्ताव को सरलता से ग्रहण नहीं किया। कांग्रेस के लिए आन्दोलन के यह साधन बिल्कुल नए थे। वह अब तक केवल वैधानिक आन्दोलन से ही परिचित थी। उदारवादी इस आन्दोलन को उचित नहीं समझते थे। सुरेन्द्रनाथ के मतानुसार असहयोग आन्दोलन को राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि

जनता पारस्परिक हिंसा और घृणा के द्वारा आपस में ही असहयोग कर रही है। असहयोग के सिद्धान्त के सम्बन्ध में श्रीमती एनीबिसेण्ट का कहना था कि यह भारतीय स्वतन्त्रता को सब से बड़ा धक्का एक मूर्खतापूर्ण विरोध तथा समाज और सभ्य जीवन के विरुद्ध संघर्ष की घोषणा है।

१९१९ ई० में गांधीजी ने सम्पूर्ण देश का समर्थन प्राप्त करके असहयोग आन्दोलन के सिद्धान्तों को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। १९१९ ई० अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने मोंटेग्यू को क्षमा की घोषणा के लिए धन्यवाद देने का प्रस्ताव उपस्थित किया। कांग्रेस ने एक अन्य प्रस्ताव पारित कर सुधारों को आंशिक रूप से स्वीकार किया और सम्राट की शुभ कामनाओं का भी स्वागत किया। उसी समय मुस्लिमलीग खिलाफत-समुदाय और जमीयत-उलेमा ने भी कांग्रेस के साथ ही अपने अधिवेशन किये। उन्हें अब भी आशा थी कि खिलाफत प्रतिनिधि मंडल को (जो शीघ्र ही यूरोप जाने वाला था) कुछ सफलता मिलेगी। किन्तु अंग्रेजी सरकार के पंजाब के अत्याचारी अफसरों के साथ नरमी के व्यवहार से और मोहम्मद अली प्रतिनिधिमंडल के ब्रिटेन से असफल वापस लौट आने से हिन्दू और मुसलमान दोनों में घोर असन्तोष फैल गया। फलस्वरूप कांग्रेस को अपनी तटस्थता की नीति को त्यागना पड़ा। सन् १९२० में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कलकत्ते में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस द्वारा महात्माजी के असहयोग के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया। गांधीजी ने अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए अपने स्मरणीय भाषण में कहा अंग्रेजी सरकार शैतान है जिससे सहयोग सम्भव नहीं है। बिना स्वराज्य के पंजाब और खिलाफत की भूलों की पुनरावृत्ति को नहीं रोका जा सकता।' उन्होंने कांग्रेस से सरकार के विरुद्ध प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोग की नीति अपनाने का आग्रह किया। उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन में स्पष्ट घोषणा की कि अंग्रेजी खूनी हाथों से एक भी भेंट स्वीकार करने से पूर्व उन्हें पश्चात्ताप करना होगा। सुधारों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण बदल गया था उन्होंने कहा समस्या यह है कि स्वराज्य व्यवस्थापिका सभाओं के द्वारा प्राप्त करना है या बिना उनके। यह जानते हुए कि अंग्रेजी सरकार को अपनी भूलों पर कोई दुःख नहीं है हम यह कैसे विश्वास कर सकते हैं कि नई व्यवस्थापिका-सभाएं हमारे स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त करेंगी।

मालवीयजी विपिनचन्द्र पाल सी० आर दास एनीबिसेण्ट मोहम्मद अली जिन्ना आदि ने गांधीजी के प्रस्ताव का विरोध किया। लाजपतराय स्वयं असहयोग के पक्ष में थे किन्तु गांधीजी के कार्यक्रम की कुछ बातों में वे मतभेद रखते थे यथा स्कूलों से विद्यार्थियों को वापस बुलाना वकीलों की वकालत छुड़वाना। गांधीजी के प्रस्ताव के पक्ष में २७२८ और विरोध में १८५५ मत पड़े। कलकत्ता अधिवेशन के पश्चात् गांधीजी ने सम्पूर्ण भारत का दौरा करके असहयोग आन्दोलन का धुआंधार प्रचार किया। उन्होंने निराश और हतोत्साहित जनता में नई चेतना और नई आशा का संचार किया। उन्होंने सम्पूर्ण देश में संघर्ष की बलवती प्रेरणा उत्पन्न की। १९२०

ई में नागपुर अधिवेशन में २ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस अधिवेशन ने पिछले अधिवेशन के असहयोग प्रस्ताव पर दृढ़ समर्थन की पुष्टि की। इस प्रस्ताव में बहिष्कार का कार्यक्रम भी सम्मिलित था। इस कार्यक्रम में निम्नलिखित बातें रखी गयी थी —

(१) उपाधियों और पदों का त्याग करना अथवा स्थानीय संस्थाओं की सदस्यता से त्यागपत्र देना

(२) सरकारी दरबारों तथा उत्सवों में भाग न लेना

(३) अंग्रेजी स्कूलों का बहिष्कार और विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करना

(४) वकीलों और न्यायाधीशों द्वारा अदालतों का बहिष्कार और जनता की पंचायतों की स्थापना

(५) सैनिक कर्मचारियों द्वारा विदेश में नौकरी करने का बहिष्कार

(६) नए सुधार की धाराओं का बहिष्कार और

(७) स्वदेशी का प्रचार और विदेशी माल का बहिष्कार।

सी० आर० दास के नेतृत्व में राष्ट्रवादी गांधीजी के साथ आ गये किन्तु विपिनचन्द्र पाल और एनीबिसेंट ने कांग्रेस को त्याग दिया और उदारवादियों से जा मिले। इस अधिवेशन में गांधीजी ने कांग्रेस का नया विधान प्रस्तुत किया जिसमें अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत यदि सम्भव हो और यदि आवश्यक हो तो बाहर स्वराज्य प्राप्ति का उद्देश्य घोषित किया गया। आन्दोलन के कार्यक्रम में वैधानिक के स्थान पर शान्तिपूर्ण एवं न्यायसंगत कार्यक्रम निर्धारित किया गया। कांग्रेस ने तिलक स्मृति दिवस मनाने के लिए एक करोड़ रुपया इकट्ठा करने का भी निश्चय किया। इससे कांग्रेस के लिए स्वयंसेवकों का एक संगठन तैयार होने में सहायता मिली। कांग्रेस का १६२० का नागपुर अधिवेशन राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसमें कांग्रेस ने असहयोग सिद्धान्त को अपनाकर अपना नया जीवन आरम्भ किया। कांग्रेस अब एक सुसंगठित संगठन बन गई तथा उसकी नीति उग्रवादी नीति निश्चित हो गयी यद्यपि गांधीजी ने इस नीति को कभी भी अहिंसा के मार्ग से पृथक नहीं होने दिया।

असहयोग के कारण

कांग्रेस द्वारा असहयोग की नीति अपनाने के निम्न कारण थे —

(1) युद्ध का परिणाम

प्रथम महायुद्ध काल में मित्र राष्ट्रों ने घोषणा की थी कि वे लोकतन्त्र की रक्षा के लिए युद्ध लड़ रहे हैं तथा वे आत्मनिर्णय के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। युद्ध समाप्ति के बाद कई पराधीन प्रदेशों में लोकतन्त्र शासन की स्थापना की गयी तथा आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर कई राज्यों का निर्माण किया

गया। फलस्वरूप पराधीन देशों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रारम्भ हुआ तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्ति मिली। भारत भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। युद्ध के पश्चात् उसके राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप बदल गया और उसने एक नई दिशा को अपनाया।

(२) आर्थिक स्थिति

युद्ध में अत्यधिक व्यय वहन करने के कारण भारत सरकार की आर्थिक हालत खराब हो गई थी। वह कर्ज के बोझ से दब गई थी। मुद्रा स्फीति के कारण वस्तुओं की कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि हो गई थी। जनसाधारण के लिए जीवन निर्वाह करना अत्यन्त कठिन हो गया था। किसानों और मजदूरों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। चम्पारन में किसानों और अहमदाबाद में मजदूरों की आर्थिक दुर्दशा ने महात्मा गांधी को सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग करने का अवसर प्रदान किया।

(३) प्लेग का प्रकोप

जनता की आर्थिक दशा तो शोचनीय थी ही प्लेग और इन्फ्लुएंजा के प्रकोप ने उसे और शोचनीय बना दिया। बहुत से लोगों की मृत्यु हो गई। सरकार ने उसे रोकने के लिए और जनता का दुःख दूर करने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया। फलस्वरूप जनता में असन्तोष काफी बढ़ता ही गया।

(४) अकाल

सन् १९१७ में अनावृष्टि के कारण देश में अकाल फैल गया। अनेक व्यक्ति अकाल के ग्रास बन गए। सरकार की ओर से जनता का दुःख दूर करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया। फलस्वरूप जनता में असन्तोष निरन्तर बढ़ता ही गया और अंग्रेजों के विरुद्ध जनभावना जड़ पकड़ती गयी।

(५) सरकार का दमन चक्र

एक ओर सरकार जनता को राजनीतिक सुधारों का आश्वासन दे रही थी और दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए कड़े से कड़े कदम उठा रही थी। प्रेस एक्ट, सीडिशन एक्ट, ऐक्सप्लोसिव सबस्टेंस एक्ट, क्रिमिनल ला एमेंडमेंट एक्ट आदि अनेक दमनकारी कानूनों का निर्माण राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के उद्देश्य से ही किया गया था। क्रान्तिकारियों को फाँसी, कालापानी और कारावास की सजा देने में कोई कसर नहीं उठा रखी गयी थी। होमरूल आन्दोलन जैसे वैधानिक एवं शान्तिपूर्ण कार्यक्रम को भी निर्ममता से दबाया गया था। पंजाब में डायर द्वारा किया गया दमन चक्र बड़ी तेजी और कठोरता से फैला। सरकार की दमनकारी नीति ने जनता में असन्तोष एवं विद्रोह की लहर पैदा कर दी।

(६) मांटफोर्ड सुधार से असंतोष

युद्धकाल में सरकार द्वारा दिए गए आश्वासन के कारण जनता को विश्वास हो गया था कि युद्ध के बाद सरकार द्वारा शासन में वांछित और क्रान्तिकारी

सुधार किए जाएंगे। सरकार ने माटफोर्ड सुधार लागू किये लेकिन इन सुधारों से जनता को सन्तोष नहीं हुआ। इस योजना से उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं हुई। भारत सरकार पर गृह सरकार का नियंत्रण पूर्ववत् ही बना रहा और स्थानीय स्वशासन को भी बढ़ावा नहीं मिला। भारतीयों ने इस सुधार योजना को अनुदार तथा अपमानजनक समझा।

(७) रौलट अधिनियम

रोलेट अधिनियम जलियावाला बाग हत्याकांड एवं हण्टर समिति प्रतिवेदन ने भी जनता में अंग्रेजों के प्रति अविश्वास की भावना पैदा की तथा गांधीजी को सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने को प्रेरित किया।

गांधीजी का असहयोगी होना

१९१९ ई. तक गांधीजी ब्रिटिश सरकार के पूर्ण सहयोगी बने रहे। वे पक्के राजभक्त थे और अपने को ब्रिटिश साम्राज्य का नागरिक कहने में गर्व का अनुभव करते थे। उन्होंने युद्ध में बिना किसी शर्त के पूर्ण सहयोग प्रदान किया था। उनकी मान्यता थी कि साम्राज्य की हिस्सेदारी हमारा निश्चित लक्ष्य है। हमें योग्यतानुसार अधिक से अधिक कष्ट उठाना चाहिए और साम्राज्य की रक्षा में अपनी जान तक दे देनी चाहिए। साम्राज्य नष्ट हो जायगा तो उसके साथ हमारी अभिलाषाएं भी नष्ट हो जाएंगी। अतः साम्राज्य की रक्षा के काम में सहयोग देना स्वराज्य प्राप्ति का सरलतम और सीधा मार्ग है। उन्हें अंग्रेजों की सद्भावना और न्यायप्रियता में पूर्ण विश्वास था। उन्हीं के प्रयास से अमृतसर अधिवेशन में जैसा पहले उल्लेख किया गया है माटफोर्ड योजना को कायम की स्वीकृति मिल सकी थी। ३१ दिसम्बर १९१९ ई. को यंग इण्डिया में उन्होंने लिखा था कि माटफोर्ड योजना और उसके साथ की गयी उद्घोषणा से स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों के साथ न्याय करना चाहती है और भारतीय जनता को अपने समस्त संदेहों का अन्त कर देना चाहिए। अतः अब हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम उनकी आलोचना करें वरन् अब हमको उन्हें सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। सर्वप्रथम प्रारम्भ में गांधीजी ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करना चाहते थे। अतः प्रारम्भ में गांधी को सहयोगी गांधी कहा जाता था। किन्तु कुछ ही वर्षों के बाद कतिपय घटनाओं और युद्ध जनित परिस्थितियों ने उन्हें असहयोगी बना दिया। सितम्बर १९२० ई. में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में उन्होंने सरकार के साथ असहयोग और माटफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत निर्मित व्यवस्थापिका-सभाओं के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा। पहले गांधीजी को ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जनता की भारत के प्रति सद्भावना में अगाध विश्वास था। वे अब ब्रिटिश सरकार को शैतान कहने लगे और उसके साथ असहयोग का कार्यक्रम तैयार करने लगे। उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन में सत्याग्रह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और १९२० ई. में देशव्यापी सत्याग्रह भी शुरू कर दिया।

महात्मा गांधी ने १९२२ ई० में अहमदाबाद न्यायालय में उन कारणों का उल्लेख किया जिन्होंने उन्हें असहयोगी बनाया था। उन्होंने कहा "मुझे सर्वप्रथम आघात रोलट अधिनियम से लगा जिसका निर्माण जनता की स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिए किया गया था। मुझे अपनी अन्तरात्मा से प्रेरणा मिली कि इसके विरुद्ध तीव्र आन्दोलन होना चाहिए। इसके उपरान्त मेरे सामने पंजाब के अत्याचार आए जो जलियांवाला बाग के कत्लेआम के साथ प्रारम्भ हुए और पेट के बल चलने के आदेशों, खुले आम कोड़े लगाए जाने तथा इसी प्रकार के अनेक अमानवीय अत्याचार अवर्णनीय अपमान और तिरस्कार के साथ समाप्त हुए। मैंने यह भी अनुभव किया कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री द्वारा तुर्की की स्वाधीनता और इस्लाम की धार्मिक संस्थाओं की स्वतन्त्रता के सन्दर्भ में दिये आश्वासन कभी पूरे नहीं होंगे।" उन्होंने आगे कहा "मैंने यह भी अनुभव किया था कि सुधारों ने हृदय परिवर्तन नहीं किया है अपितु वे तो भारत में आर्थिक शोषण तथा दासता को स्थायी रखने के उपाय थे।"

असहयोग के पीछे विचार-दर्शन

अहिंसात्मक असहयोग के मूल में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दर्शन था। इसका सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर निम्न तथ्य सामने आते हैं —

(१) आर्थिक दृष्टिकोण

महात्माजी के अहिंसात्मक असहयोग को आर्थिक दृष्टिकोण से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि इस आन्दोलन का लक्ष्य मुख्य रूप से स्वदेशी का प्रचार करके अंग्रेजी अर्थ व्यवस्था पर सीधा प्रहार करना था। गांधीजी अपने इस कार्यक्रम से न केवल देशवासियों में ही नये वातावरण का संचार करना चाहते थे अपितु लंकाशायर और मैनचेस्टर में काम करने वाले मजदूरों में भी सनसनी पैदा कर देना चाहते थे। महात्माजी का विचार था कि यदि स्वदेशी का प्रचार किया जाए तो अंग्रेजी अर्थ व्यवस्था पर सीधा प्रहार होगा और वे भारतीयों को स्वशासन देने के लिए मजबूर होंगे। इसी मूलभूत उद्देश्य को सामने रखकर उन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार की योजना बनायी।

(२) राजनीतिक दृष्टिकोण

खिलाफत आन्दोलन के सन्दर्भ में मुसलमान अंग्रेजों से पूरी तरह असंतुष्ट हो गए थे अतः गांधीजी ने मुस्लिम जन भावनाओं को देखते हुए असहयोग का मार्ग अपनाना ही उचित समझा। इसके अतिरिक्त गांधीजी सम्पूर्ण देश में भावात्मक एकता का संचार करना चाहते थे। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, द्वारिका से लेकर आसाम तक सम्पूर्ण देश की एकता का रहस्य लोगों पर आरोपित करना चाहते थे।

(३) सामाजिक दृष्टिकोण

महात्माजी का विचार था कि असहयोग की भावात्मक प्रवृत्तियों से समाज सुधार की भावना को बल मिलेगा। राष्ट्र की एकता में वृद्धि होने से अनेक कुरीतियों जैसे अस्पृश्यता एवं भेदभाव मूलक दूषित सामाजिक व्यवस्था पर तीव्र प्रहार सम्भव होगा।

(४) मनोवैज्ञानिक तथ्य

अहिंसात्मक असहयोग का मनोविज्ञान के तत्त्वों के सन्दर्भ में अध्ययन करना भी बड़ा तथ्यपूर्ण होगा। गांधीजी इससे दो तत्त्वों की पूर्ति करना चाहते थे

१ वे देश में व्याप्त निराशा और घोर अन्धकार को समाप्त करके अदम्य उत्साह और नवजीवन का संचार करना चाहते थे।

२ भारतीयों के नैतिक बल को कुचलने के अंग्रेजों के कलुषित कारनामों के प्रति विश्व जनमत जाग्रत करना चाहते थे। वे अंग्रेजों की न्यायप्रियता और प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों में विश्वास करने वाली भूमिका का भी भंडाफोड़ करना चाहते थे।

अहिंसात्मक असहयोग कार्यरूप में

अहिंसात्मक असहयोग कार्यक्रम को आरम्भ करने से पूर्व गांधीजी ने १ अगस्त सन् १६२ ई को वायसराय को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि सरकार पंजाब के अत्याचारों और खलीफा के अपमान का पश्चाताप करे और भारतीय नेताओं से परामर्श करके जनता को सन्तुष्ट करने का मार्ग निकाले। वायसराय ने गांधीजी के पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया अतः गांधीजी ने असहयोग कार्यक्रम को मूर्तरूप देने का निश्चय किया। नागपुर अधिवेशन के बाद गांधीजी ने अपने बन्धुओं को साथ लेकर अपने असहयोग आन्दोलन का प्रचार करने के लिए सारे देश में दौरा किया। भारत में उन्होंने स्कूलों विदेशी वस्त्रों कौंसिलों और सरकार का बहिष्कार करने पर जोर डाला। स्वयं उन्होंने कैसरे हिन्द की उपाधि का त्याग कर दिया। सैकड़ों व्यक्तियों ने अपनी उपाधियां वापिस कर दीं। विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल त्याग दिये एवं वे राष्ट्रीय संस्थाओं में भर्ती हुए। हजारों वकीलों ने वकालत छोड़ दी विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया स्वदेशी वस्त्र अपनाये चरखे का प्रचलन बढ़ा मादक पदार्थों का बहिष्कार किया गया। फरवरी १६२१ ई में कांग्रेस ने सफलतापूर्वक कनाट के ड्यूक का बहिष्कार संगठित किया। वे भारत में नयी परिषदों का उद्घाटन करने के लिए आए थे। देशव्यापी हड़तालों से उनका स्वागत किया गया।

अप्रैल में लार्ड रीडिंग वायसराय होकर भारत आये। मई में पं मदन मोहन मालवीय ने वायसराय से गांधीजी की भेंट का आयोजन किया। गांधीजी का वायसराय से मिलने का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि अली बन्धुओं ने अपने

व्याख्यानों में भड़काने वाली भाषा का प्रयोग करने के लिए क्षमा माँगी और आगे से हिंसात्मक वक्तव्य न देने का आश्वासन दिया। जुलाई १९२१ ई० में गांधीजी के आह्वान पर विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी। मोहम्मद अली के नेतृत्व में खिलाफत सम्मेलन ने भी मुसलमानों का अंग्रेजी सरकार की सेवा करना 'हराम' घोषित किया। आपत्तिपूर्ण भाषण देने के कारण अली बन्धु बन्दी बना लिए गए और उनको दो-दो वर्ष की सजा हुई। इसके उत्तर में गांधीजी ने किसानों को लगानबन्दी का नारा दिया। आन्दोलन का स्वरूप काफी व्यापक हो गया। इससे पूर्व इतना बड़ा जन आन्दोलन भारत में कभी नहीं हुआ था। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के शब्दों में "जब से भारत का अंग्रेजों से सम्बन्ध स्थापित हुआ, इससे इतिहास में जनता का क्षोभ तथा उत्साह इस सीमा तक कभी नहीं पहुँचा था। इस दौरान में देश को इतने अधिक साधुओं की स्वार्थपूर्ण तथा अधिक सेवा पहले कभी प्राप्त नहीं हुई। जनता का अपनी योग्यता में तथा अपनी कठिनाइयों स्वयं दूर कर लेने की क्षमता में इतना अटल विश्वास पहले कभी नहीं रहा था।" कांग्रेस ने १९२१-२२ में वेल्स के राजकुमार के भारत आगमन का बहिष्कार करने का भी आह्वान किया। सरकार ने अपनी पूरी शक्ति से आन्दोलन को कुचलने का प्रयत्न किया। कांग्रेस स्वयंसेवक दल को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। उसके अनेकों सदस्यों को जेल भेज दिया गया। सी० आर० दास और मोतीलाल नेहरू भी जेल में बन्द कर दिए गए। किन्तु जहाँ जहाँ भी वेल्स के राजकुमार गये वहाँ-वहाँ हड़ताल भी उनके साथ गई और शहरों में मरघट सा दृश्य दिखाई देता था। सम्पूर्ण देश ने एक बड़ी जेल का रूप ग्रहण कर लिया था। सन् १९२१ के अन्त तक जेलों में राजनैतिक बन्दियों की संख्या ३०,००० पार हो गयी थी। राजकुमार भारत में केवल पुलिस अत्याचार और आम गिरफ्तारी के दृश्य ही देख पाए।

असहयोग आन्दोलन

सर तेजबहादुर सप्रू ने जो उस समय कानून मंत्री थे, वायसराय को भारतीय नेताओं और सरकारी प्रतिनिधियों का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाने का परामर्श दिया। गांधीजी इससे सहमत न हुए। सरकार द्वारा चलाए गए दमनचक्र की प्रतिक्रिया स्वरूप कांग्रेस ने दिसम्बर १९२१ ई० में अहमदाबाद अधिवेशन में हिंसा की निन्दा की। इस अधिवेशन में राष्ट्रीय सेवा दल का निर्माण करके व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ करने एवं जब जनता सामूहिक सत्याग्रह के लिए प्रशिक्षित हो जाए तब सामूहिक सत्याग्रह प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में भी निर्णय लिए गए। गांधीजी को आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए अधिनायक चुना गया। गांधीजी ने बिना समय बरबाद किए सामूहिक सत्याग्रह को सफल बनाने हेतु आन्ध्र के गुन्टूर ग्राम में १२ जनवरी को कर न देने के आन्दोलन का प्रारम्भ किया। सन् १९२२ ई० में १४ से १६ जनवरी तक कुछ नेताओं ने लगभग ३०० सदस्यों ने बम्बई में आपस में विचार विमर्श कर एक प्रस्ताव पारित कर कांग्रेस से सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ

न करने और सरकार से जनता की कठिनाइयों पर विचार करने के लिए एक गोलमेज सम्मेलन बुलाने का अनुरोध किया। इन नेताओं ■ राजनीतिक बन्दियों को छोड़ने का भी निवेदन किया। वायसराय ने इस माँग को ठुकरा दिया। गांधीजी को अब पूर्ण विश्वास हो गया कि बिना आन्दोलन के कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने गुजरात में बारदोली में आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। कांग्रेस कार्यसमिति ने जनता से अहिंसात्मक अनुशासन में रह कर बारदोली आन्दोलन को सफल बनाने का अनुरोध किया। १ फरवरी १९२२ ई० को गांधीजी ने वायसराय के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने सरकारी अराजकता और पाशविकता की घोर निन्दा की और यदि सात दिनों में पूर्ण रूप से सरकार का हृदय-परिवर्तन नहीं होता है तो कर नहीं दो आन्दोलन प्रारम्भ करने की चेतावनी दी। इस अवधि के पूरा होने से पूर्व ही ४ फरवरी को जनता ने चौरी चौरा (गोरखपुर के निकट एक स्थान) में २१ सिपाहियों एवं थानेदार की हत्या कर डाली। पहले भी बम्बई (नवम्बर १९२१) और मद्रास (जनवरी १९२२) में ऐसी घटनाएं हो चुकी थीं। महात्माजी के लिए यह असहनीय था। उन्होंने कांग्रेस कार्यकारिणी को आन्दोलन स्थगित करने और कांग्रेस को रचनात्मक आन्दोलन पर शक्ति केन्द्रित करने का परामर्श दिया। अंग्रेज सरकार ने महात्माजी को सरकार के विरुद्ध जनता में विद्रोह भावना जाग्रत करने के अपराध में ६ वर्ष की कैद की सजा दी और वे यरवदा जेल में बन्द कर दिए गए।

आन्दोलन का स्थगित होना

आन्दोलन के स्थगित करने के आदेश से जनमानस अत्यधिक क्षुब्ध हो उठा। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में भी एक विवाद उठ खड़ा हुआ। मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल से ही गांधीजी की नीति की निन्दा की। उनके विरुद्ध अविश्वास का एक प्रस्ताव भी कांग्रेस की विषय समिति में प्रस्तुत किया गया। जवाहरलाल नेहरू ने इस सम्बन्ध में लिखा कि हमने ऐसे समय में आन्दोलन के स्थगित किए जाने का समाचार प्राप्त किया जबकि हम सभी मोर्चों पर आगे बढ़ रहे थे और हमको भी क्रोध आया था। यद्यपि आन्दोलन केवल चौरी चौरा की घटना के कारण स्थगित किया गया था तथापि वास्तविकता यह थी कि बाहर से शक्तिशाली प्रकट होने वाला यह आन्दोलन प्रगति न कर छिन्न भिन्न हो रहा था। संगठन में शिथिलता आ रही थी। अभी तक जनता ने बिना नेताओं (जो जेल में बन्द थे) के संघर्ष करना नहीं सीखा था। जनता संघर्ष के सिद्धान्तों और उद्देश्य को भी निश्चित रूप से नहीं समझ पायी थी। सरकार की दमनकारी पाशविक नीति से भी जनता में निराशा और भय उत्पन्न हो रहा था। सन् १९२१ के अन्त में मलाबार के मोपलाओं द्वारा हिन्दुओं पर किए गए अत्याचारों से भी आन्दोलन को क्षति पहुंची थी और हिन्दू मुस्लिम एकता में दरार पड़ना प्रारम्भ हो गया था। आन्दोलन में हिंसा के प्रवेश से यही सम्भावना थी कि कहीं जातीय और वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ न हो जाए। इस कारण

आन्दोलन को स्थगित करना उचित ही था। हां इतना अवश्य है कि सत्याग्रह को एकाएक स्थगित करने से हिन्दू-मुस्लिम तनाव में वृद्धि हुई। श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि राजनीतिक संघर्ष में उमड़ती हुई हिंसा को दबा दिया गया किन्तु दबी हिंसा को निकालने का कोई मार्ग होना चाहिए था और संभवतः आगामी वर्षों में इसी से साम्प्रदायिक गड़बड़ी ने जोर पकड़ा।

आन्दोलन की कमजोरियां

असहयोग आन्दोलन अनेक कमजोरियों से ग्रस्त था। यह साधारण आवश्यकताओं पर आधारित था इसमें स्थायी भावों का योग नहीं था जो इसे स्थायी आधार प्रदान करता। बहिष्कार का काम पूर्णरूप से सफल नहीं हुआ क्योंकि सरकारी पिट्ठुओं ने सरकार का साथ दिया। गांधीजी द्वारा सभी गलतियों को अपने ऊपर ओढ़ लेना भी उचित नहीं था। ब्रिटिश सरकार ने जनता पर जो अमानुषिक अत्याचार किए, उसकी जिम्मेदारी महात्मा गांधी ने अपने ऊपर ओढ़ ली जबकि चाहिए यह था कि वे सारी जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार पर थोपते। देश की जनता को आन्दोलन का पूर्णरूप से प्रशिक्षण भी नहीं मिल पाया था। फलस्वरूप आन्दोलन पूर्णरूप से अहिंसात्मक नहीं रह सका। आन्दोलन अपने उद्देश्य में भी सफल नहीं हुआ। देश पंजाब [illegible] जनता और अंग्रेजों की नृशंसता का बदला लेने की अपनी निर्णायक स्थिति में था और इसी समय गांधीजी द्वारा एकायक आन्दोलन को बन्द कर देने से सारी स्थिति ही बदल गयी। देशवासियों ने जो त्याग किए बलिदान किए उनका कोई मूल्य नहीं रहा और फलस्वरूप समग्र भारत में निराशा का घोर अंधेरा छा गया। खिलाफत को आधार बनाना भी अनुचित था। फलस्वरूप आन्दोलन को जन-व्यापी समर्थन नहीं मिल पाया। केवल मुस्लिम प्रश्न होने से अधिकतर भारतीय इस आन्दोलन से अछूते ही रहे। खिलाफत का नारा तो तुर्की में मुस्तफा कमालपाशा ने ही दफना दिया था और वहां के खलीफा को ही देश छोड़ना पड़ा था। उन्होंने खिलाफत को पुनर्जीवित करने के नारे को मध्य-युग का नारा कहा।

असहयोग आन्दोलन की उपलब्धियां

असहयोग आन्दोलन की उपलब्धियों का अवलोकन करते समय हमें दो विचार धाराओं का सहारा लेना पड़ेगा

(1) अपने उद्देश्य में ही विफल

पहली विचारधारा के अनुसार इस आन्दोलन से किसी भी महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हुई। गांधीजी द्वारा सभी गलतियों को अपने ऊपर ओढ़ लेना आन्दोलन को अचानक बन्द कर देना ऐसे पहलू हैं जो इसकी सफलता को नकारात्मक बना देते हैं। इससे देश में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हो पाया और आन्दोलन अपने उद्देश्यों में ही पूर्णरूप से विफल हो गया।

(२) भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का सर्वोत्तम अध्याय

"दूसरी विचारधारा वाले राजनीतिज्ञ इस आन्दोलन को भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का सबसे गौरवपूर्ण आन्दोलन मानते हैं। उनके मतानुसार असफलताओं की अपेक्षा सफलताओं का मूल्य अधिक आँका जाना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद" पर कुठाराघात स्वराज्य और स्वावलम्बन का सन्देश राष्ट्रीयता का संचार राष्ट्रीय आन्दोलन में नया भावना का समावेश सामाजिक सुधारों के नये दौर आदि ऐसे पक्ष हैं जिनके महत्व को किसी भी दशा कम नहीं आँका जा सकता। राष्ट्रीय शिक्षा का प्रारम्भ खादी का प्रयोग विदेशी सामान का बहिष्कार आदि कुछ ऐसे कार्य थे जिसके कारण भारत में ब्रिटिश शासन शक्तिहीन होने लगा था। नौकरशाही गांधीजी द्वारा संगठित जन शक्ति के महत्व का अनुभव करने लगी थी एवं साम्राज्य की रक्षा के लिए चिन्ता अनुभव करने लगी थी।

प्रभाव

असहयोग आन्दोलन को अचानक स्थगित कर देने से वह अपने मूल उद्देश्य एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्त करने में असफल हो गया। जनता में असंतोष और निराशा की लहर फैल गयी। फिर भी इस आन्दोलन के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। अनेक क्षेत्रों में इससे वांछित परिणाम निकले

(१) आर्थिक क्षेत्र में

स्वदेशी का प्रचार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के कार्यक्रम से ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था पर सीधा प्रभाव डाला। भारत में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम जागृत हुआ और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। इसके विपरीत लंकाशायर और मानचेस्टर की मिलों के पहिये धीमे पड़ गये। मजदूरों में उत्तेजना फैल गयी और वे लोग रोजी रोटी के लिए ब्रिटिश सरकार पर यह दबाव डालने लगे कि भारतीयों की माँगों का समादर किया जाना चाहिए—निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि जिस राग को गांधी ने भारत में छेड़ा था उसकी झलक लन्दन की सड़कों पर सुनाई दी। आर्थिक क्षेत्र में गांधी जी के प्रयास किसी सीमा तक सफल अवश्य हुए थे।

(२) राजनैतिक क्षेत्र में

देश में राष्ट्रीय एकता के अपूर्व भावों का विकास हुआ। सम्पूर्ण देश हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक द्वारिका से लेकर आसाम तक मातृभूमि को विदेशी दासता से मुक्त कराने के लिए लौह संकल्प लेकर उठ खड़ा हुआ था। हिन्दू मुस्लिम एकता का यह गौरवपूर्ण पृष्ठ था।

(३) मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में

आन्दोलन ने भारतीयों की आँखें खोल दीं। सरकारी अधिकारियों तथा उनके शासकों के प्रति जनता के दिल से भय दूर हो गया। इसके अतिरिक्त यह पहला जन आन्दोलन था जिसमें सभी सम्प्रदायों और प्रान्तों के लोग कांग्रेसी झंडे

के नीचे खड़े होकर साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए एक आवाज को बुलन्द करने लगे। इस आन्दोलन में सरकार का जिस गति से दमनचक्र चला उसकी विदेशों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और विश्व के अनेक देशों से कांग्रेस को नैतिक समर्थन मिला। संक्षेप में इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीयता के दमन का विकास हुआ।

मूल्यांकन

असहयोग आन्दोलन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कूपलैंड ने लिखा है उन्होंने (गांधीजी) ने वह किया जो तिलक नहीं कर सके थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी आन्दोलन में बदल दिया। उन्होंने इससे भारतीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने की सीख दी। गांधीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को केवल क्रान्तिकारी ही नहीं लोकप्रिय भी बना दिया। गांधीजी के व्यक्तित्व ने ग्रामीण इलाकों को उद्वेलित कर दिया। सुभाष बोस ने लिखा महात्मा जी ने कांग्रेस को एक नया विधान ही नहीं दिया अपितु इस एक क्रान्तिकारी संगठन में परिवर्तित कर दिया। देश के कोने-कोने में से एक जैसे नारे लगाए जाने लगे और एक जैसी नीति तथा एक जैसी विचारधारा सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगी।

१६

स्वराज्य दल

प्रवेश

सन् १९२२ में सत्याग्रह के स्थगित होने और महात्माजी के कारागार में बन्द हो जाने का दूसरा गम्भीर परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस में विचारों की वे दो धाराएं जो महात्माजी के प्रभाव से एक होकर बहने लगी थीं फिर भिन्न भिन्न रूप में प्रकट होने लगीं। ज्यों ही महात्माजी जेल गये वे लोग जो सिद्धान्त रूप में पूरे असहयोग में विश्वास नहीं करते थे उभर आये और कांग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तन की मांग करने लगे। वे नेता जो महात्माजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास रखते थे अब भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते थे। परन्तु कुछ नेता जिनमें पं० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरञ्जनदास प्रमुख थे कार्यक्रम में परिवर्तन करना आवश्यक मानते थे। विचारों का यह घात-प्रतिघात अन्दर ही अन्दर चल रहा था कि १९२२ ई० के अन्त में गया में कांग्रेस के अधिवेशन का अवसर आ पहुँचा। गया कांग्रेस के अध्यक्ष श्री देशबन्धु चित्तरञ्जनदास थे। वे धारासभाओं में भाग लेने के कट्टर समर्थक थे। वह और पं० मोतीलाल नेहरू ही कौंसिल प्रवेश नीति के प्रमुख अभिभावक थे। देशबन्धु ने अपने भाषण में कौंसिलों की तुलना अंग्रेजी सरकार के गढ़ से की और उन्होंने कहा कि कौंसिलों में प्रवेश करके इन गढ़ों को तोड़ना अत्यन्त आवश्यक है। उनके मतानुसार धारासभाओं में घुसकर विरोध द्वारा सरकार से असहयोग करना भी असहयोग का ही एक अंग है। इस प्रकार परिवर्तनवादी असहयोग के शेष सारे कार्यक्रम को स्वीकार करते हुए भी यह चाहते थे कि धारासभाओं के चुनाव लड़कर सरकार के कानून बनाने के यन्त्र पर अधिकार कर लिया जाय।

इसके विपरीत कौंसिल प्रवेश के विरोधी भी प्रभावहीन नहीं थे। श्री राजगोपालाचार्य की कैंची की भांति सीधी और प्रतिपक्षी की युक्तियों को काटने वाली चमत्कारपूर्ण वकालत पहले पहल गया में ही देशवासियों के सामने प्रकट हुई। कौंसिल प्रवेश के दूसरे प्रतिपक्षी थे सरदार पटेल। जब वह खड़े होकर दृढ़ और गम्भीर वाणी में यह घोषणा करते थे कि यदि देश को स्वतन्त्र कराना है तो पहले कौंसिल प्रवेश की चर्चा का कूड़ा करकट की तरह आंगन से बाहर फेंक देना होगा

नो कौंसिल प्रवेश के समर्थकों के दिल दहल जाते थे। सबको विश्वास हो चुका था कि सरदार जो कुछ कहते हैं उसे करके रहते हैं। बारडोली के सरदार के लिए कुछ असम्भव नहीं है। कौंसिल प्रवेश के तीसरे सबसे बड़े विरोधी थे बिहार के अनन्य नेता राजेन्द्रप्रसाद। उनकी सरल तपोमयी मूर्ति और अटल विश्वासभरी वाणी श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देती थी। ऐसे यशस्वी और प्रतिभाशाली तीन विरोधी ही पर्याप्त थे। फिर महात्मा गाधी का वरद हस्त उनकी पीठ पर जो था। फलतः काग्रेस के अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश प्रस्ताव पास नहीं हो सका।

स्वराज्य दल का निर्माण

अपरिवर्तनवादियों द्वारा परिवर्तनवादियों के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने पर देशबन्धु चित्तरञ्जनदास और मोतीलाल नेहरू ने क्रमशः अध्यक्ष और महामन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने गया में ही काग्रेस से अलग स्वराज्य पार्टी के सगठन की घोषणा कर दी और क्षणों में ही प्रभावशाली काग्रेसियों को उसका सदस्य बना लिया। स्वराज्यवादियों का पहला अधिवेशन मार्च १६२३ ई० में इलाहाबाद में हुआ जिसमें दल के सविधान और अभियान की योजना को स्वीकार किया गया। अपरिवर्तनवादियों तथा स्वराज्यदल में बढ़ती हुई कटुता को दूर करने के लिए सितम्बर १६२३ में मौलाना आजाद की अध्यक्षता में दिल्ली में काग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। उसमें काग्रेस ने विधानमण्डलों के प्रवेश के कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया। देशबन्धु चित्तरञ्जनदास ने यह स्पष्ट कर दिया कि विधान मण्डलों में प्रवेश करने के कार्यक्रम का यह अर्थ नहीं कि काग्रेस के दूसरे कार्यक्रम को समाप्त कर दिया जाय बल्कि उनका इस तरह विस्तार किया जाय कि विधान-मण्डलों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में निर्वाचित स्थानों पर कब्जा करना भी उनमें शामिल कर लिया जाय। १६२४ ई० में अस्वस्थता के कारण गाधीजी जेल से छोड़ दिए गए। उस समय उन्होंने स्वराज्यवादियों का समर्थन किया और स्वराज्यवादियों ने उनके रचनात्मक कार्यक्रम का। इस प्रकार स्वराज्य दल काग्रेस का ही एक राजनीतिक अंग बन गया जो ससदीय कार्यों में भाग लेता था। इससे काग्रेस में पुनः विभाजन होने से रुक गया।

स्वराज्य दल के उद्देश्य

स्वराज्य दल का मूल उद्देश्य था स्वराज्य प्राप्त करना। गाधीवादियों का भी अन्तिम उद्देश्य यही था परन्तु उनके तरीकों में भिन्नता थी। जहाँ स्वराज्यवादी विधानमण्डलों का चुनाव लड़ना और जनता में अपनी सर्वप्रियता तथा शक्ति को सिद्ध करना चाहते थे वहाँ गाधीवादी रचनात्मक कार्यों में विश्वास करते थे। स्वराज्यवादी गाधीजी के असहयोग आन्दोलन में विश्वास नहीं करते थे अपितु वे कौंसिल में प्रवेश करके राजनीतिक असहयोग करने के समर्थक थे। उनका कहना था कि कौंसिलों में प्रवेश करने से असहयोग आन्दोलन सफलता से चलाया जा सकेगा। उनकी सम्मति में असहयोग आन्दोलन एक बौद्धिक प्रवृत्ति मात्र था जिसको

राष्ट्रीय जीवन का सम्भव व्यावहारिक सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। कौंसिल के अन्दर असहयोग का अर्थ था कि भारतीय अधिक से अधिक संख्या में निर्वाचित होकर कौंसिल में जावें और सरकार की नीति का घोर विरोध करें उनके कार्यों में बाधा उत्पन्न करें जिससे उसे अपनी नीति में परिवर्तन लाने को बाध्य होना पड़े। स्वराज्यवादियों का लक्ष्य कौंसिलों में प्रवेश करके उन्हें अन्दर ही अन्दर से नष्ट करना था। वे चुनाव लड़ना इसलिए भी आवश्यक समझते थे ताकि निहित स्वार्थ चुनावों को जीतकर सरकार की सहायता न कर सकें जैसा कि उदारवादियों ने किया था। उन्होंने चुनाव जीतने का इरादा इसलिए किया था कि या तो सन् १९१९ के सुधारों में कुछ आवश्यक परिवर्तन कराए जाएं वरना इसका अन्त किया जाए और नए सुधारों की मांग की जाए। स्वराज्य दल के इस पहलू पर प्रकाश डालते हुए बंगाल विधानसभा में स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजनदास ने कहा था

यह कहा गया है कि हमारा नारा है नष्ट करो नष्ट करो हम नष्ट करना क्यों चाहते हैं। हम जिससे मुक्त होना चाहते हैं। हम उस परिपाटी को नष्ट करना तथा उससे मुक्त होना चाहते हैं जो हमारे लिए हितकर नहीं हैं और न ही हो सकती है। हम उसे इसलिए नष्ट करना चाहते हैं क्योंकि हम ऐसी पद्धति का निर्माण करना चाहते हैं जो सफलतापूर्वक कार्य कर सके और सार्वजनिक हित में सहायता पहुँचावे।

संक्षेप में स्वराज्यवादी अपने संवैधानिक कार्यों के माध्यम से सरकार को स्वराज्य प्रदान करने के लिए मजबूर कर देना चाहते थे।

स्वराज्यवादी महात्मा गांधी के रचनात्मक विचारों के भी समर्थक थे। वे विधानसभाओं के माध्यम से ऐसे प्रस्ताव और विधेयक पारित कराना चाहते थे जिनके द्वारा राष्ट्रीय रचनात्मक कार्यों में सहयोग मिले। धारासभाओं से बाहर वे गांधीजी के रचनात्मक कार्यों का समर्थन करते थे। उनका विचार था कि रचनात्मक कार्यों के साथ साथ स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए विधानमण्डलों की सदस्यता द्वारा स्वराज्य के लिए संघर्ष करना भी बहुत आवश्यक है। आवश्यकता पड़ने पर वे महात्माजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में शामिल होने को भी तैयार थे।

स्वराज्य दल का कार्यक्रम

स्वराज्य दल के कार्यक्रम का हम दो भागों में अध्ययन कर सकते हैं

(१) विधानमण्डल सम्बन्धी कार्यक्रम और

(२) रचनात्मक कार्यक्रम

स्वराज्यवादियों का कार्यस्थल विधानमण्डल था अतः वे विधान-मण्डलों में सक्रिय भूमिका अदा करके सरकारी नीति को प्रभावित करने के पक्षपाती थे। इस कार्यक्रम में निम्नलिखित बातें सम्मिलित थीं —

१ सरकारी बजट को रद्द करना

२ उन प्रस्तावों का विरोध करना जो नौकरशाही को बढावा देते हों

३ सरकार की हर असवधानिक नीति का डटकर विरोध करना और सरकारी कायक्रम में अडगा लगाना और

४ अपने कायक्रम को अधिक प्रभावशाली बनाने क उद्देश्य से उन सभी स्थानों पर अधिकार करने का प्रयत्न करना जिन पर कौंसिल के सदस्य होने के नाते किया जा सकता है ।

स्वराज्यवादियो के रचनात्मक कायक्रम मे निम्नलिखित बातें सम्मिलित थी-

१ उन विधेयको और प्रस्तावो को पारित करने का प्रयास जो रचनात्मक गतिविधियो को प्रभावशाली बनान म महत्वपूर्ण रूप से सहायक सिद्ध हो सकते हों

२ उन विधेयको को पारित कराने म जी जान से कोशिश करना जो नौकरशाही को नियत्रित करते हों और

३ कौंसिल के बाहर रचनात्मक कार्यों को सम्पादित करने हेतु सत्याग्रह क लिए हमेशा तयार रहना भी स्वराज्यवादियो के कायक्रम का अभिन्न अ ग था । उनका विचार था कि सत्याग्रह के द्वारा नौकरशाही को नियत्रित करके सही रास्ते पर लाया जा सकता है ।

उनके इसी रचनात्मक कायक्रम को ध्यान म रखकर महात्माजी न स्वराज्यवादियो के राजनीतिक कायक्रम को स्वीकार किया था ।

स्वराज्य दल की उपलब्धियां

स्वराज्यवादियो को अपने उद्देश्यो एव कायक्रमो मे काफी सफलता मिली

(१) निर्वाचन म सफलताए

माण्टफोर्ड सुधारों को नष्ट करन के उद्देश्य से स्वराज्यवादियो न मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु क नेतृत्व म १९२२ ई के निर्वाचन म भाग लिया । इस निर्वाचन म उन्ह आशा स अधिक सफलता मिली । बगाल तथा मध्यप्रान्त म उन्हे बहुमत प्राप्त हो गया । कई अन्य प्रान्तो म यद्यपि स्वराज्यदल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ तदपि वह सबसे बडा दल रहा ।

(२) कायक्रम मे सफलताए

स्वराज्य दल को अपने कायक्रम म काफी सफलता मिली । मध्यप्रदेश और बगाल म स्वराज्यवादियो न द्वैध शासन को निष्क्रिय बना दिया । इन प्रान्तो म मन्त्रिमण्डल का निर्माण असम्भव हो गया । क्योकि स्वराज्य दल जिसे स्पष्ट बहुमत प्राप्त था न तो स्वय सरकार का निर्माण करना चाहता था और न ही दूसरे दलों को मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने देना चाहता था । स्वराज्यवादी न केवल

राज्यों में ही अपितु केन्द्र में भी सरकार के कार्यों को किसी हद तक प्रभावित करने में समर्थ हुए। केन्द्रीय विधानमण्डल के १४५ स्थानों में से स्वराज्यवादियों को केवल ४५ स्थान ही प्राप्त हुए थे। परन्तु मोतीलाल नेहरू ने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण कुछ राष्ट्रवादियों और निर्दलीय सदस्यों को अपने साथ मिलाने में सफलता हासिल की जिसके कारण उनकी संयुक्त शक्ति सरकारी कार्यों में कारगर ढंग से अड़ंगा डालने में समर्थ हो गयी। उन्होंने सरकार को पराजित भी किया जिससे सरकार की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। स्वराज्यवादियों को केन्द्रीय विधानसभा में एक महत्त्वपूर्ण सफलता ८ फरवरी १९२४ ई० को हासिल हुई जब कि पंडित मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव पर उन्हें सफलता मिली। यह प्रस्ताव इस प्रकार था

यह सभा गवर्नर जनरल से यह आग्रह करती है कि भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना करने के उद्देश्य से १९१९ ई० के भारत सरकार अधिनियम को संशोधित करवाने के लिए प्रथम पग उठाए जाएं और इसके लिए (क) भारत के समस्त प्रतिनिधियों की एक गोलमेज-परिषद् का आयोजन किया जाए जो देश के महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के अधिकारों और हितों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए भारत के लिए एक विधान का निर्माण करे तथा (ख) वर्तमान केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा को भंग करके नवनिर्मित व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख यह योजना (विधान) प्रस्तुत की जाए जो कानून बनाने के लिए ब्रिटिश संसद के सम्मुख रखी जाए।

इस प्रस्ताव का ही परिणाम था कि भारत सरकार ने सर अलेक्जेण्डर की अध्यक्षता में एक सुधार जांच समिति की स्थापना की जिसका उद्देश्य माण्टफोर्ड सुधारों की आलोचनात्मक समीक्षा करना था।

स्वराज्य दल ने सन् १९१९ के सुधारों में ठोस परिवर्तन करवाने के लिए हर सम्भव प्रयास किया। जब सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया तो उसके नेताओं ने कड़ा रुख अपनाया। उन्होंने केन्द्रीय विधानमण्डल की बैठकों में १९२४-२५ १९२५-२६ और १९२६-२७ की मांगों को अस्वीकार कर दिया तब गवर्नर जनरल को अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग करना पड़ा था। सरकार के कड़े विरोध के बावजूद सन् १९१८ के दमनकारी कानूनों के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किए गए। राजनीतिक नेताओं की रिहाई के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पारित किए गए। कई अन्य मामलों पर भी सरकार को हार खानी पड़ी। सरकारी समारोहों और उत्सवों के निमन्त्रण भी स्वीकार नहीं किए गए।

स्वराज्य दल के पतन के कारण

स्वराज्य दल अधिक समय तक गतिशील नहीं रह सका और दल २ वर्ष कमजोर होता गया और अन्त में समाप्त ही हो गया। स्वराज्य दल के पतन के लिए निम्न तत्त्व उत्तरदायी हैं—

(१) नेतृत्व का संकट

श्री चित्तरंजन दास स्वराज्य दल के संस्थापक तथा उसके प्रमुख नेता रहे। सन् १९२५ में उनकी मृत्यु के बाद दल लड़खड़ा गया क्योंकि देशबन्धु का व्यक्तित्व ही दल की आत्मा था जिससे अब दल वंचित हो गया था।

(२) असहयोग से तुष्टि का मार्ग

प्रारम्भ में स्वराज्य दल ने सरकार के कार्यों में पग-पग पर बाधा डालने की नीति को अपनाया परन्तु वह अधिक समय नहीं रही। सन् १९२५ के फरीदपुर सम्मेलन में स्वराज्यवादियों ने सरकार के साथ उचित शर्तों के आधार पर सहयोग करने का प्रस्ताव रखा और देशबन्धु की मृत्यु के बाद तो यह सहयोग की नीति तुष्टिकरण की भावना चरम सीमा को भी पार कर गई जिससे स्वराज्य दल के स्वरूप में पूर्ण रूप से परिवर्तन आ गया और स्वराज्य दल कमजोर हो गया।

(३) कांग्रेस की आंतरिक घटनाओं का प्रभाव

स्वराज्य दल के अतिरिक्त कुछ नेताओं ने कांग्रेस के अन्दर ही अन्दर एक स्वतन्त्र दल की स्थापना की। इसके नेता पं० मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय थे। इस दल ने हिन्दुत्व का नारा लगाया। इसके फलस्वरूप स्वराज्यवादियों की संख्या तेजी से घटने लगी।

(४) सच्चे कार्यकर्ताओं और नेताओं की कमी

देशबन्धु की मृत्यु के बाद कार्यकर्ताओं के आपसी मतभेदों की मोहपूर्ण भावनाएं जाग्रत हो गईं। अब न तो वे नेता ही रहे जो सामूहिक स्वार्थों के सम्मुख आदर्श उपस्थित करने की क्षमता रखते थे और न वे कार्यकर्ता ही रहे जो अपने कर्त्तव्यों में प्रवृत्त होकर दल के लिए जान की बाजी लगा दें। दल के नेताओं ने सरकार को खुश करने और अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपने आदर्शों को तिलांजलि दे दी। सन् १९२७ में कुछ प्रमुख स्वराज्यवादियों को इस्पात सुरक्षा समिति में स्थान दिया गया। १९२८ ई० में मोतीलाल नेहरू ने स्कीन समिति की सदस्यता स्वीकार की थी। वी० जे० पटेल केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष चुने गए और एस० बी० ताम्बे को जो मध्यप्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष थे, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में स्थान दे दिया गया। इन परिवर्तनों ने स्वराज्य दल की शक्ति को कमजोर बना दिया।

(५) १९२६ का निर्वाचन

१९२६ ई० के निर्वाचनों में स्वराज्य दल को सन् १९२३ की तुलना में काफी कम स्थान मिले जिसके कारण स्वराज्य दल का महत्त्व घट गया।

मूल्यांकन

स्वराज्यवादियों की सफलताओं और असफलताओं का अवलोकन करने के बाद कुछ तथ्य सामने आते हैं जिन पर भिन्न २ विद्वानों ने भिन्न २ विचार व्यक्त

किए हैं। आलोचकों का यह विचार है कि अड़गा या बाधा नीति अव्यावहारिक तर्कहीन और अवास्तविक थी। दल की नीति इतनी अव्यावहारिक थी कि उसके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव था। विपिनचन्द्रपाल जैसे क्रान्तिकारियों तथा जोसफ बतिस्टा जैसे स्वतन्त्र सदस्यों का मत था कि बाधा-नीति निरर्थक है। उग्रवादी भी इसके विरुद्ध थे और उन्होंने इस नीति को बेकार और अर्थशून्य बताया। अब प्रश्न यह उठता है कि स्वराज्यवादियों ने आखिर इस नीति को क्या अपनाया? इस तथ्य पर टिप्पणी करते हुए प्रो. जकारिया ने बहुत स्पष्ट लिखा है

यह मानना पड़ेगा कि स्वराज्य-पार्टी का विचार वास्तविकता से बहुत दूर था। स्वराज्यवादियों की स्थिति उन व्यक्तियों सी थी जो अपनी रोटी को खाना भी चाहते हों और उसे बचाना भी। उन्हें जनता में अपनी प्रसिद्धि बनाए रखने के लिए गरम-गरम बातें करना आवश्यक हो गया था। फिर भी वे अपने को संसदवाद के सरल कार्यों तक ही सीमित रखना चाहते थे। परिणामतः जिस मार्ग का उन्होंने अनुसरण किया उसमें सहयोग का भय था असहयोग।

इस प्रकार स्वराज्यवादियों की नीतियों से सरकार की गति बन्द नहीं हुई और न ही स्वराज्य एकदम प्राप्त हुआ।

अगर हम बाधा-नीति को अव्यावहारिक मानकर स्वराज्यवादियों की उपलब्धियों को नजरअन्दाज करते हैं तो यह व्यावहारिक और यथार्थ सत्य नहीं होगा। स्वराज्यवादियों ने अपनी गतिविधियों को उस समय शुरू किया था जिस समय असहयोग आन्दोलन की विफलता के कारण सारे देश में निराशा और बेचैनी छाई हुई थी और जनता गांधीजी के इस मार्ग का पुनः अनुसरण करने को तैयार नहीं था। उस समय में स्वराज्यवादियों ने सरकारी दमन चक्र की परवाह नहीं करके जिस उत्साह और भावना से जन अधिकारों की रक्षा की वकालत की उससे देश में एकबार पुनः आशा का संचार हुआ। स्वराज्यवादियों ने अपने प्रखर विरोध के कारण सरकार को एकबार अपनी नीतियों का पुनरावलोकन करने को बाध्य-सा कर दिया। इस प्रकार स्वराज्यवादियों के कार्यों को किसी भी तरह कम नहीं आंका जा सकता। उन्होंने द्वैधशासन प्रणाली को असफल बनाया और मुडीमैन सुधार-समिति की स्थापना को अवश्यम्भावी बना दिया। स्वराज्यवादियों ने अपना कार्य जिन परिस्थितियों में आरम्भ किया उसके कारण उन्हें अपनी नीतियों को व्यावहारिकता के धरातल से दूर करना था। इसलिए बाधा-नीति या अड़गा-नीति के लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह तो उनके विचार-दर्शन का एक अभिन्न अंग था। फिर भी उन्होंने सरकार को जन भावनाओं का आदर करने के लिए मजबूर कर दिया। यह एक महान् सफलता थी जिसे किसी भी कदर कम नहीं आंका जा सकता। स्वराज्य दल ने राष्ट्र के निराशा पूर्ण वातावरण में अपने कार्यों से एकबार पुनः उत्साह की वेगवती धारा प्रवाहित कर दी। सच तो यह है कि देश की परिस्थितियों ने सभी विचारशील नेताओं और कार्यकर्ताओं को थोड़े वक्त परिवर्तन के पक्ष में विचार प्रकट करने को बाध्य कर दिया और यही काम स्वराज्यवादियों ने किया

१७

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पूर्व के वर्षों की राजनीति

प्रवेश

वतमान शताब्दी के तृतीय दशक में देश में साम्प्रदायिकता का रूप निरन्तर बढा। हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयास निरन्तर किए गए परन्तु इन्हें अधिक सफलता नही मिली। कांग्रेस और लीग के मार्ग दिन दिन अधिक पृथक होते गए। १९२६ ई तक विधानमंडलो के भीतर असहयोग करके नौकरशाही शासन को छिन्न भिन्न करने के स्वराज्यवादी कांग्रेस के नेताओं का कार्यक्रम भी असफल हो चुका था। राष्ट्रीय आन्दोलन जनता तक पहुँच चुका था इसे मातृभूमि और हल जानने वाले कृषक वर्गो से अधिक शक्ति मिलना प्रारम्भ हो गया था। गांधीजी जो १९२५ ई में एक वर्ष के लिए राजनैतिक मौन और निष्क्रियता का व्रत लेकर राजनीति से दूर चले गए थे राष्ट्रीय मोर्चे पर पुन आ खडे हुए थे। सुभाषचन्द्र बोस एवं जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेसी युवावर्ग किसी भी कीमत पर अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए बेताब हो रहा था। १९२५ ई से ही ब्रिटिशी सरकार ने भी देश में शासन सुधार के संबंध में विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। पहले मुडीमैन एवं बाद में २६ नवम्बर १९२७ ई को साइमन कमीशन की नियुक्ति सुधारों के सम्बन्ध में सुझाव देने हेतु की गयी। साइमन कमीशन की नियुक्ति ने भारतीय जनमानस को विरोधी बना दिया। अंग्रेजों की चुनौती के फलस्वरूप नेहरू प्रतिवेदन और उस पर प्रतिक्रियास्वरूप जिन्ना की शर्तों का जन्म हुआ। राष्ट्रीय संवैधानिक सुधार के क्षेत्र में जीवन की पुन हलचल प्रारम्भ हुई। लार्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर १९२९ ई को भारत को औपनिवेशिक दर्जा प्रदान करने के सम्बन्ध में एक घोषणा की। दिसम्बर १९२९ ई में कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव स्वीकृत कर देश की राजनीति को नया मोड प्रदान किया। हम यहाँ संक्षेप में उक्त वर्णित राजनैतिक एवं संवैधानिक महत्त्व की घटनाओं का वर्णन करेंगे।

(१) साम्प्रदायिक विद्वेष का विकास

सन् १९१६ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में जो मधुर एकता स्थापित हुई वह लगभग ६ वर्षों तक बनी रही। इस अवधि में दोनों दलों ने एक दूसरे से सहयोग किया। दोनों ने गृहशासन आन्दोलन को कुचलने के बंगाल और मद्रास

सरकारों के प्रयासों की निन्दा की। भारत को स्वशासित प्रदेश घोषित करने का ब्रिटिश सरकार से अनुरोध किया। माण्टेग्यू से भेंट कर दोनों ने संयुक्त रूप से निर्मित सुधार योजना को स्वीकृत करने की माँग की। पंजाब हत्याकाण्ड का विरोध करने खिलाफत और असहयोग आन्दोलन को चलाने में दोनों दलों ने एक दूसरे से सहयोग किया। हिन्दुओं ने खिलाफत आन्दोलन और मुसलमानों ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। 'हिन्दू-मुसलमान भाई भाई', 'हिन्दू मुसलमान एकता की जय' आदि के नारे गगन में गूँजने लगे। आर्यसमाज के स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जामा मस्जिद की सीढ़ियों से हिन्दू और मुसलमानों के विराट समूह को देश की एकता का सन्देश दिया।

मुस्लिम लीग और कांग्रेस का यह एकता समन्वय आन्दोलन के पश्चात् अधिक समय तक कायम नहीं रह सकी तथा भारत के दोनों सम्प्रदायों हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध बढ़ने लगा। दोनों सम्प्रदायों में विरोध बढ़ने का कारण मुस्लिम लीग की स्वार्थपूर्ण नीति थी। लीग ने लखनऊ समझौते को किसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर स्वीकार नहीं किया था। इस समझौते की स्वीकृति और पालन में मुस्लिम लीग का अपना हित पूर्ण होता हुआ दृष्टिगत हो रहा था। लीग ने [illegible] वर्षों तक इसीलिए इस समझौते का पालन किया था। असहयोग आन्दोलन में भी लीग ने इसलिए सहयोग किया था कि उसे खिलाफत आन्दोलन हेतु कांग्रेस के सहयोग की आवश्यकता थी। मुसलमानों का एक वर्ग लखनऊ समझौते का विरोधी था। वह वर्ग खिलाफत आन्दोलन में हिन्दू नेता गांधी के नेतृत्व का भी विरोधी था। इस वर्ग को भय था कि गांधी का नेतृत्व मुसलमानों के भिन्न अस्तित्व को समाप्त कर देगा। खिलाफत एवं असहयोग आन्दोलन-काल में मुसलमान यह भी अनुभव करते थे कि इस एकता से उनके अपने स्वार्थ पूरे नहीं हो रहे हैं। इससे भी हिन्दू मुसलमान एकता को आघात पहुँचा। सन् १९२१ के अगस्त सितम्बर माह [illegible] मालाबार के मोपला ने असंख्य हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया। हिन्दू स्त्रियों का शीलभंग किया तथा इन पर अनेक अत्याचार किये। सरकार ने इन अत्याचारों के प्रति लिखित विवरण प्रकाशित कराए फलस्वरूप देश में तनाव पैदा हुआ। मुलतान में भी मुसलमानों ने अनेक हिन्दुओं को मार डाला उनकी सम्पत्ति लूट ली या नष्ट कर दी। सहारनपुर में भी ऐसी ही घटनाएं घटित हुईं। कोहाट में ९ एवं १० सितम्बर को बीस हजार व्यक्तियों पर अत्याचार किए गए। एक धर्मान्ध मुसलमान ने आर्यसमाज के स्वामी श्रद्धानन्द जी रोगी शय्या पर हत्या कर दी और कुछ अन्य आर्यसमाज के नेताओं की भी हत्या कर दी गयी।

मुसलमानों द्वारा किए जा रहे ऐसे कार्यों से हिन्दू जनता तिलमिला उठी। हिन्दू महासभा की स्थापना १९१८ ई. में हो गयी थी किन्तु अपने शैशव-काल में यह संस्था जनता को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी और इस संस्था का प्रभाव कुछ हिन्दुओं तक ही सीमित रहा। खिलाफत आन्दोलन असहयोग आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन और मोपला के अत्याचारों ने हिन्दुओं में जागृति पैदा कर दी

तथा वे अनेकवार संकट में अवरुद्ध हो गए। कुछ प्रभावशाली हिन्दू नेता यथा मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, डॉ. मुंजे और स्वामी श्रद्धानन्द राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रम एवं नीतियों से असन्तुष्ट और दुःखी थे। कांग्रेस का नारा स्वराज्य के लिए हिन्दू मुस्लिम एकता आवश्यक है उन्हें पसन्द नहीं था। गांधीजी का कार्यक्रम उन्हें अव्यावहारिक लगता था। उनकी यह धारणा थी कि ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने की नीति असहयोग करने की नीति से अच्छी है। हिन्दू महासभा यद्यपि हिन्दू मुसलमान एकता में विश्वास रखती थी परन्तु यह स्वीकार करने को तैयार नहीं थी कि स्वराज्य बिना सहयोग के प्राप्त नहीं किया जा सकता। मालवीय जी एवं लाजपतराय की यह निश्चित धारणा थी कि मुसलमान असहयोग आन्दोलन में स्वार्थवश सहयोग कर रहे हैं (खिलाफत आन्दोलन में सहयोग प्राप्त करने के लिए) और ज्यों ही उनका उद्देश्य पूर्ण हो जाएगा वे देश की राजनीति में पुनः साम्प्रदायिकता फैलाना प्रारम्भ कर देंगे। मतभेद गहरे होने से मालवीयजी एवं लाला लाजपतराय ने कांग्रेस छोड़ दी तथा डॉ. मुंजे और स्वामी श्रद्धानन्दजी के साथ मिलकर हिन्दू पुनरुत्थान का काम प्रारम्भ कर दिया।

देश में हिन्दू एकता का नारा बुलन्द किया गया। इसका आधार संगठन शुद्धि और अछूतोद्धार था। सारे देश में हिन्दू सभाओं की शाखाएं स्थापित की गयीं। हिन्दू एकता का प्रचार करने के लिए अंग्रेजी हिन्दी एवं उर्दू भाषा में दैनिक पत्रों का प्रकाशन आरम्भ किया गया। अनेक संगठन यथा अखिल भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, दयानन्द दलितोद्धार मिशन, दलितोद्धार सभा, हिन्दू अनाथ आश्रम और अखिल भारतीय क्षत्रिय-सभा अस्तित्व में आ गये। अहिन्दुओं को हिन्दू धर्म में दीक्षित करने का कार्यक्रम तेजी से चलाया जाने लगा। हिन्दुओं के संगठन और शुद्धि आन्दोलन के प्रत्युत्तर के रूप में डॉ. किचलू ने सन् १९२४ में अमृतसर में तन्जीम और तबलीग आन्दोलन प्रारम्भ किया। मुसलमानों की प्रतिक्रियावादी नीतियों ने हिन्दुओं में प्रतिक्रियाओं का प्रसार किया। सन् १९२५ में विजयादशमी के दिन डॉ. हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल का निर्माण किया जिसका उद्देश्य हिन्दू धर्म, जाति और संस्कृति की रक्षा करना रखा गया। इसकी शाखाएं सारे भारतवर्ष में स्थापित की गयीं। १९२६ में गुजरात में राष्ट्रवाद की भावना फैलाने के लिए लाहौर में डाक्टर मोंग दी कि 'गृह' नामक संगठन की स्थापना की गयी। संक्षेप में असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद के वर्षों में देश में विभिन्न नामों से हिन्दू एवं मुसलमानों में राष्ट्रवाद की भावना फैलाने वाले अनेक प्रतिक्रियावादी एवं विघटनकारी संगठन स्थापित किए गए। फलस्वरूप देश में साम्प्रदायिकता का जहर तेजी से फैलने लगा।

देश में एक ओर साम्प्रदायिकता का जोर बढ़ रहा था तो दूसरी ओर कांग्रेस और लीग की मधुर एकता का भी अन्त होना प्रारम्भ हो गया था तथा दोनों संगठन एक दूसरे से दूर होते चले जा रहे थे। मि. जिन्ना ने सन् १९२० में

गांधीजी के कार्यक्रम में विश्वास न होने से कांग्रेस को त्याग दिया था। सन् १९२१ में मि॰ जिन्ना ने लीग का नेतृत्व ग्रहण कर लिया तथा असन्तोष और प्रतिक्रियावादी नीति का वरण किया। फलस्वरूप मि॰ जिन्ना की मुस्लिम लीग और महात्मा गांधी की कांग्रेस में विरोध की खाई बढ़ने लगी।

हिन्दू मुसलमानों के मध्य बढ़ते हुए तनाव और साम्प्रदायिक दंगों ने गांधीजी को काफी चिन्तित कर दिया। उन्होंने यह अनुभव किया कि इस बुराई को जड़ से ही नष्ट कर दिया जाना चाहिए और यदि यह सम्भव नहीं हुआ तो यह देश के लिए अत्यन्त हानिप्रद होगा। हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य बढ़ रही दरार को पाटने के उद्देश्य से गांधीजी ने १८ सितम्बर, १९२४ ई॰ को २१ दिनों का उपवास-व्रत प्रारम्भ किया। गांधीजी को उपवास-व्रत से विरत करने की दृष्टि से दिल्ली में एकता अधिवेशन आमंत्रित किया गया। यह एकता अधिवेशन १२ दिन चला। श्रीमती बिसेन्ट, शौकत अली, हकीम अजमल खान, स्वामी श्रद्धानन्द, मोतीलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय आदि स्वयं सम्मिलित हुए। गांधीजी अपने व्रत पर कायम रहे। हिन्दू-मुसलमानों में सद्भाव स्थापित करने के प्रयत्न सक्रिय कर दिए गए। नवम्बर में कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना मोहम्मदअली ने बम्बई में सर्वदल अधिवेशन आमंत्रित किया। अधिवेशन ने स्वराज्य का संविधान बनाने और साम्प्रदायिक हल निकालने हेतु एक समस्या की एक समिति का निर्माण किया गया। इस समिति को अपना प्रतिवेदन ३१ मार्च १९२५ ई॰ के पूर्व देने को कहा गया। इस अधिवेशन में हिन्दू-मुसलमान एकता को बढ़ावा देने के लिए कुछ आधारभूत सूत्र भी स्वीकृत किए गए। दोनों सम्प्रदायों के नेताओं के प्रयासों के फलस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे कुछ समय के लिए बन्द हो गए। मुस्लिम लीग ने सन् १९२४ के अपने अधिवेशन में भाग लेने के लिए श्री मोतीलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल एवं श्रीमती बिसेन्ट को आमंत्रित किया। लीग की नीतियों में नया मोड़ दृष्टिगोचर होने लगा। लीग के दृष्टिकोण में अन्तर आने का मुख्य कारण पुनः मुसलमानों की अपना स्वार्थी दृष्टिकोण था। मुसलमान नेता यह अनुभव करने लगे थे कि सुधारों का दौर प्रारम्भ होने वाला है। फरवरी १९२४ ई॰ में मोतीलाल नेहरू ने केन्द्रीय विधानसभा में देश में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के लिए संविधान बनाने हेतु एक गोलमेज-सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव रखा था। सरकार की ओर से सर मैलकम हेली ने यह आश्वासन दिया था कि सरकार सन् १९१९ के सुधारों में निहित दोषों की जाँच करायेगी और नए सुधारों के लिए सुझाव देने के लिए एक समिति गठित करेगी। सरकार ने शीघ्र श्री मडीमैन के नेतृत्व में एक समिति गठित करदी। सन् १९२५ के प्रारम्भ में वायसराय ब्रिटिश सरकार से परामर्श करने के लिए ब्रिटेन गये। भारत में यह आशाएं बलवती होने लगीं कि सरकार शीघ्र कुछ सुधार करने वाली है। मार्च में मडीमैन समिति का सुधारों के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रकाशित हो गया। मडीमैन-समिति के सुझाव बड़े निराशाजनक थे। दोनों सम्प्रदायों में पुनः तनाव बढ़ने लगा। जुलाई १९२४ ई॰ में इलाहाबाद, कलकत्ता, दिल्ली आदि

शहरों में साम्प्रदायिक दंगे हुए। सन् १६२६ में कुल मिलाकर तीस साम्प्रदायिक दंगे हुए तथा स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या हुई। फलस्वरूप देश में साम्प्रदायिक द्वेष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

कांग्रेस के दिसम्बर १६२६ के गोहाटी अधिवेशन में कांग्रेस कार्यसमिति से हिन्दू मुसलमान नेताओं से मिलकर साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने का प्रयास करने का आग्रह किया गया तथा तत्य किए गए प्रयासों के सम्बन्ध में एक प्रतिवेदन ३१ मार्च १६२७ ई० तक प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया। कांग्रेस अध्यक्ष श्री श्रीनिवास आयंगर ने शीघ्र ही हिन्दू मुसलमान नेताओं से बातचीत प्रारम्भ की। श्री मदनमोहन मालवीय ने संयुक्त निर्वाचन का प्रस्ताव रखा। मि० जिन्ना ने इसका स्वागत किया। श्री जिन्ना संयुक्त निर्वाचन के प्रस्ताव को स्वीकृत करने के लिए सहमत हो गए किन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ शर्तें रखीं। शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) सिन्ध को पृथक प्रान्त बनाया जाए।

(२) उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त एवं बलूच प्रान्त को अन्य प्रान्तों के समकक्ष दर्जा प्रदान किया जाए।

(३) पंजाब और बंगाल में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व उनकी संख्या के अनुपात में रहे और

(४) केन्द्र में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक तिहाई से कम नहीं हो।

कांग्रेसी नेता हिन्दू मुसलमान एकता के लिए अत्यन्त व्यग्र एवं उत्सुक थे अतः कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में कांग्रेस कार्यकारिणी ने मि० जिन्ना की उक्त शर्तें स्वीकार करलीं। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि दोनों सम्प्रदायों में आपस में मेल हो गया है परन्तु मुस्लिम लीग की पंजाब शाखा ने शीघ्र ही लीग की उक्त चारों शर्तों की आलोचना प्रारम्भ कर दी और इसके फलस्वरूप एकता के प्रयासों को भयंकर आघात पहुँचाया। सन् १६२७ के ग्रीष्म-काल में बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, मध्य प्रान्त आदि में भयंकर दंगे हुए जिनमें असंख्य व्यक्ति मारे गये।

इसी समय जब हिन्दू-मुसलमान नेता दोनों सम्प्रदायों में एकता के प्रयास में जुटे हुए थे, अंग्रेज-सरकार भारत में सुधार करने के सम्बन्ध में विचार कर रही थी। मुडीमैन समिति का प्रतिवेदन सितम्बर १६२५ ई० में केन्द्रीय विधानमण्डल के सम्मुख विचारार्थ रखा गया। श्री मोतीलाल नेहरू ने भारत को उपनिवेश का दर्जा प्रदान करने और गोलमेज अधिवेशन की राष्ट्रीय माँग केन्द्रीय विधानमण्डल के सामने रखी। वायसराय लॉर्ड रीडिंग ने इस माँग से असहमति प्रकट की फलस्वरूप उनके कार्यकाल में इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं हो सका। लॉर्ड रीडिंग के स्थान पर लॉर्ड इरविन अप्रैल १६२६ ई० में वायसराय नियुक्त हुए। भारत में घटित साम्प्रदायिक दंगों से उन्हें काफी आघात लगा। लॉर्ड इरविन एक उदारचेता धार्मिक निष्ठावान व्यक्ति थे तथा वे गांधीजी के विचारों से भी प्रभावित थे। अतः उन्होंने यह अनुभव किया कि नये संविधान का निर्माण और हिन्दू मुसलमान सहयोग दोनों ही आवश्यक हैं। उन्होंने २६ अगस्त १६२७ ई० को केन्द्रीय विधानमण्डल में भाषण

देते समय दोनों सम्प्रदायों से हत्याकांड को त्यागकर सहयाग से काय करने का आग्रह किया। मौलाना शौकत अली ने वायसराय की भावनाओं का आदर करते हुए शिमला में दोना जातियो के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। यह सम्मेलन १६ सितम्बर से २२ सितम्बर तक चला परन्तु बिना किसी निणय और समझौते के समाप्त हो गया। काग्रेस अध्यक्ष श्री श्रीनिवास आयंगर ने पहल कर कलकत्ता मे पुन २७ अक्तूबर को एकता सम्मेलन आमन्त्रित किया। इस एकता सम्मेलन म एक प्रस्ताव स्वीकृत कर हिन्दू मुसलमानो के आचरण के वास्ते कुछ सिद्धान्त निर्धारित किए गए। परिणामस्वरूप मित्रता की भावना पुन पदा हो गयी जो अधिक समय तक कायम न रह सकी। नवम्बर १९२७ ई मे ब्रिटिश सरकार ने सुधारों पर विचार करने के लिए एक कमीशन की स्थापना की जो साइमन कमीशन के नाम स विख्यात है।

(२) साइमन कमीशन की नियुक्ति

कमीशन के जीवन तत्व १९१९ ई के अधिनियम म ही प्रतिष्ठित होने थे। इस अधिनियम मे यह प्रावधान किया गया था कि दस वष के पश्चात् एक कमीशन की नियुक्ति की जाएगी जो मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार-अधिनियम के अन्तगत स्थापित व्यवस्था का निरीक्षण करेगा और इस बात का पता लगायेगा कि उत्तरदायी सरकार की प्राप्ति के लक्ष्य के लिए भारतवष म किस सीमा तक और सुधार किये जाए। निश्चित प्रणाली न था। इस कमीशन की नियुक्ति सन् १९३१ में होनी थी (सन् १९१९ के सुधार अधिनियम का प्रारम्भ सन् १९२१ मे हुआ था) परन्तु ब्रिटिश सरकार ने निम्न कारणो से चार वष पूर्व ही उसकी नियुक्ति कर दी —

१ भय और अविश्वास की भावना

कुछ लेखकों का विचार है कि उस समय इंगलैण्ड म ससद क चुनाव होने वाले थे और उसमे मजदूर दल की विजय निश्चित थी। टोरी दल की इच्छा थी कि कमीशन की नियुक्ति का काय मजदूर दल पर न छोड़ा जाय क्योंकि यह सम्भव था कि मजदूर दल भारत की स्वराज्य की मांगों को पूर्णरूप स स्वीकार कर लेगा। परन्तु यह कथन कवल आंशिक रूप स ही सत्यतापूर्ण एव निर्णयात्मक प्रतीत होता है।

३ राष्ट्रीय आन्दोलन की धधकती आग

वास्तव म इस कमीशन की नियुक्ति का मुख्य कारण राष्ट्रीय आन्दोलन का बढ़ता हुआ प्रभाव था। यह कहना अनुचित न होगा कि कमीशन की नियुक्ति वधानिक प्रगति के साथ साथ दमन की नीति के आधार पर हुई थी। जिस प्रकार मार्ले मिन्टो सुधार अधिनियम बगाल विभाजन के घाव को पूरने के लिए प्रदान किया गया था उसी प्रकार इस कमीशन की नियुक्ति का लक्ष्य था जलियांवाला बाग के कारण नष्ट हुई भारतीयो की सद्भावना और सहानुभूति

पुनः प्राप्त करना।

साइमन कमीशन का बहिष्कार

साइमन कमीशन के सारे सदस्य अंग्रेज थे। भारत सचिव लार्ड बर्कनहेड को पहले ही बताया गया था कि कमीशन के सारे अंग्रेज होने के कारण भारत में इसका विरोध किया जाएगा परन्तु उन्हें इस बात की कोई चिन्ता न थी। उन्होंने यह कहा कि कमीशन में भारतीयों को लेना सम्भव नहीं है क्योंकि इसे ब्रिटिश संसद को संवैधानिक सुधारों के बारे में प्रतिवेदन देना था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार ने यह भी तर्क दिया कि भारत में अनेक दल हैं। यदि किसी एक दल के प्रतिनिधियों को इसमें सम्मिलित किया जाता है तो दूसरे दल इसका विरोध करेंगे और यदि प्रत्येक दल के सदस्यों को कमीशन में शामिल कर लिया जाता है तो इसकी सदस्य संख्या बहुत हो जाएगी। परन्तु वास्तविकता यह थी कि ब्रिटिश सरकार १९१९ ई० के अधिनियम के [illegible] के अनुसार भारतीयों की संवैधानिक प्रगति की जाँच का प्रत्येक बात अपने हाथ में ही रखना चाहती थी।

कमीशन में चूँकि किसी भारतीय को नहीं लिया गया अतः भारतीयों ने इसे अपमानजनक समझा। सभी दलों ने इसके बहिष्कार का निश्चय किया। ७ फरवरी १९२८ ई० को कमीशन के बम्बई पहुँचने पर इसके विरुद्ध प्रदर्शन हुए। देश में जहाँ भी कमीशन गया वहाँ काले झंडों, हड़तालों और प्रदर्शनों से इसका स्वागत किया गया। साइमन वापस जाओ के नारे लगाए गए। जब कमीशन लाहौर पहुँचा तो इसके विरुद्ध लाला लाजपतराय के नेतृत्व में बड़ा भारी जुलूस निकाला गया। पुलिस अधिकारी सांडर्स ने लाला लाजपतराय पर लाठी से सख्त प्रहार किए फलतः लालाजी को सख्त चोटें आयीं और कुछ दिनों बाद उनका देहान्त हो गया। इससे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर वज्रपात हुआ। इससे सरदार भगतसिंह और अन्य क्रान्तिकारियों को बहुत क्रोध आया और उन्होंने इसे राष्ट्रीय अपमान समझा। भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद ने मिस्टर सांडर्स की हत्या कर दी। जब कमीशन लखनऊ पहुँचा तो पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त और जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में प्रदर्शन हुए। वहाँ भी पुलिस ने अनेक अत्याचार किए। इस प्रकार हम देखते हैं कि साइमन-कमीशन की नियुक्ति भारतीयों के गले नहीं उतरी और अंग्रेजों के प्रति जो घृणा की भावना थी वह साइमन कमीशन के विरोध स्वरूप प्रकट हुई।

साइमन-प्रतिवेदन

कड़े विरोध के बावजूद कमीशन ने शासन प्रणाली की व्यवस्था, शिक्षा के विकास और ब्रिटिश भारत में प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं की प्रगति का निरीक्षण करने का और यह बतलाने का कि किस सीमा तक उत्तरदायी सरकार को व्यापक रूप प्रदान करना, उसमें संशोधन करना अथवा प्रतिबन्ध लगाना उचित होगा ध्यान में रखकर एक प्रतिवेदन तैयार किया।

यह प्रतिवेदन १६ ई में प्रकाशित हुआ और इसके निम्न मुख्य उपबन्ध थे –

(१) दोहरे शासन की समाप्ति और प्रान्तीय स्वराज्य का प्रारम्भ

प्रान्तों में सन् १६१६ के अधिनियम के अनुसार शुरू किया हुआ दोहरा शासन अनेक दोषों और साम्प्रदायिक विग्रह के कारण सफल नहीं हो सका था अतः इसको समाप्त करके प्रान्तों को स्वायत्तता दी जाए सारा प्रान्तीय शासन मन्त्रियों को सौंप दिया जाए प्रान्तों में गवर्नरों को विशेष शक्तियाँ प्रदान की जाएँ ताकि वे विशेष परिस्थितियों में मन्त्रियों की सलाह की उपेक्षा भी कर सकें और अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकें।

(२) गवर्नर और गवर्नर जनरल को विशेष शक्तियों के सम्बन्ध में

कमीशन ने सिफारिश की कि प्रान्तों और केन्द्र में अल्पमतों के हितों की रक्षा के लिए गवर्नर और गवर्नर जनरल को विशेष शक्तियाँ दी जाएँ। प्रान्तों और केन्द्र में शासन ठीक से चलाने के लिए भी गवर्नरों और गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार दिए जाएं। गवर्नर को यह भी अधिकार दिया जाए कि वह अपने मन्त्रिमंडल में एक या अधिक अनुभवी सरकारी अधिकारी सम्मिलित कर सके। मन्त्रियों को गवर्नर या गवर्नर जनरल के प्रति जिम्मेदार न बनाया जाए बल्कि प्रान्तीय विधानमण्डल के प्रति ही जिम्मेदार बनाया जाए।

(३) मताधिकार का विस्तार

१६२६ ई में भारत की कुल २.८ प्रतिशत आबादी को मताधिकार प्राप्त था। इसलिए कमीशन ने मताधिकार के विस्तार के लिए सिफारिश की और कहा कि कम से कम १ या १५ प्रतिशत आबादी को मत देने का अधिकार होना चाहिए। उन्होंने चुनाव में साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को कायम रखने का भी सुझाव दिया।

(४) केन्द्र में अनुत्तरदायी सरकार

कमीशन ने केन्द्रीय विधानमण्डल को केन्द्रीय सरकार पर नियन्त्रण करने की शक्ति न देने का सुझाव दिया। कमीशन ने शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता पर बल दिया। कमीशन ने स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया कि जब प्रतिरक्षा की समस्या ठीक तरह हल हो जाए इसके बाद ही केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के बारे में सोचा जाए।

(५) प्रान्तीय विधानमण्डलों का विस्तार

साइमन-कमीशन ने यह सिफारिश की कि प्रान्तीय विधानमण्डलों का विस्तार किया जाए और अधिक महत्त्वपूर्ण प्रान्तों में २ से लेकर २५ तक सदस्य शामिल किए जाएं। प्रान्तीय विधानमण्डलों में सरकारी अधिकारी बिल्कुल न रहें और नामजद गैर-सरकारी अधिकारियों की संख्या विधानमण्डल की समस्त संख्या के दसवें भाग से अधिक न हो। जिन प्रान्तों में मुसलमानों की संख्या थोड़ी हो वहां पर मुसलमानों को विधानमण्डलों में विशेष प्रतिनिधित्व दिए जाने की व्यवस्था हो।

(६) बृहत् भारत परिषद् की स्थापना की सिफारिश

भविष्य में संघ की संभावनाओं को ध्यान में रखकर कमीशन ने सिफारिश की कि भारत के लिए एक ऐसी परिषद् की स्थापना हो जिसमें ब्रिटिश प्रान्तों और देशी रियासतों के प्रतिनिधि शामिल हों और वे कुछ साझे मामलों पर विचार कर सकें। कमीशन ने कहा कि अभी ऐसा समय नहीं आया है कि देशी रियासतों और ब्रिटिश प्रान्तों का संघ स्थापित किया जा सके। यह तो भविष्य में ही संभव हो सकता है।

(७) केन्द्रीय विधानमंडल का पुनर्गठन

कमीशन ने संघीय आधार पर केन्द्रीय विधानमण्डल को दुबारा संगठित करने की सिफारिश की। केन्द्रीय विधानसभा में मानी संघ में शामिल होने वाले प्रान्तों के प्रतिनिधि शामिल हों। देशी रियासतों के प्रतिनिधि केवल उस समय ही शामिल हो सकते हैं जब वे संघ में मिलने को तैयार हों। राज्यसभा को संघीय आधार पर संगठित किया जाए। दोनों सदनों में अप्रत्यक्ष चुनाव के लिए भी कमीशन ने सिफारिश की।

(८) प्रान्तों के सम्बन्ध में

बर्मा को भारत से सिंध को बम्बई से पृथक कर दिया जाय। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त को प्रान्तीय स्वराज्य देने से इन्कार कर दिया गया।

(९) सेना के सम्बन्ध

कमीशन ने सेना के भारतीयकरण की आवश्यकता को भी अनुभव किया परन्तु यह कहा कि जब तक भारत अपनी रक्षा के लिए पूर्णरूप से तैयार नहीं हो जाता तबतक अंग्रेजी सेनाओं का भारत में रहना अनिवार्य है।

(१०) गृह सरकार

कमीशन ने सिफारिश की कि भारत-सचिव को परामर्श देने के लिए भारत परिषद् को कायम रखा जाए परन्तु इसकी शक्ति में कमी की जाए। नागरिक सेवाओं तथा पुलिस सेवा में भर्ती पहले की तरह ही की जाए।

(११) नया संविधान

हर दस वर्ष के बाद भारत की संवैधानिक प्रगति की जाँच पड़ताल पद्धति को छोड़ दिया जाए और नया संविधान इस लचीलेपन से तैयार किया जाए कि वह स्वयं ही विकसित हो सके।

इससे यह ज्ञात होता है कि ये सिफारिशें भारतीयों के असंतोष को कम करने के लिए की गयी थी।

प्रतिक्रिया

साइमन कमीशन के प्रतिवेदन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कूपलैंड ने प्रभावशाली शब्दों में लिखा था "मई सन् १९३० में प्रकाशित साइमन प्रतिवेदन द्वारा ब्रिटिश राजनीतिशास्त्र के पुस्तकालय में एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की वृद्धि हुई है।" साइमन कमीशन पर अपनी प्रतिक्रिया में सर तेजबहादुर सप्रू ने

भारतवर्ष के क्रोध को बड़े ही सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है "भारतीयों का बहिष्कार निश्चित रूप से भारतीयों का अपमान और तिरस्कार है क्योंकि यह बात केवल उन्हें निम्न स्तर पर ही नहीं रख देती बल्कि इससे भी अधिक दूषित बात यह है कि इसके द्वारा स्वयं अपने देश के विधान के निश्चित करने में उन्हें भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। एक अन्य विद्वान ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था "मैं रहूँ या डर में फाडकर फेंक देना चाहिए।" टाइम्स आफ इण्डिया के अनुसार "इसने कम से उत्तर दिया कि मुख्य तथा महत्वपूर्ण प्रश्न पर कोई ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में ठीक लिखा है "इसके अनुसार गवर्नर जनरल शाहजहाँ से अधिक शक्तिशाली और शाहआलम से भी अधिक अनुत्तरदायी बन गया होता।" मि. सी. एफ. एंड्रूज के मतानुसार "भारतीयों द्वारा साइमन कमीशन का बहिष्कार करना एक त्रुटिपूर्ण कदम था।" इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिवेदन पर मिश्रित प्रतिक्रियाएँ हुईं।

साइमन कमीशन के प्रतिवेदन का मूल्यांकन

साइमन कमीशन के प्रतिवेदन में अनेक कमियाँ थीं। प्रतिवेदन में अधिराज्य स्थिति या औपनिवेशिक स्वराज्य का कहीं जिक्र तक न था। केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए कुछ भी नहीं कहा गया था और प्रतिरक्षा विभाग भारतीयों के हाथ में नहीं सौंपा गया था। प्रान्तों को स्वराज्य या स्वायत्तता देने की सिफारिश की थी परन्तु उसको गवर्नर की विशेष शक्तियों द्वारा सीमित कर दिया गया था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि भारतीय इसका हृदय से स्वागत नहीं कर सके। मजी ने इसकी निन्दा की। एक इतिहासकार के अनुसार इस प्रतिवेदन का सबसे बड़ा दोष यह था कि "इसने अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन से सारे देश में पैदा हुए परिवर्तन तथा जनता की अभिलाषाओं की उपेक्षा की। इसने उस भारत को अपने सम्मुख रखा जो राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ होने के पहले था। राष्ट्रीय जागृति के परिणामस्वरूप उदीयमान युवक भारत का इसमें परिचय नहीं मिलता।"

महत्व

यद्यपि इस प्रतिवेदन को भारतीयों ने कोई महत्व नहीं दिया और ब्रिटिश मजदूर दल ने भी इसको महत्वहीन समझा तथापि १९३५ ई. के अधिनियम में इसकी बहुत सी अच्छी बातों को अपना लिया गया। सन् १९३५ में प्रान्तों को जो स्वराज्य प्रदान किया गया और अल्पमतों के हितों की रक्षार्थ गवर्नरों को जो विशेष शक्तियाँ प्रदान की गयीं उन सब का आधार यही प्रतिवेदन था। इस प्रतिवेदन द्वारा ब्रिटिश सरकार को यह पूर्ण रूप से विदित हो गया कि सन् १९१९ के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तों में चलाया हुआ दोहरा शासन बिल्कुल असफल हो गया है और भारतीयों को स्वशासन के मार्ग पर आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

(३) नेहरू-प्रतिवेदन

नेहरू प्रतिवेदन या निर्माता नेहरू-समिति वास्तव में साइमन कमीशन की जिस का अन्त बड़ा ही दुःखद हुआ था बड़ा सुखद परिणाम थी। तत्कालीन भारत सचिव

लॉर्ड बर्कनहेड के भारतीय राजनीतिज्ञों के सम्बन्ध में अच्छे विचार नहीं थे। वे यह मानते थे कि भारतवासी औपनिवेशिक स्वराज्य के योग्य नहीं हैं साम्प्रदायिक द्वेष की दरार पाटी नहीं जा सकती। २६ नवम्बर १९२७ ई० को साईमन कमीशन की नियुक्ति के बारे में बोलते समय लार्ड बर्कनहेड ने भारतीयों को ऐसा संविधान बनाने की चुनौती दी जिससे सभी भारतवासी सहमत हों। उन्होंने कहा कमीशन के बहिष्कार में कोई समझदारी नहीं है। क्योंकि भारतवासी स्वयं ऐसा कोई संविधान तैयार करने में असमर्थ हैं जिसे भारत के सभी दल स्वीकार करते हों। भारतीय नेताओं ने भारत सचिव की इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। उन्होंने भारतसचिव के षडयन्त्र को विफल करने का निश्चय कर लिया। लीग ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में एकता सम्मेलन के प्रस्ताव की रूप रेखा के आधार पर हिन्दू मुसलमान एकता का प्रस्ताव पारित किया। दिसम्बर १९२७ ई० की मद्रास कांग्रेस ने कांग्रेस कार्यसमिति को सर्वसम्मत संविधान तैयार करने हेतु एक अखिल भारतीय सम्मेलन आमन्त्रित करने का आदेश दिया। कांग्रेस कार्य समिति ने अनेक राजनीतिक दलों को आमन्त्रण भेजकर दिल्ली में फरवरी मार्च में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। इस सम्मेलन की कुल २५ बैठकें हुई परन्तु हिन्दू महासभा एवं लीग के रवैये के फलस्वरूप साम्प्रदायिक प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ भी निर्णय नहीं हो सका। कुछ मौलिक बातों को तय करने के पश्चात सम्मेलन स्थगित हो गया। १९ मई १९२८ ई० को बम्बई में इसकी पुनः बैठक हुई परन्तु इस समय तक कांग्रेस एवं लीग के मतभेद और भी गहरे हो गए थे। इस सम्मेलन ने सार्वजनिक रूप से सम्मेलन की असफलता स्वीकार करने के स्थान पर एक समिति का गठन किया। इस समिति के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू और सचिव पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। श्री सुभाष बोस, सर तेजबहादुर सप्रू, कुरैशी, सरदार मंगलसिंह, श्री एम० एस० अणे, सर अली इमाम और श्री जी० आर० प्रधान इसके अन्य सदस्य थे। इस समिति को भारतवर्ष के लिए विधान के सिद्धान्त निश्चित करने तथा उस पर विचार करने का कार्य सौंपा गया तथा सौंपा हुआ कार्य १ जुलाई १९२८ ई० के पूर्व पूरा करने का आग्रह किया गया।

नेहरू प्रतिवेदन का सार

समिति ने एक चिरस्मरणीय प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसे भारतीय बुद्धिमत्ता का प्रथम प्रयास कहा जा सकता है। यह प्रतिवेदन संवैधानिक विकास के इतिहास में नेहरू रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है। नेहरू प्रतिवेदन के मुख्य बिन्दु निम्न लिखित थे —

(१) औपनिवेशिक स्वराज्य तथा पूर्ण उत्तरदायी शासन

यद्यपि इस समिति का बहुमत औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में था परन्तु कुछ सदस्य पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में भी थे। इसने भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य अन्तिम उद्देश्य के रूप में नहीं वरन् तात्कालिक लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया। समिति ने उन सब दलों का जो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे कार्य करने की पूर्ण

स्वतन्त्रता दे दी। केन्द्र और प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित कर कार्यकारिणी को व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी बनाए जाने की बात कही गई थी।

(२) प्रान्तीय स्वायत्तता तथा अवशिष्ट शक्तियां

समिति ने भारत के लिए भविष्य में संघ की सम्भावना प्रकट की। इसने प्रान्तों को स्वायत्तता देने पर विशेष बल दिया। प्रान्तों और केन्द्र में अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास रखी गई। यह कनाडा के मॉडल को मानकर किया गया ताकि केन्द्र शक्तिशाली रहे। प्रान्तों में कानून बनाने के लिए एक सदन होगा।

(३) साम्प्रदायिक वैमनस्य के निराकरण के सम्बन्ध में

साम्प्रदायिक मतभेद की समस्या का स्मरणीय एवं निष्पक्ष विश्लेषण करते हुए प्रतिवेदन में लिखा गया था: साम्प्रदायिक वैमनस्य के मूल में शक अथवा भावनाओं से कुछ नहीं हो सकता और आज की समस्या का हल इसी में है कि प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में से दूसरे व्यक्ति के निराधार भय को मिटा दिया जाए और समस्त जातियों को सुरक्षा का आश्वासन दिया जाए। इस सुरक्षा की प्राप्ति के हेतु प्रत्येक दल अपने स्वयं के लिए स्थिति को प्रभावशाली बनाना चाहता है। हमें इस बात का ज्ञान है कि कुछ जातियों के प्रतिनिधियों की अन्तःस्थल की भावना यह नहीं है कि स्वयं जीवित रहें और दूसरे को भी जीवित रहने दें। सुरक्षा की इस भावना को बल देने हेतु प्रतिवेदन में कुछ उपायों का उल्लेख किया गया। इसमें कहा गया: सुरक्षा देने की भावना को प्रदान करने के लिए कुछ स्वत्व और अधिकार की जहां तक सम्भव हो सके वहां तक सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की स्वीकृति हो। कुछ स्थाई प्रस्तावों द्वारा जातीय वैमनस्य को दूर करने के सम्बन्ध में समिति ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किए —

(अ) विधान में अधिकारों की घोषणा को स्थान दिया जाए जिससे समस्त जातियों को धर्म और संस्कृति सम्बन्धी स्वतन्त्रता दी जाए।

(ब) उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त और सिन्ध को (मुसलमानों का बहुमत होने के कारण) बम्बई से पृथक स्वतन्त्र प्रान्त के रूप में स्वीकार कर लिया जाए।

(स) इस प्रतिवेदन में पृथक निर्वाचन पद्धति को अस्वीकार कर दिया गया। इस सम्बन्ध में प्रतिवेदन में यह सम्मति प्रकट की गई कि जहां मुसलमान अल्पसंख्यक हैं वहां पर उनको विशेष सुविधाएं प्रदान की जाएं तथा जहां पर हिन्दू अल्पसंख्यक हैं वहां पर उनको भी विशेष सुविधाएं प्रदान की जाएं।

(४) नए प्रान्तों का निर्माण

मुसलमान बहुत समय से ही यह मांग कर रहे थे कि सिन्ध को बम्बई से अलग कर दिया जाए और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त को दूसरे प्रान्तों के समान दर्जा दिया जाए ताकि पंजाब, बंगाल तथा सिन्ध में उनका बहुमत हो जाए। मुसलमानों की यह मांग स्वीकार कर ली गई।

(५) मौलिक अधिकार

प्रतिवेदन में कहा गया कि सरकार की शक्तियों को लोगों से ही ग्रहण किया

गया है अतः वे लोगों की संस्थाओं द्वारा इस संविधान के अनुसार प्रयोग में लाई जाएगी। उसका अर्थ यह है कि सत्ता लोगों के हाथ में रहेगी। भारत में कोई भी राजधर्म नहीं होगा। पुरुषों और स्त्रियों को समान अधिकार मिलेंगे।

(६) संसद का स्वरूप

भारत सरकार की कानूनी शक्तियाँ संसद के पास रहेंगी जो सम्राट की सीनेट और प्रतिनिधि सभा से मिलकर बनेगी।

सीनेट में २०० सदस्य होंगे जो प्रान्तों की विधानपरिषदों द्वारा चुने जाएँगे। प्रत्येक प्रान्त को उसकी आबादी के अनुसार प्रतिनिधित्व दिया जायगा। प्रतिनिधि सभा में ५ सदस्य होंगे जो वालिगों द्वारा चुने जाएँगे। २१ वर्ष या अधिक आयु वाले प्रत्येक उस व्यक्ति को जो कानून द्वारा अयोग्य घोषित न किया जाए प्रान्तीय विधान परिषदों में मताधिकार होगा। विदेशी मामलों में संसद को वही अधिकार होंगे जो अन्य अधिराज्यों की संसदों को हैं।

(७) भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में

औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति के बाद केन्द्रीय सरकार को देशी रियासतों के ऊपर वही अधिकार होंगे जो अब केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हैं। यदि औपनिवेशिक स्वतन्त्रता के बाद देशी रियासत से किसी सन्धि या सनद के विषय में झगड़ा हो जाए तो गवर्नर जनरल को अपनी मन्त्रिपरिषद् की सलाह से उस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में फैसले के लिए सौंपने को तैयार होना होगा।

(८) केन्द्रीय कार्यकारिणी

भारत की कार्यकारिणी शक्ति सम्राट के पास रहेगी और वह शक्ति गवर्नर जनरल द्वारा सम्राट के प्रतिनिधि की हैसियत से प्रयोग की जाएगी। गवर्नर जनरल की एक कार्यकारिणी परिषद् होगी जिसमें प्रधानमन्त्री और ६ अन्य मन्त्री होंगे। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा होगी और उसकी सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति होगी। केन्द्रीय कार्यकारिणी सब मामलों के लिए सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होगी।

(९) उच्चतम न्यायालय

भारत में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना करने और प्रिवी कौंसिल को की जाने वाली तमाम अपीलों को रद्द करने का सुझाव दिया गया सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करेगा और प्रान्तों के आपसी झगड़ों का निर्णय करेगा।

(१) प्रतिरक्षा और सेना के सम्बन्ध में

प्रधानमन्त्री प्रतिरक्षा मन्त्री प्रधान सेनापति वायुसेना और जलसेना के सेनापति जनरल स्टॉफ के अध्यक्ष तथा दो अन्य सैनिक विशेषज्ञों को मिलाकर एक प्रतिरक्षा-समिति बनायी जाएगी। भारतीय सेनाओं के सम्बन्ध में तमाम नियम और उपनियम इस समिति की सिफारिश के अनुसार बनाए जाएंगे।

(११) परराष्ट्र सम्बन्ध

विदेश-नीति के सम्बन्ध में यह सम्मति प्रकट की गयी कि इस प्रकार स्थापित भारत की नवीन सरकार एशिया के अन्य राज्यों के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति को सफल बनाने में वर्तमान सरकार के समान ही योग्य सिद्ध होगी। यह निश्चित किया गया कि विदेश-नीति से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण विषयों का निर्णय इस नवीन उपनिवेश तथा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अन्य सदस्यों द्वारा पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा किया जायगा।

नेहरू प्रतिवेदन की विशेषताएं

नेहरू प्रतिवेदन अपनी विशेषताओं के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास में विशेष महत्त्व रखता है। उसकी मुख्य विशेषताएं निम्न हैं—

(१) यदि साइमन कमीशन और उसकी रिपोर्ट का महत्त्व केवल उसके पुरातन एवं असामयिक होने तथा भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं के अनुकूल न होने में था तो नेहरू प्रतिवेदन का महत्त्व उसके तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल न होने हुए भी भारत के समस्वर में था।

(२) भारतीय समस्या के प्रति उसका हल पूर्णरूप से बुद्धि सगत तथा व्यावहारिक था। यदि प्रतिवेदन में कोई काल्पनिक उड़ान थी तो वह केवल जातीयता और सांस्कृतिक व्यवस्था की थी।

(३) साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने का जो प्रयत्न इसमें प्रतिपादित किया गया वही उस समस्या का हल हो सकता था। मुसलमानों ने यदि इस प्रतिवेदन को महत्त्वपूर्ण नहीं माना तो इसका कारण उनके द्वारा इस प्रतिवेदन का अवलोकन विवेक रहित साम्प्रदायिक पक्षपात की दृष्टि से किया जाना था।

(४) यह प्रतिवेदन भारतीयों की राष्ट्रीय एकता की माग और अपने देश के लिए विधान निर्माण की दिशा में स्वयं भारतीय राष्ट्रीयता के लिए उपहार था। विधान निर्माण के व्यावहारिक क्षेत्र में यह एक स्तुत्य प्रयास था।

(५) नेहरू प्रतिवेदन का सबसे महान् लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना था।

(६) इस प्रतिवेदन में देशी रियासतों को दी गयी चुनौती और सम्मति भविष्य में उनकी स्थिति पर एक प्रश्नचिह्न थी।

(७) इस प्रतिवेदन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व था अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा हेतु मौलिक अधिकारों के रूप में प्रदान किया गया निश्चित आश्वासन।

( ) अन्त में कहा जा सकता है कि इस प्रतिवेदन का कोई उपयोग नहीं किया गया किन्तु फिर भी इसके महत्त्व को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। कूपलैंड ने भी लिखा है और यद्यपि देखा जाए तो उनके कार्य का व्यावहारिक फल

किंचित् मात्र ही हुआ फिर भी इस प्रतिवेदन को जिसमें उन्होंने नवीन विधान की व्याख्या प्रस्तुत की है और जो नेहरू रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है राजनीति के अध्ययन-विद्यार्थियों द्वारा जितना सत्कार प्राप्त हुआ है वह उससे अधिक के योग्य है। क्योंकि यह केवल इस चुनौती का ही उत्तर नहीं था कि भारतीय राष्ट्रीय रचनात्मक कार्यों के लिए अयोग्य थे बल्कि साम्प्रदायिक विष को निष्पक्ष रूप से नष्ट करने के लिए भारतीयों द्वारा जो प्रयत्न किए गए थे वह उन सब में अधिक निष्कपट एवं स्पष्ट प्रयत्न था।

(६) नेहरू प्रतिवेदन जैसे अत्यन्त प्रगतिशील एवं क्रान्तिकारी प्रतिवेदन का निर्माण करने वाले व्यक्ति जन प्रतिनिधि थे अतः उन्होंने जन भावनाओं और आकांक्षाओं को स्पष्ट रूप से प्रस्फुटित किया। समिति के सब सदस्य अपने अपने क्षेत्रों में अत्यन्त बड़े पद एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे अतः उन्होंने बिना किसी भय या दबाव के कार्य किया। अग्रेजों की चुनौती ने भी इस प्रतिवेदन को क्रांतिकारी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया क्योंकि अगर जन प्रतिनिधि अपने उद्देश्यों में विफल रहते तो अग्रेजों को भारतीय प्रतिनिधियों की अक्षमता को प्रचारित करने का मौका मिल जाता। जन प्रतिनिधियों ने समय और परिस्थितियों के अनुसार कदम उठाकर इस सत्य को साकार कर दिया कि वे समय की चुनौती को स्वीकार कर बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेने में समर्थ हैं।

नेहरू-प्रतिवेदन पर प्रतिक्रियाएं

नेहरू समिति के प्रतिवेदन का देशव्यापी स्वागत हुआ। अनेक विद्वानों ने प्रतिवेदन की भूरि भूरि प्रशंसा की। डा. जकारिया के अनुसार यह एक उच्चकोटि की रिपोर्ट थी जिसमें राजनीतिक बुद्धिमत्ता का आभास मिलता है। कूपलैंड के मतानुसार वह एक उत्साहपूर्ण प्रयास था और उससे जिस नवनिर्माण का आगमन हुआ कदाचित् उसका प्रमाण भविष्य में होने वाले सुधारों के ग्रहण करने और उन्हें व्यापक बनाने के आधार रूप में किया जा सकता था। पुनः डा. जकारिया ने कहा है नेहरू रिपोर्ट उसके तत्व रूप में पढ़ने और अध्ययन करने योग्य है क्योंकि यह प्रत्येक विषय का पूर्ण विवेचन करती है और उस व्यावहारिक ज्ञान का प्रदर्शन करती है जो न स्वयं को सिद्धान्तों की भूल-भुलैयों में खोता है और जो समान रूप से ही अनबन वार्तों के विज्ञापन की आड़ में आश्रय लेने से घृणा करता है।

नेहरू प्रतिवेदन का प्रभाव

नेहरू प्रतिवेदन के महत्वपूर्ण परिणाम हुए। भारतीयों के इस कदम ने ब्रिटेन के बुद्धिजीवियों पर पर्याप्त प्रभाव डाला तथा उन्हें यह विश्वास कराने में सहायता पहुंचाई कि भारतीयों के भविष्य को अनिश्चित काल तक अधर में नहीं लटकाया जा सकता है और उन्हें स्वतन्त्र करने या उत्तरदायी शासन की स्वीकृति देनी ही होगी। इससे देश की जनता में भी नवजीवन का संचार हो गया।

उसे यह विश्वास हो गया कि उसने जन प्रतिनिधि किसी भी चुनौती का सामना करने को तयार है।

नेहरू-प्रतिवेदन तथा कांग्रेस

नेहरू प्रतिवेदन सर्वदलीय सम्मेलन के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। जिसकी बैठक लखनऊ में २८ से ३ अगस्त १९२८ ई. तक हुई। सम्मेलन ने स्वयं को औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में घोषित किया। सम्मेलन के एक भाग ने जिस का नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस कर रहे थे घोषणा की कि वे सम्मेलन द्वारा प्रतिवेदन को स्वीकार करने का विरोध नहीं करेंगे परन्तु वे इसके पक्ष में मतदान नहीं करेंगे क्योंकि वे भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं पूर्ण स्वतन्त्रता का दर्जा दिए जाने के उद्देश्य में विश्वास करते हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति की ४-५ नवम्बर को बैठक में पूर्ण स्वराज्य के उद्देश्य की पुनः पुष्टि की गयी तथा नेहरू समिति द्वारा प्रस्तुत साम्प्रदायिक समस्या के समाधान को स्वीकृत कर लिया गया। कार्यसमिति की दृष्टि में नेहरू प्रतिवेदन राजनीतिक विकास की दिशा में महान् पग था। कलकत्ते में सम्पन्न कांग्रेस के वार्षिक सम्मेलन ने नेहरू-प्रतिवेदन को इस बात पर स्वीकृत कर लिया कि ब्रिटिश संसद इस पूर्ण रूप से ३१ दिसम्बर १९२९ ई. के पूर्व स्वीकृति दे दे। कांग्रेस ने यह भी घोषणा की कि यदि उक्त समय के पूर्व संसद इसे स्वीकृत नहीं करेगी अथवा समय के पूर्व इसे अस्वीकृत घोषित करेगी तो कांग्रेस देश में अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन प्रारंभ करेगी एवं भारतीय जनता से सरकार को कर नहीं देने का आग्रह करेगी।

नेहरू-प्रतिवेदन एवं मुस्लिम लीग

नेहरू प्रतिवेदन के सम्बन्ध में मुसलमानों में मिली जुली प्रतिक्रियाएं हुई। मौलाना आजाद डॉ. अन्सारी आदि राष्ट्रीय मुसलमानों ने इसका स्वागत एवं समर्थन किया। आगा खां आदि अन्य मुसलमानों ने यह अनुभव किया कि नेहरू-प्रतिवेदन ने लखनऊ समझौते को उलट दिया है तथा यह प्रतिवेदन मुसलमानों के हितों के विरुद्ध है और सारी शक्तियां हिन्दुओं के हाथ में केन्द्रित कर देगा। मि. जिन्ना अभी तक हिन्दू मुसलमान एकता में विश्वास रखते थे। उनकी यह धारणा थी कि मुसलमानों का हित हिन्दुओं के साथ जुड़ा हुआ है। अतः उन्होंने सभी मुसलमानों का एक सम्मेलन दिल्ली में १ दिसम्बर को नेहरू प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया तथा आगा खां से इस अधिवेशन की अध्यक्षता करने का निवेदन किया। इस सम्मेलन में मुसलमान प्रतिनिधि किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके। यह निश्चय किया गया कि इस सम्मेलन की मई १९२९ के अन्त तक पुनः बैठक बुलाई जाए एवं इस मध्य मि. जिन्ना को मुसलमानों के विभिन्न धड़ों से सम्पर्क स्थापित कर सर्वसम्मत मत प्राप्त करने को कहा गया। मि. जिन्ना ने विभिन्न धड़ों से बातचीत कर व्यापक प्रस्ताव तैयार किए। ये प्रस्ताव भारतीय संवैधानिक विकास के इतिहास में जिन्ना की विख्यात चौदह शर्तों के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिन्ना ने अपने प्रस्ताव मुस्लिम लीग के मार्च १९२९ ई. के अधिवेशन में

सम्मुख प्रस्तुत किये। जिन्ना ने मुसलमानों से राष्ट्र हित को दृष्टिगत रख कर निर्णय लेने का अनुरोध किया। परन्तु जिन्ना के इस अनुरोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नेहरू प्रतिवेदन के समर्थकों एवं आलोचकों में व्यापक मतभेद थे। सम्मेलन समाप्त हो गया एवं जिन्ना की चौदह शर्तों के सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं हो सका। राष्ट्रवादी मुसलमानों ने मुस्लिम लीग का त्यागकर जुलाई १९२९ ई० में राष्ट्रीय मुसलमान दल की स्थापना कर ली। मि. जिन्ना एवं मि. मोहम्मद शफी के समर्थक एक हो गए, लीग कांग्रेस से पूर्ण रूप से विमुख हो गयी एवं पृथक राष्ट्र के निर्माण के लिए अग्रसर होना प्रारम्भ हो गया। लार्ड बर्कनहेड की चुनौती एवं सर्वसम्मत संविधान का निर्माण ज्यों की त्यों बनी रही।

(४) जिन्ना की चौदह शर्तें

जिन्ना की चौदह शर्तों वाली योजना के उद्गम में भय, अविश्वास और स्वार्थ की भावना दिखायी देती है। सम्भवतः जिन्ना ने निम्न कारणों से प्रेरित होकर यह योजना प्रस्तुत की होगी —

(१) जिन्ना के मन में पाकिस्तान का चूहा उछल-कूद कर रहा था। सम्भवतः अपनी भावी जागीर के रूप में पाकिस्तान का निर्माण करने की महत्त्वाकांक्षा उन पर भूत के समान सवार थी और वे किसी भी तरीके से उसे प्राप्त करना चाहते थे। सम्भवतः इन्हीं विचारबिन्दुओं को सामने रखकर उन्होंने नेहरू प्रतिवेदन को अस्वीकार कर अपनी १४ सूत्री योजना द्वारा उस आधार को मजबूत बनाना चाहा था।

(२) इस योजना के पीछे दूसरा बड़ा कारण यह था कि अगर मि. जिन्ना नेहरू प्रतिवेदन को स्वीकार कर लेते तो निस्सन्देह मुस्लिम लोकमत में राष्ट्रवादी मुसलमानों की स्पष्ट जीत हो जाती जिसका परिणाम होता जिन्ना साहब की राजनीतिक हत्या। वे मुस्लिम राजनीति पर से अपना आधिपत्य नहीं खो सकते थे। इसलिए मुसलमानों में अपनी गद्दी को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें गुमराह करने में ही उन्होंने अपना हित समझा और अपनी १४ शर्तों को पेश किया।

(३) इस योजना के पीछे भय और अविश्वास की भावना भी काम कर रही थी। जिन्ना की यह धारणा थी कि नेहरू प्रतिवेदन हिन्दुओं के प्रतिनिधियों द्वारा तैयार किया गया है और वे यदि इसे मान लेते हैं तो मुस्लिम हितों की कुर्बानी अवश्यम्भावी हो जाएगी और मुसलमानों को सदैव हिंदुओं की दया पर आश्रित रहना पड़ेगा।

(४) इन शर्तों के निर्माण के पीछे सब से महान् तथ्य जो काम कर रहा था वह यह था कि जिन्ना साहब अंग्रेजों को प्रसन्न रख उनसे कुछ दान प्राप्ति की आशा रखते थे। नेहरू-प्रतिवेदन के सबब से अंग्रेजों ने भारतीयों को जो चुनौती दी उसका सफल प्रतिकार कर भारतीयों ने अंग्रेजों की धज्जियाँ उड़ा दीं। अगर यह रिपोर्ट सभी दलों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार हो जाती तो अंग्रेजों के सम्मुख महान् संकट पैदा हो जाता और राष्ट्रीयता की धारा अधिक वेगवती हो

जाती। ऐसे समय में अंग्रेज किसी भी रूप से भारतीयों [redacted] फूट डालने को आतुर थे और इसी तथ्य को भाँपकर वांछित मनोवृत्ति का प्रतिफलित होते देखना तथा तात्कालिक परिस्थितियों का लाभ उठाना यही जिन्ना साहब की इच्छा थी। इसी कारण उन्होंने अपनी शर्तें प्रस्तुत कीं।

(५) शायद इस योजना का जीवन तत्व जिन्ना की कूटनीतिक चालें थीं। मुस्लिम लीग दो गुटों में विभाजित हो गयी थी और दोनों एक दूसरे की सरेआम आलोचना करते थे। जिन्ना ने इस अवसर को हाथ से निकलने न दिया और मुस्लिम हितों की रक्षा की भावना ने दोनों को पुनः मिलाकर साथ साथ रहने का और काम करने का नारा दिया।

संक्षेप में जिन्ना तब देश में किसी भी कीमत पर साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने के पक्ष में नहीं थे।

चौदह शर्तों का खुलासा

१ भारत के भावी संविधान का रूप संघीय हो जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों के पास हों।

२ सभी प्रान्तों में समान स्वायत्त शासन व्यवस्था हो और उनके अधिकार समान हों।

३ सभी प्रान्तों की विधानसभाओं और अन्य लोक प्रतिनिधियों वाली संस्थाओं में थोड़ी संख्या वाली जातियों का निश्चित रूप से उचित तथा काफी प्रतिनिधित्व रहे।

४ केन्द्रीय विधानमंडल में मुसलमानों का कम से कम एक तिहाई प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

५ साम्प्रदायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व पृथक निर्वाचन पद्धति से हो परन्तु कोई भी सम्प्रदाय जब चाहे संयुक्त निर्वाचन पद्धति स्वीकार कर सकता है।

६ किसी भी प्रादेशिक पुनर्विभाजन द्वारा पंजाब, बंगाल और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में मुसलमानों के बहुमत पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए।

७ सभी सम्प्रदायों को अपने धार्मिक विश्वास, उपासना, उत्सव, प्रचार, सम्मेलन और शिक्षा प्राप्ति की पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

८ किसी भी विधानसभा अथवा लोक प्रतिनिधि-संस्था में ऐसा कोई विधेयक स्वीकृत नहीं होना चाहिए जिसका किसी सम्प्रदाय के तीन चौथाई सदस्य अपने सम्प्रदाय के हितों के विरुद्ध बताते हुए विरोध करें।

९ सिंध को बम्बई प्रान्त से अलग कर दिया जाए।

१० अन्य प्रान्तों में जिस प्रकार के सुधार किये जाएं उसी प्रकार के सुधार सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तान में भी किये जाएं।

११ विधानसभाओं और सभी नौकरियों में योग्यता के अनुसार मुसलमानों को उचित भाग मिले।

१२ मुस्लिम संस्कृति शिक्षा भाषा धर्म व्यक्तिगत कानून और धार्मिक संस्थाओं की रक्षा एवं उन्नति के लिए उचित संरक्षण तथा पर्याप्त सरकारी सहायता मिले।

१३ केंद्रीय अथवा प्रांतीय मंत्रिमण्डल में कम से कम एक तिहाई मंत्री मुसलमानों के हों।

१४ केन्द्रीय विधानमण्डल को संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार तभी रह सकता है जब भारतीय संघ की सभी इकाइयां उसे स्वीकार कर लें।

आलोचनात्मक दृष्टि

जिन्ना के इस १४ सूत्री कार्यक्रम ने भारत की राजनीति पर बहुत ही अधिक विपरीत प्रभाव डाला था जिसका हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं —

१ इस योजना ने पृथक्तावादी शक्तियों को बल मिला और पाकिस्तान की मांग में तेजी आ गया।

२ मुस्लिम लीग के दोनों पक्षों में एकता हो जाना भारतीय राष्ट्रीयता के लिए भयंकर अभिशाप सिद्ध हुआ। अगर जिन्ना इस समय में १४ सूत्री कार्यक्रमों से कूटनीतिक चाल नहीं चलते तो निर्णय दूसरा ही होता।

३ मुस्लिम राजनीति पर मुस्लिम लीग के पूर्णरूप से छा जाने पर राष्ट्रवादी मुसलमानों में निराशा छा गयी। वे तेजी से मुस्लिम लीग का साथ देने लगे और कांग्रेस का मुसलमानों में प्रभाव क्षीण होने लगा और यही कारण था जब पृथक पाकिस्तान के समय जनमतसंग्रह हुआ तो मुस्लिम लीग को अपार बहुमत मिल गया।

४ जिन्ना पचाट के कारण देश में साम्प्रदायिक वैमनस्य की एक अभूतपूर्व लहर दौड़ गयी और देश इस विभीषिका से बच नहीं सका।

५ जिन्ना अल्पसंख्यकों के हितों का राग अलाप कर भारत के सवर्ण हिन्दुओं के खिलाफ पिछड़ी जातियों और हरिजनों की भावनाओं को उभारना चाहते थे। उनकी कुत्सित भावनाओं को सफलता भी मिल जाती परन्तु गांधीजी के आमरण अनशन ने इस षड्यन्त्र को विफल कर दिया।

६ जिन्ना चाहते थे कि सभी मुसलमान कांग्रेस छोड़कर लीगी राजनीति में प्रवेश करें ताकि वे कांग्रेस को बदनाम कर सकें कि वह हिन्दुओं की संस्था है और मुस्लिम हितों का प्रतिनिधित्व केवल मुस्लिम लीग ही कर सकती है।

७ इस योजना का सबसे अधिक महत्व इसलिए है कि इसके कारण भारतीय राजनीति में पहले मुस्लिम लीग के हाथ में आ गयी और अंग्रेजों की तुष्टिकरण की नीति में उसे बढ़ावा मिला जिसका दुष्परिणाम था भारत विभाजन और पाकिस्तान निर्माण।

(8) जिन्ना की इन्हीं शर्तों के आधार पर मैकडोनाल्ड साम्प्रदायिक पचाट पारित हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस योजना के अनेक दूरगामी परिणाम हुए।

जिन्ना के सूत्र के संबंध में विभिन्न मत

(१) नेहरू प्रतिवेदन को बेकार बनाना

पहली विचारधारा के अनुसार जिन्ना की इस १४ सूत्री योजना का मूल दर्शन नेहरू समिति की सिफारिशों को कमजोर या उनकी स्थिति को हेय बनाना था। नेहरू समिति की रिपोर्ट को हेय बनाकर जिन्ना अंग्रेजों के प्रति अपनी राज भक्ति को प्रदर्शित करके सेवाओं का पुरस्कार चाहते थे। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि १४ सूत्री सिद्धान्तों के पीछे ठकुरसुहाती आदि प्रशंसास्पद भूमिका का निर्वाह कर रहा था।

(२) राजनीतिक वर्चस्व की स्थापना करना

दूसरी विचारधारा के प्रतिपादकों का कहना है कि जिन्ना अपने इस शस्त्र से राष्ट्रवादियों की स्थिति को अत्यन्त हीन बनाना चाहते थे। अतः उसने भारतीय राजनीति की पहल को अपने हाथ से नहीं जाने देने के लिए ही इस योजना का प्रतिपादन करने में अपना भला समझा।

इसके साथ साथ जिन्ना यह कभी नहीं चाहते थे कि भविष्य में मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच सहयोग के आधार बने रहें। अतः वह मुस्लिम लीग को साम्प्रदायिकता के उस चरम बिन्दु तक पहुँचा देना चाहते थे जहां समझौते के लिए कोई संभावना ही नहीं रह जाए। इसीलिए उसने इस योजना को मूलरूप प्रदान किया।

(३) समय और परिस्थितियों का योग

इस समझौते को केवल जिन्ना की निजी आकांक्षाओं का प्रतिफल मात्र नहीं कहा जा सकता है क्योंकि समय और परिस्थितियों के विरुद्ध भी वह कोई कदम उठाकर आत्मघात नहीं करना चाहते थे। समय की मांग थी कि मुस्लिम नेता अपनी दूरदर्शितापूर्ण कूटनीति के सहारे पाकिस्तान की नींव को इतना मजबूत करदें जो किसी भी शक्ति या साधन से हिलाई न जा सके और यही कार्य जिन्ना ने अपने इन १४ सूत्री सिद्धान्तों के माध्यम से किया। परिस्थितियों की मांग थी मुस्लिम लीग का भारतीय राजनीति की पहल को अपने हाथ से नहीं जाने देना। अगर मुस्लिम नेता इस रहस्य की नब्ज को भाप कर उचित कदम उठाने में असमर्थ रहते तो मैदान उनके हाथ से निकल जाता।

उपरोक्त मतों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तीनों ही मत एक दूसरे के पूरक हैं और उनमें किसी भी प्रकार के विरोधाभास के लिए कोई स्थान नहीं है। सार रूप में हम कह सकते हैं कि जिन्ना के इन सिद्धान्तों ने भारतीय राजनीति में एकबार पुनः सनसनी उत्पन्न कर दी। सभी राजनेताओं की निगाहें जिन्ना के व्यक्तित्व और मुस्लिम लीग की भावी रणनीतियों को मापने की दिशा में केन्द्रित हो गयीं।

इसने उस सत्य का भी उद्घाटन कर दिया कि राजनीति में सिद्धान्तों की स्थिति सर्वोपरि नहीं मानी जा सकती जबतक कि उसे क्रियान्वित करने के लिए ठोस आधार या नीति प्राप्त न हो। जिन्ना ने अपनी दूरदर्शिता से राजनीतिक क्षेत्रों में न केवल अपनी स्थिति को ही सुदृढ कर लिया वरन् कांग्रेसी क्षेत्रों को एक बार पुनः निराशा के गहन अन्धकार में भटकने को मजबूर कर दिया। इसके पीछे मुस्लिम लीग का अतीत गूंज रहा था जो स्पष्ट घोषणा कर रहा था कि उसका अंतिम और एकमात्र सर्वोपरि लक्ष्य पाकिस्तान की मांग को सम्बल प्रदान करना था।

पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग

साम्प्रदायिक एकता एवं सुधारों के सम्बन्ध में हो रहे प्रयासों के दौरान देश एवं विदेश में अन्य घटनाएं घटित हो रही थी। देश में आतंकवादियों की गति विधियां में काफी तेजी आ गयी थी। कुछ देशभक्त क्रान्तिकारियों ने लाला लाजपतराय की मृत्यु का बदला लेने की दृष्टि से लाहौर में पुलिस अधिकारी सांडर्स की हत्या कर दी। सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने बहरी अंग्रेज सरकार के कान खोलने की दृष्टि से केन्द्रीय धारासभा में बम्ब का धमाका किया। दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। १६१६ ई० के मध्य सरकार ने लाहौर षडयन्त्र के नाम पर कुछ क्रान्तिकारियों पर मुकद्दमा प्रारम्भ किया। मुकद्दमे की सुनवाई के काल में उचित व्यवहार के लिए जितेन्द्रनाथ दास ने जेल में भूख-हड़ताल प्रारम्भ करदी। देश में इस मांग को व्यापक समर्थन मिला। सरकार से क्रान्तिकारियों की उचित मांग को स्वीकार करने का अनुरोध किया गया किन्तु सरकार ने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। जितेन्द्रनाथ की जेल में मृत्यु हो गयी। युवकों में सरकार के विरुद्ध तीव्र रोष पैदा हुआ। सम्पूर्ण देश में युवक संगठनों की बाढ आ गई। बंगाल में प्रांतीय युवा-संघ और प्रान्तीय विद्यार्थी संघ पंजाब में युवा-कांग्रेस आदि विद्यार्थी संगठनों का निर्माण हुआ। मध्यप्रदेश और मद्रास में भी विद्यार्थियों में तीव्र रोष फैला।

विद्यार्थियों के साथ साथ मजदूर वर्ग में भी असन्तोष बढ़ा। बम्बई में मजदूरों ने कपड़ा मिलों में हड़ताल करदी। फलस्वरूप कामकाज ठप हो गया। सरकार ने मार्च १६२६ ई० में ३१ मजदूर नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इन पर मेरठ में चार वर्ष तक मुकद्दमा चलाया गया। नेताओं को जमानत पर नहीं छोड़ा गया और उनके साथ काफी कड़ा व्यवहार किया गया। सन् १६२६ [redacted] जुलाई माह में कांग्रेस ने सदस्यों से विधानमण्डलों की सदस्यता से त्यागपत्र देने का अनुरोध किया। गांधीजी ने जनता को भावी आन्दोलन में भाग लेने की दृष्टि से निश्चित करने के उद्देश्य से देशव्यापी दौरा प्रारम्भ कर दिया। १६२८ ई० में सरदार पटेल ने नेतृत्व में बारदौली के किसानों ने सफल आन्दोलन किया। इन सब कारणों से देश में अभूतपूर्व राजनैतिक जागृति हुई।

अप्रैल १९२९ ई. में इंग्लैंड में निर्वाचन हुए जिसमें मजदूर दल को बहुमत मिला। मि. रामजे मैकडानोल्ड प्रधानमंत्री और वेजवुड बेन भारत मंत्री नियुक्त हुए। निर्वाचन से पूर्व जून १९२९ ई. में रामजे मैकडानोल्ड ने यह आशा व्यक्त की थी कि भारत को शीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त हो जाएगा। अतः उन्होंने वायसराय लॉर्ड इरविन को परामर्श के लिए इंग्लैंड बुलाया। वायसराय २५ अक्टूबर १९२९ ई. को ब्रिटेन से भारत लौट आए और ३१ अक्टूबर को एक घोषणा द्वारा यह स्पष्ट किया कि भारत में ब्रिटिश शासन का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य कायम करना है। वायसराय ने यह भी घोषणा की कि ज्यों ही साइमन कमीशन का प्रतिवेदन प्राप्त होगा ब्रिटिश सरकार सुधारों के सम्बन्ध में कोई सुझाव संसद में प्रस्तुत करने के पूर्व भारतीय राजनैतिक प्रतिनिधियों से विचार विमर्श करने के लिए लन्दन में एक गोलमेज सम्मेलन का आयोजन करेगी। वायसराय की उक्त घोषणा के मूल में भारतीयों की सद्भावना प्राप्त करने और कांग्रेस की नीतियों को मोड़ देने का उद्देश्य निहित था। घोषणा के एक दिन पश्चात् १ नवम्बर को भारत के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों यथा गांधीजी मोतीलाल नेहरू सरदार पटेल मौलाना आजाद डॉ. अंसारी मदनमोहन मालवीय डा. मुंजे श्रीमती बिसेन्ट एवं सरोजिनी नायडू ने दिल्ली में एक बैठक की। इस बैठक में वायसराय के सद्भावना पूर्ण विचारों का स्वागत किया गया तथा भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए वायसराय से सुधारों के सम्बन्ध में कुछ व्यावहारिक कदम उठाने का आग्रह किया गया।

वायसराय की ३१ अक्टूबर की घोषणा को लेकर ब्रिटेन की संसद में विवाद खड़ा हो गया। सरकार ने घोषणा की कि भारत के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। कांग्रेस के नेताओं ने वायसराय से भेंट करने का निश्चय किया। सरदार विट्ठलभाई पटेल के सत्प्रयत्नों के फलस्वरूप २३ दिसम्बर का दिन भेंट के लिए निश्चित किया गया। भेंट के पूर्व क्रांतिकारियों ने उस रेलगाड़ी को उड़ाने का प्रयत्न किया जिसमें लार्ड इरविन यात्रा कर रहे थे अतः वातावरण खराब हो गया। गांधीजी मोतीलाल नेहरू तेजबहादुर सप्रू आदि ने वायसराय से भेंट की परन्तु उन्होंने कोई आश्वासन देने से इन्कार कर दिया।

कांग्रेसी नेता काफी निराश एवं रुष्ट हुए। कांग्रेस का वाम पंथी धड़ा (जिसका नेतृत्व युवा जवाहरलाल नेहरू सुभाष बोस श्रीनिवास आयंगर करते थे) कठोर राजनैतिक कदम उठाने की मांग कर रहा था। राजनैतिक वातावरण में काफी गर्मी आ गयी थी और उसी समय लाहौर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। वामपंथी धड़े की मांग से गांधीजी सहमत हो गए। परिणामस्वरूप अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता के लक्ष्य का प्रस्ताव पारित हो गया। कांग्रेस ने अपना उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति घोषित कर दिया। अधिवेशन में सभी कांग्रेसी और गैर कांग्रेसियों से निर्वाचन में भाग न लेने और जो विधानमण्डल के सदस्य थे उनसे

त्यागपत्र देने का अनुरोध किया गया। कांग्रेस कार्यसमिति को उचित अवसर पर आन्दोलन प्रारम्भ करने का भी निर्देश दिया गया। रावी नदी के तट पर ३१ दिसम्बर १९२९ ई० को युवक जवाहरलाल नेहरू ने स्वतन्त्रता का प्रतीक तिरंगा झंडा फहराया। २६ जनवरी स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाने के निश्चय की घोषणा की गई। श्रीनिवास एवं सुभाष बोस को अधिवेशन के निर्णयों में सन्तोष नहीं हुआ। अतः उन्होंने कांग्रेस प्रजातन्त्र दल का संगठन किया जिसका उद्देश्य राजनीतिक कार्यक्रम को सक्रिय रूप से लागू करना रखा गया। २६ जनवरी १९३०ई० के दिन को सम्पूर्ण देश में स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया गया। देश भविष्य में प्रारम्भ होने वाले आन्दोलन की तयारी में संलग्न हो गया।



१८

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

प्रवेश :

पूर्व अध्याय में हम अध्ययन कर चुके हैं कि लन्दन से लौट कर लॉर्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर १९२९ ई० को यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की यह मान्यता है कि सन् १९१७ ई० की घोषणा में भारत को अन्त में औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने की बात अन्तर्निहित है। इस घोषणा से भारतीयों को कुछ आशा बँधी परन्तु ब्रिटेन में भारत के प्रति असहानुभूतिपूर्ण रुख होने से इस दिशा में कुछ भी नहीं हो सका। अतः कांग्रेस ने दिसम्बर १९२९ में लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत किया तथा उक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्यसमिति को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का अधिकार प्रदान किया। जनवरी १९३० ई० में वायसराय ने अपनी अक्तूबर घोषणा को दोहराया और गोलमेज परिषद् के लक्ष्यों एवं कार्यक्रम पर प्रकाश डाला। १४ एवं १५ फरवरी १९३० ई० को साबरमती आश्रम में कांग्रेस कार्यसमिति की एक बैठक हुई जिसमें गांधीजी को अपनी इच्छा से समय एवं स्थान निश्चित कर आन्दोलन प्रारम्भ करने का अधिकार प्रदान किया गया। उस समय भारतीयों में नमक-कर के विरुद्ध जोरदार भावना व्याप्त थी अतः गांधीजी ने नमक कर के विरुद्ध आन्दोलन करने का निश्चय किया। २७ फरवरी को आन्दोलन का कार्यक्रम सर्वसाधारण की जानकारी हेतु प्रचारित किया गया और महात्मा गांधी ने घोषणा की कि वे ७८ निर्वाचित सहयोगियों के साथ सबसे पहले नमक-कानून का उल्लंघन करेंगे। इस प्रकार गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के प्रारम्भ की भूमिका का निर्माण हुआ।

आन्दोलन के कारण

सविनय अवज्ञा-आन्दोलन प्रारम्भ करने के मूल में अनेक कारण अन्तर्निहित थे। साइमन कमीशन की चुनौती को स्वीकार करके जब भारतीय राजनेताओं ने अथक परिश्रम से नेहरू-प्रतिवेदन का निर्माण किया तो ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हतप्रभ रह गए परन्तु फिर भी वे अपनी पराजय को मानने के लिए तैयार नहीं थे और उन्होंने नेहरू-प्रतिवेदन को अस्वीकार कर दिया। नेहरू-प्रतिवेदन की अस्वीकृति के बाद भारतीयों के सामने अंग्रेजों से संघर्ष के अलावा दूसरा कोई विकल्प शेष नहीं रह गया था। सन् १९२९ में देश की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी।

विश्वव्यापी आर्थिक मंदी से भारत भी अछूता नहीं रहा। वस्तुओं की कीमतें बहुत अधिक घट गयी जिससे मध्यम-वर्ग में असन्तोष पनपना प्रारम्भ हो गया। औद्योगिक और व्यावसायिक वर्ग भी सरकार की नीतियों से असन्तुष्ट था। सरकार द्वारा अंग्रेजों को लाभ पहुँचाने के लिए रुपये के मूल्य में परिवर्तन किए जाने के कारण देश का व्यावसायिक वर्ग पूर्णरूप से असन्तुष्ट हो गया था। मजदूरों में भी व्यापक असन्तोष था। मजदूरों की दशा काफी शोचनीय थी। जूट, कपड़ा और इस्पात उद्योगों के मजदूर अपमानजनक अवस्था में तथा आधे पेट खाकर काम कर रहे थे। इन पर तरह-तरह के अत्याचार किए जा रहे थे। मेरठ षड्यन्त्र मुकदमे में ३६ मजदूर नेताओं को लम्बी कैद की सजा दिए जाने के कारण मजदूर वर्ग में सनसनी फैल गयी थी। उनमें संगठन की भावना और चेतना का संचार हुआ और वे संगठित होने लगे थे। उस समय देश में विस्फोटक स्थिति व्याप्त थी। देश में कई बड़ी हड़तालों का तांता बंधा हुआ था। किसान एवं श्रमिक संगठित हो गये थे और उनका आन्दोलन हिंसात्मक एवं क्रान्तिकारी स्वरूप ग्रहण करता जा रहा था। नवयुवकों में हिंसात्मक प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। देश के हिंसात्मक स्थिति की राह पर अग्रसर होने के भय से गांधीजी ने परिस्थिति को समय रहते दूसरा मोड़ देने में ही कल्याण समझा। गांधीजी ने वायसराय को पत्र लिखकर इस सम्बन्ध में चेतावनी भी दी। उन्होंने लिखा था, "हिंसात्मक दल अपना जड़ जमा रहा है और उसका प्रभाव बढ़ रहा है। उनके द्वारा आयोजित अहिंसात्मक आन्दोलन न केवल ब्रिटिश शासन की हिंसात्मक शक्ति बल्कि बढ़ते हुए हिंसात्मक दल का भी सामना करेगा।" परन्तु वायसराय पर इसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने महात्मा गांधी पर अपने कार्यों द्वारा असन्तोष उत्पन्न करने का आरोप लगाया। वायसराय से प्रतिकूल उत्तर मिलने पर गांधीजी ने कहा, "मैंने रोटी मांगी थी और मुझे उत्तर में मिला पत्थर। अंग्रेज जाति केवल शक्ति के द्वारा दब सकती है। इसलिए मुझे वायसराय महोदय के कथन पर कोई आश्चर्य नहीं है। हमारे राष्ट्र के भाग्य में तो जेलखाने की शान्ति ही एकमात्र शान्ति है। सारा भारत एक विशाल कारागृह है। मैं यह अंग्रेजी कानून मानने से इन्कार करता हूँ और मौजूदा जबरदस्ती की शान्ति की मनहूस एकरसता को भंग करना मैं अपना पवित्र कर्त्तव्य समझता हूँ। इस शान्ति में राष्ट्र का गला दबा हुआ है। अब उसके हृदय का चीत्कार प्रकट होना ही चाहिए।"

आन्दोलन का कार्यक्रम

वायसराय को भेजी जाने वाली ११ मांगों की सूची ही आन्दोलन के कार्यक्रम का आधार थी। यह शर्तें निम्नलिखित थीं —

१ पूर्ण मद्यनिषेध
२ विनिमय की दर कम कर एक शिलिंग चार पेन्स कर दी जाए
३ भूमि का लगान आधा हो और उस पर कौंसिल का नियन्त्रण रहे
४ नमक-कर को समाप्त कर दिया जाए
५ सेना के व्यय में कम से कम ५० प्रतिशत की कमी हो।

६ बड़ी सरकारी नौकरियों का वेतन आधा कर दिया जाए
७ विदेशी वस्त्रों के आयात पर निषेध कर लगाया जाए,
८ भारतीय समुद्रतट केवल भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित हो
९ सभी राजनीतिक कैदी छोड़ दिए जाएं, राजनीतिक मुकद्दमे उठा लिए जाएं तथा निर्वासित भारतीयों को देश में वापस आने दिए जाएं,
१० गुप्तचर पुलिस को उठा दिया जाए या उस पर जनता का नियन्त्रण रहे और
११ आत्मरक्षा के लिए हथियार रखने के अनुज्ञा पत्र दिए जाएं।

आन्दोलन का प्रथम चरण

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ डांडी-यात्रा की ऐतिहासिक घटना से हुआ। इसमें १२ मार्च १९३० ई० को महात्मा गांधी एवं उनके अनुयायी २०० मील की यात्रा पैदल प्रारम्भ कर २४ दिनों के पश्चात् डांडी पहुँचे। डांडी-यात्रा की तुलना सुभाष बोस ने नेपोलियन के पेरिस मार्च और मुसोलिनी के इटली-मार्च से की। हजारों लोगों ने मार्ग में सत्याग्रहियों का दिल खोलकर स्वागत किया। ६ अप्रैल को आत्मशुद्धि के उपरान्त गांधीजी ने समुद्रतल से थोड़ा नमक उठाकर नमक कानून को भंग किया। गांधी द्वारा नमक-कानून तोड़ने के साथ ही सत्याग्रह में अभूतपूर्व तेजी आ गयी। बम्बई, बंगाल, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रान्त और मद्रास में गैर कानूनी तरीके से नमक बनाना प्रारम्भ हो गया। महात्मा गांधी ने स्त्रियों को शराब की दूकानों पर धरना देने के लिए आह्वान किया जिसका दिल खोलकर स्वागत किया गया। दिल्ली में १६०० महिलाओं ने शराब की दूकानों पर धरना दिया फलस्वरूप बहुत सी दूकानें बन्द हो गयी। स्त्रियों ने पर्दा प्रथा को ताक में रखकर सत्याग्रह में भाग लिया जो भारतीय स्त्रियों के जीवन में अविस्मरणीय रहेगा। विदेशी कपड़ों का पूर्ण बहिष्कार भी आशा से अधिक सफल रहा। एच एन ब्रेल्सफोर्ड के अनुसार १९३० ई० में सूती कपड़ों का व्यापार पहले वर्ष की अपेक्षा एक तिहाई या एक चौथाई के लगभग रह गया। बम्बई में अंग्रेज व्यापारियों की सोलह मिलें बन्द हो गयीं और ३२००० मजदूर बेरोजगार हो गए। इसके विरुद्ध भारतीय व्यापारियों की मिलें दुगुनी तेजी से काम करने लगीं। किसानों ने कर बन्दी आन्दोलन को सक्रिय सहयोग दिया। सरकार ने १६ अप्रैल को जवाहरलाल नेहरू एवं ७ मई को गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया तथा आन्दोलन को निर्ममता से कुचलने का प्रयत्न किया। इस हेतु गवर्नर जनरल ने दर्जनों अध्यादेश जारी किए। जुलूसों और सार्वजनिक सभाओं को तितर बितर करने के लिए अन्धाधुन्ध लाठियों का प्रयोग किया गया और कभी कभी गोलियों से भी लोगों को भूना गया। वृहद् स्तर पर जनता के साथ अत्याचार किए गए। खुलेआम स्त्रियों को बेइज्जती की गयी। देश में पुलिस अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। कर न देने वालों की सम्पत्ति जब्त करली गयी। धारसाना में २५०० सत्याग्रहियों ने नमक के गोदाम पर चढ़ाई की। पुलिस ने सत्याग्रहियों को बहुत बुरी तरह से पीटा जिससे अनेक

व्यक्ति घायल हो गए। धारसाना ग्राम में पुलिस अत्याचारों का वर्णन करते हुए न्यू फ्रीमेन समाचार पत्र के संवाददाता श्री वेब मिलर ने लिखा "मैं २२ देशों में १८ वर्षों से संवाददाता का काम कर रहा हूँ। इस काल में मैंने असंख्य उपद्रव मारकाट और विद्रोह देखे हैं किन्तु धारसाना के समान पीड़ाजनक दृश्य मैंने कभी भी नहीं देखे। कभी कभी तो ये दृश्य इतने दुखद हो जाते थे कि क्षण भर के लिए आँख फेर लेनी पड़ती थी। स्वयंसेवकों का अनुशासन अत्यन्त अद्भुत था। मालूम होता था कि स्वयंसेवकों ने गांधी के अहिंसा धर्म को घोलकर पी लिया है।

अंग्रेजों के अत्याचार से सारे देश में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भयंकर रोष फैल गया। आन्दोलन और भी तीव्र हो उठा। कुछ व्यक्तियों ने सरकार एवं सत्याग्रहियों के मध्य समझौता कराने का प्रयास किया। सोकोलोस्की नामक अंग्रेज ने गांधीजी से जेल में भेंट की एवं आन्दोलन स्थगित करने और गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के सम्बन्ध में बातचीत की परन्तु कोई फल नहीं निकला। प्रथम गोलमेज सम्मेलन १२ नवम्बर १९३० ई० से १९ जनवरी १९३१ ई० तक लन्दन में हुआ परन्तु किसी निर्णय पर पहुँचे बिना ही स्थगित कर दिया गया। ५ मई १९३१ ई० को गांधीजी एवं वायसराय में एक समझौता हुआ। गांधीजी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार कर लिया परन्तु शीघ्र ही राजनीतिक स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। इंग्लैंड में मजदूर दल के स्थान पर जो राष्ट्रीय सरकार बनी वह अनुदार एवं प्रतिक्रियावादी स्वरूप की थी। लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड वेलिंगटन वायसराय बन कर भारत आया। लार्ड वेलिंगटन पक्का अनुदारवादी था तथा उसे गांधी इरविन समझौते से कोई सहानुभूति नहीं थी। वह इंग्लैंड से कांग्रेस को कुचलने का लक्ष्य लेकर आया था। उसने भारत पहुँचते ही अपना दमन चक्र प्रारम्भ कर दिया फलस्वरूप गांधी इरविन समझौते को पर्याप्त धक्का लगा। महात्मा गांधी ने वायसराय को इस सम्बन्ध में अनेक पत्र लिखे परन्तु उसने इन पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस कारण गांधीजी ने दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने से इन्कार कर दिया। अन्त में गांधी और वेलिंगटन की शिमला में भेंट हुई और दोनों में एक समझौता हुआ। गांधी गोलमेज परिषद् में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित होने के लिए तैयार हो गए।

आन्दोलन का दूसरा चरण

उधर गांधीजी लन्दन में संवैधानिक समस्या हल करने के प्रयत्न कर रहे थे और इधर भारतीय सरकार राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रवाह को रोकने के लिए प्रयत्न कर रही थी। सरकार ने उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त में लाल कुर्ती दल को अवैध घोषित कर दिया तथा खान-बन्धुओं को बन्दी बना लिया। बंगाल में क्रान्तिकारियों की गतिविधियों को रोकने के वास्ते सरकार ने सख्त कदम उठाए। उत्तरप्रदेश के गवर्नर ने कर बन्दी आन्दोलन का दमन करने के लिए नया अध्यादेश प्रचलित किया एवं श्री जवाहरलाल नेहरू को उनके अनेक साथियों सहित गिरफ्तार कर

लिया। सरकार के कार्य से प्रभावित होकर कांग्रेस कार्यसमिति ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुनः प्रारम्भ करने की धमकी दी। सरकार ने पहल अपने हाथ में रखने की दृष्टि से ४ जनवरी १९३२ ई० को भारत लौटने पर गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया, कांग्रेस को गैर कानूनी संस्था घोषित कर दिया, आन्दोलनकारियों की सम्पत्ति जब्त कर ली तथा प्रेस पर कड़े नियन्त्रण लगा दिए। कठोर दमन के बावजूद सरकार आन्दोलन को नियन्त्रित नहीं कर सकी। आन्दोलन के प्रथम चार माह में ८० हजार से अधिक व्यक्ति बन्दी बनाए गए। जनता ने बड़े साहस एवं उत्साह से सरकार के दमन चक्र का सामना किया। सरकार ने कांग्रेस के अधिवेशन न होने दिए, इसका भी प्रयत्न किया फिर भी कांग्रेस के दिल्ली एवं कलकत्ता के अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए।

धीरे-धीरे आन्दोलन मन्द पड़ने लगा। हिन्दुओं और हरिजनों के प्रति किए गये पापों के प्रायश्चित्त के लिए गांधी जी ने ८ मई १९३३ ई० को २१ दिन का उपवास शुरू किया। सरकार ने उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। आन्दोलन को स्थगित किए जाने पर विचार किया जाने लगा। गांधीजी का विचार था कि सरकार की दमनकारी नीति से जनता में भय और आतंक छा गया है अतः आन्दोलन को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया जाए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन को बन्द कर दिया गया, उसके स्थान पर व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ। मार्च १९३४ में इस आन्दोलन को भी बन्द कर दिया गया। महात्मा गांधी कांग्रेस से अलग हो गए तथा अछूतोद्धार के कार्य में लग गए।

आन्दोलन में विभिन्न तत्वों की भूमिका

(१) कांग्रेस की भूमिका—वास्तव में देखा जाए तो इस आन्दोलन का पूरा दारोमदार कांग्रेस पर ही निर्भर था। कांग्रेस के नेता और कार्यकर्ता इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार थे। महात्मा गांधी की इसमें सर्वोपरि स्थिति रही। दांडी मार्च के सन्दर्भ में सरदार पटेल की कार्यकुशलता और संगठन शक्ति अपने आप में एक अप्रतिम उदाहरण रहा। कांग्रेस का यह आंदोलन जन आंदोलन होने से अत्यन्त लोकप्रिय हुआ और जनता को अपनी तरफ प्रभावित करने में पूर्णरूप से सफल भी रहा।

(२) मुस्लिम लीग—न केवल इस आन्दोलन से अलग ही रही अपितु उसने इस आन्दोलन को विफल बनाने के लिए सभी सम्भव कुचक्र भी रचे। मुस्लिम लीग के इस आन्दोलन से अलग रहने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए जिन्ना ने कहा, "हम गांधीजी के साथ शामिल होने से इन्कार करते हैं क्योंकि उनका यह आन्दोलन भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए नहीं अपितु ७ करोड़ मुसलमानों को हिन्दू-महासभा के आश्रित बना देने के लिए है।

(३) राष्ट्रवादी मुसलमानों का सहयोग—यद्यपि लीग द्वारा प्रभावित मुस्लिम तत्व इस आन्दोलन से पूर्णरूप से अलग रहे परन्तु राष्ट्रवादी मुसलमानों ने इस

आन्दोलन को पूर्ण सहयोग प्रदान किया। उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त के पठानों ने अपने एकछत्र नेता श्री खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचार सहन किए।

(४) भारत के अन्य दलों की भूमिका हिन्दू महासभा और क्रान्तिकारी सगठनों ने कांग्रेस के इन प्रयत्नों को कायरतापूर्ण करार दिया और सम्प्रदायवादियों ने इससे अपने आप को बिल्कुल अलग रखा।

(५) प्रवासी भारतीयों की भूमिका विदेशों में बसने वाले भारतीयों ने इस आन्दोलन से सहानुभूति प्रकट की और अपने देशों में हड़तालें कीं। पनामा सुमात्रा जावा और इन्डोनेशिया में बसने वाले भारतीयों ने गाधीजी की गिरफ्तारी का विरोध किया और अपनी-२ सरकारों से अनुरोध किया कि वे ब्रिटिश सरकार पर यह दबाव डालें कि भारतीयों की समस्याओं का उचित समाधान निकालें।

इन भूमिकाओं के निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि कुछ सीमित स्वार्थों से प्रेरित (साम्यवादी) कुछ उग्र राष्ट्रवाद से उत्तेजित (हिन्दू महासभा और अन्य राष्ट्रवादी सगठन) और कुछ फिरकापरस्तों (मुस्लिम लीग के समर्थकों) के अलावा देश के जन साधारण ने इस आन्दोलन से अपना आत्मीय सबध दिखाया था।

आन्दोलन का विचार दर्शन

इस आन्दोलन को शुरू करने में महात्मा जी के कुछ मूलभूत सिद्धान्त थे जो इस आन्दोलन को जन-व्यापी बनाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। ये मूलभूत सिद्धान्त निम्नलिखित थे —

१ आर्थिक दृष्टिकोण

महात्मा जी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार का नारा देकर ब्रिटेन की अर्थ व्यवस्था पर सीधा प्रहार करना चाहते थे और देश में स्वावलम्बन का जोश उत्पन्न करके आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे।

२ राजनैतिक अभिप्राय

देश में भयकर आर्थिक सकट के कारण हिंसात्मक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिल रहा था। श्रमिकों में और मध्यम वर्ग में असन्तोष के कारण देश में हिंसा को बहुत अधिक बल मिलने की सम्भावना थी। क्रान्तिकारियों और आतंकवादियों की सफलताओं के कारण गाधीजी चिन्तित हो उठे थे अतः उन्होंने देश की जनता का ध्यान क्रान्तिकारियों की गतिविधियों से हटाने के लिए इस आन्दोलन का नारा देना आवश्यक समझा था। इस आन्दोलन के माध्यम से वे देश में व्याप्त निराशा और दुर्बलता की भावना का भी अन्त करना चाहते थे। वे देशवासियों में नवीन उत्साह का सचार करके उन्हें इस बात के लिए तैयार कर देना चाहते थे कि वह अन्तिम निर्णायक सघर्ष के लिए अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हो जाए साथ ही गाधी जी विदेशों में भी भारतीयों के प्रति सहानुभूति अर्जित करना चाहते थे। ब्रिटेन के उदारवादी तत्वों का समर्थन प्राप्त करना भी उनका ध्येय था, क्योंकि ये तत्व सरकार

के दमन चक्र का विरोध करने भारतीयों की उचित माँगों को स्वीकार करने के लिए सरकार पर दबाव डाल रहे थे।

३ सामाजिक अभिप्राय

गांधी जी इस आन्दोलन से अस्पृश्यता हीनता फिरकापरस्ती पर्दाप्रथा जैसी मूलभूत सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करना चाहते थे।

आन्दोलन का प्रभाव

इस आंदोलन से सारे देश ने एकता और जागृति की महान् सरिता में अवगाहन किया। लोग स्वाधीनता प्राप्ति के लिए आतुर हो गए और देश में भावात्मक एकता का एक अपूर्व वातावरण स्थापित हुआ। इससे निम्न वांछित परिणाम निकले —

१ इस आन्दोलन से राष्ट्रीयता की भावना को असीम बल मिला और भारतीयों में नव चेतना का सचार हो गया। ज्यों-ज्यों सरकार का दमन चक्र बढ़ता गया त्यों त्यों जनता के विश्वास में वृद्धि होती गयी। उन्हें यह पूर्ण विश्वास हो गया कि वे अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकते हैं बशर्ते कि उनमें आत्मविश्वास और अटल सकल्प बना रहे।

२ इस आन्दोलन ने जीवन के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक सभी पक्षों पर अनुकूल प्रभाव डाला। स्वदेशी का प्रचार होने से देश में आत्मनिर्भरता के कार्यक्रम को बल मिला। इसके साथ ही यह कि यह आन्दोलन जन आन्दोलन था अत उसे देश के सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त हुआ।

३ इस आन्दोलन ने क्रान्तिकारियों की गतिविधियों को भी प्रभावित किया। वे बन्द तो नहीं हुई परन्तु शिथिल अवश्य हो गई क्योंकि जनता का उन्हें पूर्ण सहयोग नहीं मिल सका।

४ विदेशों में भी भारत के प्रति नैतिक सहानुभूति का भाव जागृत हुआ और ब्रिटेन के उदारवादी तत्व सरकार पर यह जोर देने लगे कि वह भारत की समस्याओं पर ध्यान दें। उसे जितना जल्दी सम्भव हो उतनी जल्दी स्वतन्त्रता प्रदान करदे। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि असहयोग आन्दोलन भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में अत्यन्त शक्तिशाली घटना थी जिसने देश में अपूर्व उत्साह और गौरवपूर्ण राष्ट्रीयता का सचार कर दिया। इस आन्दोलन की सबसे ठोस उपलब्धि यह थी कि इसका आधार जन मानस होने से यह देश के मर्म को पहली बार सार्थक रूप में पहचान पाया। इस आन्दोलन ने विश्व जनमत का नैतिक समर्थन प्राप्त किया और अंग्रेजों पर इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का रहस्योद्घाटन किया कि वे अधिक समय तक स्वतन्त्रता की माँग की उपेक्षा नहीं कर सकते। निस्सन्देह यह आंदोलन भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास का गौरवपूर्ण पहलू था।

१९

सम्मेलनों एवं समझौतों की राजनीति

प्रवेश

सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने देश में अत्यन्त प्रभावशाली राजनैतिक जागृति उत्पन्न कर दी। सारा राष्ट्र स्वराज्य की आशा में अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर हो गया। सरकार ने भी अपनी अमानुषिकता का निर्लज्ज प्रदर्शन करने में कोई कसर उठा नहीं रखी। ज्यों-ज्यों सरकार के अत्याचार बढ़ते गए त्यों-त्यों जनता में असीम जागृति उत्पन्न होती गयी और सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रगति करता चला गया। इसी बीच ७ जुलाई १९३० ई० को साइमन कमीशन का प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ। देश के सभी दलों ने उसको अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप देश में संवैधानिक गतिरोध ज्यों का त्यों बना रहा। यह संवैधानिक गतिरोध ब्रिटिश सरकार के लिए अत्यन्त चुनौतीपूर्ण तथ्य था जिसका उचित समाधान अत्यन्त आवश्यक था। ब्रिटिश सरकार ने समस्या के समाधान के लिए सम्मेलनों एवं समझौतों की राजनीति का आश्रय लिया जिसके फलस्वरूप सरकार ने गोलमेज सम्मेलन बुलाए एवं गांधी इरविन समझौता किया। सम्मेलनों की असफलता का परिणाम साम्प्रदायिक पंचाट के रूप में सामने आया जो पूना समझौता का जनक बना। शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार १९३३ ई० में सुधारों के सम्बन्ध में एक श्वेत-पत्र प्रकाशित कर १९३५ ई० के भारत अधिनियम के स्वीकृत करने की दिशा में अग्रसर हुई।

(१) प्रथम गोलमेज सम्मेलन

प्रथम गोलमेज सम्मेलन १२ नवम्बर १९३० ई० को बुलाया गया। सम्राट ने इसका उद्घाटन किया और रामजे मैकडोनेल्ड ने इस सम्मेलन का सभापतित्व किया। इस सम्मेलन में ८९ प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें से १६ भारतीय देशी राज्यों के, ५७ ब्रिटिश भारत के और १६ ब्रिटिश संसद के तीन प्रमुख दलों के प्रतिनिधि थे। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों का चयन वायसराय ने किया और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों का चुनाव वहां के शासकों द्वारा किया गया था। स्पष्टतः यह सम्मेलन पिट्ठू प्रतिनिधियों का सम्मेलन था जन प्रतिनिधियों के लिए इस सम्मेलन में कोई जगह नहीं थी। कांग्रेस ने जो देश की प्रमुख संस्था थी,

सम्मेलन में भाग नहीं लिया। सम्मेलन में भाग लेने वाले हिन्दू मुसलमान सिक्ख जमींदार व्यापारी हरिजन और मजदूर प्रतिनिधि अपने वर्ग-समूह की भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं वरन् सरकारी हितों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते थे।

सम्मेलन के आरम्भ होने पर प्रधानमन्त्री श्री मैकडोनैल्ड ने परिषद् के उद्घाटन भाषण में तीन आधारभूत सिद्धान्तों की चर्चा की। ये आधारभूत सिद्धान्त थे

१ व्यवस्थापिका-सभा का निर्माण संघ-शासन के आधार पर होगा और ब्रिटिश भारत के प्रान्त और देशी रियासतें संघ शासन की इकाई का रूप धारण करेंगी।

२ केन्द्र में उत्तरदायी-शासन की स्थापना संघ शासन के आधार पर की जावेगी किन्तु सुरक्षा और वैदेशिक विभाग गवर्नर जनरल के अधीन होंगे।

३ अन्तरिम काल में कुछ रक्षात्मक विधान अवश्य होंगे।

सुझावों के उक्त सिद्धान्तों का ध्यान से अवलोकन करने पर पता चलता है कि इनमें किसी भी नवीन तथ्य का समावेश नहीं किया गया था और ये आधार किन्तु ब्रिटेन की चिर पोषित फूट डालो एवं राज्य करो वाली नीति पर ही आधारित थे। ब्रिटिश सरकार केन्द्र में दोहरा शासन से प्रभावित उत्तरदायी सरकार की स्थापना और रक्षात्मक विधान का व्यवस्था करके भारतीय मामलों की पहल अपने हाथ में रखना चाहती थी। वास्तव में वह सुझावों के लिए ही कुछ सुझाव रखना चाहती थी समस्या के समाधान के लिए नहीं। ब्रिटिश सरकार गवर्नर जनरल को सुरक्षा और वैदेशिक जैसे महत्वपूर्ण विभागों की बागडोर सौंपकर अपनी स्थिति पर कुछ भी आंच नहीं आने देना चाहती थी। इन सुझावों में अपने हितों की रक्षा को सर्वोपरि मानना और जनप्रतिनिधियों की शक्ति को न्यून बनाना ही सरकार का रहस्यपूर्ण उद्देश्य था।

ब्रिटिश प्रस्तावों पर सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाएं हुई। देशी नरेशों के प्रतिनिधियों ने संघ राज्य में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। ऐसा उन्होंने ब्रिटिश इशारे पर किया क्योंकि केन्द्रीय व्यवस्थापिका में प्रगतिशील तत्वों के प्रभाव को कम करने के लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक थी। भारत के ब्रिटिश प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने संघ पद्धति का विरोध नहीं किया। ये प्रतिनिधि वायसराय द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि थे अतः उनका दृष्टिकोण सरकारी दृष्टिकोण से भिन्न नहीं हो सकता था। ब्रिटिश प्रान्तों के प्रतिनिधियों में केवल संरक्षण और उत्तरदायी मन्त्रियों पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में पारस्परिक मतभेद था। इन प्रतिनिधियों ने केन्द्र में आंशिक उत्तरदायित्व की स्थापना का स्वागत किया। श्री जयकर और तेजबहादुर सप्रू ने भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की

माग का। उनका विचार था कि अगर भारत का औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाती है तो स्वतन्त्रता की माग स्वत समाप्त हो जाएगी।

इस सम्मेलन म प्रत्यक जाति क प्रतिनिधियो न अपन अपन हिता का सरक्षण करन क लिए अपन अपन दृष्टिकोण रख जिसक कारण साम्प्रदायिकता की समस्या सर्वाधिक विवादास्पद बन गया और इसका समाधान हुआ नहा जा सका। मुसलमान पृथक निर्वाचन क पक्ष पर बल द रह थ और जिन्ना अपन १४ सूत्री सिद्धाता को स्वीकार करन की माग पर अड हुए थ। डा अम्बेडकर जो अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि थ अनुसूचिता क लिए पृथक निर्वाचन की माग पर बल दे रहे थ। हिन्दुओ के प्रतिनिधि सयुक्त चुनाव पद्धति क पक्ष में थ परन्तु व थोडी सख्या वाली जातियो क लिए स्थान सुरक्षित करान क लिए तयार थ। इस तरह स वहा पर प्रत्यक जाति क प्रतिनिधि अपन अपन हिता का सुरक्षित करन क लिए प्रयत्नशील थ। जिस प्रकार क प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत का प्रतिनिधित्व करन के लिए चुन गय थ उनसे उनम इसस अधिक क्या आशा का जा सकती थी। अत साम्प्रदायिकता क प्रश्न पर सम्मेलन म कोई समझौता नहा हो सका। सम्मेलन का कवल उन्हा बाता म कुछ सफलता मिली जिनक बारे म ब्रिटिश प्रधानमन्त्री न अपने सुझाव रख थ।

१६ जनवरी १९३१ ई को सम्मेलन अनिश्चित काल क लिए स्थगित हो गया। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री मैकडानल्ड ने सम्मेलन क स्थगित होन क पूव सरकारी नीति की घोषणा करत हुए कहा

सम्राट की सरकार का मत है कि भारत सरकार का उत्तरदायित्व केन्द्रीय एव प्रान्तीय धारासभाओं पर होना चाहिए। पर इसी क साथ-साथ परिवतनकाल म यह आयोजन होना आवश्यक है कि सरकार अपन विशिष्ट कतव्यो का पालन कर सक और परिस्थितिया क अनुसार अधिकारो का स्वतन्त्रता पूवक घोषणा कर सकें। परिवतन काल की आवश्यकताओं की पूर्ति क लिए बनाए गए अभिरक्षणा क सम्बन्ध म सम्राट की सरकार का यह दखना होगा कि सुरक्षित शक्तियां इस प्रकार बनायी और प्रयुक्त की जाए कि वे उत्तरदायी शासन की दिशा म जाकर सविधान द्वारा स्थापित किया जाना है भारत की उन्नति म बाधा नहा डालें। उन्होंने यह भी आशा व्यक्त की कि कांग्रेस भविष्य म होन वाले गोलमेज सम्मेलन म भाग लगी और भारत क लिए सविधान निर्माण म मदद करगी।

सम्मेलन के परिणामा क सम्बन्ध म विद्वानों ने भिन्न २ मत व्यक्त किए। श्री कूपलड के मतानुसार यह सम्मेलन एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण एतिहासिक घटना थी। इसक पूर्व ४ करोड जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले तथा एक सम्राट क प्रति श्रद्धा रखन वाले समान हित क लिए एक समान महत्त्वपूर्ण विषय पर विचार विमर्श हतु इतन प्रतिनिधि कभी भी एक स्थान पर एकत्रित नहीं हुए। ब्रैल्सफोर्ड के अनुसार सेंट जम्स महल म भारतीय नरश हरिजन सिक्ख

मुसलमान, हिन्दू, ईसाई, जमींदार, मजदूर संघों और वाणिज्य संघों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे किन्तु भारतमाता वहां उपस्थित नहीं थी।

सुभाषचन्द्र बोस ने लिखा, "इसने भारत को दो गोलियां दीं—प्रान्तीय स्वशासन और संघ-राज्य। गोलियों को खाने योग्य बनाने के लिए उन पर उत्तरदायित्व का मीठा मुलम्मा चढ़ा दिया गया था। सम्मेलन के सभी पहलुओं पर विचार करने पर हम यह निश्चय रूप में कह सकते हैं कि इस सम्मेलन का उद्देश्य न तो भारत के संवैधानिक गतिरोध को दूर करना था, न साम्प्रदायिकता की समस्या को हल करना और न ही भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था अपितु राष्ट्रविरोधी अवसरवादी फिरकापरस्त तत्वों को एक मंच पर लाकर कांग्रेस की शक्ति को खण्डित करना था। सत्य तो यह है कि सम्मेलन प्रारम्भ से ही अपवित्र उद्देश्य का पोषण करके चला था। उसमें भारत का वह चित्रण नहीं था, जो उन लाखों गांवों का प्रतिनिधित्व करता जो विदेशी परतन्त्रता के कारण पीड़ित थे और नवचेतना के नव प्रकाश में अपनी इस दयनीय स्थिति से ऊपर उठकर विदेशी गुलामी से मुक्त होने को तत्पर थे। अतः सम्मेलन का अन्त निराशाजनक वातावरण में होना स्वाभाविक ही था।

(२) गांधी इरविन समझौता

ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कांग्रेस को गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित करने के लिए बड़े व्यग्र थे। अतः वायसराय ने २५ जनवरी १९३१ ई. को कांग्रेस नेताओं से ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की १९ जनवरी १९३१ ई. की घोषणा को स्वीकार करने के सम्बन्ध में विचार करने का आग्रह किया। सरकार ने सद्भावनापूर्ण वातावरण बनाने के लिए गांधीजी एवं कार्यकारिणी के सभी सदस्यों को जेल से मुक्त कर दिया। जयकर, तेजबहादुर सप्रू और वी. एस. शास्त्री ने गांधीजी और वायसराय में आपसी बातचीत के लिए मध्यस्थता की। कांग्रेस कार्यकारिणी ने भी गांधीजी को वायसराय से बातचीत करने का अधिकार प्रदान कर दिया। काफी बातचीत के बाद ५ मई १९३१ ई. को एक समझौता हुआ जो इतिहास में 'गांधी इरविन समझौता' के नाम से विख्यात है। समझौते की शर्तें निम्नलिखित थीं—

(अ) सरकार द्वारा स्वीकृत शर्तें

युद्ध अपराधियों के अलावा शेष सभी राजनीतिक बंदियों को छोड़ने, जब्त सम्पत्ति वापिस लौटाने, नमक तैयार करने के शुल्क में छूट देने, शराब, अफीम और विदेशी कपड़े की दुकानों पर शांतिपूर्ण पिकेटिंग करने की अनुमति देने की मांग स्वीकार की।

(आ) कांग्रेस द्वारा स्वीकृत शर्तें

कांग्रेस ने यह वादा किया कि वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर देगी, पुलिस ज्यादतियों के विरुद्ध निष्पक्ष न्याय की मांग पर बल नहीं देगी, द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी और समस्त बहिष्कारों को बन्द कर देगी।

समझौते के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया

कांग्रेस के बहुमत द्वारा गांधी-इरविन समझौते का अनुमोदन कर देने पर भी प्रखर राष्ट्रवादी वर्गों को संतोष नहीं हुआ। सुभाष बोस ने इसे कांग्रेस की पराजय की संज्ञा दी। श्री जवाहरलाल नेहरू ने समझौते में निहित संरक्षण की व्यवस्था को स्वतन्त्रता के प्रतिकूल करार दिया। युवकों ने क्रान्तिकारियों को फांसी से बचाने हेतु गांधीजी द्वारा प्रयत्न न करने की चेष्टा की तीव्र आलोचना की तथा गांधी मुर्दाबाद के नारों का उच्चारण किया। टाइम्स समाचारपत्र ने गांधी-इरविन समझौते को ब्रिटिश सरकार की कूटनीतिक विजय की संज्ञा दी।

प्रभाव

इस समझौते के फलस्वरूप कांग्रेस का प्रभाव बढ़ा। पंडित नेहरू के शब्दों में समझौते के उपरान्त अनेक व्यक्ति जो तूफानी दिनों में कष्टों से घबराकर कांग्रेस से बच रहे थे कांग्रेस की ओर आकर्षित होने लगे और उन्होंने निम्न व्यवहार को सुधारने का प्रयत्न किया। यहां तक कि सम्प्रदायवादियों ने भी उसमें शामिल होने का प्रयत्न किया। कष्टों और दुःखों से गुजरने के कारण कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ी और जनता का नैतिक स्तर उन्नत हुआ। समझौता से देश में नए युग का सूत्रपात हुआ लड़खड़ाती ब्रिटिश सरकार को सहारा मिला तथा हठधर्मिता के स्थान पर राजनीति में परस्पर सौहार्द्रपूर्ण वातावरण का निर्माण हुआ। पर सरकार को कुछ समय के लिए दूसरी तरफ केन्द्रित करने में ब्रिटिश सरकार को सफलता मिली। समझौते के सम्बन्ध में [illegible] विचार [illegible] में अवश्य किन्तु था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

गांधी इरविन समझौते से कांग्रेस की कोई मांग पूरी नहीं हुई। यहां तक कि नमक कानून भी नहीं हटाया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। कांग्रेस ने उस गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार किया जो उसकी पूर्ववर्ती नीति के विरुद्ध था। स्वराज्य की दिशा में कोई निश्चित कदम नहीं उठाया गया।

(२) द्वितीय गोलमेज सम्मेलन

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन १७ सितम्बर १९३१ ई० को प्रारम्भ हुआ एवं १ दिसम्बर १९३१ ई० तक चला। गांधीजी २२ सितम्बर को लन्दन पहुँच कर सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में कुल १०७ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन में नए संविधान के ढांचे संघीय न्यायपालिका के स्वरूप संघीय व्यवस्थापिका के निर्माण केन्द्र और प्रान्तों में आर्थिक साधनों के बंटवारे आदि के प्रश्नों पर विचार किया गया। सम्मेलन किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका और साम्प्रदायिकता जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर भी कोई निर्णय नहीं कर सका।

इस सम्मेलन की असफलता के लिए अनेक तत्त्व उत्तरदायी थे। प्रथम सामंजस्य की खोज में गोलमेज सम्मेलन वस्तुतः कोई उद्देश्य युक्त सम्मेलन भी नहीं

था अपितु विभिन्न स्वार्थों की पूर्ति का एक साधन था। इसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधि किसी स्वतन्त्र विचारधारा या आदर्शों से प्रेरित होकर काम करने को नहीं आए थे अपितु वे अपने अपने स्वार्थों की वकालत करने आए थे। द्वितीय यह सम्मेलन बेमेल तत्त्वों का एक संगठन था। इसमें यदि एक ओर महात्मा गांधी जैसे महामानव भाग ले रहे थे तो दूसरी तरफ अनेक फिरकापरस्त और राष्ट्रविरोधी तत्त्व भी भाग ले रहे थे जिनके कारण इस सम्मेलन की कार्यवाही का ठीक ढंग से संचालन नहीं हुआ। महात्मा गांधी ने सम्मेलन के सामने अपने विचारों को प्रतिपादित करते हुए कहा था

अन्य सब दल साम्प्रदायिक हैं। कांग्रेस ही केवल सारे भारत और सबके हितों का प्रतिनिधित्व कर सकती है। यह कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं किसी भी रूप में यह साम्प्रदायिकता का कट्टर विरोध करती है। कांग्रेस नस्ल रंग और धर्म का भेदभाव नहीं जानती। इसका द्वार सबके लिए खुला है। कांग्रेस ही केवल एक ऐसी संस्था है जिसका प्रभाव ■ गांवों पर है। कांग्रेस ही सारे अल्पमतों का प्रतिनिधित्व करती है। महात्मा गांधी ने कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप की वकालत करने के साथ-साथ द्वय शासन को क्रियान्वित करने का कड़े शब्दों में विरोध किया। उन्होंने सुरक्षा सेना तथा वैदेशिक विभाग पर भारतीयों का पूर्ण नियन्त्रण रखने की मांग की। उन्होंने यह भी कहा कि भारत को राष्ट्रमंडल से संबंध विच्छेद करने का भी अधिकार होना चाहिए। गांधीजी ने इस समस्या को सुलझाने के लिए नेहरू प्रतिवेदन के आधार पर प्रयत्न किया किन्तु उनको सफलता नहीं मिली। अल्पमतों तथा अनुसूचित जातियों ने पृथक निर्वाचन तथा पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सम्मेलन विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करता था और इसी कारण यह सफल नहीं हो सका।

तृतीय स्वयं ब्रिटिश सरकार की भूमिका भी इस सम्मेलन की असफलता के लिए उत्तरदायी थी। सम्मेलन के पूर्व मजदूर सरकार ने वित्तीय-संकट के कारण त्यागपत्र दे दिया था एवं उसकी जगह रामजे मैकडोनेल्ड ने एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना कर ली थी। कहने को तो यह एक राष्ट्रीय सरकार थी परन्तु इसमें अनुदार दल की प्रमुखता थी जिसे भारतीय राष्ट्रीयता से कोई सहानुभूति नहीं थी। अनुदारवादी ऐसे किसी भी प्रयास को नाकाम करने को तत्पर थे जिसके कारण ब्रिटेन की स्थिति पर किसी भी प्रकार की आंच आती थी। सरकार को भारत की नौकरशाही के हितों की रक्षा करनी थी जिसके कारण वह ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहती थी जो नौकरशाही की स्थिति को प्रभावित करने वाला हो। ब्रिटिश सरकार गांधीजी के साथ समानता के आधार पर बातचीत करके देश की राजनीति की पहल अपने हाथ से जाने देने को तैयार नहीं थी। पुनः ब्रिटिश सरकार ने सम्मेलन के परिणामों को विफल बनाने के लिए सभी संभव साधनों का प्रयोग किया। उसने प्रतिनिधियों का निर्वाचन साम्प्रदायिकता और प्रजातन्त्र विरोधी

आधार पर किया। उसने मुस्लिमलीग और अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधियों की भावनाओ का कांग्रेस के विरोध म प्रयोग किया। ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य समस्या का हल करना नही अपितु समस्या को कूटनीतिक चाल से और अधिक जटिल बनाना भी था। वह कांग्रेस को दुविधापूर्ण स्थिति मे डालना चाहती थी जिसके कारण वह ब्रिटिश विरोधी मोर्चा बनाने में सफल न हो सके। ब्रिटिश सरकार यदि कांग्रेस की मांगो को स्वीकार कर लेती तो निसन्देह उसे कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप को स्वीकार करना पडता जो उसके लिए सर्वथा अस्वीकार्य था।

यद्यपि इस सम्मेलन का निराशापूर्ण परिस्थितियों में अन्त हुआ परन्तु फिर भी इसके कुछ अच्छे परिणाम निकले। प्रथम इस सम्मेलन ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्रिटेन में सत्ता परिवर्तन से भारत के सम्बन्ध मे नीति में किसी भी स्थिति में परिवर्तन नही होता। भारत के लिए चाहे वह मजदूर दल हो या अनुदार दल दोनो समानरूप से घातक हैं क्योकि उनका चिन्तन ब्रिटेन का स्वार्थ और ब्रिटिश साम्राज्यवादी हित ही होता है तथा यह प्रवृत्ति उन्हे इस बात की प्रेरणा नही देती कि वे भारतीय समस्या के समाधान के लिए कोई ठोस प्रयत्न करें। द्वितीय इस सम्मेलन ने कांग्रेस को भी इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि अंग्रेज शक्ति की परिभाषा से ही नियन्त्रित किए जा सकते हैं समझौतो और वार्ताओ के माध्यम से नहीं। तृतीय अंग्रेज किसी भी हालत म भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए तैयार नही हैं उनका तो एकमात्र लक्ष्य राष्ट्रीयता की धारा को अवरुद्ध करना है। सम्मेलन के परिणामो ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सरकार किसी भी ऐसी व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है जो उसकी स्थिति को प्रभावित करती हो।

सक्षेप में हम यह कह सकते है कि द्वितीय गोलमेज सम्मेलन जिसको सवैधानिक गतिरोध दूर करने के उद्देश्य से आमन्त्रित किया गया था अपवित्र कूटनीति के हाथो अपना मूल उद्देश्य खो बैठा। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले तत्त्व किसी ध्येय को प्राप्त करने के आदर्श से सचालित होकर केवल अपनी स्थिति को मजबूत करने की दिशा मे जुटे हुए थे और जिन पर दबाव राजनीति का बहुत बडा प्रभाव था। वास्तव मे यह सम्मेलन ब्रिटिश कूटनीति का वाग्जाल था जिसका उद्देश्य भारतीय राजनीति के गतिरोध के पहलुओ को सुलझाना नही था अपितु उसे और मजबूत बनाना था और इसमे यह निरर्थक एव भडकीली वादविवाद-सभा अत्यन्त सफल रही।

(४) साम्प्रदायिक निर्णय

ब्रिटिश सरकार के प्रधानमंत्री रामजे मेकडोनेल्ड ने द्वितीय गोलमेज-सम्मेलन के प्रारम्भ म यह घोषणा की थी कि यदि साम्प्रदायिक प्रश्न का कोई सर्वसम्मत समाधान प्रस्तुत नही किया गया तो ब्रिटिश सरकार को अपनी कामचलाऊ घोषणा करनी पडेगी। सम्मेलन के समाप्त होने तक भारतीय प्रतिनिधि साम्प्रदायिक प्रश्न

पर कोई अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुंच सके। अतः १७ अगस्त १९३२ ई० को मैकडोनल्ड ने अपने निर्णय की घोषणा की जिसे साम्प्रदायिक निर्णय या मैकडोनेल्ड निर्णय कहते हैं। प्रधानमंत्री ने अपने निर्णय की घोषणा के साथ ही एक विकल्प की भी व्यवस्था की। उन्होंने कहा यदि उन्हें यह विश्वास हो जाएगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों को एक अन्य पक्ष योजना स्वीकार है तो वह ब्रिटिश संसद से सिफारिश करेंगे कि साम्प्रदायिक निर्णय में रखी हुई योजना के बदले में नई योजना स्वीकार करली जाए। साम्प्रदायिक निर्णय की मुख्य बातें निम्नलिखित थी —

१ प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में सदस्यों की संख्या दुगुनी कर देना
२ अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था। अल्पसंख्यकों में मुसलमान, सिख और ईसाई आदि को शामिल किया गया
३ अछूतों को हिन्दुओं से भिन्न मानकर अलग निर्वाचन तथा प्रतिनिधित्व अधिकार प्रदान करने की व्यवस्था की गयी
४ प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में स्त्रियों के लिए ३ प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर दिए गए
५ भू स्वामियों के लिए सुरक्षित स्थानों पर पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की गयी
६ श्रम, व्यवसाय, उद्योग आदि संगठनों के लिए विशेष व्यवस्था की गयी और
७ विभिन्न प्रान्तों में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में गुरुभार की व्यवस्था लेकिन उसे विशेष रीति से लागू करना था।

साम्प्रदायिक निर्णय के मूल में अंग्रेजों की कुत्सित मनोवृत्ति काम कर रही थी। उन्होंने बांटो एवं राज्य करो के सिद्धान्त को अपनाकर देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने, हरिजनों को अलग प्रतिनिधित्व देकर हिन्दू-समाज में विष घोलने, भारतीय अल्पसंख्यकों को अनुचित महत्त्व प्रदान कर राष्ट्रीय एकता को छिन्न भिन्न करने, राजाओं और जागीरदारों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था कर अप्रजातान्त्रिक तत्वों को प्रोत्साहन देकर भारत में प्रगतिशील तत्वों की गतिविधियों को नियन्त्रित एवं कमजोर करने का प्रयत्न रखा था। फलस्वरूप यह स्वाभाविक ही था कि कांग्रेस क्षेत्र में इस निर्णय के सम्बन्ध में प्रतिकूल एवं मुस्लिम लीग क्षेत्र में अनुकूल प्रतिक्रिया होती। कारो। अनुसूचित जन जातियों के लिए निर्वाचन की व्यवस्था से कांग्रेसी क्षेत्रों में मुर्दनी छा गयी और वे भावी रणनीति के सम्बन्ध में कदम उठाने की योजना बनाने लगे। मुसलमानों में इसीलिए खुशी का वातावरण छा गया कि एक ओर तो उन्हें अपने पृथक अस्तित्व के लिए ठोस आधार प्राप्त हो गया तो दूसरी तरफ हिन्दुओं में फूट डालने की व्यवस्था से भी उन्हें अपना वांछित उद्देश्य प्राप्त होने के आसार नजर आने दिखायी देने लगे। हिन्दू समाज में अस्पृश्यता की विभीषिका से पीड़ित अछूत वर्ग सदियों की दासता से कुछ राहत अनुभव करने लगा। उनको भी अपनी आवाज बुलन्द करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया।

मेकडोनेल्ड की १९३२ ई० की घोषणा को साम्प्रदायिक निर्णय की संज्ञा न देकर आरोपित व्यवस्था कहना अधिक उचित है। किसी भी निर्णय में मध्यस्थ की व्यवस्था होती है। परन्तु यहाँ तो एकपक्षीय ब्रिटिश सरकार ने अपना निर्णय भारतवासियों पर जबरदस्ती लाद दिया। इस निर्णय द्वारा हिन्दुओं के साथ भयंकर अन्याय किया गया। पंजाब और बंगाल में जहाँ हिन्दू अल्पमत में थे उनको अपनी जनसंख्या के अनुपात से कम प्रतिनिधित्व दिया गया। मुसलमान और सिक्खों को हिन्दुओं की तुलना में अधिक स्थान प्रदान किए गए। भारतीय ईसाइयों को अपनी जनसंख्या के अनुपात से तिगुना और यूरोपियनों को अपने अनुपात से बाईस गुना दिया गया। अनुसूचितों के लिए पृथक निर्वाचन व्यवस्था को स्वीकार करके हिन्दुओं की मूलभूत व्यवस्था पर प्रहार किया गया तथा करोड़ों अनुसूचित लोगों को हिन्दुओं से अलग करने का षड्यन्त्र किया गया। स्त्रियों और भारतीय ईसाइयों को पृथक सुविधाएँ और हरिजनों को पृथक निर्वाचन देकर हिन्दुओं को निःशस्त्र करने तथा भारतीय एकता को छिन्न भिन्न करने का हरसम्भव प्रयत्न किया गया था। मेहता और पटवर्धन के शब्दों में यह विभाजन धर्म एवं व्यवसाय के आधार पर किया गया था तथा सद्भावपूर्ण विभाजन की कोई भी सम्भावना बचाकर नहीं रखी गयी थी।

इस निर्णय द्वारा सम्प्रदायवाद के अधिनायकवाद की स्थापना का भय पैदा हो गया। प्रत्येक प्रान्त में एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदाय पर शासन का भय हो गया। पंजाब में मुसलमानों का और उत्तरप्रदेश में हिन्दुओं का निरंकुशवाद स्थापित होने की सम्भावना पैदा हो गयी। पंडित मालवीय के शब्दों में एक सम्प्रदाय पर दूसरे सम्प्रदाय का निरंकुश शासन स्थापित करना ही साम्प्रदायिक निर्णय का एकमात्र लक्ष्य था।

साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का संवैधानिक एवं ऐतिहासिक आधार भी नहीं था। किसी भी देश में धर्म, नस्ल या जाति के आधार पर प्रतिनिधित्व की कल्पना करना बोधशक्ति से बाहर और इतिहास की व्यवस्था के प्रतिकूल ही कहा जा सकता है। संक्षेप में यह निर्णय अंग्रेजों की एक चाल थी जिसका उद्देश्य भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों को चिरकाल तक जमाए रखना था।

(४) पूना समझौता

साम्प्रदायिक पंचाट महात्मा गांधी को स्वीकृत नहीं था क्योंकि इसके द्वारा दलित वर्गों या हरिजनों को हिन्दुओं से अलग करने और हिन्दुओं की एकता नष्ट करने की कोशिश की गयी थी। महात्मा गांधी ने सरकार को पहले ही यह चेतावनी दे दी थी कि यदि साम्प्रदायिक पंचाट को भारत पर लागू किया गया तो वे ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय का अपनी जान की बाजी लगाकर विरोध करेंगे। सरकार ने महात्मा गांधी की इस चेतावनी की कोई परवाह नहीं की। अतः २ सितम्बर १९३२ ई० को महात्मा गांधी ने अपना मरण व्रत आरम्भ किया। डा० अम्बेडकर ने इस व्रत को राजनीतिक धूर्तता बताया। कुछ लोगों ने इसे अपनी माँग मनवाने का तरीका बताया। परन्तु गांधीजी के मरण-व्रत का काफी अच्छा प्रभाव हुआ।

इससे हरिजन एवं हिन्दू-नेताओं को निर्णय के दुष्प्रभावों का एहसास हुआ। फलस्वरूप पंडित मदनमोहन मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद तथा एम. एस. राजा के प्रयत्नों से एक समझौता हुआ। इस समझौते को महात्मा गांधी तथा अम्बेडकर ने स्वीकार कर २६ सितम्बर १९३२ ई. को इस पर हस्ताक्षर कर दिए। इस समझौते को पूना-समझौता कहा जाता है। गांधीजी ने समझौते के पश्चात् अपना व्रत तोड़ दिया।

इस समझौते के अनुसार हिन्दुओं और हरिजनों का प्रतिनिधित्व इकट्ठा ही रहा परन्तु हरिजनों को जितने स्थान साम्प्रदायिक पंचाट के अनुसार प्राप्त हुए थे उससे दुगुने से भी अधिक स्थान इस समझौते के अनुसार दिए गए। साम्प्रदायिक पंचाट के अनुसार हरिजनों को ७१ स्थान दिए गए थे परन्तु पूना-समझौते के अनुसार उनके १४८ स्थान सुरक्षित कर दिए गए। इन स्थानों का चुनाव दो अवस्थाओं में होना निश्चित हुआ। प्रारम्भिक चरण में हरिजनों को साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली के आधार पर प्रत्येक स्थान के लिए चार उम्मीदवार चुनने थे। द्वितीय चरण में हिन्दू तथा हरिजन मिल कर मतदान करते थे। इसके अतिरिक्त उन साधारण स्थानों के लिए जो हरिजनों के लिए सुरक्षित नहीं किए गए थे हरिजनों को चुनाव में एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार दिया गया। इस समझौते के अनुसार केन्द्रीय विधानमंडल में हरिजनों को संयुक्त चुनाव पद्धति के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया परन्तु उनके उसी तरह स्थान सुरक्षित कर दिए गए जिस तरह प्रांतों में। लगभग १८ प्रतिशत स्थान ब्रिटिश भारत में देशी रियासतों को छोड़कर, हरिजनों के लिए सुरक्षित कर दिए गए। स्थानीय संस्थाओं और सार्वजनिक सेवाओं में हरिजनों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। हरिजनों की शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता की कुछ शर्तें रखी गई।

पूना-समझौते की सूचना ब्रिटिश सरकार को दी गई जिसने इसे स्वीकार कर लिया। गांधी जी को जेल से मुक्त कर दिया गया।

(६) एकता सम्मेलन

गांधी जी के मरण-व्रत के समय मदनमोहन मालवीय एवं मौलाना शौकत अली ने हिन्दू मुसलमान एकता के प्रयास प्रारम्भ किए परन्तु कट्टर साम्प्रदायिक विचार धारा वाले मुसलमान नेताओं ने इसका विरोध किया। सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलन के अध्यक्ष ने ७ अक्तूबर १९३२ ई. को यह घोषणा की कि पृथक या संयुक्त निर्वाचन के विवाद को पुनः उठाना बेकार है एकता के लिए यदि बहुसंख्यक सम्प्रदाय कुछ प्रस्ताव रखे तो उन पर विचार किया जा सकता है। श्री मालवीय को इस घोषणा से आशा बंधी और उन्होंने सर्वदलीय मुस्लिम अधिवेशन से हिन्दुओं और सिक्खों के प्रतिनिधियों से बातचीत करने के लिए एक समिति गठित करने का सुझाव दिया। ३ नवम्बर १९३२ ई. में इलाहाबाद में एकता-परिषद् का सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर सहमति हो गई परन्तु बंगाल एवं मध्य प्रांत में

विधानमण्डल में प्रतिनिधित्व से सम्बन्धित विवाद ने सद्भावनापूर्ण वातावरण को खराब कर दिया। इसी समय भारत मंत्री सैमुअल होर ने मुसलमानों को केन्द्रीय विधानमण्डल में ३३ १/३ प्रतिशत प्रतिनिधित्व देने की घोषणा कर दी। फलस्वरूप मुसलमान नेताओं की हिन्दू नेताओं से बातचीत करने में रुचि में कमी हो गई। २० नवम्बर १९३२ ई० को लीग ने इलाहाबाद एकता सम्मेलन के निर्णयों की आलोचना की तथा उन्हें अस्वीकृत घोषित कर दिया एवं साम्प्रदायिक निर्णय से सहमति प्रकट कर दी। दिसम्बर १९३२ ई० में एकता परिषद् ने पुनः इस प्रकार का आयोजन किया परन्तु एकता के प्रयत्न में सफल नहीं हुए।

(७) तृतीय गोलमेज सम्मेलन

भारत में घटित राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित हुई ब्रिटिश सरकार भारत में शासन सुधार की अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए क्रियाशील बनी रही। सरकार ने १७ नवम्बर १९३२ ई० को भारतीय प्रतिनिधियों का तृतीय गोलमेज सम्मेलन लन्दन में आयोजित किया जो २४ दिसम्बर १९३२ ई० तक चला। इस सम्मेलन में भारत से केवल राजभक्तों और सम्प्रदायवादियों ने भाग लिया। ब्रिटेन में भी मजदूर दल ने इसमें भाग लेने से इन्कार कर दिया। कांग्रेस इससे बिल्कुल अलग रही। फलतः सम्मेलन किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सका। इसने केवल विगत गोलमेज परिषदों के निर्णयों की पुष्टि की और नए संविधान के संबंध में कुछ बातों पर निर्णय लिया। भारतीय प्रतिनिधियों ने कुछ प्रगतिशील प्रस्ताव रखे जिन पर सम्मेलन में कोई ध्यान नहीं दिया गया।

सन् १९३५ के सुधारों की तरफ कदम

ब्रिटिश सरकार ने मार्च १९३३ ई० में एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया। इसमें भारत के लिए नए सुधारों और भावी संविधान पर प्रकाश डाला गया। श्वेत पत्र में सभी प्रस्ताव अत्यन्त प्रतिगामी थे। भारत के किसी प्रगतिशील तत्त्व को यह स्वीकृत नहीं था परन्तु ब्रिटिश सरकार ने इसकी चिन्ता नहीं की और आगे चलकर इस श्वेत-पत्र को ही १९३५ ई० के भारत अधिनियम का आधार बनाया। श्वेत पत्र के प्रकाशित होने तक सविनय अवज्ञा आन्दोलन मन्द पड़ गया था और भारतीयों के मन में व्यवस्थापिका सभाओं में प्रवेश करने की भावना पैदा हो गई थी। ३१ मार्च १९३२ ई० को कांग्रेस कार्यकर्ताओं की एक बैठक डॉ० अन्सारी के नेतृत्व में दिल्ली में हुई जिसमें स्वराज्य दल को पुनः जीवित करने का निश्चय किया गया। यह भी निश्चय किया गया कि कांग्रेस आगामी निर्वाचन में भाग ले। गांधी जी ने अपनी सहमति प्रदान कर दी। एक निर्वाचन बोर्ड की स्थापना की गई। १९३४ ई० में कांग्रेस ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन में भाग लिया उसे आशातीत सफलता मिली। पंजाब के अतिरिक्त उसे सभी प्रांतों में विजय प्राप्त हुई। कांग्रेस ने व्यवस्थापिका सभा में उत्साह और तत्परता से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय विदेशों में घटित होने वाली घटनाओं से विशेषकर रूस में हो रहे विकास

न भारतीयों को प्रभावित कर दिया। जवाहरलाल नेहरू एवं सुभाषचन्द्र बोस ने समाजवादी देशों का दौरा किया। समाजवादी देशों में हो रही प्रगति का इन लोगों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। कांग्रेस में विद्यमान प्रगतिशील तत्त्वों ने सुभाष बोस के नेतृत्व में कांग्रेस समाजवादी दल (१९३४) का निर्माण किया। इस दल ने विश्व के कमजोर वर्ग एवं भारतीय जनता की एकता पर बल दिया तथा भारतीय जनता से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करने का आह्वान किया। कुछ समय पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारत में शासन सुधार के लिए १९३५ ई० का भारत-सरकार अधिनियम स्वीकृत कर लिया।



सन् १९३५ का भारत-सरकार अधिनियम

अधिनियम की स्वीकृति

मार्च १९३३ ई० के श्वेत पत्र में दिए हुए सरकारी निर्णयों एव प्रस्तावों पर विचार करने के लिए शीघ्र ही एक संयुक्त ससदीय समिति बनाई गई। ११ नवम्बर १९३४ को इस समिति का प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ। इस प्रतिवेदन मे थोड़ा बहुत परिवर्तन कर ब्रिटिश ससद ने एक अधिनियम पारित किया। अगस्त १९३५ ई में इसे ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस अधिनियम को १९३५ ई का भारत सरकार का अधिनियम कहा जाता है। यह अधिनियम काफी लम्बा और जटिल है। इसमे ३२१ धाराए और १० परिशिष्ट हैं। यद्यपि इस अधिनियम में अनेक कमियां थी फिर भी यह अधिनियम अत्यन्त महत्व का था क्योंकि इसमें पहली बार ब्रिटिश प्रान्तो एव देशी रियासतो को मिलाकर एक सघ स्थापित करने प्रान्तो मे दोहरा शासन के स्थान पर प्रान्तीय स्वराज्य प्रारम्भ करने और केन्द्र में दोहरा शासन की स्थापना किए जाने की व्यवस्था की गई थी।

अधिनियम की प्रमुख विशेषताए

(१) भारतीय सघ

सन् १९३५ के अधिनियम की एक विशेषता यह है कि इसके द्वारा अखिल भारतीय सघ की स्थापना की गई। यह सघ ११ ब्रिटिश गवर्नर प्रांतो ६ चीफ कमिश्नर प्रांतों और ऐसी देशी रियासतो से मिलकर बनाना था जो स्वयं की इच्छा से सघ मे सम्मिलित होने के लिए राजी हो जाए। ब्रिटिश प्रान्तो के लिए सघ में सम्मिलित होना अनिवार्य था जबकि देशी रियासतों के लिए ऐच्छिक था। प्रत्येक देशी रियासत को जो सघ में प्रवेश करने की इच्छुक हो एक प्रवेश लेख पर हस्ताक्षर करने थे। इस प्रवेश लेख मे उस देशी रियासत को उन शर्तों का उल्लेख करना था जिनके आधार पर वह रियासत सघ मे प्रवेश पाने के लिये तयार थी। सघ की इकाइयों को अपने आतरिक मामलो मे स्वराज्य प्राप्त था।

(२) केन्द्र मे दोहरा शासन

अधिनियम की दूसरी विशेषता केन्द्र मे दोहरा शासन स्थापित करने की व्यवस्था का किया जाना था। संघीय विषयो को दो भागो मे विभक्त किया गया। कुछ सघीय विषयो को गवर्नर जनरल के हाथ मे निश्चित कर दिया गया ताकि

वह उनकी समुचित व्यवस्था कर सके। बाकी के विषय हस्तान्तरित विषय रखे गए। सुरक्षित विषयों में प्रतिरक्षा, चर्च, विदेशी विषय और कबायली क्षेत्रों की व्यवस्था शामिल थी। सुरक्षित विषयों का शासन करने के लिए गवर्नर जनरल अधिक से अधिक ३ परामर्शदाता नियुक्त कर सकता था जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करता था। हस्तान्तरित विषयों के लिए गवर्नर जनरल की सहायता तथा परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिमण्डल की स्थापना की गई थी जिसमें अधिक से अधिक १० सदस्य हो सकते थे। गवर्नर जनरल को हिदायत दी गयी थी कि वह ऐसे व्यक्तियों को मन्त्रि परिषद् में नियुक्त करे जिनको पीछे विधानमण्डल में स्थायी बहुमत हो। उसको यह भी हिदायत दी गई थी कि वह मन्त्रि परिषद् में देशी रियासतों और अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को भी शामिल करे। गवर्नर जनरल को हस्तान्तरित तथा सुरक्षित दोनों प्रकार के विषयों के संचालन का अधिकार था और उसे इन दोनों में सहयोग उत्पन्न करना था। मन्त्रिमण्डल विधानसभा के प्रति उत्तरदायी था। गवर्नर जनरल को यह भी उत्तरदायित्व दिया गया था कि वह मन्त्रि परिषद् तथा परामर्शदाताओं में सामूहिक विचार विमर्श को प्रोत्साहन दे।

(३) प्रान्तीय स्वराज्य

इस अधिनियम की तीसरी बड़ी विशेषता प्रान्तीय स्वराज्य या स्वायत्त शासन का प्रारम्भ था। इस अधिनियम के अनुसार प्रांतों को अपने विषयों में काफी सीमा तक प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई तथा उन्हें एक नया संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। प्रान्तों में रक्षित और हस्तान्तरित विषयों का अन्तर समाप्त कर दिया गया। जो विषय प्रान्तों को दिए गए उनको उनमें स्वशासन दे दिया गया और केन्द्रीय हस्तक्षेप यथासम्भव सीमित कर दिया गया। प्रान्तीय शासन को चलाने का उत्तरदायित्व मन्त्रियों को दिया गया जो अपने कार्यों के लिए विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थे। इस प्रकार प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई। गवर्नरों को यद्यपि काफी शक्तियां प्राप्त थीं फिर भी वे शासन में अधिक हस्तक्षेप नहीं करते थे।

(४) केन्द्र एवं प्रान्तों के मध्य शक्ति विभाजन

अधिनियम की चौथी विशेषता केन्द्र एवं प्रान्तों में शक्तियों का बटवारा था। इसके लिए ३ सूचियां बनाई गईं। संघीय सूची में ५९ विषय रखे गए। जो विषय अखिल भारतीय हित के थे वे विषय इस सूची में सम्मिलित किए गए। उदाहरण स्वरूप सशस्त्र सेनाएं, विदेशी मामले, केन्द्रीय सेवाएं, डाक व तार, मुद्रा व नोट आदि। संघीय सूची पर केवल केन्द्र विधानमण्डल को कानून बनाने का अधिकार दिया गया। प्रान्तीय सूची में ५४ विषय थे। शिक्षा, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शान्ति एवं सुरक्षा, भू राजस्व, कृषि, वन, सिंचाई व नहरें, प्रान्तों की सीमा में व्यापार एवं उद्योग इस सूची में सम्मिलित किए गए थे। समवर्ती सूची में ३६ विषय रखे गए थे जिस पर संघीय एवं प्रान्तीय विधानमण्डल दोनों को कानून

बनाने का अधिकार दिया गया था दोनों द्वारा एक ही विषय पर कानून बनाने पर केन्द्रीय विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता था। अवशिष्ट शक्तियों के बारे में गवर्नर जनरल को अपनी इच्छा से संघीय विधानमण्डल या प्रान्तीय विधानमंडल को कानून बनाने की शक्ति दे देने का अधिकार दिया गया था।

(५) रक्षा कवचों की व्यवस्था

इस अधिवेशन की पांचवी विशेषता इसके द्वारा अल्पमतों एवं अनेक वर्गों की रक्षा के बहाने में रक्षा कवचों एवं संरक्षण की व्यवस्था का किया जाना था। अंग्रेजी सरकार ने अधिनियम में इनका सम्मिलित करना इसलिए आवश्यक समझा था कि जिससे अल्पमतों को बहुमत का किसी प्रकार से भय न रहे तथा यह अधिनियम अच्छी प्रकार से काम कर सके। इस अधिनियम में गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार प्रदान किए गए थे जिनका विस्तृत वर्णन आगे किया जाएगा।

(६) ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता

इस अधिनियम की छठी विशेषता ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता को अक्षुण्ण रखना था। अधिनियम में किसी भी प्रकार के संशोधन का अधिकार संघीय या प्रान्तीय विधानमंडलों को नहीं दिया गया था। इस विषय में सारी शक्ति ब्रिटिश संसद के हाथ में रखी गयी थी। प्रान्तीय विधानमण्डल कुछ सीमाओं में रहते हुए अधिनियम में कुछ संशोधन की सिफारिश कर सकते थे।

(७) अधिनियम की प्रस्तावना

इस अधिनियम की सातवी विशेषता इसमें नयी प्रस्तावना का अभाव था। अधिनियम में कोई नयी प्रस्तावना नहीं जोड़ी गयी। सन् १९१९ के अधिनियम को रद्द कर देने के बाद भी उसी अधिनियम की प्रस्तावना को १९३५ ई के अधिनियम के साथ जोड़ दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने यह इसलिए किया था कि भारतीयों को यह ध्यान रहे कि ब्रिटिश सरकार का अंतिम लक्ष्य भारत में औपनिवेशिक स्थिति या औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने का है।

इस अधिनियम की अन्य विशेषताएं बर्मा को भारत से पृथक करने का निश्चय बरार के ऊपर निजाम हैदराबाद की प्रभुता का स्वीकार किया जाना संघीय न्यायालय की स्थापना और केन्द्र में दो सदन के विधानमंडल की व्यवस्था आदि हैं।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध

इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित थे —

(१) सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा भारत सरकार पर नियन्त्रण निगरानी तथा निर्देशन का अधिकार ब्रिटिश सम्राट को दे दिया गया किन्तु इससे भारत मंत्री की शक्ति में कोई अन्तर नहीं आया। क्योंकि ब्रिटिश सम्राट की शक्तियों का प्रयोग वस्तुत भारत मंत्री द्वारा ही होता था।

(२) भारत मंत्री का इससे पूर्व के सभी कार्यों पर निगरानी और नियन्त्रण

रखने का अधिकार था। सन् १९३५ के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में स्वायत्त शासन की स्थापना का निश्चय किया गया तथा केन्द्र में दोहरा शासन लागू करने का। यह भाव व्यक्त हो गया कि उन कार्यों पर जिनका उत्तरदायित्व भारतीय मन्त्रियों को सौंपा जाए भारत मन्त्री का नियन्त्रण ढीला कर दिया जाए। अतः हस्तान्तरित मामलों में भारत मन्त्री का नियन्त्रण ढीला कर दिया गया। जिन मामलों पर गवर्नर जनरल और गवर्नर को व्यक्तिगत निर्णय की शक्ति दी गयी थी उन विषयों पर भारत मन्त्री का नियन्त्रण ज्यों का त्यों बना रहा। भारत मन्त्री को प्रतिरक्षा, विदेशी सम्बन्ध, कबायली क्षेत्र, भारत का रिजर्व बैंक, संघीय रेलवे और धार्मिक मामलों पर काफी नियन्त्रण प्राप्त था। वह भारतीय नागरिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा आदि के अधिकारियों की नियुक्ति करता था और उनकी सेवा की शर्तें तय करता था। वह भारतीय मामलों में ब्रिटिश ताज का संवैधानिक परामर्शदाता था। जो विधेयक गवर्नर जनरल की स्वीकृति के बाद सम्राट की अनुमति के लिए भेजे जाते थे उनको स्वीकार करने या अस्वीकार करने के विषय में वह सम्राट को परामर्श देता था। भारत मन्त्री ब्रिटिश संसद के एजेन्ट के रूप में कार्य करता था तथा भारतीय मामलों की सूचना ब्रिटिश संसद को देता था। सन् १९३५ के अधिनियम के अनुसार वह निश्चित रूप से सबसे अधिक शक्तिशाली अधिकारी था।

(३) इस अधिनियम के द्वारा भारत परिषद समाप्त कर दी गयी तथा भारत-मन्त्री को परामर्श देने के लिए कम से कम ३ और अधिक से अधिक ६ परामर्शदाता नियुक्त करने का निश्चय किया गया। इन परामर्शदाताओं की नियुक्ति ५ वर्ष के लिए होती थी तथा उनमें प्रत्येक को १३५० पौंड वार्षिक वेतन इंगलैंड के धन कोष से मिलता था। परामर्शदाताओं में से कम से कम आधे व्यक्ति ऐसे होने चाहिए थे जो १० वर्ष तक भारत में रह चुके हों तथा नियुक्ति के समय उन्हें भारत छोड़े हुए दो वर्ष से अधिक नहीं हुए हों। परामर्शदाताओं का कार्य केवल परामर्श देना था और भारतीय सेवाओं के विषयों के अतिरिक्त यह भारत मन्त्री की इच्छा पर निर्भर था कि वह उनके परामर्श को माने या न माने।

(४) सन् १९३५ के अधिनियम के द्वारा हाई कमिश्नर के सम्बन्ध में कोई अधिक परिवर्तन नहीं किए गए। इस अधिनियम द्वारा केवल यह व्यवस्था की गयी कि उसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल केवल अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार करेगा।

(५) गवर्नर जनरल को भारतीय संघ का मुखिया बनाया गया। गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट, प्रधानमन्त्री के परामर्श से ५ वर्ष के लिए करता था। उसको २ लाख ५१ हजार ८०० रुपया प्रतिवर्ष भारतीय कोष से मिलते थे। उसको अन्य भत्ते भी प्राप्त थे। गवर्नर जनरल सारे शासन की धुरी था और उसे अत्यधिक शक्तियाँ दी गयी थीं। सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा प्रदत्त गवर्नर जनरल की शक्तियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

(i) व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ (ii) स्वेच्छाचारी शक्तियाँ और (iii) मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ।

(i) गवर्नर जनरल को निम्नलिखित विशेष उत्तरदायित्व एवं व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ सौंपी गयी थीं —

१ भारत तथा उसके किसी भाग की शान्ति को किसी बड़े संकट से रक्षा करना
२ सार्वजनिक सेवाओं के उचित हितों एवं मांगों की रक्षा करना
३ अल्प संख्या वाली जातियों एवं वर्गों के उचित हितों की रक्षा करना
४ भारतीय रियासतों के अधिकारों समुचित हितों तथा उनके शासकों के सम्मान की रक्षा करना
५ अंग्रेजों तथा उनके माल के विरुद्ध पक्षपात को रोकथाम करना
६ संघ सरकार के आर्थिक स्थायित्व तथा साख की रक्षा करना
७ कार्यकारिणी परिषद् की तरफ से कोई ऐसा कार्य न होने देना जिससे वाणिज्य के सम्बन्ध में कोई असमान व्यवहार या भेदभाव दिखाई दे, और
८ यह देखना कि उसके किसी कार्य से उन विषयों में कर्त्तव्यपालन में बाधा न पड़े जिनमें अधिनियम के अनुसार उसे या तो अपनी स्वेच्छाचारी शक्तियों के अनुसार कार्य करना है या अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार व्यवहार करना है।

(ii) गवर्नर जनरल को अनेक विषयों में अपनी स्वेच्छानुसार कार्य करने का अधिकार प्रदान किया गया था

(क) सुरक्षित विभागों का शासन

प्रतिरक्षा विभाग धार्मिक मामले अधिराज्यों के अतिरिक्त भारत के अन्य देशों में सम्बन्ध और कबायली क्षेत्र का शासन चलाते समय गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर करता था कि वह मन्त्रियों से परामर्श ले या न ले। वह मन्त्रियों के परामर्श से बंधा हुआ भी नहीं था। उनके परामर्श को मानना या न मानना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर करता था।

(ख) नियुक्तियाँ

गवर्नर जनरल को मन्त्रियों को नियुक्त करने एवं उनको हटाने का अधिकार था। वह मन्त्रि परिषद् की बैठकों का अध्यक्ष होता था। गवर्नर जनरल को अपनी कार्यकारिणी-परिषद् के सदस्य वित्तीय परामर्शदाता रिजर्व बैंक के गवर्नर तथा उप गवर्नर को नियुक्त करने उनको हटाने उनकी सेवाओं के नियम निर्धारित करने तथा उनके वेतन और भत्ते निश्चित करने का अधिकार था। गवर्नर जनरल को चीफ कमिश्नरों संघीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों को संघीय रेलवे संस्थान के कुछ सदस्यों को तथा रेलवे ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष को नियुक्त करने का अधिकार था।

(ग) कानूनी क्षेत्र

गवर्नर जनरल को कानूनी क्षेत्र में भी स्वेच्छाचारी अधिकार प्रदान किए

गए थे। उसे संघीय सभा के अधिवेशन को बुलाने स्थगित करने एवं भंग करने का अधिकार था। उसे विधेयकों के सम्बन्ध में केन्द्रीय विधानमण्डल को संदेश भेजने तथा अनुचित विधेयकों को अस्वीकृत करने का अधिकार प्राप्त था। कुछ विधेयकों को उसकी पूर्व अनुमति के बिना विधानमण्डल में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। वह कुछ विशेष विधेयकों को ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति के लिए भी सुरक्षित कर सकता था। उसे अधिनियम बनाने का भी अधिकार था जो गवर्नर जनरल के अधिनियम कहे जाते थे। इन विधेयकों को वह केन्द्रीय विधानमण्डल की इच्छा के विरुद्ध बना सकता था। गवर्नर जनरल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार था। अध्यादेश दो प्रकार के होते थे। प्रथम जब संघीय विधानमण्डल का बैठक नहीं हो रही होती और कोई आपत्कालीन स्थिति उत्पन्न हो जाती तो गवर्नर जनरल अध्यादेश जारी कर सकता था। यदि ये अध्यादेश विधानमण्डल की बैठक प्रारम्भ होने के ६ सप्ताह के अन्दर विधानमण्डल के द्वारा स्वीकार नहीं किए जाते तो उनकी अवधि समाप्त हो जाती तथा वे लागू नहीं किए जा सकते थे।

द्वितीय गवर्नर जनरल अपनी शक्तियों या व्यक्तिगत निर्णयों की शक्तियों के अनुसार अपने कार्यों के लिए आवश्यक समझे तो अध्यादेश जारी कर सकता था। इस प्रकार के अध्यादेश ६ महीने तक जारी रहते थे और किसी दूसरे अध्यादेश द्वारा इनकी अवधि छः माह के लिए और बढ़ाई जा सकती थी।

(घ) संविधान को स्थगित करने का अधिकार

यदि गवर्नर जनरल यह महसूस करे कि संघीय सरकार अधिनियम के अनुसार नहीं चलायी जा सकती है तो उसे इस अधिनियम की धारा ४५ के अन्तर्गत एक घोषणा द्वारा संविधान को स्थगित करने का अधिकार प्राप्त था। संविधान के विफल होने पर वह उन सब अधिकारों एवं शक्तियों का प्रयोग कर सकता था जो पहले किसी भी संघीय शक्ति के हाथ में थी और उनके द्वारा उसका प्रयोग होता था। संविधान की विफलता की घोषणा को गवर्नर जनरल को भारत मन्त्री के पास भेजना पड़ता था जो उसे संसद के दोनों सदनों के सामने रखता था। इस घोषणा का प्रभाव छः महीने तक रहता था। संसद इसको समय से पूर्व भी एक प्रस्ताव द्वारा रद्द कर सकती थी।

(ङ) मन्त्रियों के कार्य विभाजन का अधिकार

गवर्नर जनरल को अपने मन्त्रियों में कार्य का विभाजन करने सरकारी कार्य को आसानी से चलाने एवं शासन सम्बन्धी सूचनाओं की जानकारी शीघ्र देने हेतु नियम एवं विनियम बनाने का अधिकार था।

गवर्नर जनरल को हस्तान्तरित विषयों का कार्य मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार चलाना था किन्तु जहाँ पर उसके विशेष उत्तरदायित्व का प्रश्न उत्पन्न होता था वहाँ पर वह अपने व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों का प्रयोग कर सकता था।

(६) गवर्नर जनरल को परामर्श देने के लिए एक कार्यकारिणी परिषद् और एक मन्त्रिपरिषद् के निर्माण का निश्चय किया गया। गवर्नर जनरल को

सुरक्षित विषयों का सञ्चालन करने के लिए सदस्यों की एक कार्यकारिणी परिषद् नियुक्त करने का अधिकार था। कार्यकारिणी के सदस्यों की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट द्वारा होती थी तथा वे गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी थे। कार्यकारिणी के सदस्य विधानमंडल के सदस्य होते थे। वे विधानमण्डल की बैठकों में भाग लेते थे किन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं था। कार्यकारिणी के सदस्यों के परामर्श को मानने के लिए गवर्नर जनरल बाध्य नहीं था। हस्तान्तरित विषयों का शासन गवर्नर जनरल को मंत्रि परिषद् के परामर्श के अनुसार करना था। मंत्रि परिषद् संघीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थी। मंत्रि परिषद् की संख्या १० से अधिक नहीं होती थी। गवर्नर जनरल को सन् १६३५ के अधिनियम के द्वारा एक अनुदेश पत्र दिया गया था जिसमें यह कहा गया था कि वह संघीय विधान परिषद् में बहुमत दल के परामर्श के अनुसार अपने मंत्रियों की नियुक्ति करे। गवर्नर जनरल को यह भी हिदायत दी गई थी कि वह अपने मंत्रियों में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का विकास करे। मंत्रियों के लिए विधानमण्डल के किसी भी एक सदन का सदस्य होना आवश्यक था। यदि कोई भी व्यक्ति विधानमंडल का सदस्य नहीं होता और मंत्री नियुक्त कर दिया जाए तो उसे छः मास के भीतर सदन का सदस्य बनना पड़ता था अन्यथा त्यागपत्र देना पड़ता था। मंत्रि परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता गवर्नर जनरल करता था।

(७) संघीय विधानमण्डल के दो सदन रखे गए थे राज्यसभा तथा संघीय सभा। संघीय सभा में ३७५ सदस्य थे जिनमें से १२५ स्थान देशी रियासतों तथा २५० स्थान ब्रिटिश प्रान्तों को दिए गए थे। २५० स्थानों में से ४ स्थान गैर-प्रान्तीय क्षेत्र व्यापार, वाणिज्य तथा श्रम में विभक्त किया गया था। जो स्थान देशी रियासतों को दिए गए थे उनको देशी रियासतों के शासक अपनी इच्छा से भरते थे। ब्रिटिश भारत को प्रदान किए गए स्थान अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाते थे। ये सदस्य प्रान्तीय विधानसभाओं द्वारा निर्वाचित किए जाते थे। प्रान्तीय विधानसभाओं के प्रत्येक सम्प्रदाय के सदस्य संघीय सभा के लिए अपने अपने सम्प्रदाय के सदस्यों का निर्वाचन करते थे। संघीय सभा में ८२ स्थान मुसलमानों के लिए ६ सिक्खों के लिए ८ यूरोपियनों के लिए ८ भारतीय ईसाइयों के लिए ४ आंग्ल भारतीय सम्प्रदाय के लिए ७ जमींदारों के लिए १० मजदूरों के लिए ११ वाणिज्य और व्यापार के लिए और शेष सामान्य स्थान रखे गए थे। सामान्य स्थानों में से १६ स्थान हरिजनों के लिए सुरक्षित रख गए थे। संघीय सभा की अवधि ५ वर्ष थी किन्तु गवर्नर जनरल समय से पूर्व भी इसे भंग कर सकता था।

राज्यसभा में २६० सदस्य थे जिनमें से १०४ सदस्य देशी रियासतों के थे। देशी रियासतों के स्थान राजाओं की इच्छानुसार भरे जाते थे। ब्रिटिश प्रान्तों के १५६ प्रतिनिधियों में से ६ सदस्यों को गवर्नर जनरल अपनी इच्छानुसार स्त्रियों अल्पसंख्यकों दलित वर्ग एवं परिगणित जाति को प्रतिनिधित्व देने के लिए मनोनीत

करता था। शेष १५ सदस्य ब्रिटिश प्रान्तों में से साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के अनुसार निर्वाचित किए जाते थे। राज्यसभा की सदस्यता का कार्यकाल ६ वर्ष था। १/३ सदस्य प्रत्येक तीसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते थे। राज्यसभा एक स्थायी सदन था। सारे ब्रिटिश भारत में राज्यसभा के लिए मत देने का अधिकार केवल १ लाख व्यक्तियों को प्राप्त होना था। ब्रिटिश प्रान्तों के १५ स्थानों में से ६ हरिजनों ४ सिक्खों ४९ मुसलमानों एवं ६ स्त्रियों के लिए रख गए थे।

विधानमण्डल को सघीय-सूची तथा समवर्ती-सूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार था। किसी भी विधेयक को कानून का रूप लेने के लिए यह आवश्यक था कि वह दोनों सदनों द्वारा पारित हो गया हो तथा उसे गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त हो गयी हो। किसी भी विधेयक पर यदि दोनों सदनों में मतभेद हो जाए तो उसका निर्णय दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में बहुमत द्वारा किया जाता था। केन्द्रीय विधानमण्डल की शक्तियों पर काफी सीमाएं थीं। वह संविधान में संशोधन नहीं कर सकता था। ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अधिनियम के विरुद्ध कोई अधिनियम स्वीकृत नहीं कर सकता था। गवर्नर जनरल को किसी भी विधेयक पर निषेधाधिकार के प्रयोग का अधिकार प्राप्त था।

विधानमण्डल के दोनों सदनों को प्रश्न एवं पूरक प्रश्न पूछने और प्रस्ताव पारित करने का अधिकार था। वे कामरोको प्रस्ताव भी प्रस्तुत कर सकते थे। जिन मामलों में गवर्नर जनरल को विशेष उत्तरदायित्व या स्वेच्छाचारी शक्तियां दी गयी थी उन पर विधानमण्डल को कोई नियंत्रण प्राप्त नहीं था। मन्त्रिमण्डल सघीय-सभा के प्रति उत्तरदायी था। राज्य सभा मन्त्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उनको हटा नहीं सकती थी। वित्तीय मामलों में दोनों सदनों को समान शक्तियां प्राप्त थीं किन्तु बजट पहले पहल केवल सघीय-सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकता था। सघीय-सभा को बजट पर बहस करने और उसके एक भाग पर मतदान करने का अधिकार था। विधानमण्डल उस भाग में कटौती कर सकता था या किसी मांग को स्वीकार करने से इन्कार कर सकता था पर गवर्नर जनरल को कटौती की हुई रकम अथवा अस्वीकृत की हुई राशि को स्वीकृत करने का अधिकार था।

(न) सन् १९३५ के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों में स्वशासन की स्थापना की गयी। कार्यकारिणी का प्रधान गवर्नर होता था। वह ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि होता था। गवर्नर ५ वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते थे। उसको कार्यकारी कानूनी एवं वित्तीय शक्तियां प्राप्त थीं।

कार्यकारी शक्तियां

इस अधिनियम के अनुसार उसे तीन प्रकार की कार्यकारी शक्तियां प्रदान की गयी थीं। (अ) स्वेच्छाचारी या मनमानी शक्तियां (ब) व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियां और (स) मन्त्रियों के परामर्श से प्रयोग में लाई जाने वाली शक्तियां।

(अ) गवर्नर को स्वेच्छाचारी शक्तियां गवर्नर को अनेक स्वेच्छाचारी

शक्तियां प्रदान की गयी थीं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं

१ गवर्नर इस बात का फैसला करता था कि कौन से विषय में उसे स्वेच्छाचारी अथवा व्यक्तिगत विवेक से निर्णय करने की शक्तियों का प्रयोग करना है या नहीं। २ वह परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता था। ३ वह सरकार को उलटने हेतु किए जाने वाले अपराधों को कम करने हेतु कदम उठा सकता था। ४ वह प्रान्तीय सरकार के कार्यों के सुचारू रूप से संचालन हेतु नियम बना सकता था। ५ वह प्रान्तीय विधानमण्डल की बैठक बुला सकता था स्थगित कर सकता था एवं निचले सदन को भंग कर सकता था। ६ गवर्नर अधिनियम पारित कर सकता था। ७ प्रान्तीय लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों को नियुक्त कर सकता था। ८ वह किसी भी उम्मीदवार की अयोग्यताओं की अवहेलना कर उसे निर्वाचन में खड़े होने का अधिकार प्राप्त कर सकता था। ९ वह कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी विधेयक या उसके किसी अनुच्छेद पर विधानमण्डल में आगे वादविवाद स्थगित कर सकता था। १ वह व्यय की कोई मद मतदान योग्य है या नहीं इस बात का निर्णय करता था। ११ वह कुछ विशेष प्रकार के विधेयक को विधानमण्डल में प्रस्तुत करने की स्वीकृति दे सकता था। १२ वह विधानमंडल के दोनों सदनों की संयुक्त-बैठक बुला सकता था। १३ वह मंत्रियों को नियुक्त एवं बर्खास्त कर सकता था। १४ वह संविधान को स्थगित कर सकता था तथा प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले सकता था और १५ दो प्रकार के अध्यादेश जारी कर सकता था।

(ब) गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व एवं व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियां

१९३५ ई के अधिनियम द्वारा गवर्नरों को कुछ विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गए थे एवं इनके सम्बन्ध में उन्हें व्यक्तिगत विवेक से निर्णय का अधिकार प्रदान किया गया था। इन विषयों में इन्हें मंत्रियों से परामर्श तो लेना पड़ता था किन्तु उनके परामर्श को मानना अनिवार्य नहीं था। गवर्नरों के विशेष उत्तरदायित्व इस प्रकार थे १ प्रान्त अथवा उसके किसी भाग में शान्ति तथा सुव्यवस्था के लिए गम्भीर संकट की रोकथाम २ अल्प संख्यकों के समुचित हितों की सुरक्षा ३ भारतीय रियासतों के अधिकारों और समुचित हितों तथा उनके शासकों के सम्मान और मर्यादा की रक्षा ४ सरकारी कर्मचारियों तथा उनके आश्रितों के अधिकारों एवं समुचित हितों की रक्षा ५ आंशिक रूप से पृथक किए गए क्षेत्रों में उत्तम शासन एवं शांति स्थापित करना ६ ब्रिटिश नागरिक एवं इनके माल के विरुद्ध व्यापारिक भेदभाव को दूर करना ७ गवर्नर जनरल के द्वारा स्वयं की व्यक्तिगत इच्छानुसार प्रकाशित आदेशों एवं निर्देशों का पालन करना ८ मध्यप्रदेश के गवर्नर का यह कर्तव्य था कि वह इस बात का ध्यान रखे कि प्रान्तीय राजस्व का एक उचित भाग बरार पर व्यय किया जाए और ९ सिन्ध के गवर्नर का यह कर्तव्य था कि वह लॉयड-बाँध तथा नहरों की योजना का उचित प्रबन्ध करे।

(ख) मन्त्रियों की सलाह से प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ

गवर्नर को जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रियों के परामर्श से करना होता था वे काफी कम थीं। सन् १९३५ के अधिनियम के द्वारा गवर्नर को संवैधानिक प्रध्यक्ष नहीं बनाया गया था। उसे काफी स्वेच्छाचारी एवं व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ प्राप्त थीं। जो विषय उसकी जिम्मेदारी एवं स्वेच्छाचारी शक्तियों से परे थे उन विषयों में गवर्नर को मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना था।

कानूनी शक्तियाँ कानूनी क्षेत्र में गवर्नर को निम्न शक्तियाँ प्रदान की गयी थीं—

१ उसे विधानमण्डल की बैठक बुलाने अधिवेशन को स्थगित करने तथा विधानसभा को भंग करने का अधिकार था। २ वह प्रान्तीय विधानमण्डल की बैठक बुला सकता था और उसके सम्मुख भाषण दे सकता था। ३ किसी विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदनों में मतभेद होने की स्थिति में विवाद को निपटाने हेतु संयुक्त बैठक आमन्त्रित कर सकता था। गवर्नर विधानमण्डल को सन्देश भी भेज सकता था। ४ विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयक पर उसकी स्वीकृति आवश्यक होती थी। वह विधेयक को विधानमण्डल के पुनर्विचार के लिए लौटा सकता था या उसको ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति हेतु सुरक्षित कर सकता था। ५ प्रान्तीय विधानमण्डल के दोनों सदनों के कार्य सचालन हेतु नियम बना सकता था। ६ गवर्नर भारतीय रियासतों से सम्बन्धित विषयों देशी रियासतों के शासकों विदेशी विषयों अथवा शाही परिवार से सम्बन्धित किसी विषय पर चल रहे विवाद को बन्द कर सकता था। ७ गवर्नर को अपने कर्त्तव्यों का ठीक प्रकार से निर्वाह करने हेतु गवर्नर अधिनियम बनाने का अधिकार था। (८) गवर्नर को दो प्रकार के अध्यादेश प्रचलित करने का अधिकार प्राप्त था। अपनी विशेष जिम्मेदारी को व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार पूर्ण करने के लिए तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता होने पर विधानसभा के अधिवेशन के समय गवर्नर अध्यादेश प्रचलित कर सकता था। ऐसा अध्यादेश छः माह के लिए लागू होता था एवं छः माह के लिए और बढ़ाया जा सकता था। जब अध्यादेश विधानमण्डल की बैठक न हो रही हो एवं संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न हो गयी हो तो मन्त्री इस परिस्थिति का सामना करने हेतु गवर्नर को अध्यादेश प्रचलित करने का परामर्श दे सकता था। इस प्रकार के अध्यादेश कानून की भाँति ही प्रचलित होते थे। विधानमण्डल की बैठक होने पर उन्हें विधानमण्डल की स्वीकृति हेतु रखना पड़ता था। इस अध्यादेश की अवधि विधानमण्डल की बैठक प्रारम्भ होने से ६ सप्ताह तक रहती थी तथा विधानमण्डल इसको उक्त अवधि के पूर्व भी समाप्त कर सकती थी।

वित्तीय शक्तियाँ

गवर्नर को महत्त्वपूर्ण वित्तीय शक्तियाँ प्रदान की गयी थीं। वह बजट तैयार करता था। उसकी पूर्व अनुमति के बिना बजट विधानमण्डल में प्रस्तुत नहीं

किया जा सकता था। उसे इस बात का भी निर्णय करने का अधिकार था कि कौन से व्यय प्रान्त के राजस्व पर भारित व्यय हैं। विधानसभा द्वारा अस्वीकृत या कटौती की गयी रकम को वह अपने विशेष अधिकार से स्वीकृत कर सकता था।

(९) सन् १९३५ के अधिनियम के अनुसार गवर्नर की सहायता के लिए एक मन्त्री परिषद् की व्यवस्था की गयी जो गवर्नर को उसके कार्यों में परामर्श तथा सहायता देगी। मन्त्री कानूनी रूप से गवर्नर द्वारा नियुक्त किए जाते थे तथा उसी के द्वारा हटाए जाते थे। किन्तु निर्देश पत्र के अनुसार गवर्नर को उसी व्यक्ति के परामर्श से मन्त्री नियुक्त करने पड़ते थे जिसके पीछे विधानसभा में स्थायी बहुमत हो। गवर्नर का यह कर्तव्य था कि वह यह देखे कि मन्त्रिमण्डल में अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व हो। मन्त्रियों के लिए विधानमण्डल का सदस्य होना अनिवार्य था। यदि कोई व्यक्ति नियुक्ति के समय विधानमण्डल का सदस्य न हो तो उसे छः मास के भीतर प्रान्तीय विधानमण्डल का सदस्य होना पड़ता था अथवा मन्त्री-पद से त्यागपत्र देना पड़ता था। मन्त्री अपने पद पर तभी तक रहते थे जबतक उनके पीछे विधानसभा का विश्वास हो। गवर्नरों को यह निर्देश दिया गया था कि वे मन्त्रियों में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहित करें। गवर्नरों को मन्त्रिमण्डलों की बैठकों की अध्यक्षता करने का अधिकार था। प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की गयी थी। प्रत्येक प्रान्त आवश्यकतानुसार थोड़े या अधिक मन्त्री रख सकता था।

(१०) इस अधिनियम के द्वारा आसाम, बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, मद्रास और बम्बई में दो सदन वाले विधानमण्डल और शेष प्रान्तों में केवल एक सदन वाले विधानमण्डल स्थापित किए गए। जहां दो सदन थे वहां उनके नाम प्रान्तीय विधानसभा और प्रान्तीय विधानपरिषद् थे। जहां सिर्फ एक सदन था वहां वह प्रान्तीय विधानसभा कहलाती थी। विधानसभा के सभी सदस्य निर्वाचित होते थे पर परिषद् के कुछ सदस्य नामजद भी होते थे। प्रान्तीय विधानसभाओं में हर प्रान्त में अलग अलग सदस्य संख्या थी। प्रत्येक प्रान्त में साम्प्रदायिक आधार पर स्थान बंटे हुए थे। कुछ स्थान सामान्य मण्डलों में कुछ अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित थे। मुसलमानों, सिक्खों, आंग्ल भारतीयों, यूरोपियनों एवं भारतीय ईसाइयों को साम्प्रदायिक आधार पर अलग प्रतिनिधित्व दिया गया था। कुछ स्थान वाणिज्य उद्योग, जमींदार, श्रमिक और विश्वविद्यालयों के लिए सुरक्षित थे। विधानसभा का जीवनकाल ५ वर्ष था। उससे पहले भी उसे विघटित किया जा सकता था और अवधि से आगे भी उसका कार्यकाल बढ़ाया जा सकता था। विधान परिषदों में भी कुछ स्थान यूरोपियन एवं भारतीयों के लिए सुरक्षित थे। विधान परिषदों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से होता था। प्रान्तीय परिषद् एक स्थायी परिषद् थी। एक सदस्य का सदस्यता काल ९ वर्ष था। एक तिहाई सदस्य प्रत्येक तीसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते थे।

सन् १९३५ के अधिनियम के अनुसार प्रान्तीय विधानमंडल के मताधिकार का विस्तार कर दिया गया तथा १४ प्रतिशत जनता को यह अधिकार प्राप्त हुआ। मतदाताओं की योग्यताएं प्रत्येक प्रान्त में भिन्न थीं। मतदाताओं के लिए कुछ योग्यताएं निर्धारित की गईं। कुछ निश्चित हों आयकर देते हों भूराजस्व अथवा कुछ किराया अथवा नगरपालिका कर देते हों। जिन स्त्रियों में उक्त योग्यताएं थी उनको भी मताधिकार दिया गया था। विधानपरिषद् के लिए केवल बहुत सम्पत्तिशाली कुछ व्यक्तियों को मताधिकार दिया गया था। इसके अलावा राय बहादुरों विधानसभाओं के भूतपूर्व सदस्यों कार्यकारिणी के सदस्यों मन्त्रियों केन्द्रीय सरकारी-बैंकों के सभापतियों विश्वविद्यालय सीनेट के सदस्यों उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों नगरपालिकाओं और जिलाबोर्डों के अध्यक्षों को भी मताधिकार का अधिकार दिया गया था। प्रतिनिधित्व में गुरुभार की प्रथा को कायम रखा गया था। मुसलमानों को सिक्खों को आंग्लभारतीयों को एवं यूरोपियनों को अपनी संख्या के मुकाबले कई गुना अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। सन् १९३५ के अधिनियम के अनुसार कुल मिलाकर 3 5 करोड़ व्यक्तियों को मताधिकार दिया गया था जिसमें 7 लाख स्त्रियां थी।

प्रान्तीय विधानमंडलों को कानूनी कार्यपालिका एवं वित्तीय शक्तियां प्रदान की गई। प्रान्तीय विधानमंडल को प्रान्तीय सूची एवं समवर्ती-सूची पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया। यदि संघीय विधानमंडल समवर्ती-सूची पर कानून बनाता तो प्रान्तीय विधानमंडल द्वारा समवर्ती सूची में वर्णित उस विषय पर बनाया हुआ कानून रद्द हो जाता। परन्तु यदि प्रान्तीय विधानमंडल के कानून पर गवर्नर जनरल की अनुमति प्राप्त कर ली गयी होती तो वह कानून मान्य ही रहता। प्रान्तीय विधानमंडल की शक्तियों में कुछ रुकावटें थी जैसे—

१ प्रान्तीय विधानमंडल में कोई भी ऐसा विधेयक गवर्नर की पूर्व अनुमति के बिना प्रस्तुत नहीं हो सकता था जो ब्रिटिश संसद के किसी अधिनियम को रद्द अथवा संशोधित करता हो या उसका विरोध करता हो। यह गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था कि वह उसके लिए अनुमति दे या न दे। २ यदि प्रान्तीय विधेयक उन विषयों को प्रभावित करता था जिन पर गवर्नर जनरल को स्वेच्छाचारी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार था तो ऐसे विधेयक के लिए भी गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक था। ३ यदि कोई प्रान्तीय विधेयक यूरोपियन और ब्रिटिश प्रजा के लिए फौजदारी कानून को प्रभावित करता था तो उसके लिए भी पूर्व अनुमति आवश्यक थी। ४ प्रान्तीय विधानमंडल में कोई ऐसा विधेयक पेश नहीं किया जा सकता था जिसके द्वारा गवर्नर के किसी अधिनियम या अध्यादेश को रद्द करना हो उसमें संशोधन करना हो अथवा उसका विरोध करना हो। इसके लिए गवर्नर की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक था।

विधानमंडल का मन्त्रि-परिषद् पर पूर्ण नियन्त्रण कर दिया गया था। विधान

मंडल के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते थे। दोनों सदनों में मन्त्रियों के विरुद्ध कामरोको-प्रस्ताव पेश किया जा सकता था। विधानसभा मन्त्रियों को अविश्वास प्रस्ताव द्वारा हटा सकती थी। वह बजट की मुख्य मांगों अथवा किसी सरकारी महत्त्वपूर्ण विधेयक को भी अस्वीकार करके मन्त्रिमंडल में अविश्वास प्रकट कर सकती थी। विधानमंडल को वित्तीय शक्ति भी प्राप्त थी। धन विधेयक केवल विधानसभा में सबसे पहले पेश होता था। धन विधेयक के सम्बन्ध में विधानपरिषद् को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। बजट दो भागों में बांट दिया जाता था। पहले भाग में लगभग 30 प्रतिशत खर्च सम्मिलित होते थे जिनमें गवर्नर के वेतन भत्ते उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, महाधिवक्ता तथा मन्त्रियों के वेतन और भत्ते अनुसार आदि शामिल होते थे। इनको प्रान्तीय राजस्व पर भारित व्यय समझा जाता था। इन पर विधानसभा बहस कर सकती थी परन्तु कटौती नहीं कर सकती थी। शेष बजट में लगभग 70 प्रतिशत खर्चा शामिल होता था। यह अनुदान के लिए मांगों के रूप में विधानसभा के सामने पेश किया जाता था। विधानसभा इन मांगों को अस्वीकार कर सकती थी तथा कटौती कर सकती थी। गवर्नर को अस्वीकृत राशि को स्वीकृत करने एवं कटौती की हुई राशि को यदि वह उक्त मद को अनिवार्य समझता हो लौटाने का अधिकार था।

(११) १६३५ ई० के अधिनियम के द्वारा एक संघीय न्यायालय की भी स्थापना की गई। इस संघीय न्यायालय ने १६३७ ई० में अपना कार्य प्रारम्भ किया। संघीय न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधिपति तथा अधिक से अधिक ६ न्यायाधीश नियुक्त करने की व्यवस्था थी। उस समय केवल एक मुख्य न्यायाधीश तथा दो अन्य न्यायाधीशों की ही नियुक्ति की गयी थी। ये सब न्यायाधीश ब्रिटिश सम्राट द्वारा बहुत ऊंची योग्यताओं के आधार पर ही नियुक्त किए जाते थे। मुख्य न्यायाधीश को ७ हजार रुपये तथा न्यायाधीश को ५.५ रुपये मासिक वेतन मिलता था। संघीय न्यायालय को प्रारम्भिक एवं अपीलीय दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र में वे सभी मामले शामिल थे जिनका संबंध १६३५ ई० के अधिनियम से था। संघीय न्यायालय को भारतीय संघ और एक प्रान्त अथवा संघ में सम्मिलित होने वाली संघीय रियासतों व देशी रियासतों के मध्य उत्पन्न विवादों का निर्णय करने का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त था। वह किसी प्रान्त या देशी रियासतों के मध्य हुए विवादों का भी निर्णय करता था। संघीय न्यायालय प्रान्तों एवं संघ में सम्मिलित होने वाली देशी रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुन सकता था। गवर्नर जनरल किसी भी कानूनी मामले पर संघीय न्यायालय से परामर्श ले सकता था। संघीय न्यायालय को परामर्श देने का अधिकार था। संघीय न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय भी था। इसकी कार्यवाहियों तथा निर्णयों का लेखा रखा जाता था तथा उन्हें प्रकाशित किया जाता

था और उसका हवाला नीचे के न्यायालयों में दिया जा सकता था। संघीय न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। कुछ मामलों में इसकी आज्ञा के बिना ही ब्रिटिश प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी।

(१२) सन् १९३५ के अधिनियम के अनुसार रेलों के प्रबन्ध के लिए एक संघीय रेलवे-बोर्ड स्थापित करने का निर्णय किया गया था। इसमें ७ सदस्य रखे गए थे। प्रधान तथा सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल के हाथ में थी। इस बोर्ड की सहायता के लिए मुख्य आयुक्त तथा अतिरिक्त आयुक्त भी रखे गए थे।

(१३) सन् १९३५ के अधिनियम के अनुसार एक महाधिवक्ता की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गई थी। उसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल अपनी इच्छा से करता था। वह गवर्नर जनरल के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रह सकता था। महाधिवक्ता का मुख्य कार्य संघीय विधानमण्डल को कानूनी परामर्श देना था तथा ऐसे कार्यों को करना था जिनके लिए गवर्नर जनरल उसे आज्ञा दे।

(१४) सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा भारतीय संघ में वित्त आयुक्त की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गई। वित्त आयुक्त संघीय विधानमण्डल को वित्तीय मामलों में परामर्श देता था तथा गवर्नर जनरल को वित्तीय विषयों में सहायता पहुँचाता था। वित्त आयुक्त की नियुक्ति गवर्नर जनरल अपने विवेक से करता था और उसके प्रसाद पर्यन्त ही वह अपने पद पर रहता था।

अधिनियम की आलोचना

(१) भारत में स्थापित संघीय व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण थी। इस संघ का निर्माण भी भारतीयों की स्वतन्त्र इच्छा से नहीं किया गया था। भारतीय संघ में सम्मिलित होने वाली इकाइयों में भी किसी प्रकार की समानता नहीं थी। ब्रिटिश प्रान्त चीफ कमिश्नरों के प्रान्त और देशी रियासतों में क्षेत्रफल शासन पद्धति जनसंख्या आदि की दृष्टि से बहुत अधिक असमानता थी। संघीय सरकार का इकाइयों पर असमान अधिकार रखा गया था। प्रान्तों के लिए संघ में सम्मिलित होना अनिवार्य था परन्तु देशी रियासतों की इच्छा पर यह निर्भर था कि वे संघ में सम्मिलित हों या नहीं। देशी रियासतों को यह भी सुविधा दी गया था कि वे प्रवेश लेख द्वारा कौनसी शक्तियां संघ सरकार को दें और कौनसी न दें। इस प्रकार जहां केन्द्रीय सरकार की शक्तियां प्रान्तों पर एक समान थीं वहां १र राज्य पर वे भिन्न भिन्न थीं। संघीय विधानमण्डल में देशी रियासतों को ब्रिटिश प्रान्तों की अपेक्षा अधिक स्थान दिए गए थे। देशी रियासतों की आबादी भारत की कुल आबादी की ३३ प्रतिशत थी परन्तु उसको संघीय विधानमण्डल के निचले सदन में ३५ प्रतिशत और ऊपरी सदन में ४० प्रतिशत स्थान दिए गए थे। भारत संघ स्वतन्त्र राज्यों का संघ नहीं था। राज्यों को विधानमण्डल में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को मनोनीत करने का अधिकार दिया जाना भी उचित नहीं था। इसी प्रकार अवशिष्ट शक्तियों के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय का अधिकार गवर्नर जनरल

को दिया गया जो किसी भी प्रकार उचित नहीं था। इस प्रकार १६१९ ई० के अधिनियम के अन्तर्गत संघीय-योजना में अनेक दोष थे।

(२) केन्द्र में दोहरा शासन प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया था। प्रान्तों में सन् १६१६ के अधिनियम द्वारा स्थापित दोहरे शासन में जो कठिनाई पैदा हुई उसका केन्द्र में भी होना स्वाभाविक था। इस बात को जानते हुए भी कि भारतीय जनता दोहरे शासन को घृणा की दृष्टि से देखती है भारतवर्ष में केन्द्र में दोहरा शासन लागू करना अनावश्यक था।

(३) सन् १६३५ के अधिनियम का एक दोष यह था कि इसमें गवर्नर जनरल को स्वविवेक कार्य करने के अधिकार के साथ अनेक स्वेच्छाचारी शक्तियाँ प्रदान कर दी गई थीं। फलस्वरूप इससे भारतीयों को जो थोड़े बहुत अधिकार मिले थे वे भी नगण्य से बन गए। गवर्नर जनरल की विशेष जिम्मेदारियों में अत्यधिक अस्पष्टता थी और इससे गवर्नर जनरल को निरंकुश रूप से कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ।

(४) संघीय विधानमण्डल का संगठन भी अत्यन्त दोषपूर्ण था। स्थानों की पूर्ति साम्प्रदायिक आधार पर होती थी तथा इससे भारतीय राष्ट्रीय एकता के मार्ग में अनेक बाधाएं पैदा हुईं। संघीय विधानसभा में अप्रत्यक्ष निर्वाचन की पद्धति अपनाई गई जो प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध था। राज्यपरिषद् को तो केवल धनिकों, जमींदारों आदि उच्च वर्ग का ही सदन बना दिया गया।

(५) इस अधिनियम के द्वारा भारतीयों को अपने देश की सरकार का नियन्त्रण करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया। उनको सन् १६३५ के अधिनियम में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया। भारतवर्ष के शासन के लिए ब्रिटेन में नीति निर्धारित होती थी इसको भारतवासी घृणा की दृष्टि से देखते थे।

(६) गवर्नर के स्वेच्छाचारी अधिकारों के कारण प्रान्तीय स्वायत्तता केवल प्रदर्शन मात्र रह गई। उनके अधिकार तथा उत्तरदायित्व इतने अधिक थे कि प्रान्तीय विधानमण्डल एवं कार्यकारिणी के अधिकार पूर्णतया सीमित एवं संकुचित हो गए। गवर्नरों के अनेक अधिकार एवं उत्तरदायित्व अस्पष्ट एवं अनिश्चित थे और गवर्नर उनको अपनी इच्छा विवेक के अनुसार करते थे। फलस्वरूप गवर्नर प्रान्तों में एकमात्र निरंकुश शासक बन गए थे। प्रान्तीय विधानमण्डल के अधिकार अत्यन्त सीमित थे और विधानपरिषदों को जानबूझ कर प्रतिक्रियात्मक संस्थाएं बना दिया गया था। श्री नेहरू ने १६३५ ई० के अधिनियम की आलोचना करते हुए लिखा है "नया संविधान एक ऐसा यन्त्र था जिसकी ब्रेक तो दृढ थी परन्तु जिसका कोई इंजन नहीं था।"[1] मि० जिन्ना के अनुसार "सन् १६३५ की योजना पूर्णरूप से स्वीकार न करने योग्य है।"[2] श्री मदनमोहन मालवीय के अनुसार

---

1 डा० महाजन एवं डा० सेठी द्वारा उद्धरण—भारत का संवैधानिक इतिहास पृ० १३८।
2 उपर्युक्त पुस्तक पृ० १३।

सन् १६३५ का अधिनियम हमारे ऊपर जबरन्नी लाद दिया गया था। यद्यपि बाहर से यह लोकतन्त्रीय दिखायी देता था परन्तु अन्दर से खोखला था।[1]

अधिनियम कार्यरूप में

सन् १६३५ के अधिनियम का संघीय भाग क्रियान्वित नहीं हुआ। फलस्वरूप केन्द्र का शासन १६१६ ई० के अधिनियम के अनुसार ही चलता रहा। सन् १६३५ के अधिनियम में प्रस्तावित प्रान्तीय स्वराज्य की योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। इस योजना को अप्रैल १६३७ ई० में ब्रिटिश भारत के ११ प्रान्तों में शुरू किया गया। बंगाल, पंजाब एवं सिन्ध में यह १ वर्ष तक चली। बम्बई, बिहार में, मध्यप्रान्त, उत्तर प्रदेश और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त में यह दो वर्ष तक चली। सन १६३६ में दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध में भाग लेने के प्रश्न पर काग्रेस और तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगो में मतभेद उत्पन्न हो गया और कांग्रेस मन्त्रिमंडलों ने अपना त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात् बम्बई, बिहार, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा और उत्तरप्रदेश में गवर्नरों ने शासन अपने हाथों में ले लिया। आसाम एवं उड़ीसा में भी इसी प्रकार की स्थिति रही। काग्रेसी प्रान्तों में मंत्रियों ने गवर्नरों की अधिक परवाह नहीं की थी। उन्होंने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने और शिक्षा एवं प्रारम्भिक शिक्षा को प्रारम्भ करने, कृषि का विकास करने एवं सिंचाई की सुविधाओं को बढ़ाने और मद्यनिषेध की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने किसानों को साहूकारों के कर्ज से मुक्त कराने और कम ब्याज पर ऋण देने के लिए भी योजनाएं बनाईं। गवर्नरों ने काग्रेसी मन्त्रियों के कार्य में बहुत कम हस्तक्षेप किया। पर गैरकाग्रेसी प्रान्तों में गवर्नरों ने बहुत अधिक हस्तक्षेप किया। सिन्ध के गवर्नर ने वहां के मुख्यमन्त्री अल्लाबक्स को और बंगाल के गवर्नर ने वहां के मुख्यमंत्री हक को अपने पद से हटा दिया था। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के कार्यों का उल्लेख करते हुए कूपलैंड ने लिखा है "अब कांग्रेस भारतीय राजनीति में एक रचनात्मक शक्ति बन गई थी। २ वर्ष तक यह विरोध, शिकायत और आलोचना करती रही और हर गलत कार्य का ब्रिटेन पर दोष लगाती रही। अब इसने यह सिद्ध कर दिया कि इसके महान संगठन की शक्ति एवं इसके सदस्यों के उत्साह को अधिक रचनात्मक कार्य में लगाया जा सकता है। यह अब भी ब्रिटिश विरोधी थी पर अब यह उससे भी कुछ अधिक थी, अब यह एक अर्थ में नहीं अधिक सत्य अर्थों में भारत की पक्षपाती थी।"[2]

---

१ डा० भगवान एवं डा० भैरो द्वारा उद्धरण पूर्वोक्त पृ० ११६।
२ उपर्युक्त पुस्तक पृ० १३।

२१

१९३५ ई० से १९४१ ई० की राजनीति

(1) द्वितीय महायुद्ध से पूर्व

१९३५ ई० में भारत-सरकार अधिनियम की स्वीकृति के पश्चात भारतीय राजनीति में घटना-चक्र तेजी से घूमने लगा। डॉ० इकबाल एवं लियाकत अली के आग्रह पर अक्टूबर १९३४ ई० में मि० जिन्ना जो हिन्दू मुसलमानों की फूट से दुःखी होकर लन्दन में वकालत करने लगे थे भारत लौट आए। वे राष्ट्रवादी मुसलमान के स्थान पर मुसलमान राष्ट्रवादी बनकर लौटे थे और भारत आते ही लीग जो गोलमेज सम्मेलनों के पश्चात् पूर्णतया निष्क्रिय हो गई थी को पुनः सक्रिय करने के जोरदार प्रयत्नों में लग गए। अप्रैल १९३६ ई० में लाहौर में लीग का विशेष सम्मेलन हुआ जिसमें लीग ने नए सुधारों के अन्तर्गत प्रान्तों के निर्वाचनों में भाग लेने का निश्चय किया। साथ ही पृथकतावादी एवं हिन्दू विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ करने का भी निश्चय किया। काग्रेस ने अपने लखनऊ अधिवेशन (अप्रैल १९३६) में नए सुधारों की कड़ी आलोचना की तथा एक संविधान सभा की आवश्यकता पर जोर दिया। अधिवेशन में घोषणा पत्र के आधार पर प्रान्तों में चुनाव लड़ने का भी निश्चय किया गया। काग्रेस समाजवादी दल के सरकारी कार्यभार सम्भालने के विरुद्ध होने से अधिवेशन में सरकार का उत्तरदायित्व वहन करने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया था। २२ अगस्त १९३६ ई० को अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने चुनाव घोषणा-पत्र के प्रारूप को स्वीकार कर लिया। इस घोषणा पत्र में कहा गया था कि काग्रेस १९३५ ई० के सुधारों को अस्वीकार कर चुकी है केवल आन्तरिक शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से व्यवस्थापिका सभाओं में भाग लेगी तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करेगी। काग्रेस का निर्वाचन में भाग लेने का उद्देश्य सुधारों को क्रियान्वित करने में योग देना न होकर उनका विरोध करना था। सन् १९३६ के फिरोजपुर अधिवेशन में काग्रेस द्वारा चुनाव घोषणापत्र की पुष्टि कर दी गई एवं यह घोषणा की गई कि काग्रेस का सरकारी पदों से कोई सरोकार नहीं है।

फरवरी १९३७ ई० में १९३५ ई० के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत निर्वाचन हुए। विधानसभाओं के कुल १५८५ स्थानों में से काग्रेस को ७११ स्थान प्राप्त हुए। लीग बुरी तरह से पराजित हुई। संयुक्त प्रांत, मध्य प्रान्त, मद्रास, बिहार

और उड़ीसा में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। बम्बई, बंगाल, आसाम एवं उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त में कांग्रेस को विधानमण्डलों में सबसे बड़ा दल होने का गौरव प्राप्त हुआ। निर्वाचन के पश्चात् पद ग्रहण करने का प्रश्न पैदा हुआ। कांग्रेस समाजवादी पद ग्रहण करने के विरुद्ध था। इसी प्रकार विन्दर्भ सरदार पटेल, आचार्य विनोबा, विजयलक्ष्मी पण्डित एवं राजगोपाल आदि ने भी समाजवादी दल की नीति का समर्थन किया। यहाँ तक कि जवाहरलाल नेहरू ने भी समाजवादी दल का अपना नैतिक समर्थन दिया। १८ मार्च १९३७ को कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर घोषणा की कि कांग्रेस ने विधानमण्डलों में सहयोग करने के लिए नहीं बल्कि संविधान का विरोध करने के लिए प्रवेश किया है अतः मन्त्रिमण्डल स्वीकार करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। कांग्रेस ने अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग को पुनः दोहराया। १ अप्रैल १९३७ को नये संविधान विरोध दिवस के रूप में मनाया गया तथा उस दिन हड़ताल रखी गई।

परन्तु शीघ्र ही देश की राजनैतिक स्थिति ने कांग्रेस को सुधारों में असहयोग की नीति का त्याग करने के लिए मजबूर कर दिया। कांग्रेस ने मुस्लिमलीग से सुधारों के विरोध में सहयोग की अपील की परन्तु उसका कोई परिणाम न निकला। लीग के नेतृत्व में मुसलमान पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त, सिन्ध, कश्मीर एवं बलूचिस्तान के संयुक्तीकरण के आधार पर एक पृथक राज्य की माँग कर रहे थे। कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि यदि वह अब बीच में अपना कार्यक्रम पूरा कर रही तो देश की राजनीति ही पलट जायेगी, उसके हाथ से चली जायेगी अतः अब कांग्रेस ने गवर्नरों से यह आश्वासन माँगा कि वे अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग नहीं करेंगे। पहले तो ब्रिटिश सरकार इस प्रकार का आश्वासन देने के लिए तैयार नहीं हुई परन्तु यूरोप में बदली हुई राजनैतिक स्थिति को देखकर उसने कांग्रेस को आश्वासन की माँग को स्वीकार कर लिया। कांग्रेस कार्यसमिति ने जुलाई १९३७ को एक प्रस्ताव पारित कर कांग्रेस सदस्यों को पद ग्रहण करने की अनुमति प्रदान की। कांग्रेस ने जुलाई १९३७ में संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त, बम्बई एवं मद्रास में अपने मन्त्रिमण्डल बनाए। सन् १९३८ में आसाम में भी कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल में पद ग्रहण किया। सिन्ध में कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल को समर्थन प्रदान किया। १९ में बंगाल में निर्मित मन्त्रिमण्डल में भी कांग्रेस ने भाग लिया।

निर्वाचन और मन्त्रिमण्डल निर्माण की राजनीति के दौरान देश में साम्प्रदायिकता का जोर भी बढ़ रहा था। दिसम्बर १९३७ में हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन में श्री सावरकर ने घोषणा की कि हिन्दू महासभा का उद्देश्य हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा एवं उन्नति करना तथा हिन्दू राष्ट्र का गौरव बढ़ाना है। श्री सावरकर ने हिन्दुओं से कांग्रेस का बहिष्कार करने एवं निर्वाचन में कांग्रेस को मत देने का भी आग्रह किया। आर्य-समाज भी हिन्दू राज्य, हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति को बढ़ावा देने का कार्य कर रहा था। आर्य समाज के नेता कांग्रेस के उद्देश्य के विरुद्ध

नहीं थे। परन्तु मुसलमान धर्मावलंबी से हिन्दुओं की रक्षा का प्रयत्न कर रहे थे। १९३७ ई में मुस्लिमलीग ने अपना उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर पूर्ण स्वतन्त्रता कर दिया। मुस्लिमलीग की शाखाएं सारे देश में संगठित की गईं और मि जिन्ना ने सारे देश का दौरा किया। मुस्लिम लीग एवं हिन्दू महासभा की गतिविधियों के फलस्वरूप देश में हिन्दू मुसलमानों में काफी द्वेष बढ़ा। मुसलमान मुस्लिमलीग के झंडे के नीचे और कट्टर हिन्दू हिन्दू महासभा के झंडे के नीचे संगठित एवं एकत्रित होने लगे। १९३८ ई में बिहार एवं संयुक्त प्रान्त के कुछ नगरों में होली एवं मोहर्रम के समय भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए। कांग्रेस नेतृत्व बढ़ती हुई साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना से काफी चिन्ताग्रस्त हो उठा। कांग्रेस की यह धारणा थी कि स्वतन्त्रता का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए सम्प्रदायों में एकता का बना रहना अत्यन्त आवश्यक है। अतः कांग्रेस ने मुस्लिमलीग से इस सम्बन्ध में बातचीत करने का निश्चय किया। मई अगस्त १९३८ ई के मध्य कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस ने लीग क्या चाहती है यह जानने के लिए मि जिन्ना को काफी पत्र लिखे परन्तु मि जिन्ना ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। नेहरू के प्रयत्नों के फलस्वरूप जिन्ना ने अक्टूबर १९३८ ई में अपने पत्र में अपनी ग्यारह सूत्री मांगें पेश की। इन मांगों का अर्थ यह था कि कांग्रेस साम्प्रदायिक पंचाट के विरोध को वापस ले, वन्देमातरम् गायन का त्याग करे, मुसलमानों के गौ हत्या के अधिकार में दखल न दे और मुस्लिम लीग को मुसलमानों के हितों की रक्षक एक मात्र संस्था स्वीकार करले। जिन्ना की इन मांगों को कांग्रेस किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकती थी। अतः बातचीत समाप्त हो गई।

१ अक्टूबर १९३८ ई को सिन्ध प्रान्तीय मुस्लिमलीग ने भारतीय उप महाद्वीप में शान्ति की स्थापना हेतु और आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक विकास के लिए भारत को दो संघ राज्यों मुस्लिम राज्यों का संघ और गैर मुस्लिम राज्यों का संघ में विभक्त करने का प्रस्ताव पारित किया। शीघ्र ही मुस्लिमलीग के दो नेताओं सर मोहम्मद नवाज खान और सैयद अब्दुल लतीफ ने पाकिस्तान की दो योजनाओं का निर्माण किया। १९३९ ई के प्रथम चार माह में मुसलमानों के लिए पृथक देश का जोरों से प्रचार हुआ, फलस्वरूप कांग्रेस और लीग में आपसी दरार बढ़ती गयी। देश में उस समय लीग ही मुसलमानों की अकेली संस्था नहीं थी। जमीयत उल उलेमा ए हिन्द (१९१९ में निर्मित) अहरार, मोमिन्स, शिया, बंगाल कृषक सभा आदि संस्थाएं भी थीं जो मुस्लिमलीग की विरोधी थी। इन सब संस्थाओं ने मिलकर १९३९ ई में आजाद मुस्लिम कांफ्रेंस का निर्माण किया। स्पष्ट है कि १९३९ ई के पूर्वार्द्ध में जहां विभिन्न मुस्लिमलीग देश की एकता को तोड़ने के प्रयत्न में लगे हुए थे राष्ट्रीय कांग्रेस देश की एकता किस प्रकार बनी रह सकती है इसके लिए चिन्तित थी एवं इसका कोई निश्चित समाधान ढूंढने में प्रयत्नरत थी। उसी समय यूरोप में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया।

(२) द्वितीय महायुद्ध में भारत का सम्मिलित किया जाना

जब योरोप का पहला विश्वव्यापी युद्ध हो रहा था तब मित्र राष्ट्रों की ओर से संसार को यह विश्वास दिलाया गया था कि यह युद्ध अपने ढंग का अंतिम युद्ध है क्योंकि इसका उद्देश्य सदा के लिए युद्ध को समाप्त करना है। उस समय जिन सुनहरे सिद्धांतों की घोषणा की गई थी उसका अंतिम और सुन्दरतम रूप हमें अमेरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति वुडरो विल्सन के १४ सूत्री सिद्धांतों में मिलता है। अन्त में मित्र दल विजयी हुआ। वह अमेरीका इंगलैंड और उसके साथियों का परीक्षा का समय था। मनुष्य जाति यह देखने को उत्सुक था कि युद्ध के संकट काल में उन्होंने जो वायदे किए थे विजय के अवसर पर वह उन्हें स्मरण रखते हैं या नहीं। परन्तु वार्साय की संधि में जर्मनी पर जो अत्याचार हुए उससे जर्मनी विक्षुब्ध हो उठा। इस अन्याय और अत्याचार के खिलाफ जर्मन नागरिकों में घृणा की जो भावना उत्पन्न हुई वह दिन प्रति दिन गहरी होती गई। लगभग २ वर्षों तक जर्मनी के अभिमानी निवासियों ने बदले की आग में जलकर उस अपमान का बदला लेने का दृढ़ संकल्प किया और वह दिन भी आ गया जबकि सारा जर्मन राष्ट्र हिटलर के नेतृत्व में उस अपमानजनक संधि (वर्साय संधि) का प्रत्युत्तर देने के लिए मैदान में उतर गया। १ सितम्बर १६३६ ई० को जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण कर युद्ध का बिगुल बजाया। ३ सितम्बर को इंग्लैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। इंगलैंड ने युद्ध में बूढ़न का "हृदय लोकतन्त्र की रक्षा करने" का वही पुराना नारा दोहराया। तुरन्त वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने केन्द्रीय विधानमंडल प्रांतीय विधानमंडल तथा भारतीय नेताओं से परामर्श किए बिना ही भारत के युद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा करदी।

कांग्रेस की प्रतिक्रिया

कांग्रेस लगभग १२ वर्षों से ब्रिटिश सरकार को यह चेतावनी देती रही थी कि यदि भारत को फिर किसी युद्ध में घसीटा गया तो उस भारतवासियों से किसी भी प्रकार के सहयोग की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। जिस लड़ाई से भारत का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था उसमें उसे बिना सलाह लिए शामिल कर लेना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। परिणाम यह हुआ कि जब १ सितम्बर १६३६ ई० में यूरोप में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ा तो भारत ने उसमें साझीदार बनने से इन्कार कर दिया। वायसराय के निमन्त्रण पर ४ सितम्बर १६३६ ई० में शिमला में महात्मा गांधी ने देश और कांग्रेस की इस प्रतिक्रिया से वायसराय को परिचित करा दिया हालांकि उनकी व्यक्तिगत सहानुभूति पूर्ण रूप से ब्रिटेन के साथ थी। १४ सितम्बर १६३६ ई० को कांग्रेस की कार्यसमिति की एक विशेष बैठक युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों पर विचार करने के लिए बुलाई गई। उसमें उसने स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया कि

पिछले महायुद्ध के अनुभवों ने हमें यह सिखा दिया है कि ब्रिटिश सरकार या भारत सरकार के युद्धकालीन वचनों या घोषणाओं पर भरोसा नहीं किया जा

सकता। इसलिए समिति सरकार से अनुरोध करती है कि भारत के सम्बन्ध में सिर्फ नीति का स्पष्टीकरण ही नहीं चाहिए बल्कि उन सिद्धान्तों पर अमल भी हो। अन्त में समिति ने घोषणा की कि जबतक स्थिति का पूरा स्पष्टीकरण न हो जाय तबतक वह देश को सरकार से किसी भी प्रकार का सहयोग करने की सलाह नहीं दे सकती।

कांग्रेस के उक्त प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकार को युद्ध में शक्तिपूर्ण नैतिक तथा भौतिक सहयोग देना चाहती थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी इस सम्बन्ध में कहा था हम नाजीवाद की विजय नहीं चाहते हैं और हमारी सहानुभूति निश्चित रूप से उनके साथ है जिन पर हमला हुआ है। इस प्रकार कांग्रेस चाहती थी कि भारत को लोकतन्त्रीय युद्ध के लिए तैयार करने से पूर्व इस बात की भी आवश्यकता है कि भारत में लोकतन्त्रीय शासन स्थापित किया जाए। कांग्रेस की इसी भावना को ध्यान में रखते हुए कूपलैण्ड ने लिखा भारतीय स्वयं तो पराधीन थे और हम उन्हें दूसरों को स्वतन्त्र कराने के वास्ते लड़ने के लिए कह रहे थे।

मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया

मुस्लिमलीग भी बिना शर्त समर्थन या सहायता देने को तैयार नहीं थी। वह सरकार से मुसलमानों के प्रति न्याय चाहती थी। मुस्लिमलीग की कार्यसमिति ने १८ सितम्बर १९३९ ई० की बैठक में एक प्रस्ताव पारित कर नाजी हमले की निन्दा की और मित्रराष्ट्रों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। उसने सरकार को सहायता देने का वचन दिया परन्तु शर्त यह रखी कि कांग्रेस शासित प्रान्तों में मुसलमानों के साथ जहाँ उनकी स्वतन्त्रता जीवन सम्पत्ति और प्रतिष्ठा का खतरा है और उनके उचित अधिकारों को कुचला जा रहा है वहाँ उनके साथ न्याय किया जाए। कांग्रेस कार्यसमिति ने जिन्ना से यह बताने का अनुरोध किया कि मुसलमानों के साथ किस राज्य में बुरा व्यवहार हुआ है परन्तु जिन्ना ने इस अनुरोध पर ध्यान ही नहीं दिया।

अन्य दलों की प्रतिक्रिया

हिन्दू महासभा उदारवादी मत अखिल भारतीय ईसाई सभा आदि ने सरकार को युद्ध में पूर्ण समर्थन का आश्वासन दिया। हिन्दू महासभा ने १० सितम्बर १९३९ ई० को घोषणा की कि भारत को सैनिक हमलों से बचाना भारतीयों एवं अंग्रेजों का सम्मिलित कर्त्तव्य है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी भारतीय जनता को युद्ध में ब्रिटेन को सहयोग देने का आग्रह किया।

वायसराय की भूमिका

किसी राज्य की सामयिक नीति के वास्तविक रूप को पहचान के लिए उद्घोषित नीति एवं नीतियों का संचालन करने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति (इन दो बातों) पर विशेष दृष्टि डालनी चाहिए। नीति के सम्बन्ध में ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के एक सदस्य ने कहा

कि ब्रिटेन का वर्तमान उद्देश्य सिर्फ युद्ध जीतना है। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने बताया कि ब्रिटेन का तात्कालिक उद्देश्य आत्म रक्षा करना है। इससे स्पष्ट था कि उसका भारत में लोकतन्त्र स्थापित करने का कोई इरादा नहीं था। युद्ध के प्रारम्भ होने पर ब्रिटिश सरकार की ओर से जो घोषणाएं प्रकाशित की गई थीं वे बहुत भ्रामक थीं परन्तु उन दिनों भारत के भाग्य विधाता जो दो अधिकारी थे उनकी नस-नस में टोरी रक्त था। इंगलैंड का अनुदार दल अपनी भारत विरोधी नीतियों के लिए विख्यात भी था। वायसराय थे लार्ड लिनलिथगो और भारत मन्त्री थे एमरी। दोनों ही अंग्रेजों की स्वभावसिद्ध अनुदार नीति के प्रतीक थे। लार्ड लिनलिथगो की नौकरशाही प्रवृत्ति भारत की समस्या का हल करने को उत्सुक नहीं थी। लार्ड लिनलिथगो ने भारतीय जनमत की जानकारी का पता लगाने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं से वार्ता करने के बाद जो कदम उठाया वह इसकी पुष्टि करता है। १७ अक्तूबर १६३६ ई० के उसके वक्तव्य में स्पष्ट कहा गया था

१. ब्रिटिश सरकार ने वायसराय को यह कहने का अधिकार दिया है कि युद्ध समाप्ति पर ब्रिटिश सरकार भारतीयों से परामर्श करने के लिए प्रसन्न होगी ताकि उनकी सहायता और सहयोग से भारत के संविधान में वांछनीय सुधार किये जा सकें।

२. युद्ध के दौरान सरकार चुने हुए भारतीयों की एक परामर्शदात्री समिति को आमन्त्रित करेगी। इसकी बैठक में वायसराय सभापति होगा और इसका उद्देश्य युद्ध संचालन तथा युद्ध कार्यों से सम्बन्धित प्रश्नों पर भारतीय लोकमत को सम्बद्ध करना होगा।

वायसराय की इस घोषणा के बाद देशवासियों के लिए कोई सन्देह नहीं रह गया था कि अंग्रेज सरकार भारत से सब प्रकार की सहायता तो भरपूर मात्रा में लेना चाहती है परन्तु भारत को स्वाधीनता का कोई पक्का आश्वासन देने को तैयार नहीं। वायसराय के वक्तव्य से कांग्रेसी क्षेत्रों में अत्यधिक निराशा का वातावरण पैदा हो गया क्योंकि उनकी मांगों की पूर्ण अवहेलना की गई थी। मुस्लिमलीग ने वायसराय के वक्तव्य का स्वागत किया क्योंकि इसमें आंशिक रूप में लीग को भारत के समस्त मुसलमानों के लिए बोलने का अधिकार स्वीकार कर लिया गया था।

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का त्यागपत्र

महात्मा गांधी इंग्लैंड से सम्मानपूर्ण समझौता करने के लिए इतने उत्सुक थे कि वह वायसराय से दो बार मिले परन्तु कोई फल नहीं निकला। १७ अक्तूबर १६३६ ई० की वायसराय घोषणा से महात्माजी को भयंकर निराशा हुई। उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया को इन शब्दों में व्यक्त किया कांग्रेस ने रोटी की मांग की थी और उसे मिला पत्थर। अन्त में कांग्रेस की युद्ध-समिति इस परिणाम पर पहुँची

कि अब सरकार के कार्य में किसी प्रकार का सहयोग देना देश के लिए अपमान जनक है। तदनुसार कांग्रेस की कार्य समिति उपसमिति ने प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रियों तथा कांग्रेस दल के सदस्यों को आदेश दिया कि वे सब ३१ अक्तूबर १९३९ से पूर्व अपने अपने त्यागपत्र सरकार के हाथों में दे दें। कांग्रेस शासित आठ प्रान्तों के मंत्रिमंडलों ने अपने अपने त्यागपत्र दे दिए। ये त्यागपत्र सर्वसाधारण जनता की उस भावना के चिह्न मात्र थे जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैली हुई थी। भारत की प्रजा की यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि ब्रिटेन भारत को स्वाधीनता नहीं देना चाहता। संकटकाल आने पर ब्रिटेन के शासक या उनके प्रतिनिधि मीठी मीठी बातें करते हैं तब भारतवासियों के हृदय पर उनका केवल इतना ही असर होता था कि यह सब ढोंग है इसमें कोई सार नहीं है। कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों के त्यागपत्र जनता की उसी भावना के मूलरूप थे।

बहुत से लोगों का कहना है कि मन्त्रिमंडलों से त्यागपत्र देकर कांग्रेस ने गलती की थी। वह संवैधानिक तन्त्र का सफल संचालन करने में अयोग्य सिद्ध हुई तथा इस संवैधानिक विफलता का पूर्ण उत्तरदायित्व कांग्रेसी नेताओं पर था। लेकिन यह कहना गलत है कि संवैधानिक उत्तरदायित्व से मुक्त होकर कांग्रेस अपना कर्त्तव्य निभाने में असफल हुई। अपितु कांग्रेस ने अपने उद्देश्यों और चुनाव घोषणापत्र के अनुसार कार्य किया क्योंकि कांग्रेस १९३५ ई० के अधिनियम को समाप्त करने के लिए न कि अंग्रेजों के साथ सहयोग करने के लिए व्यवस्थापिका सभाओं में प्रविष्ट हुई थी। अतः त्यागपत्र देकर कांग्रेस ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा पूरी की और उच्च प्रजातांत्रिक आदर्शों का परिचय दिया।

मुक्ति-दिवस

कांग्रेस द्वारा त्यागपत्र देने से मुस्लिमलीग को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने सारे भारत के मुसलमानों को २२ दिसम्बर १९३९ ई० को मुक्ति दिवस मनाने के लिए कहा। उसने पहले यह आरोप लगाया था कि कांग्रेसी मन्त्रियों ने मुसलमानों पर बहुत अत्याचार किए हैं। जब कांग्रेसी मन्त्रियों ने अपना त्यागपत्र दे दिया तो उनके कांग्रेसी अत्याचारों से मुक्ति की प्रसन्नता में मुक्ति दिवस मनाया। लीग ने केवल मुस्लिम भावनाओं का अनुचित लाभ उठाने के लिए ऐसा किया था। उसने पाकिस्तान की भावना का जोरदार प्रचार प्रारम्भ कर दिया तथा लाहौर में लीग के २७ वें अधिवेशन में २४ मार्च १९४० ई० को एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कहा गया कि मुस्लिमलीग को ऐसी कोई सुधार योजना स्वीकृत नहीं होगी जिसमें मुसलमानों के लिए पृथक राज्य के सिद्धान्तों का समावेश नहीं किया गया होगा।

कांग्रेस का सशर्त सहायता प्रस्ताव

कांग्रेस ने सन् १९३९ के रामगढ़-अधिवेशन में सत्याग्रह के सम्बन्ध में प्रस्ताव

पारित कर चुकी थी तथा [redacted] सत्याग्रह आरम्भ करने वाली ही थी कि यूरोप के युद्ध क्षेत्र में चमत्कारिक परिवर्तन आया। जर्मनी की सेनाएं पोलैंड पर विजय प्राप्त करके नार्वे और स्वीडन पर चढ़ गईं। उसने हालैंड बेल्जियम और फ्रांस में पूरी तरह सफलता प्राप्त करना। ब्रिटेन का बड़ा भारी खतरा पैदा हो गया। ब्रिटेन पर हिटलर ने हवाई हमलों में वृद्धि हो गई। फ्रांस की पूर्ण पराजय ने इंग्लैंड और उसके साथियों को संकट में डाल दिया था। महात्मा जी के सत्याग्रह का यह भी एक अंग था कि विरोधी की निर्बलता से लाभ नहीं उठाया जाना चाहिए। इसी कारण कांग्रेस ने सत्याग्रह के कार्यक्रम को स्थगित कर देना ही उचित समझा।

परिवर्तित परिस्थितियों में भारत सरकार और कांग्रेस में समझौते की चर्चाएं फिर जारी हो गईं। इस बार भारतीय उदारदल के सर तेजबहादुर सप्रू मि. जयकर आदि नेता भी सक्रिय हुए। वायसराय ने पुनः कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद से बातचीत की। इधर मि. जिन्ना और मि. आजाद में भी पत्र व्यवहार हुआ। परन्तु चूंकि सरकार और कांग्रेस दोनों के ध्येय अलग अलग थे इस कारण समझौता नहीं हो सका। कांग्रेस ने अपना हाथ कुछ आगे बढ़ाया। ३ जुलाई १९४० ई. को कांग्रेस कार्यसमिति का जो महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ उसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया गया —

हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस समय ब्रिटेन और भारत को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उनके सुलझाने का एकमात्र उपाय ब्रिटेन द्वारा भारत की पूर्ण—स्वाधीनता की स्वीकृति है और उसे तत्काल कार्यरूप में परिणत करने के लिए उस केन्द्र में एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम करनी चाहिए जो यद्यपि अस्थायी साधन के रूप में बनाई जाय परन्तु वह इस प्रकार से स्थापित हो कि उसे केन्द्रीय व्यवस्थापिका-सभा के सभी निर्वाचित वर्गों का विश्वास प्राप्त रहे और इसके अतिरिक्त उसे प्रान्तों की जिम्मेदार सरकारों का सहयोग भी मिलता रहे। यदि इन उपायों को अपनाया गया तो कांग्रेस देश की रक्षा के लिए बनाए गए संगठन में पूरा पूरा सहयोग देने को तैयार हो जाएगी।

यहां यह स्मरणीय है कि महात्मा गांधी इस प्रस्ताव के उत्तरार्द्ध से सहमत नहीं थे। यदि इंगलैंड भारत की स्वाधीनता को स्वीकार करके उसके साथ मित्रता कायम करता तो यह गांधीजी को स्वीकार होता परन्तु अपने अहिंसा के सिद्धान्त को छोड़कर इंग्लैंड को सैनिक सहायता देना महात्माजी को स्वीकार नहीं था। परन्तु उस समय कार्यसमिति ने उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करना ठीक समझा। श्री जवाहरलाल नेहरू भी उक्त प्रस्ताव से सहमत थे। कांग्रेस कार्यसमिति के उक्त प्रस्ताव की पूना में होने वाले अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में पुष्टि कर दी गई।

ब्रिटिश सरकार का विरोधी रवैया

कांग्रेस अपनी मांगों के संबंध में बहुत हद तक नीचे झुक गई थी परन्तु चर्चिल की सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। लॉर्ड लिनलिथगो उसको सिर पर ही

ही कायम रहे। लॉर्ड जटलन्ड के स्थान पर अमरी भारत मंत्री बन गए। उनका भारत की तरफ बिल्कुल ही सहानुभूतिपूर्ण रवैया नहीं था। गंभीर अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण नए भारत मंत्री भारतीयों को कुछ रियायतें अवश्य देना चाहते थे परन्तु शासन की सत्ता भारतवासियों के हाथों में सौंपने को कतई तैयार नहीं थे। वह चर्चिल की इस घोषणा पर दृढ़ थे कि मैं ब्रिटिश साम्राज्य का प्रधानमंत्री इसलिए नहीं बना कि साम्राज्य का दीवाला निकाल दूं।

(३) ८ अगस्त १९४० ई० की घोषणा

उक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि कांग्रेस ने युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने के लिए अपने सिद्धान्तों की बलि देकर अनेक बार मंत्री का हाथ बढ़ाया लेकिन ब्रिटिश सरकार की ओर से उसे उचित प्रत्युत्तर नहीं मिला। ब्रिटिश सरकार उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए किसी भी तरह राजी नहीं हुई। ८ अगस्त १९४० ई० को संवैधानिक गतिरोध दूर करने के लिए लार्ड लिनलिथगो ने एक घोषणा की जिसमें औपनिवेशिक स्वराज्य भारत का लक्ष्य घोषित किया गया। इस घोषणा को अगस्त प्रस्ताव कहा जाता है। इसकी मुख्य बातें निम्नलिखित थीं —

(१) ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।

(२) दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति पर उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार बिना विलम्ब के एक ऐसी समिति बनाएगी जिसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन के सभी प्रमुख तत्त्व भाग लेंगे। यह समिति भारत के भावी संविधान की रूपरेखा निश्चित करेगी। ब्रिटिश सरकार उस समिति को सभी विषयों पर निर्णय करने के लिए अधिक से अधिक अपना सहयोग प्रदान करेगी।

(३) कुछ भारतीय प्रतिनिधियों को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया जाएगा।

(४) ब्रिटिश सरकार युद्ध संबंधी मामलों में सलाह देने के लिए एक युद्ध परामर्श समिति स्थापित करेगी। इसमें देशी रियासतों और भारत के राष्ट्रीय जीवन से संबंधित सभी हितों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। यह समिति नियमित रूप से समय समय पर मिलती रहेगी।

घोषणा में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि ब्रिटिश सरकार भारत की शान्ति और कल्याण के हित में अपनी जिम्मेदारियों को किसी ऐसे राजनीतिक दल को नहीं सौंप सकती जिसकी सत्ता भारत के राष्ट्रीय जीवन के एक महत्त्वपूर्ण वर्ग द्वारा नहीं मानी जा सकती हो। इसका अभिप्राय यह था कि जबतक कांग्रेस मुस्लिमलीग के साथ समझौता न करले तबतक उसे सत्ता नहीं सौंपी जा सकती थी।

कांग्रेस द्वारा घोषणा को अस्वीकार करना

यद्यपि इस घोषणा में भारत को युद्ध के बाद औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना का वचन दिया गया था और इस हेतु संविधान बनाने की शक्ति भी भारतीयों को दी गई थी तथापि कांग्रेस ने इस घोषणा को निम्नलिखित कारणों से अस्वीकार कर दिया —

(१) कांग्रेस ने यह मांग की थी कि भारत में तत्काल अस्थाई राष्ट्रीय शासन स्थापित कर दिया जाए और उसके हाथ में प्रतिरक्षा तथा अन्य मामलों का प्रभावशाली नियन्त्रण दिया जाए। वायसराय ने इस घोषणा में इस बात का जिक्र तक नहीं किया था और केवल अपनी कार्यकारिणी परिषद् में कुछ भारतीय प्रतिनिधियों को लेने का आश्वासन दिया था।

(२) इस घोषणा में अल्पसंख्यक वर्गों को भविष्य में भारत के संवैधानिक विकास को रोकने का अधिकार दे दिया गया था क्योंकि मुस्लिमलीग को अप्रत्यक्ष रूप से कह दिया गया था कि भारत में ब्रिटिश सरकार किसी भी संवैधानिक परिवर्तन को तबतक स्वीकार नहीं करेगी जबतक लीग की सहमति नहीं होती। बहुमत को अल्पमत की दया पर छोड़ दिया गया था। अतः यह घोषणा राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल थी।

मुस्लिमलीग द्वारा घोषणा की अस्वीकृति

मुस्लिमलीग ने भी अगस्त घोषणा को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वायसराय की घोषणा में संयुक्त भारत की ओर संकेत किया गया था जबकि मुस्लिमलीग का मत था कि भारत की समस्या का हल पाकिस्तान की स्थापना है अतः यह मांग की गई कि केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् में कांग्रेस और मुस्लिम लीग को बराबर का प्रतिनिधित्व दिया जाए। इस तरह से भारत की राजनैतिक समस्या और अधिक विकट बन गई।

(४) व्यक्तिगत सत्याग्रह (अक्तूबर १९४०)

अगस्त घोषणा के बाद कांग्रेस के सभी नेताओं को यह विश्वास हो गया था कि अंग्रेजी सरकार युद्ध में भारत का सहयोग अपनी शर्तों पर चाहती है न कि भारतवासियों की शर्तों पर। जवाहरलाल नेहरू और उनके साथी अनुभव करने लगे थे कि कांग्रेस द्वारा समझौते का हाथ बढ़ाने को अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की निर्बलता का चिह्न समझा है। फलतः कांग्रेस ने अपनी नीति में तेजी से परिवर्तन करना आवश्यक समझा। इसलिए कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय किया। महात्मा गांधी ने सारे देशवासियों से युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता नहीं करने का आग्रह किया। महात्मा गांधी ब्रिटिश सरकार को अधिक परेशान नहीं करना चाहते थे और अंग्रेज इस समय जीवन मरण के संघर्ष में लगे हुए थे इसलिए सार्वजनिक सत्याग्रह का निश्चय न करके व्यक्तिगत सत्याग्रह

करने का ही निश्चय किया गया। सत्याग्रहियों को आदेश दिया गया कि सत्याग्रह करने से पूर्व मजिस्ट्रेट को उसकी सूचना दे दें। सत्याग्रह वही कर सकता था जिसे महात्माजी की स्वीकृति प्राप्त हो जाती थी। व्यक्तिगत सत्याग्रह का आधारभूत सिद्धान्त यह था कि जो व्यक्ति एक बार सत्याग्रह में सम्मिलित हो गया वह तब तक सत्याग्रह करता रहेगा जब तक कांग्रेस की ओर से सत्याग्रह स्थगित नहीं कर दिया जाता। इन्हीं कड़ी शर्तों का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सत्याग्रहियों की संख्या अत्यन्त परिमित रही।

१७ अक्तूबर को पहले व्यक्तिगत सत्याग्रही आचार्य विनोबा भावे ने सत्याग्रह किया और गिरफ्तार कर लिए गए। दूसरे सत्याग्रही पं० जवाहरलाल नेहरू थे। लेकिन आन्दोलन में भाग लेने के पूर्व ही उन्हें इलाहाबाद में बन्दी बना लिया गया और चार वर्ष का कठोर दंड दिया गया। इसके उपरान्त कांग्रेस के अन्य प्रमुख नेताओं ने बारी बारी से सत्याग्रह किए। सारे देश में व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई। व्यक्तिगत सत्याग्रह एवं पहले के सत्याग्रहों में विशेष अन्तर यह था कि इसमें प्रत्येक देशवासी को भाग लेने का अधिकार नहीं था। केवल उन्हीं लोगों को सत्याग्रह करने का अधिकार दिया गया था जो गांधीजी की कसौटी पर खरे उतर गए हों, मनसा वाचा कर्मणा सत्याग्रही हों, कातने और खादी पहनने के नियमों का दृढ़ता से पालन करते हों और छूआछूत को न मानते हों। सरकार ने सत्याग्रह का कड़ाई से मुकाबला किया। २६ अक्तूबर के एक आदेश द्वारा पत्रों की स्वतन्त्रता पर रोक लगा दी गयी। उन्हें आदेश दिया गया कि वे ऐसे कोई समाचार प्रकाशित न करें जिनसे युद्ध कार्य संचालन में बाधा पहुँचती हो। मौलाना आजाद को सत्याग्रह करने के पूर्व ही ३ जनवरी १९४१ ई० को गिरफ्तार कर लिया गया। सन् १९४१ के प्रथम तीन महीनों में कांग्रेस जन सत्याग्रह करते रहे। १ मार्च १९४१ ई० तक ४७४६ सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिए गए। सरकार को २,६६,६६३ रु० दंड के रूप में प्राप्त हुए। मुस्लिमलीग ने सत्याग्रह को ब्रिटिश सरकार पर मांगें मनवाने के लिए दबाव डालने की संज्ञा दी। कांग्रेस की मांग स्वीकार कर ली गयी तो मुस्लिमलीग इसका पूर्ण शक्ति से विरोध करेगी यह चेतावनी लीग ने सरकार को दी।

२२ अप्रैल १९४१ ई० को भारत मंत्री लार्ड एमरी ने ब्रिटिश संसद में एक घोषणा की जिसमें कहा गया था कि सरकार यह चाहती है कि भारत में शासन का उत्तरदायित्व भारतीयों के हाथ में सौंप दिया जाए तथापि युद्ध के दौरान ऐसा करना संभव नहीं है। सरकार यह भी देखना चाहती है कि जिस संस्था को शक्ति सौंपी जाए वह इसको वहन कर सके इसके लिए यह आवश्यक है कि ब्रिटेन द्वारा सत्ता हस्तान्तरित करने के पूर्व भारतीय राजनीतिज्ञ सर्वसम्मत हल पर पहुँच जाएं। एमरी की उक्त घोषणा काफी प्रतिक्रियावादी थी तथा कांग्रेस को इससे काफी निराशा हुई। व्यक्तिगत सत्याग्रह पूर्ववत् जारी रहा।

वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् का विस्तार

राष्ट्रवादियों की माग की परवाह न करके वायसराय ने अगस्त १६४ ई की घोषणा के अनुसार जुलाई १६४१ में अपनी कार्यकारिणी परिषद् के विस्तार का निश्चय किया। वायसराय ने अब पाँच भारतीय सदस्यों को अपनी कार्यकारिणी-परिषद् मे लिया। और अब परिषद् में कुल ८ भारतीय सदस्य हो गए। वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में उसके सहित कुल १२ सदस्य थे इसलिए वायसराय का कहना था कि अब भारतीयों का शासन बहुमत से सचालित होने लगा है। परन्तु यह सब कुछ भ्रम था। प्रतिरक्षा वदेशिक सबध गृह वित्त ऐसे सभी महत्त्वपूर्ण विभाग अग्रेजों के हाथ में थे। चूकि मुस्लिम लीग और काग्रेस दोनो ने ही वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया था इसलिए वायसराय ने जिन व्यक्तियों को अपनी परिषद् में लिया था वे वायसराय के अपने व्यक्ति थे। सब मामलो में अतिम शक्ति वायसराय के पास ही थी। इसलिए वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् के विस्तार से स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह का स्थगित किया जाना

वायसराय ने अपनी कार्यकारिणी परिषद् के विस्तार के एक महीने बाद सब सत्याग्रहियों को छोड़ दिया। सभवत यह कदम वायसराय ने अपनी परिषद् के नए सदस्यों को प्रसन्न करने तथा उनका मान सम्मान बढ़ाने के लिए उठाया था। सत्याग्रह जारी रखने के सम्बन्ध में अब काग्रेस भी एकमत नहीं थी। गाधीजी व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रखने के पक्ष में थे। दूसरी तरफ राजाजी इत्यादि व्यक्तियों का मत था कि व्यक्तिगत सत्याग्रह सर्वथा असफल रहा है अत उसे जारी रखने में कोई लाभ नहीं। कई प्रमुख काग्रेसी सदस्य यह जोर दे रहे थे कि उन्हें सदन में जाकर सरकार की नीति पर असर डालने का अवसर दे दिया जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति भी गभीर होती जा रही थी। जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और १७ दिसम्बर १६४१ ई को जापान ने भी मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा करदी। जापान ने क्षिप्रगति से दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों को जीतकर भारत के लिए सकट उपस्थित कर दिया। इसलिए देश की सुरक्षा को ध्यान में रखकर कार्यसमिति ने बारदोली अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर व्यक्तिगत सत्याग्रह को स्थगित कर दिया।

सुभाष बोस द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता हेतु जर्मनी में प्रयास

सत्याग्रह के सबध में सुभाष बोस की भूमिका पर भी थोडा प्रकाश डालना उचित होगा। इगलैण्ड का द्वितीय महायुद्ध में फस जाना सुभाष बोस भारत के लिए शुभ मानते थे। परन्तु उन्हें इस बात का गहरा दुख था कि न तो काग्रेस और न ही अन्य दल इस अवसर का लाभ उठाने के लिए तयार थे।

अक्तूबर १९४ ई मे प्रारम्भ किए गए व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन से वे प्रसन्न नही थे। देश म चल रहे सघष को गति देने के लिए उन्होने अग्रजो पर बाह्य दबाव भी डालना आवश्यक समझा। अत भारतीय स्वतन्त्रता के सघष को तेजी देने के लिए वे २६ जनवरी १९४१ ई० को पुलिस को चकमा देकर कलकत्ता से गायब हो गए और काबुल होते हुए २५ माच को बर्लिन जा पहुँचे। वहा उन्होने हिटलर से मिलकर भारतीय प्रवासियो की फौज खडी करने की सभावनाओ पर विचार किया। नवम्बर १९४१ ई मे उन्होने आजाद हिन्द रेडियो की स्थापना की तथा भारतीयो को अग्रजो की धोखेबाजी बेईमानी आदि की जानकारी देना प्रारम्भ किया। सन् १९४२ के प्रारम्भ तक वे आजाद हिन्द फौज की एक बटालियन तयार करने म सफल हो गए। उन्होन भारतीय युद्धबन्दियों को अग्र जो के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए तयार किया। इस सेना की सख्या धीरे धीरे बढकर ३५ ० तक पहुँच गई। योजना और नीतियो पर विचार करने के लिए स्वतन्त्र भारत केन्द्र की भी स्थापना की गयी। जिस समय सुभाषचन्द्र बोस जमनी मे भारतीय स्वतन्त्रता के लिए क्रियाशील थे उसी समय भारतीय समस्या के समाधान हेतु क्रिप्स एक योजना लेकर भारत आए।



२२
क्रिप्स योजना

प्रवेश

द्वितीय महायुद्ध के घोर संघात में ग्रेट ब्रिटेन का भविष्य बड़ा अंधकारमय था। उसका सितारा उन्नति पर न होकर पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। युद्ध संकट के समय अंग्रेजों को भारतवर्ष की सहायता का महत्त्व अनुभव हुआ। ११ मार्च १९४२ ई० को चर्चिल ने स्वीकार किया "हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतवर्ष ही एक ऐसा आधार है जिसके द्वारा अनाचार और अत्याचार की वृद्धि पर दृढ़ तथा सुसंगठित प्रतिघात लगाए जा सकते हैं।" इसी भावना को ध्यान में रखकर २२ मार्च १९४२ ई० को सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समस्या को हल करने और युद्ध में भारतीयों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए भेजा। क्रिप्स समाजवादी थे। वह रूस को अंग्रेजों के पक्ष में युद्ध में शामिल करने में सफल हो चुके थे। वे भारत में इससे पहले भी आ चुके थे और जवाहरलाल जी के मित्र भी थे।

क्रिप्स की भारत यात्रा का उद्देश्य

क्रिप्स का भारत भेजने का मुख्य उद्देश्य युद्ध में भारत की सहायता प्राप्त करना था। परन्तु यह एक ऐसा युद्ध था जो भारत का अपना नहीं था। इसी पर प्रकाश डालते हुए पण्डित नेहरू ने भी कहा था "एक ऐसे युद्ध के प्रति किस प्रकार भारतीयों को उत्साहित किया जाए जो उनका नहीं था।" वास्तव में यही सब से बड़ी विकट समस्या थी।

ब्रिटेन के सामने जीवन मरण का प्रश्न था। युद्ध की सफलता और असफलता पर उसका भविष्य निर्भर था। अतः श्री क्रिप्स को भारत में एक ऐसी हुण्डी के साथ भेजा गया जिसका समय व्यतीत हो चुका था और यह एक ऐसे बैंक के नाम पर थी जो स्वयं अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था। क्रिप्स का अनेक कूटनीतिक उपायों के माध्यम से भारतीयों को युद्ध में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना था। संक्षेप में क्रिप्स के भारत आगमन का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य भारतवर्ष के समस्त नेताओं का एक प्रकार से सहयोग प्राप्त करके युद्ध में भारत

की सहायता प्राप्त करना था वैधानिक योजना तो प्रासंगिक रूप से उसी लक्ष्य का एक साधन मात्र थी।

प्रस्ताव के जन्म की परिस्थितियां

क्रिप्स द्वारा जो प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए थे वे किसी एक कारण का प्रतिफल न होकर अनेक तत्वों का योग थे और उनके लिए निम्न परिस्थितियां उत्तरदायी थी –

(१) युद्ध के प्रति समस्त दलों की उदासीनता

द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेज सरकार ने उसी नीति का अनुसरण करना चाहा जो सन् १९१४ में प्रचलित की गई थी। युद्ध घोषणा के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारत को युद्ध में सम्मिलित देशों में घोषित कर दिया भारतवर्ष की जनता अथवा उसके प्रतिनिधियों से इस सम्बन्ध में कोई परामर्श नहीं लिया गया। जैसा कि पामदत्त ने कहा था भारतवासी ब्रिटिश सरकार द्वारा एक ऐसे युद्ध में खदेड़े जाने को थे जिसके प्रारम्भ करने में उनकी कोई इच्छा नहीं थी और जिसके प्रति उन्होंने सतत विरोध प्रदर्शित किया था। भारत को एक बार फिर युद्ध में भागीदार बनना पड़ा।

कांग्रेस मुस्लिम लीग और उदार दल सभी ने एकमत होकर यह निर्णय लिया कि भारत किसी भी ऐसे प्रयत्न में सहयोग नहीं करेगा जिससे उसके अपने उद्देश्यों की प्राप्ति न होती हो। युद्ध के प्रति समूचे भारत राष्ट्र की विरोध भावना ने मिस्टर क्रिप्स को भारत आने के लिए विवश कर दिया।

(२) अटलांटिक चार्टर से भारत का बहिष्कार

अगस्त सन् १९४१ में अटलांटिक चार्टर की घोषणा की गई थी जिसमें ब्रिटिश और अमरीकी सरकारों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जिन सरकारों के अन्तर्गत अन्य देशों के व्यक्ति रहते थे उन सरकारों का स्वरूप निश्चित करने के लिए उनके अधिकारों की रक्षा की जाएगी। इस सम्बन्ध में यह भी घोषित किया गया कि उनकी इच्छा है कि जिन देशों से सत्ता और स्वराज्य के अधिकार जबरदस्ती छीन लिए गए हैं वे उन्हें फिर से मिल जाएं। परन्तु अंग्रेज इस नियम को अपने साम्राज्य के प्रदेशों पर लागू करने को तैयार न थे। ६ सितम्बर १९४१ ई० को प्रधानमन्त्री चर्चिल ने इंग्लैंड की सरकार के अध्यक्ष के रूप में यह घोषणा की कि राजनैतिक विस्तार और स्वराज्य के इस अधिकार पत्र में भारतवर्ष बर्मा तथा साम्राज्य के अन्य भाग सम्मिलित नहीं हैं। इस बात से अंग्रेजों के प्रति विरोध की भावना में वृद्धि हुई।

(३) बारदौली प्रस्ताव

प्रारम्भ में कांग्रेस अंग्रेजों से पूर्ण असहयोग करने के पक्ष में थी। १८ सितम्बर १९४१ ई० को अखिल भारतीय कांग्रेस ने यह निर्णय किया था कि यह समिति किसी भी ऐसे युद्ध में न तो भाग ले सकती है और न ही किसी प्रकार की सहायता ही प्रदान कर सकती है जिसका संचालन भारतव

तथा अन्य स्थानों पर साम्राज्यवादियों के पद चिह्नों पर किया जा रहा हो। परन्तु कुछ समय पश्चात् कांग्रेस ने समझौतावादी रुख अपनाया और वार्धा में एक प्रस्ताव पारित किया कि यदि भारतवर्ष को राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत रखा जाए तो भारतवर्ष धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों के सहायक के रूप में सशस्त्र सहायता प्रदान करेगा। कांग्रेस के इस संशोधित व्यवहार ने अंग्रेजों को क्रिप्स द्वारा भारत का सहयोग प्राप्त करने का उत्साह प्रदान किया।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय विवशताएं

कुछ अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों ने भी भारत की स्वतन्त्रता का समर्थन किया था। फरवरी १९४२ में चीन के राष्ट्रपति मार्शल च्यांग काई शेक भारत की यात्रा पर पधारे और उन्होंने महात्मा गांधी से मुलाकात की। उन्होंने अपने विदाई-सन्देश में कहा कि भारत के प्रतिनिधियों को वास्तविक राजनतिक शक्ति दे दी जाए और जब तक भारत अपनी स्वतन्त्र इच्छा से युद्ध में भाग नहीं लेता तब तक वह उतनी सहायता नहीं देगा जितनी वह दे सकता है। जापान के युद्ध में शामिल होने से पूर्वी दुनिया की स्थिति गंभीर हो गई थी इसलिए अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने भी चर्चिल पर भारत से समझौते के लिए दबाव डाला था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने यह भी घोषणा की कि अटलांटिक चार्टर पूरे संसार के लिए लागू होगा। आस्ट्रेलिया के विदेश मंत्री ने आस्ट्रेलिया की संसद में घोषणा की कि हमें भारतीयों की उच्च इच्छाओं के प्रति सहानुभूति है।

(५) जापानी प्रगति का दबाव

रंगून में जापानियों का प्रवेश भारत में मिस्टर क्रिप्स के आगमन का प्रमुख बाध्यकारी कारण था। ऐसा प्रतीत होता था कि जापानी जिन्होंने इतनी शीघ्रता से मलाया और बर्मा को हस्तगत कर लिया था शीघ्र ही बंगाल और मद्रास को भी अपने अधिकार में कर लेंगे। टोकियो रेडियो के प्रसारणों ने अंग्रेजों की नींद हराम कर रखी थी। वहां से प्रतिदिन यह घोषणा की जाती थी कि बौद्ध धर्म के कारण जापानियों और भारतवासियों का सम्बन्ध गहरा है और वे (जापानी) भारतीयों को मुक्त करने के लिए ही अग्रसर हो रहे हैं। यद्यपि भारतवासी इन प्रसारणों पर विश्वास नहीं करते थे परन्तु इतना तो उन्हें विश्वास हो गया था कि ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य अस्त हो रहा है। इसलिए उन्होंने (भारतवासियों ने) ब्रिटेन को सहायता प्रदान न करना ही उचित समझा क्योंकि इससे जापान के अप्रसन्न हो जाने का भय था। ८ मार्च १९४२ ई० को रंगून इंग्लैंड के हाथ से निकल गया। भारतवर्ष को खतरा बन गया। ऐसी स्थिति में भारतीय संकट का राजनैतिक समाधान ढूंढना अंग्रेजों के लिए आवश्यक हो गया था। अतः इसी के लिए क्रिप्स को भारत में भेजा गया था। चर्चिल को अपनी आत्मकथा में लिखना पड़ा "८ मार्च को जापानी सेना रंगून में प्रविष्ट हो गई। मेरे सब मित्रों को यह मालूम हुआ कि यदि भारत की ठीक ढंग से रक्षा करनी है तो राजनैतिक गतिरोध को दूर करने के लिए सरकार को एक योजना तैयार करनी होगी और इस हेतु क्रिप्स को भारत भेजा जाए।"

क्रिप्स मिशन का भारत आगमन

११ मार्च १९४२ ई० को चर्चिल ने क्रिप्स मिशन की घोषणा की। क्रिप्स भारत में २२ मार्च १९४२ को तशरीफ लाए और बीस दिन के बाद वापस लंदन चले गए। वह कांग्रेस, मुस्लिमलीग, हिंदू महासभा, हरिजनों, राजाओं, नवाबों और उदारवादियों के प्रतिनिधियों से मिले और इसके बाद अपनी योजना प्रस्तुत की।

क्रिप्स योजना

सर स्टेफोर्ड क्रिप्स सम्राट की सरकार की तरफ से जो प्रस्ताव अपने साथ लाए थे वे एक मसविदे के रूप में थे। क्रिप्स मिशन के उन प्रस्तावों को जिनके आधार पर बातचीत आगे चली, दो भागों में बांटा जा सकता है

१ पहला भाग युद्ध की परिस्थितियों के बाद की स्थिति से संबंध रखता है।

२ दूसरा भाग वर्तमान परिस्थितियों से संबंध रखता है।

(१) युद्ध के समय लागू होने वाले प्रस्ताव

इस सम्बन्ध में क्रिप्स के मसविदे में कहा गया था इस नाजुक समय में और नए संविधान के बनने तक भारत की रक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार की रहेगी। भारत की जनता के सहयोग से भारत के सैनिक, नैतिक और भौतिक साधनों को संगठित करने की जिम्मेदारी भारत की होगी। ब्रिटिश सरकार भारतीय नेताओं को अपने देश, राष्ट्रमंडल तथा संयुक्त राष्ट्रों के परामर्श में पूरा सहयोग चाहती है। इस तरह से भारतीय नेताओं को अपना रचनात्मक सहयोग देने का अवसर मिलेगा जो भारत के भविष्य के लिए बहुत आवश्यक है।

(२) युद्ध के बाद लागू होने वाले प्रस्ताव

मसविदे में कहा गया था भारत के साथ की गई प्रतिज्ञाओं की पूर्ति के संबंध में इंगलैंड और भारत में जो चिंताएं प्रकट की गई हैं उनको ध्यान में रखते हुए सम्राट की सरकार ने शीघ्र से शीघ्र स्वशासन के विकास के लिए निश्चित कदम उठाने का निश्चय किया है। ब्रिटिश सरकार एक नए भारतीय संघ को जन्म देना चाहती है जो एक ऐसा अधिराज्य होगा जो ब्रिटिश ताज की तरफ अपनी भक्ति रखने के कारण इंगलैंड तथा अन्य उपनिवेशों से अपना संबंध रखेगा। वह अधिराज्य हर दृष्टि से दूसरे उपनिवेशों के बिल्कुल समान होगा और भीतरी तथा बाहरी मामलों में किसी के अधीन नहीं होगा।

युद्ध की समाप्ति के एकदम बाद भारत में एक निर्वाचित परिषद् बनाने के लिए कदम उठाया जाएगा जिसका काम भारत के लिए एक नया संविधान तैयार करना होगा। मसविदे में कहा गया था कि संविधान सभा में भारतीय रियासतों के भाग लेने का प्रबन्ध किया जाएगा। मसविदे में यह भी कहा गया था कि सरकार इस प्रकार बनाए गए संविधान को स्वीकार करने तथा अमल में लाने के लिए जिम्मेदारी

लेती है। परन्तु शर्त यह है कि ब्रिटिश भारत के जिन प्रान्तों को यह अधिकार दिया जाता है कि वे अपनी वर्तमान संवैधानिक स्थिति कायम रख सकें ये प्रान्त बाद में यदि भारतीय संघ में शामिल होना चाहें तो बाद में शामिल हो सकेंगे। जो प्रान्त भारत के नए संविधान को मानने और भारतीय संघ में शामिल होने के लिए तैयार नहीं होंगे उन्हें भी अपने लिए एक नया संविधान बनाने का अधिकार होगा। इनकी स्थिति भी भारतीय संघ जैसी ही होगी।

सन्धि प्रस्ताव

सम्राट की सरकार तथा संविधान सभा में एक सन्धि होगी। सन्धि में उन सब बातों का जिक्र होगा जो ब्रिटेन से भारत को शक्ति देने के कारण उत्पन्न होंगी।

ब्रिटिश सरकार ने अल्पसंख्यक वर्गों को जो आश्वासन दिए हैं उनका भी उसमें प्रबन्ध किया जाएगा।

इस सन्धि से भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य के किसी देश से अपने सम्बन्धों को निश्चित करने के बारे में कोई बाधा नहीं होगी।

चाहे कोई देशी रियासत संविधान अपनाना चाहे या नहीं परन्तु उसके साथ हुई पुरानी सन्धि को नए संविधान की आवश्यकता के अनुसार दोहराया जाएगा।

संविधान सभा की रचना

युद्ध की समाप्ति से पूर्व यदि भारत के सम्प्रदायों और हितों के मुख्य नेता किसी अन्य व्यवस्था पर सहमत न हों तो संविधान सभा का निर्माण इस प्रकार होगा

युद्ध के समाप्त होने पर प्रान्तीय विधानमण्डलों के चुनाव होंगे। प्रान्तीय विधानमण्डल के निचले सदन अर्थात् विधानसभाएं आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार संविधान सभा का चुनाव करेंगी। संविधान सभा की संख्या चुनने वाली विधानसभाओं की संख्या का दसवां भाग होगी। भारतीय रियासतों को अपनी अपनी आबादी के अनुसार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। इनकी रियासतों और प्रान्तों के प्रतिनिधियों की शक्तियां बराबर होंगी।

क्रिप्स सुझावों पर भारतीय प्रतिक्रियाएं

देश के प्रायः सभी दलों ने इस योजना को अस्वीकृत कर दिया।

(क) कांग्रेस द्वारा क्रिप्स योजना को अस्वीकार करने के कारण

कांग्रेस ने निम्नलिखित कारणों से क्रिप्स योजना को अस्वीकृत किया।

(१) रियासतों की जनता को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न होना कांग्रेस इस बात को स्वीकार नहीं कर सकती थी कि संविधान में रियासतों के प्रतिनिधियों को भेजने का अधिकार वहां की जनता को न होकर केवल रियासतों के शासकों को ही है। कांग्रेस संविधान सभा में राजाओं को रियासतों के प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं दे सकती थी क्योंकि एक तो इससे वहां की प्रजा की उपेक्षा होती थी

और दूसरे स्थानों रियासतों के शासक अंग्रेजों को प्रसन्न करने की कोशिश करते और सारे देश की प्रगति के मार्ग में बाधक बनते। देशी रियासतों का यह समूह राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध अंग्रेजों के पक्ष में काम करता।

(२) प्रान्तों तथा देशी रियासतों को संघ से अलग होने का अधिकार भारतीय कांग्रेस देश की एकता में विश्वास रखती थी। इस बात को वह किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं कर सकती थी कि मुस्लिमलीग की मांग (पाकिस्तान की स्थापना) यहां स्वीकार कर ली जाए। देशी रियासतों को पहले संघ में शामिल होने का अधिकार प्रदान किया गया परन्तु बाद में यह अधिकार दे दिया गया कि वह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि नए संविधान को मानें या न मानें। यदि कांग्रेस इस सुझाव को मान लेती तो साम्प्रदायिक समस्या और उग्र हो जाती तथा देश की एकता नष्ट हो जाती।

(३) प्रतिरक्षा विभाग पर नियन्त्रण का न सौंपा जाना ब्रिटिश सरकार ने भारत के प्रतिरक्षा विभाग पर नियन्त्रण देने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। क्रिप्स के प्रस्ताव में स्पष्ट कहा गया था कि भारत के सामने जो विषम स्थिति पैदा हो गई है उसके निवारण के लिए जबतक संविधान का निर्माण नहीं हो जाता, तबतक भारतीय रक्षा तथा युद्ध सम्बन्धी प्रयत्नों पर सम्राट का ही नियन्त्रण रहेगा। चूँकि क्रिप्स मिशन भारत के प्रतिनिधियों को देश की रक्षा के ऊपर प्रभावशाली नियन्त्रण देने के लिए तैयार नहीं था इसलिए कांग्रेस के पास उन सुझावों को अस्वीकार करने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं था।

(४) केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने से इन्कार कांग्रेस इस बात पर बहुत बल दे रही थी कि वर्तमान विषम स्थिति को देखते हुए केन्द्र में एकदम राष्ट्रीय हुकूमत स्थापित कर दी जाए वायसराय के पास नाममात्र की शक्तियाँ रह जाएं और वास्तविक शासन शक्ति भारतीयों को सौंप दी जाए। कांग्रेस मन्त्रिमंडल को कैबिनेट का मापदंड वर्तमान स्थिति को बनाना चाहती थी। क्रिप्स इस बात के लिए तैयार नहीं थे।

(५) महात्मा गांधी के अतिरिक्त सारी कांग्रेस कार्यसमिति इन प्रस्तावों के विरुद्ध थी इसलिये इनको अस्वीकार किया गया। महात्मा गांधी ने इन प्रस्तावों के बारे में कहा था "यह आगे की तारीख में भुनाया जाने वाला चैक है।" इस वाक्य में किसी आलोचक ने ये शब्द जोड़ दिए "एक ऐसे बैंक के नाम पर जो स्वयं टूटने वाला है।"

मुस्लिम लीग द्वारा क्रिप्स सुझावों की अस्वीकृति

मुस्लिमलीग ने अपने ११ अप्रैल १९४२ ई० के प्रस्ताव द्वारा निम्नलिखित कारणों से क्रिप्स सुझावों को अस्वीकार कर दिया —

१ इन सुझावों में स्पष्ट रूप से पाकिस्तान की मांग स्वीकार नहीं की गई है।

२ इन सुझावों में दो संविधान सभाओं की व्यवस्था नहीं है। मुसलमान अलग संविधान बनाना चाहते हैं।

३ संविधान सभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व पृथक चुनाव-पद्धति द्वारा होना चाहिए। चूंकि संविधान-सभा में निर्णय बहुमत द्वारा होंगे इसलिए मुसलमान हिन्दुओं की दया पर आश्रित रहेंगे।

४ भारत और ब्रिटेन के बीच संधि की शर्तें निश्चित नहीं की गई हैं।

५ देशी रियासतों की इच्छा पर निर्भर होना चाहिए कि वे संविधान सभा में शामिल हों या न हों।

६ अन्तःकालीन व्यवस्था के लिए कोई निश्चित सुझाव नहीं है।

७ प्रान्तों में विधानमंडलों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व सन्तोषजनक नहीं है और

८ प्रान्तों का केन्द्र से अलग रहने का अधिकार काफी स्पष्ट नहीं है। प्रान्तों का इस बारे में निर्णय जानने के लिए कोई व्यवस्था सुझावों में शामिल नहीं है।

क्रिप्स सुझावों को अन्य वर्गों द्वारा अस्वीकृति

१ सिक्खों ने इन सुझावों को इसलिए रद्द कर दिया क्योंकि प्रान्तों को केन्द्र से अलग रहने का अधिकार दे दिया गया था और इसी वजह से पंजाब में पाकिस्तान के बनने की सम्भावना थी। सिक्खों ने कहा वे पंजाब में कभी भी पाकिस्तान नहीं बनने देंगे।

२ हिन्दू महासभा ने इन सुझावों को इसलिए अस्वीकार कर दिया कि इनमें पाकिस्तान बनने के कीटाणु स्पष्ट रूप से लक्षित होते थे और भारतीय एकता को बड़ी भारी चोट पहुँचायी गई थी।

३ हरिजन नेताओं ने इन प्रस्तावों को इसलिए रद्द कर दिया था कि वे सवर्ण हिन्दुओं की दया पर आश्रित हो जाते।

४ सर तेजबहादुर सप्रू तथा एम. आर. जयकर ने जो उदारवादियों के प्रमुख नेता थे इन प्रस्तावों को इसलिए अस्वीकार कर दिया था कि ये भारत की सुरक्षा, अखंडता और हितों के विरुद्ध थे।

क्रिप्स-प्रस्तावों की आलोचना

(१) राष्ट्रीय एकता के भंग होने का भय

क्रिप्स प्रस्तावों में प्रान्तों को भारतीय संघ से अलग रहने या शामिल होने का स्वैच्छिक अधिकार दे दिया गया जो स्पष्ट रूप से भावी संकट की सूचना थी। कांग्रेस ने क्रिप्स प्रस्तावों पर आरोप लगाया कि वे भारत में पृथक्तावादी शक्तियों को प्रोत्साहन देते हैं जबकि भारत को अधिक से अधिक सहयोग और मैत्रीपूर्ण वातावरण की नितान्त आवश्यकता है। पंडित नेहरू ने इन प्रस्तावों का विरोध करते हुए कहा था कि भारत को विभाजित करने का कोई भी प्रस्ताव अत्यन्त दुःखदायी है। यह हर प्रकार की मनोभावनाओं और आस्थाओं के विरुद्ध है।

(२) संविधान सभा का अप्रजातांत्रिक आधार

प्रस्तावित संविधान-सभा का संगठन अप्रजातांत्रिक था। इसमें देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया था। इनका नामांकन देशी नरेशों को करना था। नामांकित प्रतिनिधियों की संख्या भी काफी थी। इसलिए यह सन्देह ठीक ही था कि वे प्रतिक्रियावादी गुट के रूप में कार्य करेंगे और संविधान को ब्रिटिश सरकार के इशारे के अनुरूप निर्मित करने का प्रयास करेंगे।

(३) भारतीय स्वतन्त्रता की सुरक्षा की गारन्टी नहीं

इस प्रतिक्रियावादी नव निर्मित संविधान सभा के हाथों भारतीय जनता की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं थी। कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में भी कहा था देशी राज्यों की नौ करोड़ जनता की अवहेलना करना और क्रय विक्रय की वस्तु की भाँति उनके साथ व्यवहार करना प्रजातन्त्र और स्वभाग्य निर्णय के विरुद्ध है।

(४) कांग्रेस की बुनियादी नीति पर प्रहार

कांग्रेस के नेताओं ने इसमें पूर्ण स्वराज्य की व्यवस्था को न देखकर इन प्रस्तावों को अपनी नीति के विरुद्ध ठहराया अतः इनका बहिष्कार और निन्दा करना ही ठीक समझा।

(५) प्रस्तावों का असन्तोषजनक वर्गीकरण

प्रस्तावों का दो भागों में वर्गीकरण भी एक असन्तोषजनक पहलू था। वास्तव में इन प्रस्तावों को दो भागों में विभक्त करके इनके स्वरूप को ही नष्ट किया गया था।

६) वर्तमान सम्बन्धी प्रस्ताव कांग्रेस को मान्य नहीं

कांग्रेस ने क्रिप्स प्रस्तावों की बात को मान लिया होता लेकिन वर्तमान सम्बन्धी प्रस्तावों के पूर्णतया अमान्य होने से उसने सभी प्रस्तावों को अमान्य कर दिया। ब्रिटिश सरकार का कहना था कि वर्तमान स्थिति बहुत ही संकटपूर्ण है अतः भारत की प्रतिरक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व और नियन्त्रण ब्रिटेन ही हाथ में रहेगा। दूसरी तरफ कांग्रेसी नेताओं का यह कहना था कि किसी भी प्रस्ताव की क्रियान्वितता वर्तमान से ही सम्बन्धित होगी अतः ब्रिटिश सरकार की वर्तमान नीति का उसने विरोध किया।

(७) ब्रिटिश सरकार की कथनी और करनी में अन्तर

शुरू में क्रिप्स ने मौलाना आजाद को आश्वासन दिया था कि अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना कर दी जाएगी जो बहुत हद तक उत्तरदायी होगी। इसमें वायसराय एक संवैधानिक प्रधान होगा और उसकी कार्यकारिणी समिति मन्त्रिमंडल का कार्य करेगी बाद में क्रिप्स अपने वायदों से मुकर गए और वायसराय को एक अधिनायकवादी शासक ही रहने दिया। इससे क्रिप्स पर से भारतीय नेताओं का विश्वास उठ गया। मौलाना आजाद की मान्यता थी कि जबतक युद्ध काल में कौंसिल को वास्तविक शक्ति और उत्तरदायित्व न सौंपा जाए तबतक किसी भी

प्रकार का परिवर्तन महत्त्वपूर्ण नहीं होगा। शुरू में क्रिप्स ने मुझे आश्वासन दिया था कि कौंसिल एक मन्त्रिमंडल की भांति कार्य करेगी। बातचीत के द्वारा स्पष्ट हो गया था कि उक्त कथन अतिशयोक्तिपूर्ण था।

(८) प्रतिरक्षा पर भारतीयों का नियन्त्रण नहीं

जापानी हमले के समय कांग्रेस ने मांग की थी कि प्रतिरक्षा पर भारत का पूर्ण एवं प्रभावकारी नियन्त्रण रहना चाहिए। लेकिन ब्रिटिश सरकार इसको मानने को तैयार नहीं थी। क्रिप्स ने स्पष्ट कर दिया था कि भारतीय सदस्य केवल जनसम्पर्क, युद्धोपरान्त निर्माण और सेना की सुविधाओं के लिए उत्तरदायी होंगे। कांग्रेस ने इन कार्यों को अपर्याप्त समझा।

(९) कांग्रेस को भय

जब प्रतिरक्षा विभाग को उत्तरदायित्व के क्षेत्र में स्थापित करने की कांग्रेसी मांग को सरकार ने अस्वीकार कर दिया तो निस्सन्देह भारतीय जनता में ब्रिटिश इरादों के प्रति सन्देह पैदा होना स्वाभाविक था। इस विभाग को इस क्षेत्र से हटा देने का वास्तविक भय यही था कि भविष्य में भारत एक स्वतन्त्र सरकार की कामना नहीं कर सकता था। इस प्रकार कांग्रेस के इस तर्क को कि युद्ध जनता की तरफ से लड़ा जाएगा ब्रिटिश सरकार ने अस्वीकार कर दिया।

(१०) देश के सभी राजनीतिक दलों की निन्दात्मक अभिव्यक्तियाँ

क्रिप्स प्रस्ताव से किसी को भी सन्तोष नहीं हुआ था। कांग्रेस ने शुरू से ही इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। हिन्दू महासभा का कहना था कि ब्रिटिश सरकार इन प्रस्तावों द्वारा पीछे के दरवाजे से पाकिस्तान की स्थापना करना चाहती है। अतः उसने इन प्रस्तावों को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया। सिक्ख समुदाय भी इसी आधार पर प्रस्ताव के विरुद्ध था। उसके अनुसार पाकिस्तान का निर्माण सिक्खों के हित के विरुद्ध था। अनुसूचित जातियों को भय था कि इन प्रस्तावों की मान्यता से कुछ खास किस्म की जातियों का शासन स्थापित हो जाएगा।

सर तेजबहादुर सप्रू जैसे उदारवादियों ने भी क्रिप्स प्रस्ताव का विरोध किया और अनेक नए सुझाव दिए। मुस्लिमलीग ने भी इन प्रस्तावों को ठुकरा दिया। उसने विभाजन संबंधी प्रस्ताव पर सन्तोष तो प्रकट किया लेकिन उसने इस बात पर जोर दिया कि कौनसा प्रान्त भारत में रहेगा और कौनसा पाकिस्तान में इस बात का निर्णय करने के लिए जनमतसंग्रह पर मुसलमान ही मत दें। संविधान सभा के संगठन के बारे में उसने शिकायत की।

क्रिप्स प्रस्ताव से कोई भी खुश नहीं हुआ। इसलिए सभी प्रस्तावों को अचानक ११ अप्रैल १९४२ ई० को हटा लिया गया। क्रिप्स इंग्लैंड लौट गए। भारत का संवैधानिक गतिरोध ज्यों का त्यों बना रहा। क्रिप्स योजना से भारतीयों में एक आशा की लहर का जो संचार हुआ था वह एकाएक निराशा में परिवर्तित हो गया। साम्राज्यवाद से समझौते की रही सही आशा जाती रही अब १९४२ ई० के भारत छोड़ो आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

२३

सन् १९४२ की क्रान्ति

प्रवन

जिस क्रम से क्रिप्स वार्ता भंग हुई और क्रिप्स को वापस बुलाया गया तथा इस विषय में ब्रिटिश संसद में जो वाद विवाद हुआ उसने भारतीयों को यह सोचने को बाध्य कर दिया कि यह सम्पूर्ण क्रिया कलाप एक राजनीतिक धूर्तता मात्र थी जिसका उद्देश्य विश्व लोकमत की आँखों में धूल झोंकना और पूर्व अनुमानित असफलता का भार भारतीय जनता के ऊपर डाल देना था। क्रिप्स के विश्वासघात के साथ साथ का भेद खुलने पर देश निराशा, किंकर्तव्यविमूढ़ता और व्यथा के गर्त में डूब गया। यह राष्ट्र के लिए बहुत ही असन्तोषकर अवस्था थी। इस स्थिति का बदलना आवश्यक था। श्री जवाहरलाल नेहरू ने लिखा, "जनता की निराशा को साहस और प्रतिरोध की भावना में बदलना बहुत आवश्यक था।" सन् १९४२ ई० के आसपास महात्मा गांधी ने उग्रतापूर्वक इस दिशा में सोचना प्रारम्भ कर दिया। भारत छोड़ो आन्दोलन उनके मस्तिष्क में उमड़ने लगा और उन्होंने इसे हरिजन में एक लेखमाला लिखकर मुखरित किया।

भारत छोड़ो आन्दोलन का विचार

भारत छोड़ो आन्दोलन पर दृष्टिपात करने से पूर्व हमें यह देख लेना चाहिए कि यह विचार गांधीजी के मस्तिष्क में क्यों और किन परिस्थितियों में पल्लवित हुआ।

(1) क्रिप्स मिशन की असफलता

३ मार्च १९४२ ई० को सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने यह संकेत दिया था कि यदि यह बातचीत असफल हो गई तो वह आगे और कोई बातचीत नहीं करेगा। चूंकि क्रिप्स योजना अपर्याप्त थी अतः भारत के सभी दलों ने इसे अस्वीकार कर दिया। क्रिप्स ने अपनी असफलता की जिम्मेदारी कांग्रेस पर डाली। भारतीयों को यह विश्वास हो गया कि यह योजना अमरीका और चीन के दबाव के कारण उत्पन्न हुई थी और चर्चिल का भारतीयों को वास्तविक शक्ति देने का कोई इरादा नहीं है। मौलाना आजाद ने लिखा था, "क्रिप्स और भारतीय नेताओं में जो लम्बी बातचीत चली थी, वह संसार को यह सिद्ध करने के लिए थी कि कांग्रेस

भारत की सच्ची प्रतिनिधि संस्था नहीं है और भारतवासियों की फूट ही वास्तविक कारण है जिससे अंग्रेज इनको कोई वास्तविक शक्ति देने में असमर्थ हैं। इन सब बातों से जहाँ क्रिप्स का भारत में अपयश फैला वहाँ लोगों में निराशा भी फैल गई।

( ) जापानियों को नाराज न करने की भावना

कांग्रेस जापानियों को नाराज करने को तैयार नहीं थी। जापानी आक्रमण का भय भी दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा था और कांग्रेस ने समझ लिया कि उस अंग्रेजों का साथ देकर जापानियों को नाराज नहीं करना चाहिए।

(३) बर्मा के शरणार्थियों की करुण कहानी

बर्मा से जो भारतीय शरणार्थी भारत आ रहे थे उन्होंने श्री अणे को जो वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य थे और बाहर रहने वाले भारतीयों की देखभाल करने वाले विभाग के मुखिया थे अपने दुःख की जो करुण कहानी सुनाई वह बड़ी दुःखपूर्ण थी। पं. हृदयनाथ कुंजरू ने जो श्री अणे के साथ ही थे एक वक्तव्य में कहा कि भारतीय शरणार्थियों से ऐसा अपमानजनक व्यवहार किया गया जैसे वे किसी घटिया जाति से सम्बन्धित हों। इस दारुण घटना ने भारतीयों में रोष की एक लहर पैदा कर दी और उनमें यह भावना उत्पन्न कर दी कि अंग्रेज भारतीय हितों का रक्षण करने में असमर्थ हैं और वे अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयों का अपमान करने को तुले हुए हैं।

(४) पूर्वी बंगाल में भय और आतंक का वातावरण

पूर्वी बंगाल में भय और आतंक का राज्य था। अंग्रेजों ने वहाँ सैनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने वहाँ देशी नावों को जो हजारों परिवारों की जीविका का साधन थी नष्ट कर दिया। इससे लोगों के दुःखों में अपार वृद्धि हुई और अंग्रेजों के खिलाफ घृणा की भावना तीव्र हो उठी।

(५) सीमातीत मूल्य वृद्धि

उस समय वस्तुओं के भाव बहुत अधिक बढ़ गए थे। लोगों का कागजी मुद्रा पर से विश्वास उठता चला जा रहा था। इस महँगाई के कारण मध्यम वर्ग में सरकार के खिलाफ बहुत ही तीव्र अविश्वास की भावना थी और वह अंग्रेजों से लोहा लेने को सन्नद्ध था।

(६) अंग्रेजों की सामर्थ्य पर शंका

महात्मा गांधी का विचार था कि अंग्रेज भारत की रक्षा करने में असमर्थ हैं। अंग्रेजों की सिंगापुर मलाया और बर्मा की हार ने महात्मा गांधी के विश्वास को दृढ़ बना दिया। उनके विचार में अंग्रेजों के यहाँ से चले जाने और न चले

जाने के बीच कोई दूसरा रास्ता नही था। लेकिन इसका आशय यह नही था कि प्रत्येक अंग्रेज अपना बोरिया बिस्तर बांधकर हट जाए। वे इस बात के लिए तयार थे कि ब्रिटिश सेनाए स्वतन्त्र भारत के साथ संधि करके यहा ठहरी रहे। उन्होंने जिस बात पर बल दिया वह यह थी कि अंग्रेज भारतीय जनता के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित करदें। चूकि अंग्रेजो से यह आशा नही की जा सकती थी कि वे भारत छोडकर चले जाएगे इसलिए कुछ न कुछ कार्यवाही करनी आवश्यक थी। अब और निष्क्रियता असहनीय थी। ब्रिटिश सरकार के प्रति सक्रिय प्रतिरोध आवश्यक था यह निष्क्रियता की तुलना में अधिक श्रेयस्कर था।

भारतछोडो प्रस्ताव

भारत छोडो प्रस्ताव कांग्रेस कार्यसमिति का पराधीन भारत का सबसे स्वर्णिम प्रस्ताव था। भारतीयो को यह विश्वास था कि ७ या ८ अगस्त तक यदि अंग्रेज भारत छोड कर चले जाते हैं तो जापानियो का आक्रमण नही होगा। इसलिए महात्मा गांधी ने अंग्रेजो को भारत से निकल जाने की बात कही। उन्होंने अपने विचारों का हरिजन तथा अन्य समाचारपत्रों के द्वारा देश मे व्यापक प्रचार प्रारम्भ किया। ५ जुलाई १६४२ ई को उन्होंने हरिजन में लिखा अंग्रेजो भारत को जापान के लिए मत छोडो भारत को भारतीयो के लिए ही व्यवस्थित रूप से छोड दो। गांधीजी को यह इसलिए भी कहना पड़ा क्योंकि उस समय जापानी आक्रमण का बहुत भय था और अंग्रेजो की योजना पूर्वी भारत को छोडने की थी भी। गांधीजी का विचार था कि केवल स्वतन्त्र भारत में ही आक्रमणकारी का विरोध करने की नैतिक शक्ति हो सकती है। ८ अगस्त १६४२ ई को अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव में कहा गया था

भारत मे ब्रिटिश शासन का तुरन्त अन्त हो जाना चाहिए। यह भारत के लिए आवश्यक है। इस शासन का निरन्तर जारी रहना भारत को नीचे गिराना है और देश अपनी प्रतिरक्षा के लिए कमजोर होता जा रहा है। ब्रिटिश शासन का स्थायित्व भारत की प्रतिष्ठा को घटाता है और उसे दुर्बल बनाता है और अपनी रक्षा करने तथा विश्व-स्वातन्त्र्य के आदर्श की पूर्ति में सहयोग देने की उसकी शक्ति में क्रमिक ह्रास उत्पन्न करता है। भारत की स्वतन्त्रता से ही ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रो को आंका जा सकता है। स्वतन्त्र भारत इस सफलता को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा क्योंकि अपने सभी साधनो को स्वतन्त्रता के लिए तथा फासिस्टवाद नात्सीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध लगा देगा पराधीन भारत साम्राज्यवाद का चिह्न बना हुआ है। परन्तु स्वतन्त्रता की प्राप्ति ही युद्ध के रूप को बदल सकती है भावी वायदे नही। अतएव अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति अत्यधिक जोरदार

भारतीयों से ब्रिटिश सत्ता के हट जाने की मांग दोहरा रही है। यदि यह मांग न मानी गई तो समिति एक विस्तृत पैमाने पर महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक संघर्ष चलाने को बाध्य विवश होकर देती है। वह भारतीयों से अपील करती है कि इस आन्दोलन का आधार अहिंसात्मक हो और प्रत्येक व्यक्ति अपना मार्गदर्शन स्वयं करे। तब भी सत्ता आएगी सारी जनता की रहेगी।"

कांग्रेस महासमिति में दिए गए अपने भाषण में महात्मा गांधी ने यह घोषणा की थी कि यह संघर्ष करो या मरो का होगा। लेकिन यह लड़ाई अहिंसक होगी इसमें गुप्त कुछ भी न रहेगा। महात्मा जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह आन्दोलन प्रारम्भ करने के पूर्व वायसराय से मिलेंगे और मुख्य मित्र राष्ट्रों से अपील करेंगे। पण्डित नेहरू के मतानुसार यह प्रस्ताव कोई धमकी नहीं थी बल्कि एक सहयोग प्रस्ताव था। महात्मा जी ने भी चीन के तत्कालीन सर्वेसर्वा च्यांगकाई शेक को भेजे गए अपने पत्र में लिखा था कि वह कोई पग जल्दबाजी में नहीं उठाएंगे। लेकिन सरकार ने उन्हें सोचने का समय तक नहीं दिया और ६ अगस्त की प्रातः महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया।

सरकारी दमन

जो प्रस्ताव कांग्रेस की कार्यकारिणी में पारित किया गया था वह कोई धमकी नहीं थी। बस यह जन विद्रोह का संकेतमात्र था। राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से जनता सन्तुलन खो बैठी। सरकार ने दमन का जो चक्र आरम्भ किया उससे भारत नरक-सा बन गया। आन्दोलन के दौरान सेना और पुलिस को लगभग ५३८ बार गोलियां चलानी पड़ीं लगभग १ २८ व्यक्ति मरे और ३ हजार से अधिक व्यक्ति घायल हुए। इस आन्दोलन में ६ हजार व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया और ६ बार तो ऊपर से मशीनगनों से गोली की वर्षा की गई। कांग्रेस को गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया और इसके दफ्तर तथा कार्यालयों पर पुलिस का कब्जा हो गया। कांग्रेस के सहस्रों कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार ने आन्दोलन को दबाने के लिए बहुत अत्याचार किए। इस दमन चक्र ने खुले विद्रोह को तो पूरी तरह दबा दिया परन्तु भूमिगत (गुप्त) आन्दोलन कई महीनों तक चलता रहा और जयप्रकाशनारायण राममनोहर लोहिया तथा अरुणा आसफअली जैसे नेताओं ने उसका मार्ग दर्शन किया

आन्दोलन का रूप

जब जनता ने नेताओं की गिरफ्तारी आदि के समाचार सुने और पढ़े तो उसके क्षोभ का कोई ठिकाना नहीं रहा और वह अंग्रेजों से बदला लेने की सोचने लगी। कांग्रेसी नेताओं ने जनता के लिए कोई अनुदेश या निर्देश नहीं छोड़े थे।

महात्मा जी ने तो केवल 'करो या मरो' का नारा दिया था। इसलिए जनता के पास कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं था। ऐसी दशा में शेष अखिल भारतीय नेताओं ने कांग्रेस समिति की तरफ से एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें १२ सूत्री कार्यक्रम दिया हुआ था। इस १२ सूत्री कार्यक्रम में सम्पूर्ण देश में शान्तिपूर्ण हड़तालें सार्वजनिक सभाएं, नमक बनाना, लगान न देना आदि कार्यक्रम सम्मिलित थे। सरकार ने शीघ्र ही इस पुस्तिका को जब्त कर लिया और अनेक कठोर कदम उठाए। इस आन्दोलन का स्वरूप बिल्कुल अहिंसात्मक था। हिंसा का कोई स्थान नहीं था। जनता से कहा गया था कि पुलिस थाना, तहसीलों तथा जिले के मुख्य कार्यालयों को अहिंसक कार्यों द्वारा अकर्मण्य बना दिया जाए। परन्तु जब सभी प्रमुख नेताओं को बन्दी बना दिया गया तो जनता का धैर्य डिग गया। उन्हें स्पष्ट रूप से मालूम हो गया कि वे अहिंसक क्रान्ति से कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं और क्रान्ति के बिना अंग्रेजों के हौसले पस्त नहीं किए जा सकते। इसीलिए आन्दोलन का सचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में चला गया जो जीवन के विनाश और निर्माण में भेद नहीं कर सके। अतः आन्दोलन अहिंसात्मक मार्ग पर बढ़ता २ क्रान्तिकारी उद्देश्य के चरम बिन्दु पर पहुँच गया।

भारत छोड़ो आन्दोलन के चार चरण

१ बाल्यावस्था

आन्दोलन की पहली अवस्था गांधीजी की ९ अगस्त १९४२ ई० की गिरफ्तारी से लेकर ३-४ दिन तक रही। इस काल में श्रमिक हड़तालों का विशेष प्रभाव था। पुलिस का दमन चक्र चला जिससे लोगों में अत्यधिक असन्तोष भड़का और वे हिंसा पर उतर आए।

२ युवावस्था

इस काल में जनता ने सरकारी भवनों का विध्वंस किया और रेलवे डाकखानों तथा पुलिस थानों पर विशेष आक्रमण किए। अनेक स्थानों पर तो अराजकता की स्थिति भी उत्पन्न हो गई और अस्थायी सरकारों का भी निर्माण हो गया। आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार ने काफी अत्याचार किए।

३ प्रौढ़ावस्था

इस काल में व्यक्तियों ने विभिन्न स्थानों पर सशस्त्र हमले किए। ऐसी घटनाएं मुख्य रूप से बंगाल और बिहार में घटी। इस प्रकार का आन्दोलन सन् १९४३ की फरवरी तक चलता रहा। बम्बई, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा कुछ अन्य स्थानों पर जनता द्वारा बम भी फेंके गए।

४ वृद्धावस्था

चौथी अवस्था में आन्दोलन बहुत धीमी गति से ९ मई १९४४ ई० तक चला जबकि गांधीजी छोड़ दिए गए थे। इस काल में आन्दोलनकारियों ने तिलक दिवस

और स्वतन्त्रता दिवस भी मनाए। श्री जयप्रकाश नारायण और अरुणा आसफअली ने बहुत ही सराहनीय काम किया। वास्तव में देखा जाए तो ये ही आन्दोलन के कर्णधार थे। मुस्लिमलीग ने इसमें भाग नहीं लिया और राजाओं तथा रायबहादुरों का भी यही रवैया रहा।

आन्दोलन का प्रभाव

इस आन्दोलन के फलस्वरूप विश्व लोकमत में नाटकीय परिवर्तन हुआ। आन्दोलन का अमरीकी जनता पर काफी प्रभाव पड़ा। स्वयं ब्रिटेन का लोकमत भी चाहने लगा कि इंग्लैंड भारत को छोड़ दे। चीन की जनता पर भी विशेष प्रभाव पड़ा। चीन के शासक च्यांगकाई शेक ने २५ जुलाई १९४२ ई० को अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट को लिखा अंग्रेजों के लिए यही सबसे श्रेष्ठ नीति है कि भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दें। च्यांग काई शेक द्वारा भारत की वकालत करने पर चर्चिल बौखला उठा और उसने धमकी दी यदि चीन भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करता रहा तो अंग्रेज चीन के साथ अपनी संधि तोड़ देंगे।

आन्दोलन विरोधी दृष्टिकोण

लीग की दृष्टि में यह खतरनाक आन्दोलन था। मुस्लिमलीग के सर्वेसर्वा श्री जिन्ना ने इस आन्दोलन की निन्दा की और मुसलमानों को इसमें भाग न लेने की परामर्श दिया। हिन्दू महासभा ने इस आन्दोलन को निरर्थक बताया और कहा कि देश को पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग करनी चाहिए। उदारवादी नेता सर तेजबहादुर सप्रू ने इस आन्दोलन को अकल्पित तथा असामयिक बताया। डाक्टर अम्बेडकर ने भी इस आन्दोलन का विरोध किया। अकाली दल और साम्यवादी दल भी इस आन्दोलन के विरुद्ध थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि कांग्रेस को छोड़कर कोई भी दल सन् १९४२ ई० में अंग्रेजों को अप्रसन्न करने के पक्ष में नहीं था।

आन्दोलन का महत्त्व

सन् १९४२ का आन्दोलन स्वाधीनता प्राप्ति की दिशा में महान् कदम था। यह आन्दोलन कोई साधारण आन्दोलन नहीं था अपितु स्वतन्त्रता प्राप्ति की दिशा में महान् आन्दोलन था सरकार को इस काल में दण्ड के रूप में २५ रु० की आमदनी हुई। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह व्यापक जन असन्तोष था जो गुलामी की जंजीरों को तोड़ना चाहता था।

इस आन्दोलन का तात्कालिक उद्देश्य स्वतन्त्रता प्राप्ति था और इसमें यह आन्दोलन असफल सिद्ध हुआ। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह आन्दोलन पूर्णत: निष्फल रहा। इस आन्दोलन का महान् उद्देश्य था—जनता में जागृति उत्पन्न करना और विदेशी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मुकाबला करने की भावना उत्पन्न करना। कहना न होगा कि आन्दोलन इस उद्देश्य को प्राप्त करने में बहुत सफल रहा। डॉ॰ अम्बाप्रसाद के अनुसार इस आन्दोलन ने सन् १९४७ में भारतीय

स्वतन्त्रता के लिए पृष्ठभूमि तयार की। इस आन्दोलन ने लोगो मे नवीन चेतना का अभ्युदय एव अत्याचारो से लोहा लेने की भावना का विकास किया। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है आन्दोलन के कारण लोगो मे सरकार का मुकाबला करने की हिम्मत तथा उत्साह बहुत बढ़ गया जनमत की आवाज ने काफी बुलन्दी प्राप्त की। सरदार पटेल के अनुसार भारत मे ब्रिटिश राज्य के इतिहास में ऐसा विप्लव कभी नही हुआ था जसाकि १९४२ ई में हुआ। लोगो ने जो प्रतिक्रिया की है हम उस पर गर्व है।' वास्तव में सन् १९४२ का आन्दोलन एक गौरवपूर्ण क्रान्ति थी कि जिसके पाच ही वर्ष बाद भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। जब जवाहरलाल नेहरू जल से छूटे तो उन्होंने कहा १९४२ ई मे जो कुछ हुआ उसका मुझे गर्व है मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं उनकी निन्दा नही कर सकता जिन्होंने आन्दोलन मे भाग लिया। इस आन्दोलन से ब्रिटिश साम्राज्यवाद को गहरा धक्का लगा। डॉ ईश्वरी प्रसाद ने ठीक ही लिखा है इस विद्रोह की आग म औपनिवेशिक स्वराज्य की सारी बातें जल गई। भारत अब पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कुछ नही चाहता था। अंग्रेजो का भारत छोडना निश्चित हो गया। यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद को असह्य धक्का था।

समालोचना

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह आन्दोलन प्रदम्य राष्ट्रीयता और क्रान्ति का प्रतिफल तथा अंग्रेजो के विरुद्ध घोर घृणा का परिणाम था। इस आन्दोलन का स्वरूप प्रारम्भ मे अहिंसात्मक था पर तु परिवर्तित परिस्थितियो मे यह क्रान्तिकारी पथ पर अग्रसर होता गया। इस आन्दोलन म सवसाधारण ने बढ़कर भाग लिया और सरकार ने भी इसे कुचलने मे कमी नही रखी फिर भी सरकार जन भावनाओ का दमन करने में पूर्ण सफल नही हो सकी।

इस आन्दोलन मे केवल कांग्रेस ने ही महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया था। अन्य दल दर्शकमात्र बने रहे। फिर भी यह आन्दोलन जिसकी जड़ें जन मानस मे गहराई से आरोपित हो गई थी काफी सफल रहा। इस आन्दोलन ने देश म राष्ट्रीयता की अलख जगा दी जो अंग्रेजो को भारत से निकाल देने के बाद ही शान्त हो सकी। इस आन्दोलन का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम लीग और अंग्रेजो मे गठबन्धन हो गया।



२४

सन् १९४२ की क्रान्ति के बाद के वर्ष

(1) १९४३ का वर्ष

सन् १९४३ का वर्ष भारतीय राजनीति में रंगविहीन वर्ष के रूप में आया। देश की जनता स्वतन्त्रता का एक और प्रयास असफल होने से दुखी थी ब्रिटिश सरकार जीवन मरण के संघर्ष में रत थी और राष्ट्रपति रूजवेल्ट मित्र राष्ट्रों की विजय की योजना को मूर्तरूप देने में प्रयत्नरत थे। फलतः भारत की समस्या की ओर किसी का ध्यान नहीं था। देश में कोई आश्चर्यजनक गतिविधि नहीं हो रही थी यद्यपि निष्प्राण शान्ति भी नहीं थी। १९४३ ई० के प्रारम्भ में जेल से छूटने के बाद महात्मा गांधी ने पुनः सरकार से समझौता वार्ता की इच्छा प्रकट की। गांधी जी ने आत्मशुद्धि के उद्देश्य से २१ दिन का उपवास व्रत प्रारम्भ करने की घोषणा की। सरकार ने गांधी जी को उपवास व्रत से विरत करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। ऐसा कहा जाता है कि उपवास काल में गांधीजी के देहान्त की सम्भावना को ध्यान में रखकर उनके दाह-संस्कार की तैयारी भी सरकार ने करली थी। १ फरवरी १९४३ ई० को गांधी जी ने अपना उपवास प्रारम्भ किया। ११ दिनों के पश्चात् गांधी जी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा एवं समस्त भारतवर्ष में चिन्ता व्याप्त हो गई। श्री मोदी श्री अणे श्री सरकार ने वायसराय द्वारा गांधीजी के उपवास के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही नहीं करने की इच्छा के विरोध में वायसराय की कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। १९ फरवरी १९४३ ई० को दिल्ली में विभिन्न विचारों एवं मान्यताओं वाले ११ व्यक्तियों की एक बैठक गांधीजी के उपवास से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिए हुई। इस बैठक में एक प्रस्ताव पारित कर वायसराय से गांधी जी को मुक्त करने का आग्रह किया गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री भारत-मंत्री एवं संसद में प्रतिपक्षी नेता सर परसी हैरीस को भी इस सम्बन्ध में तार द्वारा सूचना दी गयी। परन्तु वायसराय ने दिल्ली-बैठक द्वारा पारित प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दिया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भी गांधी जी की गिरफ्तारी का उत्तरदायित्व स्वयं गांधी जी पर आरोपित कर अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति पा ली। ३ मार्च को गांधी जी ने अपना उपवास व्रत सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। देश में अपार प्रसन्नता

की लहर फैल गई। ९ मार्च को सम्मानित अग्रिम भारतीय नेताओं की एक बैठक के निर्णयानुसार ३५ व्यक्तियों ने अपने हस्ताक्षरयुक्त एक वक्तव्य प्रकाशित कर सरकार और कांग्रेस से अपनी नीतियों पर पुनः विचार कर मतभेद स्थगित करने का आग्रह किया। वायसराय ने उक्त वक्तव्य पर कोई ध्यान नहीं दिया। फरवरी एवं अप्रैल १९४३ में रूजवेल्ट के निजी प्रतिनिधि विलियम फिलिप ने जेल में गांधीजी से मिलने की अनुमति चाही परन्तु भारत सरकार ने अनुमति प्रदान नहीं की। यद्यपि यूरोप में मित्र राष्ट्रों की विजय प्रारम्भ हो गई थी तथापि जापान युद्ध में विजय पर विजय प्राप्त करता जा रहा था एवं युद्ध का अन्त नजर नहीं आ रहा था। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश शासक भारत पर से अपना नियंत्रण कमजोर नहीं करना चाहते थे। इस काल में मुस्लिम लीग निरन्तर पाकिस्तान की मांग करती रही। ११ अक्टूबर १९४२ ई. को जिन्ना ने एक वक्तव्य में कहा "हम भारत के मुसलमान एक सम्प्रभु राष्ट्र की स्थापना कर अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं। पाकिस्तान का निर्माण हमारे लिए जीवन मरण का प्रश्न है या तो हम इसे प्राप्त करेंगे अथवा नष्ट हो जाएंगे।" २४ अप्रैल १९४३ ई. को लीग के ३१ वें अधिवेशन में भाषण देते हुए जिन्ना ने पाकिस्तान की मांग को पुनः दोहराया और महात्मा गांधी को पाकिस्तान के निर्माण के आधार पर समझौता वार्ता करने के लिए आमन्त्रित किया।

सन् १९४३ में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक और नया मोड़ लिया। इस वर्ष सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज का गठन किया तथा स्वतन्त्र भारत की कामचलाऊ सरकार की घोषणा की। भारतीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्तियों को जब सरकार ने जेल में डाल दिया उस समय देश के बाहर सुभाषचन्द्र बोस ने स्वतन्त्रता की मशाल को प्रज्वलित रखने का महान् कार्य किया। हम पहले यह चर्चा कर चुके हैं कि सुभाषचन्द्र बोस किस तरह जर्मनी पहुंचे और वहां उन्होंने किस तरह देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया। फरवरी १९४३ ई. में सुभाषचन्द्र बोस जर्मन पनडुब्बी से सुदूर पूर्व पहुंचे। सुभाष चन्द्र के सुदूर पूर्व आने के पूर्व २२ जून १९४२ ई० को रास बिहारी के नेतृत्व में सम्पूर्ण पूर्वी एशिया के लिए भारतीय स्वतन्त्रता लीग का निर्माण किया जा चुका था। ५ जुलाई १९४३ ई. को भारतीय स्वतन्त्रता लीग ने आजाद हिन्द फौज के निर्माण की घोषणा की। फौज का उद्देश्य भारत के शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने का था। ९ जुलाई १९४३ ई. को सुभाषचन्द्र बोस ने सिंगापुर (सिंगापुर) में एक विशाल जनसमूह के सामने यह घोषणा की कि भारत के बाहर बसने वाले भारतीय शीघ्र एक फौज का निर्माण करने जा रहे हैं जो भारत में ब्रिटिश सेना पर आक्रमण करने में सक्षम होगी। जब हम ऐसा करेंगे तो न केवल भारतीय जनता में बल्कि भारतीय सेना में जो अभी ब्रिटिश झंडे के नीचे खड़ी

है विद्रोह हो जाएगा। जब ब्रिटिश सरकार पर इस प्रकार दोनों तरफ से आक्रमण किया जाएगा तब सरकार का पतन हो जाएगा एवं भारतीय अपना शासन प्राप्त कर सकेंगे। २१ अगस्त १९४३ ई. को सुभाषचन्द्र बोस ने फौज का नियन्त्रण संभाल लिया और नेताजी के नाम से प्रसिद्ध हो गए। २१ अक्टूबर १९४३ ई. को भारतीय स्वतन्त्रता लीग ने सिंगापुर में स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार के निर्माण की घोषणा की। इस सरकार ने एक सप्ताह पश्चात् ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।[1]

(२) नए वायसराय का आगमन एवं गांधी जी के प्रयत्न

अक्टूबर १९४३ ई. में सर आर्चिबाल्ड वेवल भारत के नए वायसराय बन कर आए। भारत आने के पूर्व उन्होंने कहा था कि वे बड़ी उत्तरदायित्व की भावना लेकर भारत जा रहे हैं और भारत के महान् भविष्य में उनका पूर्ण विश्वास है। महात्मा गांधी ने नए वायसराय को पत्र लिखा और कांग्रेस कार्यसमिति से सम्पर्क स्थापित करने की अनुमति मांगी जिससे कि विद्यमान गतिरोध को दूर किया जा सके। वायसराय ने गांधीजी के पत्र का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। सन् १९४४ में जनवरी अप्रैल के मध्य गांधीजी ने वायसराय को पुनः कुछ पत्र लिखे परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। १४ अप्रैल १९४४ ई. को गांधी जी बीमार पड़ गए। सरकार ने ६ मई १९४४ ई. को गांधी जी एवं कार्यकारिणी के कुछ सदस्यों को जेल से मुक्त कर दिया।

जेल से मुक्त होने के पश्चात् गांधीजी ने समय एवं परिस्थिति का अवलोकन कर सरकार से समझौता वार्ता प्रारम्भ करना उचित समझा। अतः उन्होंने १७ जून को वायसराय को एक पत्र लिखा परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। शीघ्र ही गांधीजी ने यह भी घोषणा की कि उनका अब सत्याग्रह करने का कोई इरादा नहीं है। वायसराय ने गांधीजी के नाम भेजे गए अपने २७ जुलाई १९४४ ई. के पत्र में क्रिप्स प्रस्ताव को पुनः दोहरा दिया तथा स्पष्ट किया कि भारतीय नेताओं को काम चलाऊ सरकार बनाने के लिए केवल उसी स्थिति में आमन्त्रित किया जा सकता है जबकि अल्पसंख्यकों दलितों आदि के लिए उचित संरक्षण की व्यवस्था की जा सके। समझौते के सब प्रयास विफल हो गए। ५ अक्टूबर १९४४ ई. को भारत मन्त्री एमरी ने कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों को मुक्त न करने की सरकारी इच्छा की घोषणा कर दी।

राजगोपालाचारी योजना

वायसराय से समझौता-वार्ता चलाने के साथ ही साम्प्रदायिक समस्या का

---

1 जापानियों के साथ मिलकर आजाद हिन्द फौज बर्मा में लड़ी। अप्रेल १९४५ में जापानियों के हथियार डाल [redacted] पर आजाद हिन्द फौज ने भी हथियार डाल दिए। [redacted] अगस्त १९४५ ई. को ताइवान से यह घोषणा की गई कि सुभाषचन्द्र बोस की एक हवाई दुर्घटना में मृत्यु हो गई है।

समाधान करने के लिए गांधीजी ने मि० जिन्ना से भी सम्पर्क स्थापित किया। उस समय गांधीजी और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों के मस्तिष्क में भारत को दो भागों में विभाजित करने का कोई विचार नहीं था। गांधीजी की यह दृढ़ मान्यता थी कि जबतक हिन्दू मुसलमान अपने मतभेदों को दूर नहीं कर लेते तबतक देश को स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। इसी भावना से प्रेरित होकर गांधीजी ने जिन्ना से बातचीत प्रारम्भ की। श्री राजगोपालाचारी ने दोनों के मध्य सम्पर्क सूत्र की भूमिका अदा की। राजगोपालाचारी की यह धारणा थी कि पाकिस्तान के निर्माण से ही हिन्दू मुसलमान समस्या का समाधान हो सकता है। अतः उन्होंने मार्च १९४४ ई० में एक योजना तैयार की एवं जिन्ना के सामने रखी। ३० जून १९४४ ई० को राजगोपालाचारी ने इस योजना को गांधीजी से अनुमोदन प्राप्ति पर पुनः जिन्ना के समक्ष प्रस्तुत की। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि १९४२ ई० के भारत छोड़ो आन्दोलन के पूर्व ही राजगोपालाचारी ने भारत की साम्प्रदायिक समस्या का हल करने के लिए एक फार्मूला निकाला था जिसमें आत्म निर्णय के आधार पर पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करने की व्यवस्था थी। कांग्रेस ने इस समय इस बात को बहुत बुरा माना था और राजगोपालाचारी की योजना को अव्यावहारिक, अयथार्थवादी और आधार रहित बताकर स्वीकार नहीं किया था।

परन्तु विडम्बना यह रही कि इसी योजना के आधार पर कांग्रेस और महात्मा गांधी ने लीग से साम्प्रदायिक समस्या का निवारण करने के उद्देश्य से एक समझौता करने का प्रयास किया। इस योजना की मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं —

१ मुस्लिम लीग स्वतन्त्रता की मांग का समर्थन करेगी और कांग्रेस के साथ मध्यकाल के लिए अस्थायी अन्तरिम सरकार के निर्माण में सहयोग करेगी।

२ युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत के उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व में उन जिलों को निर्दिष्ट करने के लिए जिनमें मुसलमान स्पष्ट बहुमत में हैं एक आयोग की नियुक्ति की जाएगी। निर्दिष्ट क्षेत्रों में वहां के सभी निवासियों का वयस्क मताधिकार तथा अन्य व्यावहारिक मताधिकार के आधार पर मत संग्रह होना चाहिए जिसके आधार पर भारत से उन क्षेत्रों के अलग होने का निर्णय किया जाएगा। यदि बहुसंख्यक जनता भारत से पृथक एवं सत्ता सम्पन्न राज्य की स्थापना का निर्णय करे तो उस निर्णय को क्रियान्वित किया जाए। किन्तु सीमा के जिलों को किसी भी राज्य में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए।

३ जनमत संग्रह से पूर्व सभी राजनीतिक दलों का अपना मत प्रचार करने का एक संयुक्त समझौता होगा।

४ जनसंख्या का आदान प्रदान उसकी स्वेच्छा से होगा।

५ ये शर्तें तभी लागू होंगी जब ब्रिटेन द्वारा सत्ता का पूर्ण हस्तान्तरण कर दिया जाएगा।

६ गांधी जी और जिन्ना शर्तों को स्वीकार करेंगे और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की स्वीकृति लेने का प्रयत्न करेंगे।

इस योजना की अपनी कुछ प्रमुख विशेषताएं थी। योजना आदान प्रदान की भावना पर आधारित थी इसमें आत्म निर्णय की मांग का समर्थन किया गया था और इसमें समझौते के निष्पक्षीय स्वरूप का समावेश था।

योजना का विचार दर्शन

यह योजना व्यावहारिक धरातल पर आधारित थी क्योंकि देश जिस दौर से गुजर रहा था उस स्थिति में साम्प्रदायिक समस्या का एकमात्र समाधान यही था कि मुस्लिम भावनाओं को न केवल मान्य कर उन्हें आत्म निर्णय के आधार पर अलग राज्य दे दिया जाए। अब अखण्ड भारत के नेता चाहे ऊपरी तौर पर संभावनाएं अवश्य दिखाते हों परन्तु सत्य कुछ दूसरा ही था। मुस्लिम हित देश के जीवन से अपना रचनात्मक सम्बन्ध जोड़ने को तैयार नहीं था। पाकिस्तान उनके लिए जीवन मरण का प्रश्न बन गया था और वे किसी भी कीमत पर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे। अगर राजाजी ने अपनी योजना में इस कटु सत्य के जीवन्त पहलू को स्थान दिया तो कोई अयथार्थ या अवास्तविक उल्लेख नहीं था। यही ऐसा विकल्प था जिसके आधार पर गतिरोध को दूर किया जा सकता था।

अगर राजाजी की इस योजना को जो कई आलोचकों के कोप का शिकार हुई थी यह कहकर कोसा जाता हो कि इससे पाकिस्तान के निर्माण के लिए मार्ग साफ कर दिया गया तो यह सत्य सिद्ध नहीं होगा।

राजाजी में उत्कट देशभक्ति थी और वे किसी भी ऐसी स्थिति को स्वीकार करने का राग नहीं छेड़ सकते थे जो देश के हितों के प्रतिकूल हो। वे तो यथार्थ के स्वाभाविक रहस्यों का उद्घाटन करने की दिशा में ही प्रयत्नशील थे और उसी भावना से प्रेरित होकर योजना को मूर्तरूप प्रदान किया था। इस योजना के पीछे सबसे बड़ा लक्ष्य यह था कि राजगोपालाचारी देश की जनशक्ति को जो दो ध्रुवों (कांग्रेस और मुस्लिम लीग) में केन्द्रित हो चुकी थी एक ऐसे सम्मानजनक बिन्दु पर लाकर खड़ा कर देना चाहते थे जहां से वे अपने अस्तित्व को पहचान कर हठधर्मिता के व्यामोह से अपना छुटकारा करें। राजाजी कांग्रेस के इस विचार से भी सहमत नहीं थे कि अखण्ड भारत के अलावा दूसरा कोई स्वर नहीं सुना जा सकता तो वह मुस्लिम लीग के इस दावे को भी मान्यता देने को तैयार नहीं थे कि पाकिस्तान के उस स्वरूप (अवास्तविक अयथार्थ और आधार रहित) को जो भारत को अनेक खंडों और उपखंडों में बांटकर अप्राकृतिक और तथ्यहीन आधारस्थल पर नग्न कर देता है स्वीकार कर लिया जाए। उन्होंने इस प्रश्न का निर्धारण करने का दायित्व सम्बन्धित प्रान्तों की जनता पर छोड़ दिया।

राजाजी कांग्रेस के उन नेताओं में से थे जिनका जिन्ना से काफी आत्मीय

सम्बन्ध था। उन्हें विश्वास था कि वे मि. जिन्ना को अपनी इस योजना को स्वीकार करने के लिए सहमत कर लेंगे।

इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य का अवलोकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि चाहे १९४२ ई. में कांग्रेस ने इस योजना को अवास्तविक करार देकर विरोध किया हो पर १९४४ ई. में इस योजना को गाधी जी का समर्थन प्राप्त था और स्वयं उसी से प्रेरित होकर राजाजी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने का निश्चय किया। शायद राजाजी देश की राजनीतिक परिस्थितियों का विश्लेषण करके इस परिणाम पर पहुँच चुके थे कि यदि देश में साम्प्रदायिक समस्या का जितना जल्दी हो सके समाधान ढूंढने का प्रयास नहीं किया गया तो देश की स्वतन्त्रता बहुत दूर खिसक जाएगी और राष्ट्र का जन जीवन ऐसी दलदल में फंस जाएगा जो अत्यन्त भयानक रूप ले सकता है।

राजाजी ने उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व में जहां मुसलमानों का बहुमत था जनमत संग्रह की व्यवस्था इसलिए की थी कि यही एक ऐसा आधार स्थल था जो दोनों पक्षों के लिए मान्य हो सकता था। यद्यपि कांग्रेस के उग्र राष्ट्रवादी तत्त्व इसे राष्ट्रीय एकता के हितों के खिलाफ करार देकर निन्दा का पात्र बनाएंगे परन्तु वे भी इस सत्य को हृदयंगम अवश्य ही कर लेंगे कि समस्या के समाधान का इससे बढ़कर कोई सुन्दर विकल्प दूसरा नहीं था क्योंकि इन मुस्लिम बहुल क्षेत्रों का पाकिस्तान में मिलना अवश्यम्भावी था और जनमत-संग्रह की व्यवस्था में से किसी वास्तविक स्थिति पर आंच आने की कोई गुंजायश नहीं थी। दूसरी तरफ लीगी क्षेत्र भी इस तथ्य को अन्ततः स्वीकार कर लेंगे कि उनकी कल्पना का पाकिस्तान उन्हें कल्पना में ही मिल सकता है यथार्थ के धरातल पर नहीं। उन्हें इस बात का भी अहसास हो जाएगा कि जनमत संग्रह की व्यवस्था से उन्हें मौलिक लाभ प्राप्त होगा और उनके दर्शन को नया बल मिलेगा।

राजगोपालाचारी इस सत्य से भी भली भाँति परिचित थे कि वह पाकिस्तान जिसमें उत्तरप्रदेश और हैदराबाद के कुछ भाग शामिल थे न केवल सभी दृष्टियों से अवास्तविक होगा अपितु कभी हासिल भी नहीं किया जा सकेगा। अतः उसे अपनी कूटनीति के साधन के रूप में इस्तेमाल करके मुस्लिम भावनाओं का अनुचित लाभ तो अवश्य उठाया जा सकता है। उपरोक्त तथ्यों की भली भाँति समीक्षा करके राजाजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उनकी यह योजना देर या सवेर अवश्य स्वीकार करली जाएगी।

योजना की अस्वीकृति

गान्धी जी ९ सितम्बर १९४४ ई. को बम्बई में मि. जिन्ना से मिलने गए। इसके पश्चात् दोनों में इस योजना के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार भी हुआ। पाकिस्तान

के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो सका। ८ अक्तूबर को जिन्ना ने घोषणा की कि हिन्दू मुसलमानों की समस्या का एकमात्र हल पाकिस्तान का निर्माण है। जिन्ना ने निम्नलिखित कारणों से इस योजना को अस्वीकार कर दिया —

(१) इसमें मुसलमानों को अपूर्ण अंगहीन तथा दीमक लगा पाकिस्तान दिया गया है। इस प्रकार का पाकिस्तान उसे कभी स्वीकार्य नहीं हो सकता था क्योंकि वह पाकिस्तान में सम्पूर्ण बंगाल और आसाम समूचा सिन्ध व पंजाब तथा उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रान्त और बिलोचिस्तान चाहता था। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को मिलाने के लिए भी वह मार्ग की व्यवस्था चाहता था।

(२) इस योजना में गैर मुस्लिमों को भी भाग लेने की आज्ञा दी गई थी जिन्ना को यह स्वीकार नहीं था। जिन्ना जनमत संग्रह में केवल मुसलमानों को भाग लेने देना चाहता था।

(३) वह सुरक्षा व्यापार तथा यातायात के संयुक्त नियन्त्रण के विरुद्ध था।

प्रभाव

यद्यपि इस योजना से कोई वांछित परिणाम नहीं निकले परन्तु यह भारतीय राजनीतिक जीवन में एक सनसनीखेज दस्तावेज के रूप में सुरक्षित है जिसने अनेक दूरगामी परिणाम उत्पन्न किए।

(४) जिन्ना और मुस्लिमलीग की स्थिति

यद्यपि जिन्ना ने इस योजना को अस्वीकार अवश्य किया परन्तु यह उसके राजनीतिक जीवन के उत्कर्ष में सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुई। इससे न केवल उसकी व्यक्तिगत स्थिति को ही बल मिला अपितु लीग की स्थिति बहुत मजबूत हो गई। जिन्ना का मुस्लिम जगत के हर पहलू पर पूरी तरह वर्चस्व कायम हो गया और राष्ट्रवादी मुसलमान एक तरह से मुस्लिम जगत से अलग थलग से कर दिए गए। भारतीय राजनीति की पहल एक बार पुनः जिन्ना के नेतृत्व के इर्द गिर्द केन्द्रित हो गई। इस तथ्य को प्रकट करते हुए मौलाना आजाद (तत्कालीन कांग्रेसाध्यक्ष) ने ठीक ही लिखा है

गांधी जी का इस अवसर पर जिन्ना से बातचीत करना बड़ी भारी गलती थी। इससे जिन्ना को एक नया अतिरिक्त महत्त्व मिल गया जिसका उसने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए अच्छा इस्तेमाल किया। जिन्ना का महत्त्व उस समय बहुत घट गया था जब उसने कांग्रेस छोड़ी थी। यह केवल गांधी जी के कार्यों या भूलों का परिणाम था कि जिन्ना ने भारतीय राजनीतिक जीवन में दुबारा महत्त्व प्राप्त कर लिया। गांधी जी के उसके पीछे भागने और उससे प्रार्थनाएं करने के फलस्वरूप बहुत से मुसलमानों में जो जिन्ना और उसकी नीति के प्रति सन्देह रखते थे उसके (जिन्ना के) प्रति आदर की भावना उत्पन्न हो गई। इतना ही नहीं बल्कि ये गांधी जी ही थे जिन्होंने जिन्ना को पहले पहल कायदे आजम (बड़े नेता) कहना शुरू कर

दिया। जिन्ना को पत्र में कायदे आजम लिखकर गांधी जी ने उनको महान् नेता मान लिया और भारतीय मुसलमानों की दृष्टि में उसकी स्थिति को मजबूत बना दिया।

(२) महात्मा गांधी और कांग्रेस की स्थिति

महात्मा गांधी ने जिन्ना की तथाकथित नेकनीयती पर विश्वास करके एक बार पुनः स्वयं को निराशा के गहन अन्धकार में मग्न करने के लिए तैयार कर लिया। १९१६ के लखनऊ-पैक्ट से भी मुस्लिमलीग को प्रवांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हुई थी। वही पुनरावृत्ति इस योजना द्वारा भी की गई। कांग्रेस ने भारतीय राजनीति की बागडोर मुस्लिम लीग के हाथों में सौंप कर बड़ी भारी राजनैतिक भूल की। इससे गांधीजी की शक्ति भी कमजोर हो गई और कांग्रेस के उग्र तत्वों द्वारा नेतृत्व को चुनौती दी जाने लगी।

(३) राजगोपालाचारी की स्थिति पर प्रभाव

अपनी योजना की दुर्गति से राजगोपालाचारी को बड़ी भारी निराशा हाथ लगी। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उभय पक्ष उनके प्रतिवेदन को स्वीकार कर लेंगे परन्तु दोनों ही पक्षों द्वारा उसे अस्वीकार कर देने से उन के भावी राजनीतिक जीवन पर सीधा असर पड़ा क्योंकि वह देश के राजनेताओं में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था।

निष्कर्ष

अन्त में कहा जा सकता है कि यह योजना विभिन्न हितों को एक मंच पर लाकर विदेशी शक्ति से प्रतिरोध करने और सम्प्रदायिक गतिरोध को दूर करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास था। यह ठोस धरातल पर आधारित थी परन्तु विभिन्न पक्षों की हठधर्मी के कारण अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के पूर्व ही अपना अस्तित्व समाप्त कर बैठी। फिर भी उसके महत्व को किसी कदर कम नहीं किया जा सकता क्योंकि इसने भारतीय राजनीति के विभिन्न पहलुओं पर व्यापक प्रकाश डाला।

(४) देसाई-लियाकत

जहां एक ओर गांधी जिन्ना वार्ता असफल हो गई थी वहां दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार किसी भी प्रकार से सुधारों के सम्बन्ध में विचार करने के लिए तैयार नहीं थी। देश के युवा श्रमिक एवं किसान वर्गों में निरन्तर असन्तोष बढ़ रहा था। सरकार कांग्रेस-कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को मुक्त नहीं कर रही थी। ऐसी स्थिति में गान्धीजी ने हिन्दू मुसलमान एकता का पुनः प्रयास किया। गान्धीजी ने यह काम श्री भूलाभाई देसाई पर डाला। श्री भूलाभाई देसाई ने जनवरी १९४५ ई० में केन्द्रीय विधानसभा में मुस्लिम लीग के उपनेता नवाबजादा लियाकत अली खान के सम्मुख कुछ प्रस्ताव रखे जिनका सार था "कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग इस बात से सहमत हैं कि केन्द्र में

काम चलाऊ सरकार बनाने में दोनों पक्ष सहयोग करेंगे। काम-चलाऊ सरकार का संगठन निम्न आधारों पर होगा —

(i) कांग्रेस एवं लीग दोनों ही कार्यकारिणी में बराबर २ सदस्यों को नामजद करेंगे। नामजद सदस्यों के लिए विधानसभा का सदस्य होना आवश्यक नहीं होगा।

(ii) अल्पसंख्यकों (सिक्खों एवं अनुसूचित जातियों) के प्रतिनिधियों को स्थान दिया जाएगा और

(iii) सर्वोच्च सेनापति (कमाण्डर इन चीफ) भी इसमें सम्मिलित होंगे।

उक्त रूप से संगठित सरकार १९३५ ई० के अधिनियम के अन्तर्गत काम करेगी। प्रस्तावों में यह भी कहा गया कि यदि उक्त सरकार का निर्माण हो जाएगा तो उसका पहला कार्य कार्यसमिति के सदस्यों को जेल से मुक्त करना होगा। उक्त योजना वायसराय के सामने प्रस्तुत की जाएगी और यदि वायसराय योजना के अनुसार अंतरिम सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करेंगे तो कांग्रेस और लीग यह उत्तरदायित्व ग्रहण करेगी।

लियाकत अली ने कुछ समय तक तो उक्त प्रस्तावों का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया और जब प्रत्युत्तर दिया तो उसमें योजना को जिन्ना के सम्मुख रखने की बात कही गई तथा लीग द्वारा पाकिस्तान के सम्बन्ध में पारित अनेक प्रस्तावों का स्मरण कराया गया। सन् १९४५ के प्रारम्भ में यूरोप में युद्ध का अन्त हो गया था। भारतीय राजनीति ने भी नई दिशा लेना प्रारम्भ कर दिया था अतः देसाई के प्रस्तावों का परिवर्तित परिस्थितियों में कोई अर्थ नहीं रह गया था।

(५) वेवल योजना

२१ मार्च १९४५ ई० को लार्ड वेवल भारतीय समस्या के हल पर विचार विमर्श के लिए लन्दन रवाना हुए और ४ जून १९४५ ई० को भारत लौटे। १४ जून १९४५ ई० को उन्होंने अपनी योजना प्रकाशित की। इसी योजना को वेवल-एमरी योजना अथवा वेवल योजना कहा जाता है।

योजना के अस्तित्व में आने के कारण

वेवल योजना को आधार प्रदान करने के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे —

(१) आंतरिक घटनाओं का योग

सन् १९४३-४४ में भारत के कई भागों में अकाल पड़ा। यह अकाल मलाबार बीजापुर उड़ीसा और बंगाल में व्यापक रूप से था। सरकारी अनुमान के अनुसार इसमें १५ लाख व्यक्ति मर गए तथा ४५ लाख लोगों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। इसके अतिरिक्त युद्ध के कारण भी महगाई बहुत बढ़ गई थी और लोग बहुत परेशान थे। इस स्थिति को सुधारना आवश्यक था। कांग्रेसी नेताओं को अगस्त १९४२ ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन के सन्दर्भ में गिरफ्तार कर लिया

गया था और उन नेताओं के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया था। साधारण कार्यकर्ताओं के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार किया गया। जनता पर सरकार ने जो अत्याचार ढाए थे वे अपने आप में बेमिसाल थे। अमानुषिक अत्याचारों के कारण जनता में बड़ा भारी रोष था। यह असामान्य परिस्थिति अधिक देर तक नहीं रखी जा सकती थी। इस प्रकार देश का उग्र जन मतताव अंग्रेजों के सामने जबरदस्त चुनौती बन गया था और उन्हें इस बात के लिए बाध्य कर रहा था कि वे समय रहते रोग का निदान करें अथवा इस महामारी पर आसानी से काबू नहीं पाया जा सकेगा।

(२) विदेशी घटनाओं का प्रभाव

सन् १९४५ के शुरू में अंग्रेज और उनके साथियों को जर्मनी पर विजय की आशा नजर आने लगी थी। इटली ने जो जर्मनी का अत्यन्त विश्वस्त साथी था सन् १९४३ में हथियार डाल दिए थे। ९ मई १९४५ को जर्मनी ने भी अपनी हार स्वीकार कर ली परन्तु जापान ने पराजय स्वीकार नहीं की थी। मि. मिचेल ब्रेचर के अनुसार मित्र राष्ट्रों अर्थात् इंग्लैण्ड और उसके साथी देशों के सेनापतियों में इस विषय में सहमति थी कि जापान के विरुद्ध युद्ध एक या दो वर्ष और चलेगा। जापान का मुकाबला करने के लिए भारत का सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक था। लार्ड वेवल जो स्वयं बड़े भारी सेनापति रह चुके थे इस बात के महत्त्व को बहुत अच्छी तरह जानते थे और उन्होंने ब्रिटिश सरकार को यह महसूस कराया कि भारत की समस्या का शीघ्र से शीघ्र हल करना बहुत जरूरी है अन्यथा अनेक दुष्परिणामों का सामना करना पड़ेगा।

मित्र राष्ट्रों का दबाव भी वेवल योजना के लिए आंशिक रूप में जिम्मेदार था। यूरोप में जीत के बाद इंग्लैंड और उसके साथियों का ध्यान जापान की तरफ खिंच गया और जापान पर विजय प्राप्त करने के लिए भारत को सैनिक आधार-क्षेत्र बनाना बहुत जरूरी था। इसलिए अमरीका ने इंग्लैंड पर भारतीय गतिरोध को हल करने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया था। संक्षेप में भारत की सामरिक और भौतिक राजनीति के संदर्भ में उत्तरदायी तत्त्व भी भारत में वेवल-योजना के अस्तित्व को अन्तिम रूप देने के लिए किसी हद तक जिम्मेदार थे।

(३) इंग्लैंड के आम चुनाव

मई १९४५ ई. में यूरोप में युद्ध समाप्त हो चुका था। इसके बाद इंग्लैंड में चुनाव होने वाले थे। चूंकि अभी तक जापान ने हथियार नहीं डाले थे और उसको हराने के लिए भारत की सहायता बहुत जरूरी थी इसलिए इंग्लैंड के मजदूर दल ने अपने चुनाव घोषणापत्र में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए बहुत बल दिया। इंग्लैंड का जनमत अब निश्चित रूप से मजदूर दल की तरफ झुक रहा था

और आने वाले चुनावों में इसकी विजय अवश्यम्भावी प्रतीत होती थी। मि. चर्चिल जो अनुदार दल के नेता थे मजदूर दल को हराने के लिए बहुत उत्सुक थे इसलिए उन्होंने वेवल के साथ परामर्श करके एक योजना तैयार की ताकि इंग्लैंड के मतदाताओं को यह सिद्ध किया जा सके कि अनुदार दल भारतीय समस्या को हल करने के लिए कम उत्सुक नहीं।

इन सब कारणों से १४ जून १९४५ ई. को वायसराय लॉर्ड वेवल ने एक योजना भारतीय गतिरोध को हल करने के लिए पेश की।

वेवल योजना में क्या था ?

वेवल योजना में निम्नलिखित शर्तें सम्मिलित थीं —

१. ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत को स्वशासन की तरफ ले जाना है।
२. सीमान्त और कबाइली मामलों को छोड़कर शेष विदेशी मामले भारतीय मन्त्रियों के हाथों में होंगे।
३. गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए सब राजनीतिक दलों के नेताओं को निमन्त्रित किया जाएगा। स्वयं गवर्नर जनरल और प्रधान सेनापति के अतिरिक्त इस परिषद् के अन्य सदस्य भारतीय राजनीतिक दलों के नेता होंगे।
४. सरकार का वित्त विभाग एक भारतीय के हाथ में होगा।
५. कार्यकारिणी-परिषद् में हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर होगी।
६. कार्यकारिणी परिषद् के इस स्वरूप के कारण राष्ट्रीय सरकार की वह मांग पूरी हो जाएगी जिसके लिए संक्रान्ति काल में भारतीयों द्वारा मांग की जाती रही है।
७. भारत सरकार सन् १९३५ के अधिनियम द्वारा प्रदत्त गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों का अकारण प्रयोग नहीं करेगी।
८. गवर्नर जनरल की दोहरी स्थिति (भारत शासन का प्रधान और ब्रिटिश हितों का संरक्षक) को दूर करने के लिए भारत में ब्रिटिश उच्चायुक्त की अलग से नियुक्ति की जाएगी।
९. युद्ध की समाप्ति के बाद भारतीय लोग अपने संविधान का स्वयं निर्माण करेंगे।
१०. शिमला में शीघ्र ही भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया जाएगा और
११. प्रान्तों में सेक्शन ९३ को समाप्त करके (अर्थात् गवर्नरी राज्य को समाप्त करके) मिली-जुली उत्तरदायी सरकार की स्थापना कर दी जाएगी।

योजना असफल क्यों ?

योजना में भारतीय आत्मा की आवाज को कोई स्थान नहीं दिया गया था। इसमें भारतीय स्वतन्त्रता की समस्या का कोई समाधान नहीं किया गया था। इस योजना का कार्य क्षेत्र वर्तमान से ही सीमित था और उसके प्रस्तावों तथा क्रिप्स प्रस्तावों (जिन्हें भारतीय जनता पहले ही अस्वीकार कर चुकी थी) में कोई अन्तर नहीं था। देश का कोई भी राजनीतिक दल इससे पूर्णरूप से सन्तुष्ट नहीं था। कांग्रेस इससे बहुत कुछ अशों तक सहमत थी लेकिन सवर्ण हिन्दू और अन्य हिन्दू इस प्रकार हिन्दुओं के विभाजन के कारण उसने इसका विरोध किया। मुस्लिम लीग ने भी अन्य सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों की ठीक-ठीक संख्या के बारे में स्पष्टीकरण चाहा।

(७) शिमला सम्मेलन

लार्ड वेवल ने देश में अच्छा वातावरण उत्पन्न करने के लिए कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्यों को जेल से छोड़ दिया और महात्मा गांधी तथा अन्य नेताओं को निमंत्रण भेजे। सम्मेलन २५ जून १९४५ ई० को प्रारम्भ हुआ। इस सम्मेलन में २१ प्रतिनिधि शामिल हुए। इसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अध्यक्ष प्रान्तों के प्रधानमन्त्री तथा गवर्नर द्वारा शासित प्रान्तों के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री तथा कुछ अन्य नेता आमंत्रित किए गए। भाग लेने वाले नेताओं में महात्मा गांधी मोहम्मद अली जिन्ना लियाकतअली खां अकाली नेता मास्टर तारासिंह और भूलाभाई देसाई का नाम उल्लेखनीय है।

आशापूर्ण प्रारम्भ निराशापूर्ण अन्त

सम्मेलन की कार्यवाही अत्यन्त आशापूर्ण वातावरण में हुई लेकिन दो दिन कार्य करने के उपरान्त ही इसे स्थगित कर दिया गया। इसका कारण यह था कि वायसराय की कार्यकारिणी-परिषद् के निर्माण पर कोई समझौता नहीं हो सका। कांग्रेस इस कार्यकारिणी में मुस्लिम-सदस्यों को भी सम्मिलित करना चाहती थी। उसका तर्क था कि उसने परिषद् में सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की बराबरी इसलिए स्वीकार की थी कि इसमें स्वतन्त्रता की प्राप्ति निश्चित हो जाएगी परन्तु वह मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना की इस बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं थी कि मुस्लिम लीग ही भारत के सारे मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है। कांग्रेस के प्रधान इस समय मौलाना आजाद थे। पंजाब के मुख्यमन्त्री खिजर हयात खां अपनी यूनियनिस्ट पार्टी की तरफ से एक मुसलमान को और कांग्रेस अपना सवर्ण हिन्दुओं की पांच सीटों में से एक या दो पर राष्ट्रीय मुसलमानों को कार्यकारिणी-परिषद् में नियुक्त कराना चाहती थी। मि० जिन्ना इस बात के लिए बिल्कुल सहमत नहीं हुए। जिन्ना की हठधर्मिता के कारण लॉर्ड वेवल ने सम्मेलन की असफलता की घोषणा कर दी तथा भारत का संवैधानिक संकट यथावत् बना रहा।

प्रतिक्रियाएं

शिमला सम्मेलन के निराशापूर्ण अन्त पर काफी प्रतिक्रियाएँ हुईं। मौलाना आजाद ने कहा था "शिमला सम्मेलन भारतीय इतिहास में महान् राजनीतिक असफलता है। यह पहला अवसर था जबकि समझौता-वार्ता भारत और ब्रिटेन के बीच राजनीतिक प्रश्न पर असफल नहीं हुई वरन् साम्प्रदायिक समस्या पर भारत के विभिन्न दलों के बीच मतभेद के कारण हुई।"

(२) डा. पट्टाभि सीतारमैया ने शिमला सम्मेलन की तुलना क्रिप्स आयोग की असफलता से करते हुए लिखा है "तीन वर्ष पूर्व अप्रैल १९४२ ई में कांग्रेस ने क्रिप्स आयोग को विफल बनाया था मगर स्वयं क्रिप्स को इसलिए उत्तरदायी न ठहराया जाए। शिमला में मुस्लिम लीग ने वेवल योजना को विफल बनाया था यद्यपि लार्ड वेवल ने सारा दोष अपने सिर पर ले लिया।

विचार दर्शन

असफलता मुस्लिम हठधर्मिता के कारण मिली जो कि एक सर्वोपरि तथ्य है परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में इस अध्याय को (असफलता के अध्याय को) टाला नहीं जा सकता था? क्या कांग्रेस और मुस्लिम लीग निर्धारित ध्येय की एकता के सबमान्य पहलू का अवलम्बन नहीं कर सकते थे? क्या ब्रिटिश सचिव प्रयत्न इस योजना को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सकते थे? ये सभी गूढ़ प्रश्न हैं और इनका गहराई में ही अध्ययन किया जाना चाहिए।

(१) कांग्रेसी दल

वेवल योजना में ७० प्रतिशत हिन्दुओं को ३० प्रतिशत मुसलमानों के बराबर स्थान देने की अन्यायपूर्ण एवं अस्वीकार्य व्यवस्था थी। कांग्रेस राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि लक्ष्य मानकर दलगत स्वार्थों की परवाह न करके यह व्यवस्था स्वीकार करने को तैयार थी परन्तु कांग्रेस अब अतीत से कुछ शिक्षा लेकर मुस्लिमलीग की नेकनीयती पर अधिक विश्वास करने के लिए तैयार भी नहीं थी। मि० जिन्ना भी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि मुस्लिमलीग ही मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर सकती है और इस हेतु सारे मुस्लिम सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार है। यदि कांग्रेस ऐसा करना स्वीकार कर लेती तो उसका राष्ट्रीय स्वरूप बिल्कुल समाप्त हो जाता और जिन्ना यह प्रचार करने में सफल हो जाते कि कांग्रेस हिन्दू-संस्था है और उसे मुसलमानों की ओर से बोलने का कोई अधिकार नहीं है जबकि कांग्रेस का अपनी स्थापना से लेकर अबतक सदैव राष्ट्रीय स्वरूप रहा था और उसने इसी स्वरूप के रक्षार्थ अनेक मौकों पर ऐसी व्यवस्थाओं को स्वीकार करने में तत्परता दिखाई जो उसके सिद्धान्तों के मूल विरोधी थीं।

(२) लीग का विचार दर्शन

अगर मुस्लिम लीग के नेता श्री जिन्ना ने इस सम्बन्ध में हठधर्मिता का रुख,

अपनाया तो यह कोई आश्चर्यजनक विस्मयकारी या सनसनीखेज बात नहीं थी यह तो उसकी सुनियोजित योजनाओं का एक क्रमबद्ध प्रयास था जिसके माध्यम से वह हर बार कांग्रेसी नेताओं को अपनी कूटनीति के जाल म उलझा देता था। अतीत मे भी लखनऊ-समझौता और १४ सूत्री सिद्धान्तो के पीछे यही सत्य काम कर रहा था।

जिन्ना हठधर्मिता का रुख अपनाकर ब्रिटिश सरकार पर यह असर डालना चाहते थे कि अब भारतीय राजनीति की निर्णायक बागडोर उनके हाथ मे आ गई है और किसी भी दशा में उनके महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। शायद जिन्ना इस मांग पर अड़े रहकर कि मुस्लिमलीग ही मुसलमानो का प्रतिनिधित्व कर सकती है एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। वे कांग्रेस के मुस्लिम-तत्वो को अपनी तरफ मिलाना चाहते थे जो कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता की आड़ में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किए हुए थे या कांग्रेस की राजनीति मे उनका विशिष्ट स्थान था। जिन्ना लीग को ही मुस्लिम प्रतिनिधित्व के लिए अधिकारी मानकर उनकी स्थिति को हेय बनाना चाहते थे तथा राष्ट्रवादी तत्त्वो की निराशा मे लाभ उठाना चाहते थे। जिन्ना का यह सब उनकी अतीत की राजनीति से प्रेरित और सुनियोजित कूटनीति का एक अभिन्न अगमात्र था।

(३) ब्रिटिश भूमिका

लार्ड वेवल ने वातावरण को अच्छा बनाने का भरसक प्रयास किया और उनके सत्प्रयत्नो का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ा। परन्तु जब जिन्ना ने हठधर्मिता का रुख अपनाया तो वायसराय ने कांग्रेस की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। इसके पीछे भी वायसराय की कुछ धारणा थी। वे जिन्ना के मन म यह मनोवैज्ञानिक भाव पैदा कर देना चाहते थे कि वायसराय कांग्रेस के साथ पक्षपात करके मुस्लिम हितों के साथ खिलवाड़ भी कर सकते हैं अत उन्हें अपने इरादे पर दृढ रहना चाहिए और जिन्ना ने अन्तत यही काम करके ब्रिटिश मनोरथो को पूरा किया। वास्तव म देखा जाए तो ब्रिटिश सरकार की हार्दिक इच्छा भारतीय राजनीतिक गतिरोध का अन्त करने की नही थी यह तो चर्चिल की नीति का एक अगमात्र थी जो भारत की स्वतन्त्रता का कट्टर विरोधी था। उसने केवल मित्र राष्ट्रो को सन्तुष्ट करने के लिए तथा निर्वाचन म विजय प्राप्त करने के लिए ही इस योजना को प्रस्तुत करवाया था।

कुछ निष्कर्ष

यद्यपि शिमला-सम्मेलन असफल रहा फिर भी इसके वे परिणाम अवश्य निकले जो भारतीय संवैधानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसमे निम्नलिखित उल्लेखनीय है —

(१) शिमला-सम्मेलन द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार अनिच्छा से ही सही भारत का शासन भारतीयो को सौंपना चाहती है।

(२) अगस्त क्रान्ति के दमन के कारण भारतीय जनता में निराशा उत्पन्न हो गई थी। लेकिन सम्मेलन के समय नेताओं की जेल से मुक्ति के कारण नेतृत्वहीन जनता के हृदय में आशा का संचार हुआ था।

(३) शिमला सम्मेलन की असफलता का कारण राजनीतिक समस्या नहीं साम्प्रदायिक समस्या थी। अतः यह स्पष्ट हो गया कि भारत की संवैधानिक समस्या का समाधान तबतक सम्भव नहीं है जबतक कि साम्प्रदायिक समस्या का निराकरण न हो जाए।

(४) अगस्त क्रान्ति के बाद भारत में संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया था और जनता उत्साहहीन हो गई थी। लेकिन शिमला-सम्मेलन में उसे आशा की किरण दिखाई पड़ी और यह अनुभव किया जाने लगा कि समस्या का समाधान बहुत दूर नहीं है।

(५) मुस्लिमलीग की हठवादी नीति कांग्रेसी नेताओं को स्पष्ट हो गई। यद्यपि वे मुस्लिम लीग के इस दावे को मानने को तैयार नहीं थे कि लीग ही मुस्लिम वर्ग की एकमात्र प्रतिनिधि-संस्था है। फिर भी संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए वह लीग को रियायत देने को तैयार होने लगे। शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समस्याओं पर विचार करने के लिए एक मन्त्रिमण्डलीय आयोग भारत भेजने की घोषणा की। अगले अध्याय में हम इस आयोग की चर्चा करेंगे।

(७) शिमला सम्मेलन के उपरान्त

शिमला सम्मेलन के असफल हो जाने के बाद लार्ड वेवल ने भारतीय राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए कई कदम उठाये। पहला, उन्होंने प्रान्तीय गवर्नरों का एक सम्मेलन सन् १९४५ में बुलाया जिसमें यह निर्णय किया गया कि प्रान्तों में गवर्नरों का शासन समाप्त कर दिया जाए और व्यवस्थापिकाओं के लिए साधारण निर्वाचन कराये जाएं। दूसरा, इंग्लैंड में निर्वाचन में अनुदार दल की हार हुई और चर्चिल के स्थान पर एटली ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री बने। उन्होंने भारतीय जनता को आश्वासन दिया कि वे भारत में स्वायत्त शासन की स्थापना के लिए यथासम्भव प्रयत्न करेंगे। तीसरा, लार्ड वेवल को परामर्श के लिए २५ अगस्त १९४५ ई० को इंग्लैंड बुलवाया गया। वहां से भारत लौटकर १९ सितम्बर १९४५ ई० को उन्होंने घोषणा की "भारतीय जनमत के नेताओं से मिलकर सम्राट की सरकार स्वराज्य की शीघ्र ही स्थापना करने के लिए तत्पर है।" उन्होंने यह भी बतलाया कि संविधान सभा के निर्माण का समन्वित प्रयास किया जाएगा। चौथा, ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री ने भी उक्त आशय की एक घोषणा इंग्लैंड में की जिसमें भारत में नव निर्वाचन प्रान्तों में मन्त्रिमण्डलों के निर्माण, संविधान-सभा के निर्माण संवैधानिक योजना पर नेताओं से परामर्श और स्वायत्त शासन की स्थापना के लक्ष्यों की चर्चा की गई। कांग्रेस ब्रिटिश-सरकार की नीति से पूर्णतया सहमत नहीं

थी फिर भी देश के वातावरण तथा विश्व राजनीति में परिवर्तन के कारण उसने आगामी निर्वाचनों में भाग लेने का निश्चय किया। इस हेतु उसने एक संसदीय-बोर्ड की स्थापना की। उसने अपना निर्वाचन घोषणापत्र प्रकाशित किया जिसमें भारत की स्वतन्त्रता, जनता के लिए समान नागरिक अधिकार, लोकतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना, मौलिक अधिकारों तथा स्वतन्त्रता की रक्षा, सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता की स्थापना और विश्व न्यायी संघ की स्थापना को कांग्रेस का लक्ष्य बनाया। ४ दिसम्बर १९४५ ई० को लार्ड पैथिक लारेन्स ने अपने एक वक्तव्य में यह आशा व्यक्त की कि भारत शीघ्र ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में अपना उचित स्थान ग्रहण कर लेगा। वायसराय ने भी १० दिसम्बर को भारतीयों को राजनैतिक स्वतन्त्रता एवं अपने विचारानुसार सरकार स्थापित करने के अधिकार का आश्वासन दिया। १९४५-४६ ई० के शीतकाल में भारतीय विधानसभाओं के लिए नए निर्वाचन हुए। इसमें कांग्रेस को पर्याप्त सफलता मिली। संयुक्त प्रान्त, मद्रास, बम्बई, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त व आसाम में उसको बहुमत प्राप्त हुआ। मुस्लिमलीग को भी बंगाल, पंजाब तथा सिन्ध में काफी स्थान प्राप्त हुए। ब्रिटिश सरकार ने १९ फरवरी १९४६ ई० को एक मन्त्रिमण्डल आयोग भारत भेजने की घोषणा की। अप्रैल १९४६ ई० में नए मन्त्रिमण्डलों का निर्माण विभिन्न प्रान्तों में हुआ। हिन्दू-बहुल प्रान्तों में कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाए। बंगाल और सिन्ध में मुस्लिमलीग का मन्त्रिमण्डल बना। पंजाब में संयुक्त-मन्त्रिमण्डल का निर्माण हुआ।

२५

मन्त्रिमंडल-आयोग योजना

प्रवेश

इंगलैंड के मजदूर दल ने निर्वाचन के समय भारत को स्वतन्त्रता के लिए भारत को विश्वास दिलाया था और इंगलैंड में भी इसका काफी प्रचार किया था। पद सम्भालने के पश्चात् ही मजदूर दल की सरकार ने जापान से चल रहे युद्ध में व्यस्त रहने के बावजूद भारतीय मामलों में काफी रुचि लेना प्रारम्भ कर दी और प्रधानमन्त्री एटली ने १६ फरवरी १९४६ ई० को ऐतिहासिक कैबिनेट मिशन की घोषणा की।

इस आयोग में ब्रिटिश-मन्त्रिमंडल के तीन सदस्य लॉर्ड पैथिक लारेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और मिस्टर ए. वी. अलेक्जेंडर शामिल थे।

आयोग अस्तित्व में क्यों आया ?

मन्त्रिमंडल आयोग की नियुक्ति के सम्बन्ध में यह सोच लेना कि यह अंग्रेजों के जनतन्त्र में विश्वास, सहृदयता और मानव-प्रेम का प्रतिफल था, भयंकर भूल होगी। वास्तव में उक्त आयोग अंग्रेजों की विवशता की उपजमात्र था। निम्न परिस्थितियों ने आयोग की नियुक्ति को अवश्यम्भावी बना दिया था —

(१) द्वितीय महायुद्ध

द्वितीय महायुद्ध ने अन्य राष्ट्रों के साथ ही ब्रिटेन को भी बर्बाद कर दिया था। विश्व में उसकी स्थिति गौण हो गई थी और इस कारण साम्राज्यशाही को स्थिर रखने की ताकत उसके पास नहीं थी। इस कारण उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के सम्मुख झुकने में ही अपना कल्याण समझा।

(२) आजाद हिन्द सेना

आजाद हिन्द सेना के वीरों पर लाल किले में होने वाले मुकद्दमे ने जनमत को आकृष्ट किया। इस ऐतिहासिक घटना ने जिसके द्वारा भारतवर्ष अपने देशभक्त योद्धाओं के प्रति श्रद्धा और प्रेम के कारण उठ खड़ा हुआ था, कांग्रेस को और भी लोकप्रिय बना दिया, क्योंकि कांग्रेस ने आजाद हिन्द सेना [illegible] वीर सैनिकों के सिद्धान्तों से स्वयं का समीकरण किया था। इस घटना से भी अंग्रेजों को भारतीय राष्ट्रीयता की शक्ति का अनुभव हुआ।

(३) नौ सेना का विद्रोह

मन्त्रिमंडल आयोग के आगमन का मुख्य कारण था नौ-सेना और वायुसेना में विद्रोह की भावना का विकास। अबतक सरकार को निःशस्त्र भारतीयों का ही सामना करना पड़ा था और उसमें भी उसे छठी का दूध याद आ गया था। जब भारतीय सेनाओं की राजभक्ति पर विश्वास नहीं रहा तब ब्रिटेन के सम्मुख भारतीयों को अधिकार हस्तान्तरित करने के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं था।

(४) सन् १९४२ की गौरवपूर्ण क्रान्ति का भूत

इस आयोग की स्थापना का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण १९४२ ई० का आन्दोलन था जिसके भय से अंग्रेज सरकार बुरी तरह भयभीत थी और वह पहल अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहती थी।

(५) उग्र राष्ट्रीयता का विकास

देश में राष्ट्रीयता का विकास अपनी चरमसीमा पर पहुँच चुका था और अंग्रेज यह बात भलीभाँति अनुभव कर चुके थे कि वे इस वेगवती धारा का प्रवाह मोड़ने में समर्थ नहीं हैं। अतः उन्होंने बदनाम होने की अपेक्षा भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने में ही अपना भला समझा।

आयोग का भारत आगमन

शीघ्र ही आयोग का भारत आगमन हुआ। भारत में पदार्पण करते ही आयोग ने देखा कि सभी प्रमुख राजनीतिक दलों से किसी सर्वसम्मत सूत्र के लिए बातचीत करनी प्रारम्भ कर दी ताकि समस्या का उचित समाधान निकाला जा सके।

(१) दिल्ली के पत्रकार सम्मेलन में आयोग का दृष्टिकोण

२५ मार्च १९४६ ई० को दिल्ली में एक पत्रकार सम्मेलन में मन्त्रिमंडल आयोग ने एक वक्तव्य दिया जिसमें उसने कहा वह किसी भी दृष्टिकोण से बद्ध नहीं है वह खुला मस्तिष्क सामने लेकर आया है।'

(२) बैठकों का दौर

आगामी सप्ताह में उन्होंने लॉर्ड वेवल और प्रान्तीय गवर्नरों का सम्मेलन बुलाया। पहली अप्रैल से उन्होंने भारतीय नेताओं के साथ अपनी बैठकें आरम्भ कीं। ये बैठकें १७ अप्रैल तक चलती रहीं। इस काल में उन्होंने १८२ बैठकों में ४७२ नेताओं से विचार विनिमय किया। लगभग एक महीने तक देश की जनता की प्रत्येक विचारधारा के विभिन्न प्रतिनिधियों के साथ उन्होंने सम्मेलन किए।

(३) मुस्लिम लीग और कांग्रेस

कांग्रेस और मुस्लिमलीग के नेता अपनी-अपनी बातों पर अड़े रहे और वे किसी भी तरह झुकने को तैयार नहीं हुए वे किसी भी कीमत पर राजनीतिक समझौता करने के लिए तैयार नहीं थे।

(४) समझौते का अन्तिम प्रयास

मन्त्रिमण्डलीय-आयोग ने दोनों संस्थाओं में समझौता करवाने के लिए एक बार फिर भरसक प्रयास किया और इसी सन्दर्भ में शिमला सम्मेलन का आयोजन हुआ। यह सम्मेलन ५ मई १९४६ ई० से ११ मई १९४६ ई० तक चलता रहा परन्तु कोई समझौता न निकल सका। मुस्लिमलीग ने इस अवसर पर भी भारत के विभाजन पर दृढ़ता दिखाई और मिशन के सुझावों को अस्वीकार कर दिया।

आयोग के निजी प्रस्तावों की घोषणा

• आयोग ने १६ मई १९४६ ई० के राजपत्र में अपने निजी प्रस्तावों की घोषणा की। घोषणा में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा

हमने मुस्लिमलीग की 'माग पाकिस्तान' पर विचार किया है। हमारा विचार है कि इससे साम्प्रदायिक समस्या हल नहीं होगी। हम यह भी न्याय सम्मत नहीं समझते कि पंजाब बंगाल और आसाम के उन जिलों को जिनमें हिन्दुओं का बहुमत है पाकिस्तान में शामिल कर दिया जाए। भारत भौगोलिक दृष्टि से अखण्ड है इसलिए हम पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करते हैं और संयुक्त भारत के लिए योजना प्रस्तुत करते हैं।

योजना में क्या था ?

आयोग ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर करारा तमाचा लगाते हुए संयुक्त भारत के लिए आश्वासन स्वरूप अपनी योजना प्रस्तुत की। योजना के मुख्य बिन्दु निम्नलिखित थे —

(१) भविष्यगत विधान के प्रति संस्तुतियां

(क) भारत के भावी संविधान के लिए सिफारिशें

(१) भारतवर्ष का एक संघ होना चाहिए जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्य दोनों ही होंगे और जो विदेश तथा यातायात सम्बन्धी विषयों का शासन भार सम्भालेगा।

(२) संघ की एक कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका होगी जिनमें ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के प्रतिनिधि होंगे।

(३) साम्प्रदायिक प्रश्नों पर केन्द्रीय विधानमंडल (संघीय विधानमंडल) में अन्तिम निर्णय केवल सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से नहीं दोनों प्रमुख सम्प्रदायों (हिन्दू और मुसलमान) के उपस्थित और मतदान करने वाले प्रतिनिधियों के अलग अलग बहुमत से होगा।

(४) यह तय किया गया कि ऐसे विषय जो केन्द्र को नहीं दिए गए हैं

वे सब प्रान्तों के पास ही रहेंगे। तमाम अवशिष्ट शक्तियाँ भी प्रांतों के पास रहेंगी।

(५) जिन विषयों को देशी-रियासतें संघ को नहीं सौंपेंगी उन सब पर देशी रियासतों का ही अधिकार रहेगा।

(६) प्रान्तों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे अपने अलग अलग समूह बना सकें। आयोग द्वारा पहले समूह में मद्रास बम्बई संयुक्त प्रान्त बिहार मध्य प्रान्त तथा उड़ीसा दूसरे समूह में पंजाब उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त और सिन्ध और तीसरे समूह में बंगाल और आसाम रखे गए। प्रत्येक समूह को यह निश्चय करने की शक्ति होगी कि कौन से प्रान्तीय विषयों पर उसका नियन्त्रण हो। प्रान्तों के अलग २ विधानमंडल तथा कार्यपालिका होगी।

(७) मन्त्रिमण्डल आयोग ने यह भी प्रस्ताव रखा था कि भारतीय संघ तथा प्रान्तों के समूह के संविधान में यह धारा रखी जाय कि कोई भी प्रान्त अपने विधानमण्डल के बहुमत द्वारा प्रस्ताव पारित करके इस योजना के प्रारम्भ होने के दस वर्ष बाद तथा फिर भी प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात् संविधान की धाराओं पर दुबारा विचार करवाने के लिए प्रस्ताव पेश कर सके।

(ख) विधान निर्माण प्रणाली से सम्बन्धित प्रस्ताव

(१) ३८९ सदस्यों की एक संविधान सभा की व्यवस्था की जाएगी। इसमें से २९२ सदस्य ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के और ४ चीफ-कमिश्नर प्रान्तों के होंगे। इस संस्था के लिए निर्वाचन की विधि अप्रत्यक्ष रखी गई थी। इसके अतिरिक्त यह निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर किया जाना था। प्रान्तीय व्यवस्थापिका समितियों द्वारा मुसलमान सिक्ख तथा सामान्य के लिए जनसंख्या के अनुसार सीट सुरक्षित रखने की भी योजना बनायी गई थी। शेष ९३ सदस्य देशी-राज्यों के थे जिनके सकलन की विधि विचार विमर्श के पश्चात् भविष्य में निश्चित की जाने वाली थी।

(२) प्रान्तों को तीन भागों में विभाजित कर दिया गया।

(अ) हिन्दू-बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्र मद्रास बम्बई संयुक्त प्रान्त बिहार मध्यप्रान्त और उड़ीसा

(ब) मुसलमान बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाले उत्तर पश्चिम क्षेत्र पंजाब उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त सिंध और बलूचिस्तान तथा

(स) मुस्लिम बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाले उत्तर पूर्वी क्षेत्र (बंगाल और आसाम)।

यह योजना प्रस्तावित की गई कि समुदाय अथवा संघों के प्रतिनिधि पृथक रूप से मिलेंगे और प्रत्येक समुदाय के प्रान्तों के लिए प्रान्तीय विधान निश्चित करेंगे। प्रान्तों को यह अधिकार होगा कि इस प्रकार के नवीन विधान की पूर्णता और इस आधार पर प्रथम चुनाव हो जाने पर वे संघ में प्रवेश करेंगे।

(३) अल्पदलों के लिए परामर्शदात्री समितियों की व्यवस्था निश्चित की गई।

(४) संघ की संविधान-सभा संघीय विधान को निश्चित करेगी। महत्वपूर्ण साम्प्रदायिक विषय सम्बंधी प्रस्तावों के निर्णय के लिए उपस्थित सदस्यों का बहुमत और दोनों दलों का मतदान और बहुमत आवश्यक होगा।

(ग) देशी राज्य

इस नवीन भारतीय संघ में देशी राज्यों के सहयोग का आधार संधि के रूप में निश्चित किया जाने को था। प्रारम्भिक दशा में देशी राज्यों का प्रतिनिधित्व एक मध्यस्थ-समिति करेगी। ब्रिटिश भारत के स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही सर्वोच्च सत्ता समाप्त कर दी जाएगी।

(घ) अन्तरिम सरकार

केन्द्र में शीघ्र ही एक अन्तरिम सरकार स्थापित हो जाएगी जिसे भारत के प्रमुख दलों का सहयोग प्राप्त होगा। इसमें युद्ध विभाग सहित सारे विभाग मन्त्रियों को दिए जाएंगे जिन्हें जनता का विश्वास प्राप्त होगा। प्रशासन तथा परिवर्तन काल में इस सरकार को ब्रिटिश सरकार अपना पूर्ण सहयोग देगी। इस सरकार में १४ सदस्य होंगे। अन्तरिम सरकार के चौदह सदस्य इस प्रकार होने थे

६ कांग्रेसी (५ सवर्ण हिन्दू एक हरिजन) ५ मुस्लिम लीगी (मुसलमान) १ भारतीय ईसाई १ सिक्ख १ पारसी। मुस्लिम लीग जो पहले ही मुसलमानों की नियुक्ति का अधिकार कांग्रेस को नहीं देना चाहती थी की बात मान ली गई।

(ङ) संधि

ब्रिटेन द्वारा भारत को सत्ता हस्तान्तरित करने के बाद की स्थिति के सन्दर्भ में —

(१) चूंकि ब्रिटेन भारत को सत्ता हस्तान्तरित कर देगा इसके फलस्वरूप जो मामले उत्पन्न होंगे उनको तय करने के लिए भारत और ब्रिटेन के बीच में एक संधि होगी। सत्ता सौंपने के बाद ब्रिटिश सरकार के लिए रियासतों पर सर्वोच्चता भारत की नई सरकार को नहीं दी जा सकती और न ही उन पर ब्रिटेन का अधिकार रहेगा। इसका स्पष्ट अर्थ था कि देशी-रियासतें स्वतन्त्र रह सकेंगी।

(२) यह आशा की जाती है कि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य रहेगा परन्तु यदि वह उसे छोड़ना चाहेगा तो ऐसा करने की छूट रहेगी।

प्रतिक्रिया

देश-विदेश में इस योजना पर काफी वाद विवाद एवं प्रतिक्रिया हुई। महात्मा गांधी के मतानुसार 'इस योजना में ऐसे बीज विद्यमान थे कि वे इस व्यथा तथा सन्ताप से भरे देश को व्यथा रहित कर देते।' मिस्टर जिन्ना की मान्यता थी कि 'इस योजना से पाकिस्तान की नींव और आधार दोनों ही प्राप्त हो गए।' १ जून १९४६ को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने इस प्रस्ताव की आलोचना करते हुए कहा कि 'यह प्रस्ताव उससे कुछ अधिक नहीं है जो कुछ मिस्टर चर्चिल और मिस्टर एमरी प्रदान करने के लिए इच्छुक थे।' ब्रिटिश क्षेत्रों में इस योजना को 'भारत को आत्मनिर्णय के अधिकार प्रदान करने की ओर एक महत्त्वपूर्ण निर्णय बताया गया।

योजना के गुणों का लेखा-जोखा

इस योजना को भारतीय स्वतन्त्रता एवं संवैधानिक विकास के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यहाँ इस योजना के निम्न गुणों पर दृष्टिपात करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा।

(१) भारत की एकता को सुरक्षित रखना व पाकिस्तान की माँग की अस्वीकृति

आयोग ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर करारा वार करते हुए पाकिस्तान की माँग को अस्वीकार कर दिया क्योंकि आयोग यह भलीभाँति अनुभव कर चुका था कि इससे साम्प्रदायिकता का हल सम्भव नहीं होगा और इससे सेना के विभाजन और यातायात सम्बन्धी अनेक अड़चनें पैदा हो जाएँगी। इसके साथ ही साथ पुनर्वास की समस्या भी खड़ी हो जाएगी। वास्तव में आयोग का यह सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय था।

(२) समन्वयवादी दृष्टिकोण

आयोग यह भली भाँति जानता था कि उसे दोनों ही पक्षों को संतुष्ट करना है अतः उसने जो योजना बनाई वह किसी एक दल को प्रसन्न रखने के लिए नहीं बनाई थी। आयोग ने अखण्ड भारत की योजना रखकर कांग्रेस को प्रसन्न रखना चाहा तो दूसरी तरफ मुस्लिमलीग की इस माँग को कि केन्द्र को अधिक शक्तियाँ नहीं दी जाएँ स्वीकार करके उसका हृदय जीतने का प्रयास किया। इस तरह से इस योजना से कांग्रेस और मुस्लिमलीग दोनों के दृष्टिकोणों में मेल उत्पन्न करने की कोशिश की गई।

(३) संविधान सभा का लोकतन्त्रीय आधार

इस योजना का एक महान् गुण यह था कि इसमें संविधान सभा की रचना लोकतन्त्रीय आधार पर होनी थी क्योंकि देशी-रियासतों तथा प्रान्तों दोनों को आबादी के अनुसार ही प्रतिनिधित्व दिया गया था। इसी तरह से प्रत्येक

सम्प्रदाय को आबादी के अनुपात से स्थान दिये जाने की व्यवस्था थी। अल्पसंख्यक वर्ग को आबादी के अनुपात से अधिक स्थान देने की प्रथा को समाप्त कर दिया गया था।

(४) भारतीय हितों का प्रतिनिधित्व

संविधान-सभा के सारे सदस्य भारतीय थे। यूरोपियन और ब्रिटिश हितों के प्रतिनिधियों को इसमें कोई स्थान नहीं दिया गया था।

(५) सीमित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

सन् १९१९ के अधिनियम में यूरोपियन भारतीय समुदाय भारतीय ईसाइयों तथा सन् १९३५ के अधिनियम में अनेक अन्य हितों (मजदूर हरिजन तथा नारियों इत्यादि) को अलग प्रतिनिधित्व दिया गया था जिससे देश में साम्प्रदायिकता की लहर फैल गई। किन्तु इस योजना के अनुसार अलग प्रतिनिधित्व केवल मुसलमानों तथा पंजाब में सिक्खों के लिए रखा गया था।

(६) देशी राज्यों की जनता की भावना का आदर

यद्यपि योजना में यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया था कि रियासतों की जनता को संविधान सभा में प्रतिनिधि चुनकर भेजना था परन्तु राजाओं को भी यह अधिकार नहीं दिया गया था कि देशी-रियासतों के प्रतिनिधियों को वे नामजद कर सकें। समझौता समिति रियासतों की जनता के अधिकारों का निर्णय करने के लिए ही नियुक्त की गई थी।

(७) राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए कदम

योजना में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि अन्तःकालीन सरकार के सब सदस्य भारतीय होंगे और प्रतिरक्षा विभाग पर भी भारतीयों का नियन्त्रण स्थापित कर दिया जाएगा। शासन संचालन में इस अन्तःकालीन सरकार को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जाएगी और ब्रिटिश सरकार इसे पूर्ण सहयोग देगी।

(८) भारतीयों को भाग्य निर्णय का अधिकार

योजना के अन्तर्गत संविधान सभा को संविधान बनाने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया। यह संविधान सभा सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न थी। ब्रिटिश सरकार ने यह भी आश्वासन दिया कि इस संविधान सभा द्वारा बनाए हुए संविधान को वह लागू करेगी। वह भारत को सारी शक्तियाँ दे देगी बशर्ते कि इस संविधान में अल्पसंख्यकों के लिए उचित संरक्षण हो। संविधान-सभा ब्रिटिश-सरकार से सत्ता-हस्तान्तरण के कारण उत्पन्न हुए मामलों को निपटाने के लिए संधि करने को तैयार होगी। इस तरह से देखा जा सकता है कि इस योजना का सबसे बड़ा गुण यह था कि भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण के बिना अपना संविधान बनाने का अधिकार दे दिया गया था।

(६) राष्ट्रमडल से पृथक होने का अधिकार

भारतीयों को यह भी अधिकार प्रदान किया गया कि यदि वे चाहें तो ब्रिटिश राष्ट्रमडल के सदस्य रह सकते हैं और छोड़ना चाहें तो छोड़ सकते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस योजना द्वारा पहली बार भारतीयों को यह अनुभव हुआ कि वे किसी स्वतत्र मानव के अधिकारों का उपभोग करने में समर्थ हैं।

योजना की कमजोरिया

इस योजना को सम्पूर्ण रूप से ठीक मान लेना भी उचित नहीं होगा। श्री पामदत्त ने अपनी पुस्तक 'आज का भारत' में इस सदर्भ में लिखा है 'भारतीय स्वतन्त्रता की योजना के रूप में सन् १९४६ की नवीन व्यवस्था को विश्व की सम्मति के लिए बड़े व्यापक रूप से उसके सम्मुख उपस्थित किया गया था। किन्तु भी उसकी धाराओं के परीक्षण में यही निष्कर्ष निकलता है कि वह १९४२ ई के क्रिप्स प्रस्ताव का ही तनिक परिवर्तित रूप था और भारतीय स्वतन्त्रता अथवा प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली द्वारा निर्वाचित भारतवासियों के इस अधिकार की स्थापना से अत्यन्त दूर था कि वे अपने भविष्य का निर्माण स्वय करेंगे।' इस योजना में अनेक दोष थे

(१) पाकिस्तान निर्माण की अप्रत्यक्ष स्वीकृति

यद्यपि भारत को इस योजना के अनुसार अखड रखा गया परन्तु मुस्लिम लीग की मांगों को ही अधिक रूप में स्वीकार किया गया। पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करते हुए भी इसके सार-रूप को अपना लिया गया था और इसी पृष्ठभूमि में देश को तीन भागों में बाटकर अल्पसख्यकों को मुस्लिम प्रान्तों में बाट कर उन्हें लीगी दया पर जीने को विवश कर दिया।

(२) औपनिवेशिक स्थिति और स्वतन्त्रता में से एक का भ्रमपूर्ण प्रस्ताव

औपनिवेशिक स्थिति और स्वतन्त्रता में से एक को भविष्य में चुने जाने का जो भ्रमपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित किया गया वह समस्त भारतीय राजनैतिक दलों की स्वतन्त्रता की अन्तर्निहित माग से दूर था। वास्तव में देखा जाय तो स्वतन्त्रता के विषय का निश्चित किया जाना एक अप्रतिनिध्यात्मक संस्था के लिए छोड़ दिया गया जिसका निर्माण और कार्य-प्रणाली अग्रेजों द्वारा निश्चित की जाने वाली थी और जिसका महत्त्व भी प्रतिकार की दशा में था।

(३) संविधान-सभा का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं

वयस्क मताधिकार के आधार पर विधानसभा का निर्वाचन जो प्रजातन्त्रात्मक विधान का आवश्यक आधार है केवल योग्यता के आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया। विधानसभा का निर्माण अप्रजातन्त्रात्मक था क्योंकि इससे

साम्प्रदायिकता की नींव और भी दृढ़ होती थी। इस सभा का निर्वाचन समितियों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में होना था जो त्रुटिपूर्ण था।

(४) प्रान्तों को अलग संविधान बनाने की आज्ञा

इस योजना द्वारा सबसे महान् अपराध यह हुआ कि प्रान्तों को अपना अलग संविधान बनाने की आज्ञा दे दी गई थी। इसका दूरगामी प्रभाव यह पड़ा कि पहले प्रान्तों को अपना संविधान बनाना था और बाद में संघ का फलतः सारे भारत में एक ही प्रकार की शासन पद्धति की स्थापना नहीं हो सकती थी।

(५) रियासतों के अनुचित अधिकार

इस योजना में देशी रियासतों को अनुचित अधिकार प्रदान कर दिए गए। यह घोषणा की गई कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्र करते ही सारी देशी रियासतों को भी स्वतन्त्रता प्रदान कर देगी। यह उनकी इच्छा है कि वे संघ के संविधान को मान या न मानें। इस तरह इस योजना में भारत को सैकड़ों टुकड़ों में बाँटने का रहस्य छिपा हुआ था।

(६) विभाजन और आत्म निर्णय के सिद्धान्त में समता नहीं

भारत को समूहों में बाँट दिया गया जो सम्पूर्णरूप से अवैधानिक था। आसाम में हिन्दुओं का बहुमत था पर उसे बंगाल के साथ धकेल दिया गया। इस विभाजन और आत्म निर्णय के सिद्धान्त में कोई समता नहीं थी।

(७) संविधान सभा पर रुकावटें

संविधान सभा भारत का संविधान अपनी इच्छा से स्वयं नहीं बना सकती थी उस पर अनेकों रुकावटें थीं और ब्रिटिश सरकार कुछ शर्तों के पूरा करने पर ही इस संविधान को लागू करती। इसलिए आलोचकों का कहना है कि संविधान सभा के पास पूर्ण प्रभुसत्ता नहीं थी।

(८) बेमेल संघ योजना

संघ की जो रूपरेखा इस योजना द्वारा प्रस्तावित की गई वह पूर्णरूप से अवास्तविक थी। यह संघ निरंकुश रियासतों और लोकतन्त्रीय प्रान्तों से मिलकर बनता। ये दोनों बेमेल बातें थीं।

(९) केन्द्रीय सरकार की क्षीण शक्ति

इस विभाजन के आधार पर केन्द्र के हाथ बाँध दिए गए अर्थात् उसकी शक्तियों को अत्यन्त क्षीण बना दिया गया। प्रजातन्त्रात्मक प्रगति प्रभावपूर्ण और व्यापक एवं विस्तृत योजना पर आधारित आर्थिक पुनर्निर्माण और सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अखिल भारतीय आधार पर जिस आर्थिक सामाजिक

समान्तर शक्ति की आवश्यकता होती है और इसके सम्पादन के लिए जो अधिकार आवश्यक होते हैं उनकी इसके पास न्यूनता थी।

(१०) अंतरिम सरकार के अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या नहीं

अंतरिम अथवा अस्थायी सरकार के काल में अधिकार प्रदान करना निश्चित नहीं किया गया। वही पुराना विधान लागू होना को था और अस्थायी सरकार फिर से वायसराय की परिषद् के अधीन हो होने को थी। इस प्रकार असामान्य परिस्थितियों में वायसराय को प्रतिनिषेध के तथा अन्य महत्वपूर्ण अधिकार भी रहते।

(११) नवीन विधान और सरकार पर सैनिक अधिकार की छाया

अनिश्चित अंतरिम काल में सैनिक अधिकार अंग्रेजों के हाथ में रहने को था जिससे नवीन विधान का निर्माण भी सैनिक अधिकार की छाया में ही होता।

(१२) क्रिप्स प्रस्ताव की तरह ही इस योजना में भी यही कमजोरी थी कि इस या तो पूरी तरह अस्वीकार ही किया जा सकता था या यह सारी की सारी ही स्वीकार की जा सकती थी। कोई भी दल ऐसा नहीं था जोकि इसके कुछ भागों को मानने के कारण अन्य भागों को मानने।

(१३) विवादास्पद योजना

कांग्रेस और मुस्लिमलीग ने यद्यपि इस योजना को स्वीकार कर लिया परन्तु उन्होंने प्रान्तों के समूहीकरण का भिन्न भिन्न अर्थ निकाला। कांग्रेस के अनुसार प्रान्तों का समूहीकरण ऐच्छिक था और मुस्लिम लीग के अनुसार अनिवार्य। इस अस्पष्टता के कारण सारे देश में विवाद खड़ा हो गया।

(१४) सर्वसम्मत सूत्र की खोज में असफल

यह योजना किसी ऐसे सर्वसम्मत सूत्र की खोज करने में असफल रही जिससे देश के सभी वर्गों और दलों को राहत मिलती। हिन्दू महासभा और साम्यवादी दल ने इस योजना को ठुकरा दिया और सिक्ख भी इस योजना से सन्तुष्ट नहीं थे। बाद में मुस्लिमलीग ने भी संविधान सभा के चुनावों के बाद इस योजना को ठुकरा दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस योजना में अनेक गंभीर दोष थे जिसके कारण यह भारतीय जनता को कण्ठहार नहीं बन सकी।

समालोचना

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यह योजना १९४२ ई० की गौरवपूर्ण क्रान्ति की कुर्बानियों का ही परिणाम थी जिससे ब्रिटिश सरकार को विवश होकर यह सोचने को बाध्य होना पड़ा कि भारत की स्वतंत्रता के प्रश्न को अधर में नहीं

लटकाया जा सकता। यह भी सच है कि इस आयोग ने पूरी तत्परता और आत्म विश्वास से काम किया और निस्सन्देह वह पूर्ण प्रयासों से ज्यादा प्रभावशाली सिद्ध हुआ। इस आयोग ने दबाव में आकर अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ा और अपना निशाना साधा। इसने उफनती मुस्लिम साम्प्रदायिकता को ठंडा किया और उनकी अनुचित मांगों की अवहेलना की फिर भी वह मुस्लिम साम्प्रदायिकता के प्रभाव से बच नहीं सका और उसने समूह विभाजन में अप्रत्यक्ष रूप से पाकिस्तान की नींव रख दी। इस योजना का देश में उतना उग्र विरोध नहीं हुआ जितना कि साइमन कमीशन का हुआ था।

अन्त में कहा जा सकता है कि इसके प्रस्ताव चाहे पूर्णरूप से उचित न हों परन्तु इस तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि इसने भारतीय स्वतन्त्रता का मार्ग जो कटकाकीर्ण था उसे साफ करने में योगी मदद अवश्य की थी। फिर भी यह भारतीय भूमि के अनुकूल अपने को ढालने में असमर्थ ही रहा।



२६

स्वतन्त्रता की प्राप्ति

(१) अंतरिम सरकार की स्थापना और लीग का सीधी-कार्यवाही दिवस

६ मई १९४६ ई० को वायसराय की कार्यकारिणी-परिषद् ने मन्त्रिमंडल मिशन द्वारा किए जा रहे प्रबन्ध को सुगम बनाने के लिए त्यागपत्र दे दिया। २६ जून को वायसराय ने अंतरिम सरकार की स्थापना न होने तक सरकारी अधिकारियों से युक्त एक काम चलाऊ सरकार स्थापित करने की घोषणा की। १० जुलाई १९४६ ई० को श्री जवाहरलाल नेहरू ने मन्त्रिमंडल आयोग योजना के सम्बन्ध में पत्रकार-सम्मेलन में प्रश्नों का उत्तर देते हुए निम्न तीन बातें कहीं —

(i) मन्त्रिमंडल आयोग योजना के अन्तर्गत प्रान्तों को तीन समूहों में विभक्त करने की योजना अनिवार्य न होकर ऐच्छिक है एवं प्रान्तों के तीन समूह अस्तित्व में नहीं आयेंगे

(ii) मन्त्रिमण्डल आयोग योजना में परिवर्तन किया जाएगा और

(iii) साम्प्रदायिक समस्या हल हो जाएगी बाहरी हस्तक्षेप विशेषकर ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप भारतीय सरकार स्वीकार नहीं करेगी।

श्री जवाहरलाल नेहरू के वक्तव्य से मुस्लिमलीग कायम की मंशा के सम्बन्ध में शंकित हो गई। मुस्लिम लीग ने मन्त्रिमण्डल आयोग की योजना को पहले ही अधूरे मन से स्वीकार किया था श्री नेहरू के वक्तव्य ने उसको मन्त्रिमंडल आयोग योजना को ठुकराने का स्वर्ण अवसर प्रदान कर दिया। २७ जुलाई १९४६ ई० को बम्बई में लीग की कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पारित कर मन्त्रिमंडल आयोग योजना की अपनी स्वीकृति वापस ले ली। कार्यकारिणी ने अपने प्रस्ताव की जानकारी सम्पूर्ण देश के मुसलमानों को कराने के उद्देश्य से १६ अगस्त १९४६ ई० को सीधी-कार्यवाही दिवस मनाने का भी निर्णय किया। मि० जिन्ना ने मुसलमानों से सीधी-कार्यवाही दिवस शान्तिपूर्वक ढंग से मनाने और अंग्रेजों के हाथ का खिलौना न बनने की अपील की। ६ अगस्त १९४६ ई० को वायसराय ने श्री नेहरू को अंतरिम सरकार बनाने के लिए आमन्त्रण दिया जिसे नेहरू ने स्वीकार कर लिया। चूंकि वायसराय लार्ड वेवल मुस्लिमलीग को भी अन्तःकालीन सरकार में लाने के लिए इच्छुक थे इसलिए जवाहरलाल नेहरू तथा वायसराय दोनों ने ही मुस्लिम

लीग और कांग्रेस की मिली जुली सरकार स्थापित करने का यत्न किया। परन्तु श्री जिन्ना इसके लिए तैयार नहीं हुए। १६ अगस्त १९४६ ई० को पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए सीधी-कार्यवाही दिवस मनाया गया। बंगाल में इस समय मुस्लिम लीग की सरकार थी और सुहरावर्दी वहाँ का मुख्यमंत्री था। उसने १६ अगस्त की छुट्टी घोषित करदी। कलकत्ता में उस दिन भारी लूट मार शुरू की गई जो तीन दिन तक चलती रही। हिन्दुओं की सम्पत्ति को बड़ी भारी हानि पहुँची लगभग ७ व्यक्ति इन झगड़ों में मारे गए १५ जख्मी हुए और १ बेघर हो गए। मौलाना आजाद ने जो उस समय कलकत्ता में थे लिखा है "१६ अगस्त का दिन भारत के इतिहास में काले अक्षरों में लिखा जाने वाला दिन है। उस दिन भीड़ की हिंसा के कारण कलकत्ता नगर आतंक हत्या और खून के सागर में डूब गया। सैकड़ों जानें बर्बाद हुईं। हजारों व्यक्ति जख्मी हुए और करोड़ों की सम्पत्ति बर्बाद हुई। नगर में गुण्डों का राज था।

२ सितम्बर १९४६ ई० को अंतरिम सरकार ने पदभार सम्भाल लिया। वायसराय के प्रयत्नों से मुस्लिम लीग ने भी १५ अक्तूबर १९४६ ई० को अन्त-कालीन सरकार में अपने प्रतिनिधि भेजने मंजूर कर लिए। २४ अक्तूबर को लीग के ५ प्रतिनिधियों ने पदभार सम्भाल लिया। लीग अंतरिम सरकार में सद्भावना के कारण सम्मिलित नहीं हुई वरन् इसमें इसका अपना निहित उद्देश्य था। प्रथम वह मुसलमानों तथा दूसरे अल्पसंख्यकों के हितों को कांग्रेस के हाथ में छोड़ना ठीक नहीं समझती थी तथा द्वितीय लीग अंतरिम सरकार से बाहर रहकर कांग्रेस को अपने विरुद्ध स्थिति मजबूत नहीं करने देना चाहती थी। फलतः कांग्रेस एवं लीग में कोई सहयोग उत्पन्न नहीं हो सका तथा अंतरिम सरकार ठीक ढंग से काम नहीं कर सकी। सारे देश में साम्प्रदायिक अग्नि भड़क उठी और साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गए। मुसलमानों ने नोआखाली में हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किए। इसकी प्रतिक्रिया बिहार, गढ़मुक्तेश्वर और अहमदाबाद में हुई जहाँ हिन्दुओं ने मुसलमानों पर अत्याचार किए। मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के बलिदान के लिए बिहार दिवस मनाया। फलतः आगे में पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त इत्यादि में भी दंगे फैल गए। साम्प्रदायिक सद्भावना उत्पन्न करने की दृष्टि से महात्मा गांधी ने ६ नवम्बर १९४६ ई० को बंगाल का दौरा प्रारम्भ किया। श्री नेहरू बिहार गए और दल के मान्य नेताओं ने देश में सद्भावना बनाए रखने की अपीलें की।

(२) अंग्रेजों को भारत छोड़ने की घोषणा

१४ नवम्बर १९४६ ई० को मि० जिन्ना ने संविधान सभा की बैठकों का लीग द्वारा बहिष्कार किए जाने की घोषणा की तथा स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारतीय समस्या का समाधान केवल देश का बटवारा कर भारत और पाकिस्तान नामक दो देशों के निर्माण के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकेगा। मि० जिन्ना ने वायसराय को कांग्रेस के हाथ का खिलौना न बनने की भी चेतावनी दी। १९४६ई

के अन्तिम मास में लीग का पाकिस्तान के निर्माण के सम्बन्ध में प्रचार और भी तेज हो गया। मि. एटली ने लीग और कांग्रेस के मतभेदों को दूर करने का एक बार पुनः प्रयास किया। उन्होंने ३ नवम्बर को नेहरू, जिन्ना, लियाकत अली और बलदेवसिंह की एक बैठक का आयोजन लन्दन में किया। उस बैठक में ३ दिसम्बर को भारतीय समस्याओं पर विचार हुआ परन्तु कोई समाधान नहीं निकला। लीग की नीति के फलस्वरूप देश में साम्प्रदायिक द्वेष की भावना तेजी से बढ़ने लगी तथा अन्तरिम सरकार के संचालन में कठिनाइयाँ दिनों दिन बढ़ने लगीं। इसी समय मि. एटली का यह विचार बना कि यदि ब्रिटेन शीघ्र ही भारत से हटने की तिथि घोषित करदे तो सम्भवतः लीग एवं कांग्रेस में समझौता हो जाए। अतः उन्होंने २० फरवरी १९४७ ई. को संसद में एक घोषणा की। इस घोषणा द्वारा भारतीयों के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित करने की तिथि निश्चित कर दी गई जो जून १९४८ ई. थी। इसके द्वारा कांग्रेस और मुस्लिमलीग की विशेष स्थिति को समाप्त कर दिया गया और यह भी निश्चित कर दिया गया कि ब्रिटिश-सरकार उसी संविधान को स्वीकार करेगी जिसको संविधान-सभा ने सर्वसम्मति से पास किया हो। घोषणा में कहा गया था कि अगर सर्वसम्मति से कुछ निश्चित नहीं हुआ तो सत्ता केन्द्रीय सरकार को या तो की वर्तमान सरकार को या किसी अन्य रीति से जो भारतीयों के लिए लाभकर होगी सौंप दी जाएगी। इस घोषणा से मुस्लिम लीग को यह संकेत मिले कि उसे कांग्रेस से अब कोई समझौता करने की आवश्यकता नहीं है। अतः उसका पाकिस्तान प्राप्त करने का निश्चय और भी अधिक दृढ़ हो गया। सरकार ने शीघ्र सत्ता हस्तान्तरित करने के उद्देश्य से वेवल के स्थान पर लार्ड माउन्टबेटन को भारत में वायसराय नियुक्त किया। २२ मार्च १९४७ ई. को नये वायसराय ने अपना कार्यभार सम्भाला।

(२) माउन्टबेटन-योजना

माउन्टबेटन को वायसराय बनाने का उद्देश्य भारत की राजनीतिक समस्या को अन्तिम रूप से हल करना था। सरकार चाहती थी कि जितना जल्दी हो उतना ही यह काम पूरा कर लिया जाए। लार्ड माउन्टबेटन ने शीघ्र ही भारतीय नेताओं से बातचीत की। बातचीत के पश्चात् उन्होंने एक योजना तैयार की तथा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से परामर्श करने के पश्चात् अपनी योजना भारतीय नेताओं के सम्मुख प्रस्तुत की। यह योजना भारतीय संवैधानिक विकास के इतिहास में माउन्टबेटन योजना के नाम से प्रसिद्ध है।

योजना की मुख्य बातों को उल्लिखित करने के पहले यह कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार ने मन्त्रिमण्डल मिशन योजना में भारत के दोनों दलों से सहयोग की आशा की थी लेकिन वह पूरी नहीं हो सकी। संविधान सभा के निर्माण में भी मुस्लिम समर्थन हासिल नहीं हो सका था। अतः उस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान सभा के विचारों को लादना उचित नहीं है और संविधान सभा के निर्माण

पूर्व इन क्षेत्रों की प्रतिक्रिया जान लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। योजना की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं —

संविधान सभा के निर्माण के सम्बन्ध में

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशें की गईं —

(१) ब्रिटिश सरकार की इच्छा है कि वह भारत का शासन शीघ्र ही जनता द्वारा निर्वाचित सरकार को सौंप दे।

(२) ब्रिटिश सरकार यह नहीं चाहती है कि वर्तमान संविधान-सभा के कार्य में किसी भी प्रकार की कोई बाधा पड़े।

(३) वर्तमान संविधान-सभा द्वारा निर्मित संविधान को स्वीकार नहीं करने वाले क्षेत्रों की इच्छा को जानने के लिए एक प्रक्रिया का उल्लेख किया जाए। इस प्रक्रिया के अनुसार पंजाब और बंगाल की विधान सभाओं के अधिवेशन दो भागों में होंगे। एक भाग उन क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का होगा जिनमें मुसलमानों का बहुमत नहीं है। उनके सामने यह प्रश्न रहेगा कि वे प्रांतों का विभाजन करना चाहते हैं या नहीं। यदि बहुमत विभाजन के पक्ष में हो तो उनको यह निर्णय करना होगा कि वे वर्तमान संविधान-सभा में सम्मिलित हों या पृथक संविधान सभा का निर्माण करें।

विभाजन के सम्बन्ध में

जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि इस योजना का निर्माण ही भारत का शीघ्र विभाजन करने के लिए किया गया था इस योजना में भारत और पाकिस्तान नामक दो पृथक राज्यों की भूमिका को स्वीकार कर लिया गया। इस योजना में तय किया गया कि भारत को दो अधिराज्यों में बांट दिया जाएगा और दोनों को (इण्डिया और पाकिस्तान) जून १९४८ ई० की बजाय १५ अगस्त १९४७ ई० को ही स्वतन्त्रता दे दी जाएगी।

इस विभाजन व्यवस्था में पाकिस्तान के उस स्वरूप को स्वीकार नहीं किया गया जिसके लिए जिन्ना बचनबद्ध थे। यह स्वरूप अत्यन्त अवास्तविक और आधार-रहित था। जिन्ना अपनी कल्पना के पाकिस्तान में न केवल सारा बंगाल पंजाब उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त सिंध और बिलोचिस्तान को ही मिलाना चाहते थे अपितु उन्होंने संयुक्त प्रांत के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को भी पाकिस्तान में मिलाने की व्यवस्था की थी। कांग्रेसी नेता इस व्यवस्था को मानने के लिए कतई तैयार नहीं थे। वे पंजाब और बंगाल के हिन्दू बहुल इलाकों को हिंदुस्तान में और मुस्लिम-बहुल हर जिले को पाकिस्तान में व्यवस्था चाहते थे। उन्हें असम पर जिन्ना का दावा मंजूर नहीं था। इसीलिए माउन्टबेटन योजना के अनुसार असम को पाकिस्तान से बाहर निकाल दिया गया और पंजाब तथा बंगाल के बंटवारे की व्यवस्था की गई।

प्रस्तावित योजना में यह भी व्यवस्था की गई कि पंजाब और बंगाल की विधानसभाओं के सदस्य अलग अलग अर्थात् हिन्दू और मुस्लिम बहुल जिलों के हिसाब से बटेंगे। यदि पंजाब और बंगाल हिन्दू बहुल इलाकों के बटवारे के लिए प्रस्ताव पास कर दें तो पंजाब और बंगाल का विभाजन अवश्यम्भावी हो जाएगा।

उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त के भविष्य का निर्णय जनमत संग्रह द्वारा किया जाएगा। चूंकि कांग्रेस ने पूरे आसाम को पाकिस्तान में मिलाने की मांग का विरोध किया था अतः यह व्यवस्था की गयी कि सिलहट जिले में जहाँकि मुसलमानों का बहुमत था जनमत संग्रह द्वारा इस बात का निर्णय किया जाएगा कि वहाँ जनता आसाम में रहना चाहती है या पूर्वी बंगाल में।

देशी रियासतों के सम्बन्ध में व्यवस्था

देशी रियासतों के सम्बन्ध में उसी योजना तथा व्यवस्था को स्वीकार कर लिया जाएगा जिसका निर्धारण मन्त्रिमण्डल योजना में किया गया था।

अन्त में सरकार ने इस आशय की भी घोषणा कर दी कि वह १९४८ ई तक सत्ता हस्तान्तरित करने की प्रतीक्षा नहीं करेगी वरन् १९४७ ई में ही इस कार्य को समाप्त कर देना चाहती है।

माउन्टबेटन-योजना पर देश में मिश्रित प्रतिक्रियाएं हुईं। मौलाना आजाद ने कहा "इस घोषणा के प्रकाशन के बाद भारत की एकता को बनाए रखने की सारी आशा समाप्त हो जाती है। यह पहला अवसर था कि मन्त्रिमण्डल आयोग योजना को अस्वीकृत कर दिया गया और विभाजन को अधिकारिक रूप से स्वीकृत कर लिया गया।" पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त का विचार था कि "३ जून १९४७ ई० की योजना की स्वीकृति ही स्वतन्त्रता प्राप्ति का एकमेव मार्ग है। इससे शक्तिशाली केन्द्र बन सकेगा और भारत की उन्नति हो सकेगी। कांग्रेस ने एकता के लिए बहुत कार्य किया है और इसके लिए सब कुछ न्योछावर कर दिया है। आज कांग्रेस को या तो इस योजना का स्वीकार करना है अथवा आत्महत्या करनी है कि मन्त्रिमण्डल मिशन योजना के गुणों और निर्बल केन्द्र से यह योजना अच्छी है।" डॉ राजेन्द्रप्रसाद ने कहा "यदि भारत का विभाजन होना ही है तो पूर्ण रूप से हो जाना चाहिए ताकि बाद में झगड़े के लिए गुंजाइश न रहे।" मोहम्मद अली जिन्ना ने पहले तो बंगाल पाकिस्तान की व्यवस्था का स्वीकार नहीं किया परन्तु बाद में लॉर्ड माउन्टबेटन के दबाव के कारण स्वीकार कर लिया। कांग्रेस-लीग में योजना को पूरा समर्थन प्राप्त हुआ। राष्ट्रवादी मुसलमानों और पाकिस्तान में सम्मिलित किए जाने वाले भू भाग के हिन्दुओं ने इस योजना का विरोध किया।

शीघ्र ही पंजाब और बंगाल के हिन्दू बहुल जिलों के सदस्यों ने इन प्रांतों के बटवारे के लिए प्रस्ताव पास कर दिया। सिलहट ने पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) में मिलने का निर्णय किया। उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त में जनमत-संग्रह हुआ जिसका

खान अब्दुल गफ्फार खां (सीमान्त गांधी) के अनुयायियों (खुदाई खिदमतगारों) ने बहिष्कार कर दिया और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त के मुसलमानों ने बहुमत से पाकिस्तान में मिलने का निर्णय लिया।

माउण्टबेटन योजना ब्रिटिश सरकार की उस नीति का अन्तिम प्रयास था जो भारत को स्वाधीनता देने के सन्दर्भ में प्रयत्नशील थी। लार्ड माउण्टबेटन और लेडी माउण्टबेटन ने अपने प्रयासों से इस योजना को सफल बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखी और देश के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। अब उन कारणों का उल्लेख करना अत्यन्त उपयुक्त होगा जिन्होंने इस योजना के मूलभूत उद्देश्यों को ठोस आधार स्थल प्रदान किया और वह अपने यथार्थ स्वरूप के कारण देश के विभिन्न हितों को एक मंच पर लाने में समर्थ हो गई। यह योजना उस समय प्रस्तावित की गई जबकि देश का वातावरण अपनी उग्रता की चरम सीमा पर था। देश के दोनों दलों में कटुता और वैमनस्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गए थे। फिर भी लार्ड माउण्टबेटन ने अपने अथक परिश्रम, प्रभावशाली और परिस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन करने की क्षमता से देश के विभिन्न तत्वों व्यक्तित्व द्वारा अपनी योजना स्वीकार कराने में सफलता प्राप्त की।

इस सन्दर्भ में दो प्रश्नों का उठना स्वाभाविक ही है प्रथम कांग्रेस ने योजना को स्वीकार क्यों किया द्वितीय लीग ने इसे क्यों अपनाया। पहले प्रश्न के सदर्भ में कहा जा सकता है कि मुस्लिमलीग की प्रत्यक्ष कार्यवाही के कुत्सित प्रयासों ने सारे देश में बड़ी विषम स्थिति उत्पन्न कर दी। देश के विभिन्न भागों में घटित होने वाले मजहबी दंगों, हिंसक घटनाओं और वैमनस्यपूर्ण वातावरण में हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्रीय विचारधारा के अंग बनने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपने कारनामों से ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिसमें सहयोग, सहिष्णुता और शान्तिपूर्ण विचार विमर्श के लिए कोई स्थान नहीं रह गया था। अतः विभाजन एक अवश्यंभावी उल्लेख बन गया था। सरदार पटेल ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा था बंगाल के कत्लेआम से पाकिस्तान की स्वीकृति अच्छी है। पंडित नेहरू ने भी वास्तविकता पर टिप्पणी करते हुए कहा था यदि हमें आजादी मिल भी जाती तो भारत निस्सन्देह निर्बल रहता जिसमें इकाइयों के पास बहुत अधिक शक्तियाँ रहती और संयुक्त भारत में सदैव कलह और झगड़े रहते। इसलिए हमने देश का बटवारा स्वीकार कर लिया ताकि हम भारत को बलशाली बना सकें। जब दूसरे (मुस्लिम लीगी मुसलमान) हमारे साथ ही नहीं रहना चाहते थे तो हम उन्हें क्यों और कैसे मजबूर कर सकते थे। इस प्रकार देश के सभी कांग्रेसी नेताओं ने विभाजन को वास्तविकता मानकर इस योजना को स्वीकार करने में ही देश का हित समझा।

द्वितीय प्रश्न के सम्बन्ध में साधारणतया यह कहा जाता है कि लार्ड माउण्टबेटन के दबाव के कारण मुस्लिमलीग ने इस योजना को स्वीकार किया था। परन्तु इसे पूर्ण रूप से युक्ति संगत नहीं माना जा सकता। जिन्ना जैसे दूरदर्शी

कूटनीतिज्ञ के होते हुए मुस्लिम लीग इस कमजोरी का शिकार नहीं बन सकती थी। मुस्लिमलीग शुरू से ही सुनियोजित ध्येयों को लक्ष्य में रखकर ही अपनी भावी रणनीति का निर्धारण करती आई थी जिसके लिए उसका अतीत साक्षी है। इस योजना को कांग्रेस द्वारा स्वीकार कर लेने पर लीग को अपना ध्येय (पाकिस्तान) की प्राप्ति हो गई थी। यद्यपि योजना के अन्तर्गत प्रदत्त पाकिस्तान जिन्ना के स्वप्नों का पाकिस्तान नहीं था परन्तु वह उनकी यथार्थ भावनाओं का पाकिस्तान अवश्य था। जिन्ना पाकिस्तान के उस स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सकता था जिसकी प्राप्ति के लिए उसने अपने प्रचार-तन्त्र और नीतियों का निर्धारण किया था। यह तो उसकी दूरदर्शितापूर्ण राजनीति का अंग था। इसलिए इस योजना से मुस्लिमलीग ने सब कुछ प्राप्त कर लिया और झूठी प्रतिष्ठा के चक्कर में नहीं पड़कर योजना पर अपनी स्वीकृति देने में ही अपना हित समझा।

अब यह भी देख लेना होगा कि माउन्टबेटन के इरादों की सफलता क्यों मिली? अथवा परिणाम कांग्रेसी नेताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध दूर कितापएण नीतियाँ ऐसे तत्त्व हैं जिन्होंने माउन्टबेटन को सफलता के पथ पर अग्रसर किया। परन्तु हमें विषय-वस्तु की गहराई में जाकर सत्य का अवलोकन करना होगा। इस पर यही कहना उपयुक्त होगा कि लार्ड माउन्टबेटन अपने तर्कों द्वारा कांग्रेसी नेताओं को यह समझाने में सफल हो गए थे कि मुस्लिमलीग के बिना शेष भारत को संगठित और शक्तिशाली बनाना अधिक अच्छा रहेगा। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि गृहयुद्ध की स्थिति को टालने हेतु माउन्टबेटन योजना ही कांग्रेसी नेताओं के लिए एकमात्र विकल्प थी। कांग्रेसी नेताओं ने भी इस बात को भली भाँति महसूस कर लिया था कि विशाल तथा असंगठित भारत की अपेक्षा संगठित तथा छोटा भारत अधिक उपयुक्त रहेगा।

निस्सन्देह माउन्टबेटन के जवाहरलाल नेहरू से आत्मीय सम्बन्ध होने के कारण उनका झुकाव कांग्रेस की तरफ था फिर भी वे अपनी नीतियों के संचालन करने में स्वतन्त्र नहीं थे। उन पर उनकी देश की संसद का नियन्त्रण था और मूलभूत ब्रिटिश नीति को ध्यान में रखकर ही उन्होंने अपनी रण-नीति का संचालन करके मुस्लिमलीग द्वारा अपनी योजना स्वीकार कराने में सफलता प्राप्त करली। फिर भी इस मनोवैज्ञानिक सत्य को तो नहीं झुठलाया जा सकता जिसने मुस्लिम क्षेत्रों को इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि वे इस योजना को स्वीकार करलें अन्यथा उनकी स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इसके साथ ही लीगी नेता भी इस बात को भी समझते थे कि उन्हें अपना सब कुछ मिल गया और यह स्थिति उनके लिए सर्वाधिक लाभप्रद थी।

इस योजना से अनेक दूरगामी प्रभाव पड़े। देश के राजनीतिक क्षेत्रों में एक बार पुनः विस्मय का वातावरण छा गया। उन क्षेत्रों में विशेषकर पाकिस्तान

म बसन वाले हिन्दुओं और शेष भारत मे रहने वाले समावित मसलमानों मे भय और आशका का वातावरण उत्पन्न हो गया क्योंकि इस योजना ने विभाजन को अवश्यम्भावी बना दिया था जिसके कारण भविष्य मे उनकी स्थिति पर सीधा प्रभाव पडने वाला था। लीग और काग्रेसी नेता अपनी भावी रणनीति का निर्धारण करने की दिशा ■ प्रयत्नशील ना गए। ब्रिटेन ■ इस आशातीत सफलता के कारण माउण्टबेटन की भूमिका का असाधारण महत्त्व मिला।

जहा तक देशी रियासतों का स्वतन्त्र रहने का व्यवस्था का हुए था वहा वे इस आशका से भी चिन्तित हो गए कि बदलते सदर्भ म वे अपनी स्थिति को अधिक समय तक बनाए रखने म समर्थ नहीं हो सकेंगे अत उन्हें भी अपने भविष्य पर पुनर्विचार कर स्थिति का सही अवलोकन करने की आवश्यकता महसूस हो गई।

(४) सन् १९४७ का अधिनियम

माउण्टबेटन-योजना को काग्रेस एव मुस्लिमलीग दोनों के स्वीकृत कर लेने के पश्चात् योजना के आधार पर एक विधेयक तयार किया गया तथा ४ जुलाई १९४७ ई को ब्रिटिश ससद म प्रस्तुत किया गया जो १८ जुलाई १९४७ ई को पारित हो गया। राजकीय स्वीकृति प्राप्त करने पर यह विधेयक भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम १९४७ ई कहलाया। उक्त अधिनियम ब्रिटिश शासन काल म भारत के सवधानिक विकास के इतिहास का अन्तिम चरण एव महत्वपूर्ण सीमाक है।

सन १९४७ के अधिनियम क मुख्य उपबन्ध

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित थ —

(१) अधिनियम द्वारा भारत का विभाजन कर दिया गया तथा पाकिस्तान का निर्माण किया गया। १५ अगस्त १९४७ ई को भारत एव पाकिस्तान नामक दो अधिराज्य बन जावगे एव उनको ब्रिटिश सरकार सत्ता सौंप देगी। दोनों अधिराज्यों की विधानसभा को अपने अपने क्षेत्र के लिए विधि निर्माण की शक्ति प्रदान करनी थी। सविधान सभा को सविधान बनाने के अतिरिक्त व सभी शक्तिया एव अधिकार प्रदान कर दिए गए जो १९४७ ई के पूर्व केन्द्रीय विधानमण्डल को प्राप्त थ।

(२) ब्रिटिश सरकार का १५ अगस्त १९४७ ई के पश्चात् दोनों अधिराज्यों उनके प्रान्त या किसी क्षेत्र के विषयों पर कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा।

(३) दोनों अधिराज्यों की विधानसभाओं को अपना सविधान बनाने का अधिकार दे दिया गया। दोनों अधिराज्यों को अपनी इच्छानुसार ब्रिटिश राष्ट्रमडल छोडने या उसकी सदस्यता बनाए रखने का अधिकार दिया गया। नए सविधान का निर्माण न होने के काल में दोनों अधिराज्यों एव उनके प्रान्तों का शासन १९३५ ई के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार चलेगा। प्रत्येक

अधिराज्य की आवश्यकतानुसार १६३५ ई के अधिनियम में संशोधन करने का अधिकार दिया गया। ३१ मार्च १६४८ ई तक गवर्नर जनरल को आवश्यकतानुसार सन् १६३५ के भारत सरकार अधिनियम म संशोधन करने का अधिकार दिया गया।

(४) भारत मन्त्री का पद तोड दिया गया एव उसका कार्य राष्ट्रमण्डल के मन्त्री को प्रदान कर दिया गया।

(५) ब्रिटिश सम्राट के पद से भारत सम्राट नामक पद हटा दिया गया। ब्रिटिश ताज की अधिराज्यो के कानूनो पर निषेधाधिकार लगाने की शक्ति समाप्त कर दी गई। १५ अगस्त १६४७ ई के पश्चात् कोई भी विधेयक उसकी स्वीकृति हेतु रक्षित नही किया जाएगा। दोनो अधिराज्यो के गवर्नर जनरलो को ब्रिटिश सम्राट के नाम पर किसी भी विधेयक को अनुमति प्रदान करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

(६) ब्रिटिश ताज की देशी-राज्यो के ऊपर सर्वोच्चता को समाप्त कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार की देशी-राज्यो के शासकों के साथ की गयी सभी सन्धियो को समाप्त कर दिया गया। जबतक भारत-सरकार एव देशी-शासकों मे आपसी वार्तालाप द्वारा कुछ निश्चय नही हो जाता जबतक भारत-सरकार एव रियासतो का पूर्व सम्बन्ध चालू रहेगा।

(७) पाकिस्तान उत्तर पश्चिमी सीमाई कबीलों से समझौते की बातचीत करेगा

सन् १६४७ के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम का भारतीय राजनतिक एव सवधानिक विकास के इतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा भारतवष मे ब्रिटिश शासन की समाप्ति हुई और भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। भारतीय भूखण्ड का विभाजन हुआ एव नये राष्ट्र पाकिस्तान का निर्माण हुआ। यह अधिनियम भारत-शासन सम्बन्धी ब्रिटिश ससद द्वारा पारित अन्तिम अधिनियम था। इसके द्वारा भारत पर ब्रिटिश सम्राट की प्रभुसत्ता एव देशी राज्यो पर ब्रिटिश ताज की सर्वोच्चता समाप्त हो गयी।

(५) अग्रेजो ने भारत क्यों छोड़ा

१४-१५ अगस्त १६४७ ई की मध्य रात्रि को ब्रिटेन ने भारत और पाकिस्तान को सत्ता हस्तान्तरित कर दी। भारत स्वतन्त्र हुआ एव इसके साथ ही १८५७ ई म प्रारम्भ की गयी स्वतन्त्रता आन्दोलन की लम्बी और सघषपूर्ण यात्रा की समाप्ति हो गयी। राष्ट्रीय आन्दोलन की कहानी को समाप्त करने के पूर्व हमारे लिए उन तत्वा का विश्लेषण करना भी उचित होगा जिनके कारण बाध्य होकर अग्रेजो ने भारत से विदा होने का निर्णय लिया।

अग्रजो द्वारा भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने का प्रथम कारण देश मे व्याप्त साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना था। लीग की नीतियो के फलस्वरूप देश में

साम्प्रदायिक वि ष वन रहा था हिन्दू मुसलमानों में किसी भी तरह से एकता की कोई सम्भावना नहीं रह गयी थी। काग्रेस इसके लिए अंग्रेजों को उत्तरदायी ठहरा रही थी। ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री अपने देश के मस्तक से इस कलंक को मिटाने के लिए प्रयत्नशील थे। भारत का विभाजन ही उनको साम्प्रदायिक समस्या का एकमात्र हल दिखायी दे रहा था। जब लन्दन ने राजनीतिज्ञों को यह विश्वास हो गया कि कांग्रेस भी देश-विभाजन के लिए तैयार है तो उन्होंने सत्ता हस्तान्तरित करने का निश्चय कर लिया।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण जिससे प्रभावित होकर अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का निर्णय लिया वह था सेना की स्वामिभक्ति में सन्देह उत्पन्न हो जाना। सन् १८५७ के पश्चात् भारत में ब्रिटिश शक्ति का आधार सेना थी। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भारतीय सेना में अंग्रेजों के प्रति विरोध बढ़ना प्रारम्भ हो गया। भारतीय नौ-सेना ने १९ फरवरी १९४६ ई० को विद्रोह कर दिया। उन्होंने भारतीय सरकार को चेतावनी दी कि यदि निश्चित दिनांक तक उनकी मांग स्वीकार नहीं की जायगी तो वे एक साथ त्यागपत्र दे देंगे। नभ सेना ने भी हड़ताल करदी। कलकत्ता बम्बई और कराची में खुले विद्रोह की आशंका हो गया। यद्यपि नौ सेना एवं नभ सेना के विद्रोह को दबा दिया गया पर तु सेना में देश भक्ति की लहर से अंग्रेजों को यह स्पष्ट हो गया कि सेना के बल पर वे अब भारत में अधिक दिनों तक शासन नहीं कर सकते तथा भारत से शीघ्र विदा होने में उनका कल्याण है।

अंग्रेजों द्वारा भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए तीसरा महत्वपूर्ण कारण आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर मुकद्दमा चलाने के कारण देशवासियों में उत्पन्न अभूतपूर्व जागृति था। आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों तथा सहगल ढिल्लों एवं शाहनवाज खां पर युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत-सरकार ने नवम्बर १९४५ ई० को दिल्ली के लालकिले में मुकद्दमा प्रारम्भ किया। भूलाभाई देसाई के नेतृत्व में जवाहरलाल नेहरू तेजबहादुर सप्रू एवं आसफअली ने आजाद हिन्द फौज के उक्त अधिकारियों की पैरवी की। शाहनवाज कैप्टन सहगल और लेफ्टिनेन्ट ढिल्लों को आजीवन निर्वासन का दण्ड दिया गया। मुकद्दमे के दौरान आजाद हिन्द फौज की वीरता की अनेक गाथाएं प्रकाश में आईं एवं उनको पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया। भारतीय जनता आजाद हिन्द फौज के वीरतापूर्ण कार्यों से बड़ी रोमांचित हुई। सारे देश में आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों एवं सैनिकों को मुक्त करने की मांग उठी। ६ फरवरी १९४७ ई० को भारत के मुख्य सेनापति ने सहगल शाहनवाज एवं ढिल्लों की माफी की घोषणा की एवं आजाद हिन्द फौज के ११ सैनिकों को बिना शर्त मुक्त कर दिया। आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों ने देश का दौरा किया। जहां भी वे गये जयहिन्द के नारों से उनका स्वागत किया गया। देश में व्याप्त जन जागृति को दृष्टिगत रखकर अंग्रेजों ने भारत से हटने का निश्चय करना ही ठीक समझा।

अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ने का चौथा कारण युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन की प्रतिष्ठा में काफी कमी आ जाना था। सन् १८५७ के पश्चात् भारत में यह समझा जाता था कि अंग्रेज जाति अपराजेय है परन्तु द्वितीय महायुद्ध में जापानियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध जो सफलता प्राप्त की उसके फलस्वरूप यह भ्रम समाप्त हो गया। युद्ध में ब्रिटेन के जन धन की अपार हानि हुई थी। विश्व राजनीति में संयुक्त राज्य अमरिका और सोवियत रूस विश्व शक्ति के रूप में उदित हो गए थे। भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका का दबाव बढ़ रहा था। स्वतन्त्रता को अधिक दिनों तक नहीं टाला जा सकता था। मजदूर दल भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में था। युद्ध के पश्चात् हुए निर्वाचन में मजदूर दल को सफलता मिली थी एवं यह इस बात का परिचायक था कि अंग्रेजी मतदाता भी स्वतन्त्रता प्रदान करने के पक्ष में है। प्रधानमन्त्री एटली उदार विचारों के व्यक्ति थे उनकी भारतीयों की भावनाओं से व्यापक सहानुभूति थी। फलस्वरूप अंग्रेजों को भारत शीघ्र छोड़ने का निर्णय लेने में सुगमता एवं सरलता हो गई।

विश्व जनमत ने भी अंग्रेजों को भारत को शीघ्र स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए मजबूर कर दिया। जे० एल० मेहता अनूपसिंह जे० जे० सिंह एवं श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित अपने लेखों एवं भाषणों द्वारा अमरीका एवं पश्चिमी यूरोप में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए जनमत तयार कर रहे थे। श्रीमती बेक लुई फिशर लिन एटांग नारमन टामस आदि अमरिकी विद्वान भी भारतीय स्वतन्त्रता के लिए आवाज बुलन्द कर रहे थे। १९४५ ई० में सेनफ्रांसिस्को-सम्मेलन में संयुक्त-राष्ट्र-संघ का चार्टर स्वीकृत किया गया। इस चार्टर में मौलिक अधिकारों आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति की बातें कही गयी थी। ब्रिटेन द्वारा इस चार्टर पर हस्ताक्षर किए गए थे अतः उसके लिए चार्टर में निहित सिद्धान्तों व चार्टर के आदर्शों को मूर्तरूप देने के लिए भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करना ही चार्टर का अनुपालन करना था। अन्त में ब्रिटेन ने संयुक्त-राष्ट्र चार्टर के प्रति निष्ठा व्यक्त करने एवं भारतीयों की सद्भावना बनाये रखने के उद्देश्य से भारत को मुक्ति प्रदान करना ही उचित समझा।

अंग्रेजों का राष्ट्रमण्डल के सम्बन्ध में परिवर्तित दृष्टिकोण भी भारत को शीघ्र स्वतन्त्रता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ। अंग्रेजों को यह अनुभव हो गया था कि साम्राज्यवाद के दिन अब समाप्त हो गए हैं। अतः उन्होंने साम्राज्यवाद समाप्त होने दो राष्ट्रमण्डल जीवित रहे का नारा बुलन्द किया। राष्ट्रमण्डल में अंग्रेज-जाति के अतिरिक्त अन्य जाति वाले राष्ट्रों को सम्मिलित कर ब्रिटेन की प्रतिष्ठा बचाने की लालसा ही इस भावना के मूल में कार्य कर रही थी अंग्रेजों ने भारत को स्वतन्त्रता प्रदान कर उसकी सहानुभूति अर्जित करने का प्रयास किया ताकि उनके स्वप्नों का नया राष्ट्रमण्डल जीवित रह सके।

(६) राष्ट्रीय आन्दोलन की विशेषताएं

भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति का यह इतिहास अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण है। हम यहां संक्षेप में उन विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास काफी लम्बा है। संसार के किसी भी अन्य देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए इतने लम्बे समय तक संघर्ष नहीं चला जितना भारतवर्ष में। यद्यपि स्वतन्त्रता संघर्ष का सूत्रपात १८५७ ई. के स्वतन्त्रता-संग्राम से हुआ जिसका स्पष्ट रूप १८८५ ई. में कांग्रेस की स्थापना से सामने आया तथापि यह एक तथ्य है कि भारतवासी मुसलमानों के शासन-काल से ही निरन्तर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहे हैं। इस प्रकार १५ अगस्त १९४७ ई. को समाप्त होने वाले संघर्ष की अवधि नब्बे वर्ष (१८५७-१९४७) न होकर ६ वर्ष से भी अधिक की है।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रारम्भ से ही संघर्ष की दो धाराएं एक दूसरे से पृथक किन्तु एक दूसरे के समानान्तर उत्पन्न हुईं। उनमें प्रथम धारा वैधानिक आन्दोलन या अहिंसात्मक आन्दोलन की धारा थी जिसका स्थूलरूप ग्वालिया टैंक के मैदान में इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के रूप में प्रकट हुआ एवं जिसको आगे चलकर म० गांधी ने प्रवाह प्रदान किया। द्वितीय धारा शक्ति या हिंसात्मक संघर्ष की थी। इस धारा की गंगोत्री १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम से बनी तथा पूना में जहां के वातावरण में शिवाजी बाजीराव पेशवा और नाना फडनवीस के नाम व काम की याद हरी थी प्रवाह प्राप्त किया तथा आगे चलकर वीर सावरकर भगतसिंह चन्द्रशेखर आजाद एवं सुभाष बोस ने इसको तेज गति प्रदान की। प्रथम धारा ने अहिंसात्मक सत्याग्रह के शान्त प्रवाह का तथा दूसरी धारा ने खून खराबी तोड़फोड़ बम विस्फोट तथा सशस्त्र संघर्ष के उग्र प्रवाह का आश्रय लिया। यह बात सत्य है कि भारत की स्वतन्त्रता मुख्यतः शान्तिपूर्ण साधना का ही परिणाम थी तथापि इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्वतन्त्रता प्राप्ति में उग्र उपायों का भी अद्भुत योग रहा है। हिंसात्मक अहिंसात्मक साधनों में विश्वास करने वाले सभी देशभक्त अपने अपने ढंग से भारत की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील थे एवं उनके यह प्रयत्न उनके जाने या अनजाने में अप्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के पूरक बन गए और स्वतन्त्रता की धारा को इतना प्रबल प्रवाह प्रदान किया जिसको अंग्रेज अपने साम्राज्य की समस्त बर्बर शक्ति से भी रोकने में असफल रहे।

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास संवैधानिक विकास के इतिहास के साथ भी जुड़ा हुआ है। राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत सन् १८५७ का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम महत्वपूर्ण घटना है जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्ञी ने भारतीय उपनिवेश के शासन कार्य को एक व्यापारिक निकाय के अधिकार से हटा कर स्वयं ग्रहण कर लिया। प्रारम्भ में राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य शासन कार्य

म भारतीयो के लिए स्थान प्राप्त करना था अत भारतीयो को सतुष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कई भारतीय अधिनियम पारित किए यथा १८६२ १८९२ १९०९ ई के भारतीय परिषद् अधिनियम। शनै शनै भारतीयो द्वारा शासन म उत्तर दायित्वपूर्ण भाग लेने तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति की माग बढती गई। इसके परिणामस्वरूप १९१९ ई तथा १९३५ ई के भारत अधिनियम पारित हुए। इन अधिनियमो ने भारत म उत्तरदायी प्रजातान्त्रिक एव ससदीय शासन की नीव डाली। १९४२ ई के भारत छोडो आदोलन आजाद हिन्द फौज के वीरतापूर्ण काय नौसैनिक विद्रोह आदि न स्वतन्त्रता की प्राप्ति करवायी। स्वतन्त्रता आदोलन के दौरान ही सन् १९१६ का काग्रस मुस्लिमलीग समझौता नेहरू प्रतिवेदन एव जिन्ना की चौदह शर्तें चक्रवर्ती राजगोपालाचारी योजना आदि साम्प्रदायिक समस्या को हल कर सवधानिक सुधार एव स्वतन्त्रता सघष को गति देने के प्रयास थे।

भारत म राष्ट्रीय आदोलन का स्वरूप केवल राजनतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक एव आर्थिक भी था। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने सामाजिक कुरीतियो और आर्थिक कमजोरियो के विरुद्ध भी अभियान चलाया। उन्होंने राजनतिक कायक्रम को सामाजिक एव आर्थिक कायक्रम के साथ सदव जोडे रखा। फलस्वरूप आर्थिक एव सामाजिक सुधार भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के निरन्तर प्रमुख अग रहे।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति और जनता की राजनतिक चेतना के विकास म पश्चिमी सभ्यता की भी बहुत बडी देन है। आदोलन के नेताओ पर अग्रेजी शिक्षा का प्रभूत प्रभाव था। उन्होंने देश की भौतिक एव राजनतिक प्रगति का सचालन यूरोपीय ढग पर किया। दादाभाई नौरोजी के मतानुसार राष्ट्रीय-आदोलन पश्चिमी विचारो के सम्पक का स्वाभाविक परिणाम था और काग्रस शिक्षित देशभक्तो की एक सस्था थी। भारतीय राष्ट्रीयता को फ्रास की क्रान्ति के आदशवाद और १९ वी सदी म हुए स्वशासन के राष्ट्रीय सघर्षों से प्रेरणा मिली थी। इसके मुख्य सिद्धान्त थे राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय प्रगति। यह सम्पूर्ण राष्ट्र के राजनतिक उत्थान के लिए काय करती थी। इसे किसी वग या सम्प्रदाय के स्वाथ और हित स कोई सम्बन्ध नही था। इसका ध्येय समस्त भारतीय जनता का हित था। काग्रस मानती थी कि भारत की जनता स्थानीय भाषा रीति-रिवाज और विचारधाराओ आदि की विभिन्नताओ के रहते हुए भी एक वृहत्-परिवार है। उसका उद्देश्य जनवादी शासन की स्थापना करना था जोकि आधुनिक सभ्य जगत की महान् देन है।

भारतीय राष्ट्रीय आदोलन पुनरुत्थानवादी आन्दोलन भी था। ऐनीबिसेन्ट का यह कथन कि भारतीय राष्ट्रीयता कोई हाल ही का पौधा नही है वरन् जगत का सत्य है जिसके पीछे हजारो वर्षों की स्मृतिया है पूर्ण-सत्य है। भारतीय राष्ट्रीयता को भारत के गौरवपूर्ण अतीत स प्रेरणा मिली थी एव यह पुनरुत्थान की चेतना म पूर्णत ओतप्रोत थी। १९ वी सदी के धार्मिक सुधार आदोलन ने

राष्ट्र को अपनी प्राचीन महानता के प्रति जागरूक किया और भविष्य की सम्भावनाओं के लिए उनका मार्ग प्रशस्त किया। धार्मिक आन्दोलन के पुनरुत्थानवादी विचारों ने देश की राजनैतिक चेतना को बढ़ाने और जनता में आत्मविश्वास जगाने में महत्वपूर्ण भाग अदा किया। पुनरुत्थानवादी आन्दोलन ने विदेशी शासन से उत्पन्न दासता की मनोवृत्ति पर गहरी चोट की थी और पश्चिम की थोथी चकाचौंध पैदा करने वाली चमक दमक का तिरस्कार किया था। इसने जनता में भारतीय नैतिक आदर्शों के प्रति श्रद्धाभाव पैदा किया और यूरोपीय सभ्यता और मान्यता के विरुद्ध संघर्ष करने का बल प्रदान किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनैतिक व आर्थिक स्वरूप पर पश्चिम के भौतिकतावादी विचारों का प्रभाव पड़ा था किन्तु सांस्कृतिक स्वरूप पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता की छाप थी।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव देश की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रहा विश्व के अन्य राष्ट्रों को भी इसने प्रभावित किया। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम से प्रेरणा लेकर बर्मा इन्डोनेशिया एवं अफ्रीका के देशों ने साम्राज्यवादी देशों के विरुद्ध स्वतन्त्रता-संघर्ष प्रारम्भ किये। स्वतन्त्रता आन्दोलन पर इसके कर्णधार गोखले तिलक गांधी सुभाष जवाहरलाल नेहरू आदि के व्यक्तित्व का भी व्यापक प्रभाव पड़ा तथा विश्व के पराधीन पर राष्ट्रों में भी स्वतन्त्रता की आकांक्षा पैदा हुई।

२७

महात्मा गांधी

प्रवेश

सत्य के प्रति अटल श्रद्धावान मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म २ अक्तूबर १८६९ ई० को राजकोट में हुआ था। गांधी के पिता राजकोट के दीवान थे व माता धार्मिक विचारों से ओत प्रोत एक सुशीला महिला थीं। बचपन से ही घर में गांधी को विशुद्ध भारतीय संस्कार विरासत में मिले थे। सन् १८८७ में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वकालत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए गांधीजी विलायत भेजे गए थे। विलायत जाने के पूर्व उन्होंने अपनी माता के सम्मुख मांस मदिरा और नारी का स्पर्श न करने की प्रतिज्ञा की। सन् १८९१ में गांधीजी बैरिस्टर बनकर लन्दन से भारत लौटे। काठियावाड़ में वकालत प्रारम्भ करने के थोड़े ही दिनों पश्चात् उन्हें दक्षिणी अफ्रीका जाना पड़ा।

दक्षिणी अफ्रीका में गोरांग महाप्रभुओं द्वारा काले भारतीयों पर हो रहे घोर अत्याचार के विरुद्ध गांधी ने सम्पूर्ण शक्ति के साथ आवाज उठाई। गांधी की शक्ति आत्मा और सच्चाई की शक्ति थी। दक्षिण अफ्रीका की अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ा। यहां पर सर्वप्रथम गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन का सफलतापूर्वक परीक्षण किया। बाद में यही आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का प्रतीक बन गया।

सन् १९१४ में एक सफल आन्दोलनकारी और राजनीतिज्ञ के रूप में गांधी भारत पहुंचे। भारत आते ही अहमदाबाद के पास साबरमती में सत्याग्रह आश्रम की व्यवस्था की तथा देश की परिस्थितियों का अध्ययन करने में लग गये। प्रारम्भ में गांधी की अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति थी। तदर्थ प्रथम विश्वयुद्ध-काल में भारत में घूम २ कर उन्होंने भारतीयों को अंग्रेजों की हर सम्भव दृष्टि से मदद करने को कहा परन्तु युद्ध के पश्चात् कुछ घटनाओं ने अंग्रेजों के प्रति उनकी सारी आस्था को समाप्त कर दिया। अंग्रेजों ने १९१८ ई० में रौलट अधिनियम बनाया। गांधी ने इसका घोर विरोध किया। रौलट अधिनियम के कारण जलियांवाला-बाग में नृशंस हत्याकाण्ड हुआ। निर्दोष भारतीय बालकों युवकों और वृद्धों पर बिना पूर्व सूचना के गोली वर्षा अंग्रेजों के गोरे चेहरों पर एक बदनुमा दाग बन गई। सम्पूर्ण देश में विरोध की अग्नि फैल गई।

अप्रैल १९२१ ई० में खिलाफत आंदोलन के साथ ही महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजा। गांधीजी द्वारा फूंके हुए इस शंखनाद ने देश के नगर-नगर और गांव-गांव में राष्ट्रीय जागरण की लहर दौड़ा दी। अंग्रेजों ने इस आंदोलन को मूर्खतापूर्ण कार्यों में सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण कार्य की उपाधि दी किन्तु शीघ्र ही उन्हें मानना पड़ा कि अहिंसा का अस्त्र बन्दूकों और तलवारों से अधिक प्रभावशाली होता है। चौरीचौरा की दुर्घटना के कारण उस आन्दोलन को इस स्थिति में गांधीजी ने बन्द करने की घोषणा करदी जबकि वह अपने चरमोत्कर्ष पर था। जब सफलता भारतीय जनता के चरण चूमने को तत्पर था तब गांधीजी ने अपने व्यक्तिगत सिद्धान्तों के पीछे भारतीयों के थाल पाट हटा लिये।

सन् १९३० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया जिसमें सम्पूर्ण भारतीय जनता ने सहयोग देकर इसको व्यापक रूप दिया लाखों नर-नारी जान जाने को तत्पर हो गए, किन्तु गांधी-इरविन समझौते के कारण इसे भी स्थगित कर दिया गया। गांधीजी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में जाने को तैयार हो गये।

गोलमेज सम्मेलन की असफलता के बाद गांधीजी द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक समाज सुधार आदि का कार्य करते रहे व भारतीयों के जीवन को देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत करते रहे। १९४२ ई० में गांधीजी ने अंग्रेजो ! भारत छोड़ो आन्दोलन चलाया। सन् १९४७ में भारत का विभाजन और स्वतन्त्रता दोनों घटनाएं एक साथ हुईं। प्रारम्भ में गांधीजी ने विभाजन का विरोध किया। परन्तु परिस्थितियों के आगे उनकी एक न चली। अपने जीवन में अपने सिद्धांतों और आदर्शों की यथार्थ धारा हीन बाली हुआ से वे खिन्न हुआ हुए।

स्वाधीनता के पश्चात् दोनों देशों में साम्प्रदायिकता का दावानल भड़क उठा। धर्म द्वेष और घृणा का आधार बन गया। धर्म के नाम पर खून की होली खेली गई। गांधीजी फिर से इस साम्प्रदायिकता की भयंकर आग को शांत करने में लग गए। जनवरी १९४८ ई० को एक धर्मान्ध ने उन्हें गोली मार दी। "राम राम" कहते भारतीय स्वतन्त्रय संग्राम का अमर सेनानी चल बसा।

गांधीजी का व्यक्तित्व

वास्तव में देखा जाए तो गांधीजी का सारा जीवन त्याग और तपस्या की कहानी है। भारत का वह कृशकाय अर्द्धनग्न संत सत्य और अहिंसा के परम अस्त्र लेकर जीवन पर्यन्त ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ों पर प्रहार करता रहा। उसने भौतिकवाद को और अग्रसर संसार को एक नवीन संदेश दिया। अहिंसा की विलक्षण शक्ति गांधीजी के हाथ में आकर एक बार फिर चमक उठी। सारा भारत उनके चरणों पर न्यौछावर था। उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहकर सम्बोधित किया गया। भारतीय स्वतन्त्रता जन जागरण का परिणाम है। निश्चय ही भारतीय जनता में जागृति का शंखनाद फूंकने का श्रेय गांधीजी को है। वह महात्मा गांधी ही थे जिन्होंने शताब्दियों से पराधीन भारतीयों के जन-मानस में स्वतन्त्रता का ज्वार उत्पन्न करने का दायित्व अपने कंधों पर लिया था।

इससे भी बड़ी विशेषता गांधीजी के जीवन की सादगी और सरलता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् और पहले भी गांधीजी को पद लिप्सा ने कभी नहीं सताया और राजसी ठाट बाट न कभी नहीं लुभाया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व उन्होंने बड़े २ नेताओं को जनता का सेवक बनाया।

उनके विचारों में भी लोग उनके व्यक्तित्व की ओर आकर्षित हुए। पता नहीं उनमें क्या जादुई शक्ति थी कि परस्पर विरोधी विचारधारा के लोग भी उनके चरणों में खिंचे चले आते थे। एक ओर सेठ बिड़ला और जमनालाल बजाज उनके भक्त थे तो दूसरी ओर आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश नारायण जैसे उनके अनुयायी। सरदार पटेल जैसे कर्मयोगी पंडित नेहरू जैसे क्रान्तिकारी डा राजेन्द्र प्रसाद जैसे साधु पुरुष राजाजी जैसे कूटनीतिज्ञ मौलाना आजाद जैसे विद्वान विनोबा जैसे धर्म धुरंधर तथा मोतीलाल नेहरू जैसे नास्तिक सभी बिना तर्क वितर्क के उनकी आज्ञा के सामने सिर झुका देते थे। आखिर क्या ? इसलिए कि उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन को अपने आदर्श के अनुसार ढाला था। मरते दम तक उन्होंने राजनीति को पवित्रता के वस्त्र पहनाने का प्रयत्न किया।

गांधीजी पर प्रभाव

(१) गांधीजी पर सर्वाधिक प्रभाव भगवद्गीता का पड़ा। गीता के कर्म प्रधान दर्शन की छाप उनके विचारों पर है। इसीलिए राज्य का हिंसा पर आधारित देखकर भी टाल्सटाय की भांति सन्यास लेने की अपेक्षा वे कर्म क्षेत्र में निडर योद्धा की भांति डटे रहे। उनके शब्दों में मेरा जीवन बाह्य दुर्घटनाओं से पूर्ण है। इन पर भी इन दुर्घटनाओं ने मुझ पर कोई प्रभाव नहीं डाला तो इसका श्रेय भगवद्गीता की शिक्षाओं को है।

(२) भारत के प्राचीन ऋषियों एवं आध्यात्मिक पुरुषों राम बुद्ध महावीर स्वामी आदि का इन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। रामराज्य की कल्पना और अहिंसा का प्रभाव इन्हीं का परिणाम है।

( ) गांधीजी पर महात्मा टाल्सटाय का रस्किन एवं थोरो का भी विशेष प्रभाव पड़ा था।

(४) इनके अतिरिक्त जिन राजनीतिक परिस्थितियों में उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी उससे भी वे प्रभावित हुए थे।

गांधीवाद क्या है

गांधीवाद क्या है ? इससे पूर्व यह बताना आवश्यक है कि गांधीवाद एक वाद भी है या नहीं। क्या गांधीवाद को एक वाद कहा जा सकता है ? कुछ लोग कहते हैं नहीं। उनके अनुसार गांधीजी के विचार वाद की सीमाओं में जकड़े नहीं जा सकते। स्वयं गांधीजी ने कहा था गांधीवाद नाम की कोई चीज नहीं है और न ही मैं अपने पीछे ऐसा कोई सम्प्रदाय छोड़ जाना चाहता हूँ। मैं कदापि यह दावा नहीं करता कि मैंने किन्हीं नए सिद्धान्तों को जन्म दिया है। मैंने तो अपने निजी तरीके से शाश्वत सत्यों को दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं पर लागू

करने का प्रयत्न मात्र किया है। उन्होंने फिर कहा था मुझे संसार को कुछ नया नहीं सिखाना है। सत्य और अहिंसा उतने ही प्राचीन हैं जितने कि ये पहाड़। मैंने तो व्यापक आधार पर सत्य और अहिंसा दोनों क्षेत्रों में अपनी शक्ति भर परीक्षण करने का प्रयत्न किया है। मेरा दर्शन जिसे गांधीवाद नाम दिया जाता है सत्य और अहिंसा में निहित है। आप इसे गांधीवाद के नाम से नहीं पुकारें क्योंकि इसमें कोई वाद तो है ही नहीं। निस्सन्देह गांधीजी ने किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। वे न तो दर्शनशास्त्री थे न ही बड़े उच्च कोटि के विचारक। बिना किसी गहन अध्ययन के केवल अनुभव के आधार पर ही वे मानव स्वभाव की गहराइयों तक पहुँच सके थे। गांधीजी ने अपने विचारों को क्रमबद्ध करने के लिए किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की। प्लेटो के समान कल्पना के पर लगाकर उन्होंने राम राज्य के रूप में स्वर्ग को धरती पर उतारना चाहा था क्या इसी कारण से गांधीजी के विचारों को गांधीवाद नहीं कहा जा सकता।

यह सत्य है कि उन्होंने प्राचीन विचारों को अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है उनके लेखों में यत्रतत्र मौलिक विचार बिखरे पड़े हैं लेकिन किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की। अब इन्हें व्यवस्थित कर वर्तमान स्वरूप दिए जाने का प्रयत्न जारी है। गांधीजी के विचार केवल धर्म समाज व राज्य तक ही सीमित नहीं हैं अपितु जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनके विचार स्वयं रूप से मौजूद हैं। सरलतापूर्ण जीवन पद्धति के रूप में उनके विचार पूर्ण हैं स्पष्ट हैं मन और बुद्धि को स्पर्श करने वाले हैं अतः वे एक वाद हैं। इसलिए गांधी इरविन समझौते के बाद सम्पन्न हुए कराची अधिवेशन में गांधी ने कहा कि गांधी मर सकता है पर गांधीवाद जीवित रहेगा।

अतः यह गांधीवाद क्या है? यदि इसका उत्तर एक पंक्ति में दिया जा सकता हो तो इस प्रकार है- सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों का राजनीति में प्रयोग ही गांधीवाद है सम्पूर्ण गांधीवाद की भावना सत्य अहिंसा सत्याग्रह तथा साधनों की पवित्रता के आधार पर व्यापक रूप में निर्मित है। गांधी अन्य राजनीतिक विचारकों के समान दार्शनिक नहीं थे वे कर्मयोगी थे और उन्होंने जो कुछ लिखा वह केवल सामने आई परिस्थितियों का स्पष्टीकरण करने के लिए। इसलिए उनका जीवन सत्य के साथ प्रयोगों की कथा है।

धर्म और राजनीति

मैकियावली के पश्चात् तो धर्म को राजनीति से पृथक रखना राजदर्शन के क्षेत्र में तार्किक समझा जाने लगा। न केवल धर्म को राजनीति से पृथक किया गया बल्कि इसे अफीम की गोली की तरह से सेवन-योग्य और घृणित समझा जाने लगा। ऐसे समय में गांधीजी ने घोषणा की कि धर्म के बिना राजनीति पाप है। बिना धर्म के राजनीति भ्रष्ट हो जाएगी। अतः धर्म एवं राजनीति को अलग नहीं किया जा सकता। राजनीति अपने आप में आज के युग में पवित्र नहीं है एक आवश्यक बुराई है। इसी कारण गांधीजी ने राजनीति में प्रवेश कर कहा यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो केवल इसलिए कि राजनीति हमें एक सांप की भांति

चारों ओर से घेरे हुए है। मैं इस साँप से लड़ना चाहता हूं। मैं राजनीति में धर्म प्रवेश चाहता हूं धर्म के बिना राजनीति एक मृत्युजाल है क्योंकि वह आत्मा को मारती है।

गांधीजी का धर्म से तात्पर्य वह नहीं था जो हम समझते हैं। डा॰ राधा कृष्णन् के शब्दों में धर्म तात्त्विक सिद्धान्तों का समूह नहीं है यह एक जीवन पद्धति है गांधीजी के लिए धर्म सत्य और अहिंसा पर आधारित एक नैतिक पद्धति है जो मनुष्य को सदा उसके कर्त्तव्यों की ओर प्रेरित करती है। गांधीजी का धर्म संकुचित न होकर व्यापक था उसे विश्व धर्म कहा जा सकता है। सभी धर्म उनके लिए मान्य थे। कोई धर्म किसी से ऊंचा नहीं है। गांधीजी के अनुसार सब धर्म एक वृक्ष की विभिन्न शाखाएं हैं एक लक्ष्य के विभिन्न साधन हैं तथा एक ही बगिया के विभिन्न सुन्दर पुष्प हैं।

वे ईश्वर भक्त थे तथा सम्पूर्ण जगत को ईश्वरीय रचना मानते थे। संसार की सभी गतिविधियों का संचालन करने वाली शक्ति का नाम ईश्वर है। गांधीजी का कहना था कि ईश्वर सत्य है इसलिए उसकी प्राप्ति जीवन का परम ध्येय है। धर्म की तरह गांधीजी की ईश्वर की व्याख्या भी उदार है। गांधी का ईश्वर केवल क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर सोने वाला विष्णु नहीं है— वह तो एक वर्णनातीत कोई चीज है जिसे हम महसूस तो कर सकते हैं किन्तु जान नहीं सकते। मेरे लिए ईश्वर सत्य तथा प्रेम है। ईश्वर आचार शास्त्र तथा नीति है ईश्वर निर्भीक प्रकाश तथा जीवन का स्रोत है। ईश्वर प्रश्न करता है। वह नास्तिक की नास्तिकता भी है। वह शुद्धतम मूल सत्व है। वह केवल उसके लिए है जो विश्वास रखते हैं।

सत्य सत्याग्रह और अहिंसा

दैनिक जीवन में सत्य सापेक्ष है। परन्तु सापेक्ष सत्य के माध्यम से हम एक निरपेक्ष सत्य पर पहुंच सकते हैं। यह निरपेक्ष सत्य ही जीवन का चरम लक्ष्य है। इसी की प्राप्ति मनुष्य का परम धर्म है। यही ईश्वर है। उपरोक्त तथ्य केवल भावात्मक सत्य नहीं वरन् इनकी प्राप्ति साधारण जीवन में सम्भव है। इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि सब मनुष्यों का एक साथ पूर्ण उत्थान अर्थात् सर्वोदय परम लक्ष्य है। यह एक निरपेक्ष सत्य है। गांधीजी अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित सिद्धान्त के विरोधी थे। उनके अनुसार यह एक हृदयहीन सिद्धान्त है जिसने मानवता को बहुत नुकसान पहुंचाया है। केवल एक ही वास्तविक सभ्य और मानव सिद्धान्त हो सकता है और वह है सभी व्यक्तियों का अधिकतम हित और इस पूर्ण आत्म बलिदान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सर्वोदय जीवन का अंतिम लक्ष्य है जो कई पड़ावों के बाद प्राप्त होता है जैसे गरीबों और दलितों का शोषण बन्द हो सभी देश स्वतन्त्र हों संसार में आर्थिक व सामाजिक समानता स्थापित हो आदि। सापेक्ष सत्य के माध्यम से निरपेक्ष सत्य या चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

यदि सत्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य है तो उस लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग है सत्याग्रह। सत्य की प्राप्ति के लिए इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति सत्याग्रही है। सत्याग्रही के पास एक ही अस्त्र है वह है अहिंसा का अस्त्र। अतः सत्य सत्याग्रह और अहिंसा का अटूट सम्बन्ध है। गांधीजी के सम्पूर्ण विचार अहिंसा पर केन्द्रित हैं।

सत्याग्रह का अर्थ है सत्य का आग्रह अर्थात् सत्य बल। यह एक आध्यात्मिक बल है। सत्य तक पहुँचने के लिए सत्य की शक्ति का पूरा प्रयोग ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह में सदा आत्मकष्ट की भावना निहित रहती है। प्रारम्भ में गांधीजी इसे स्वीकारात्मक प्रतिरोध कहते थे। बाद में उनका मत था कि यह शब्द इसकी दृष्टि से अपूर्ण है। स्वीकारात्मक प्रतिरोध तथा सत्याग्रह से बहुत कुछ भिन्न है। सत्याग्रह एक शक्तिशाली व्यक्ति का अस्त्र है। गांधीजी के शब्दों में वे व्यक्ति जो दुर्बल हैं इस अस्त्र का प्रयोग नहीं कर सकते। सत्याग्रह एक पारिवारिक सत्य का समूहीकरण है। सत्याग्रह प्रेम युद्ध है। इसके द्वारा आत्म कष्ट सहन करके विरोधी को उसकी गलतियों का आभास कराना होता है। हृदय-परिवर्तन इसका मुख्य आधार है। सत्याग्रही कभी पराजित नहीं होता। विरोध करने पर सत्याग्रह चमक उठता है। सत्याग्रही को अत्याचारी के हृदय परिवर्तन के लिए मृत्यु के मूल्य तक लड़ना चाहिए। सत्य की विजय होती है अतः वह जीतेगा। सत्याग्रह का मार्ग कठिन और लम्बा है परन्तु जीवन में सही मंजिल तक पहुँचने के लिए लघु मार्ग नहीं अपनाए जाते। संसार का हर आदर्श और महान कार्य कठिन प्रतीत होता है। सत्याग्रही में अपने सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण विश्वास व आत्म बल का तनिक भी अभाव नहीं होना चाहिए। ग्रीस के अत्याचारी शासन का विरोध करते हुए महर्षि सुकरात का विषपान कट्टर पंथियों को उनकी गलतियों का आभास कराने के लिए ईसा का आत्म बलिदान पूर्ण सात्विक शक्ति के साथ प्रह्लाद द्वारा पिता के अत्याचारों का विरोध सत्याग्रह के कतिपय सुन्दर उदाहरण हैं। असहयोग सविनय अवज्ञा हिजरत उपवास हड़ताल आदि सत्याग्रह के विभिन्न रूप हैं। लेकिन गांधी का कहना है कि अनुचित मांगों को पूरा करवाने के लिए इन उपायों का सहारा लेना सत्याग्रह नहीं कहलाएगा।

अहिंसा[1]

अहिंसा के बिना सर्वोच्च सत्य की सिद्धि सम्भव नहीं है। हिंसा असत्य है क्योंकि वह जीवन की एकता और पवित्रता के विरुद्ध है। सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किसी भी व्यक्ति को शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट पहुंचाना हिंसा है।

गांधीजी के अनुसार अहिंसा तीन प्रकार की होती है—१ वीर की अहिंसा (इसका प्रयोग वीर व्यक्ति ही कर सकते हैं इसका परिणाम पूर्ण विजय है।) २ दुर्बल व्यक्ति की अहिंसा और ३ कायर की अहिंसा (कायर व्यक्ति को

अहिंसा के मार्ग पर चलना का अधिकार नहीं है। अहिंसा एक अमोघ अस्त्र है। उसका सीधा प्रहार हृदय पर होता है। यह शत्रु को प्रेम द्वारा जीतने का मार्ग है। अहिंसा के समक्ष संसार की बड़ी से बड़ी ताकत झुक जाती है। अहिंसा बाह्य नहीं आन्तरिक शक्ति है। अहिंसा के लिए मानसिक पवित्रता आवश्यक है। गांधी स्वीकार करते हैं कि पूर्ण अहिंसा सम्भव नहीं है। उनका कहना है कि मनुष्य स्वयं नहीं—अतः वह पूर्ण नहीं है या पूर्णता को प्राप्त भी नहीं कर सकता। अतः गांधी का कहना है—अनिवार्य हिंसा को हम अपवाद मान सकते हैं किन्तु इसके अलावा हम पूर्ण अहिंसक रहना चाहिए।

साध्य तथा साधन

गांधीजी के नीति विषयक सिद्धान्तों में अन्य महत्त्वपूर्ण बात उनके साध्य साधन के सिद्धान्त के बारे में है। उनके मतानुसार किसी साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन भी उतने ही शुद्ध होने चाहिए जितने कि साध्य। हेय साधनों से उच्च साध्य की प्राप्ति को वे अनुचित समझते थे। साधनों के प्रति इस पवित्रता के विचार की दृढ़ अभिव्यक्ति उनके इस कथन में मिलती है कि "यदि हिंसा, धोखे अथवा असत्य के द्वारा मुझे देश की आजादी मिले तो मैं उसे स्वीकार नहीं करूंगा।

राज्य एवं समाज सम्बन्धी धारणा

गांधीजी राज्य विरोधी थे। मार्क्सवादियों और अराजकतावादियों के समान वे एक राज्य विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। किन्तु गांधीजी का विरोध नैतिक कारणों पर आधारित नहीं था। गांधीजी द्वारा राज्य का विरोध करने के निम्न कारण हैं—

(१) राज्य को वे हिंसा पर आधारित मानते हैं। राज्य सामूहिक रूप से हिंसा करता है।

(२) गांधीजी महान् व्यक्तिवादी थे। उनके अनुसार सत्य की प्राप्ति और व्यक्तित्व का पूर्ण विकास ही जीवन का ध्येय है। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्रता आवश्यक है। लेकिन राज्य विभिन्न रूपों में स्वतन्त्रता का हनन करता है।

(३) राज्य एक अनावश्यक संस्था है।

उपर्युक्त दृष्टि से गांधीजी राज्य के विरोधी थे परन्तु मार्क्स की भांति गांधीजी ने राज्य विहीन समाज का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत नहीं किया। रूसो की भांति गांधीजी भी आधुनिक वैज्ञानिक मशीनों, कल-कारखानों और भौतिक प्रगति को व्यक्तित्व के विकास में बाधक मानते थे। उनके मत में मशीन आधुनिक सभ्यता का प्रमुख प्रतीक है। यह एक बहुत बड़ा पाप है। मशीनों के कारण ही यूरोप विनाश के मुख पर खड़ा है। ... मशीनें सर्पों के बिल के समान हैं जिसमें एक से लेकर सैकड़ों सांप होते हैं। ... मेरी दृष्टि में मशीनों

॥ एक भी गच्छा बात नहीं है। उनके आदर्श समाज में मशीनों का अभाव होगा। सम्पूर्ण देश छोटी २ इकाइयों में विभक्त होगा। ये इकाइयां स्वायत शासी होंगी अतः मशीन की आवश्यकता ही नहीं होगी।

समाज के सभी व्यक्ति पूर्णतया अहिंसक होंगे। उनकी सभी आवश्यकताएं पूरी होंगी अतः अपराध नहीं होंगे। ऐसे समाज में शासक सभी लोग होंगे। वे अपने ऊपर इस प्रकार शासन करेंगे कि वे दूसरों के मार्ग में बाधक नहीं बनें। इस प्रकार गांधी के विचार में समाज अहिंसक एवं राज्य विहीन होगा जिसमें नैतिकता का महत्वपूर्ण स्थान होगा।

राज्य विहीन समाज की आलोचना

गांधीजी का राज्य विहीन समाज आदर्श की दृष्टि से उत्तम वस्तु है किन्तु यथार्थ की दृष्टि से कोरी कल्पना है। ऐसे समाज की रचना या तो स्वर्ग में सम्भव है या भावी विश्वयुद्ध के बाद जबकि विज्ञान नष्ट हो जायगा। इस समय में कौन मशीनों का बहिष्कार करने को तयार है? गांधीजी के आदर्श समाज में निम्नांकित दोष हैं —

(१) गांधीजी की राज्य सम्बन्धी धारणा त्रुटिपूर्ण है। राज्य शक्ति हिंसा पर आधारित नहीं अपितु मानव ही उसका प्रेरणा स्रोत है। राज्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता में बाधक भी नहीं है।

(२) गांधीजी सभी व्यक्तियों को अहिंसक देवता बनाना चाहते थे जो असम्भव है क्योंकि बुराइयां मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में निहित हैं।

(३) मशीनों का अभाव आज के वैज्ञानिक युग में समाज को पंगु बना देगा।

(४) मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियां भौतिकवाद की ओर झुकी हैं व्यक्ति फैशन आदि को किसी न किसी रूप में अपनाता ही है और फैशन विलास की देन है अतः ऐसी स्थिति में गांधीजी का आदर्श समाज असंभव है।

आदर्श राज्य अहिंसात्मक राज्य

लेकिन गांधीजी अराजकतावादियों की तरह राज्य को पूर्णतः नष्ट नहीं करना चाहते थे। वे निरंकुश राज्य के विरुद्ध थे वे अपरिमित प्रभुसत्ता में विश्वास नहीं करते थे। वे आदर्श राज्य में विश्वास करते थे जिसमें प्रभुसत्ता जनता में निवास करती है एवं जिसका आधार नैतिकता है। वास्तव में गांधीजी का आदर्श राज्य अहिंसक प्रजातान्त्रिक राज्य है जहां सामाजिक जीवन स्वतः नियन्त्रित होता है। प्रजातन्त्र का स्वरूप मतों की संख्या से निर्धारित न होकर मनुष्य में सामाजिक सेवा एवं अहिंसा की भावना से निर्धारित होता है। जहाँ राज्य का कार्यक्षेत्र सीमित हो वही राज्य प्रजातन्त्रात्मक है। इस प्रकार के आदर्श राज्य को गांधीजी ने रामराज्य के नाम से सम्बोधित किया है। गांधीजी के आदर्श राज्य के स्तम्भ निम्न हैं —

(१) विकेन्द्रीकरण

गांधीजी [redacted] अनुसार शोषण का प्रमुख कारण कुछ व्यक्तियों में शक्ति का केन्द्रीकरण होना है अतः शोषण को समाप्त करने के लिए और सच्चे प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए उनका सुझाव था कि *आर्थिक और राजनीतिक दोनों शक्तियों* का विकेन्द्रीकरण करना चाहिए।

(क) राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण

गांधीजी का मत था कि आधुनिक युग [redacted] प्रजातन्त्र के नाम पर सम्पूर्ण शक्ति कुछ व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाती है। वे उसका मनमाना प्रयोग करते हैं। प्रजातन्त्र वह शासन प्रणाली है जिसमें शासन शक्ति सभी व्यक्तियों के हाथ में हो। साथ ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की दृष्टि से भी यह उचित है कि राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जावे।

शक्ति के विकेन्द्रीकरण का अर्थ है पंचायतराज का पुनरुत्थान। गांव का सम्पूर्ण प्रशासन पंचायत के हाथों में होगा। गांव की विधि निर्माण कार्यपालिका तथा न्यायपालिका सम्बन्धी तीनों प्रकार की शक्तियां पंचायतों के पास होंगी। इस प्रकार स्वायत्त शासी गांव की स्थापना के द्वारा गांधीजी राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण चाहते थे।

(ख) आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण

गांधीजी एक बहुत बड़े समाजवादी थे। वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि एक व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए हजारों का शोषण करे। ये मशीन और यन्त्र जो लालच के परिणाम हैं शोषण के माध्यम हैं। आर्थिक शक्तियों का कुछ हाथों में केन्द्रीकरण सम्पूर्ण समाज के लिए घातक है। बड़े उद्योग धन्धों को नष्ट कर दिया जाय या मशीनों का उन्मूलन कर दिया जाय। बड़े उद्योग यदि नहीं रहेंगे तो पूंजीपतियों का भी अभाव हो जाएगा। सारे देश में कुटीर-उद्योगों का ऐसा जाल बिछाया जाए कि जिससे देश की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए। ग्रामोद्योग तथा गृह उद्योग के विकास से बेकारी की समस्या का भी समाधान हो जाएगा।

(२) ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त

गांधीजी व्यक्तिवादी होने के साथ ही साथ समाजवादी भी थे। अतः वे यह मानते थे कि पूंजीपतियों द्वारा जो गरीबों का शोषण होता है वह समाप्त होना चाहिए। इस अत्याचार को समाप्त करने के लिए उन्होंने पश्चिम से निर्यातित समाजवाद को नहीं अपनाया। शोषण को समाप्त करने की उनकी अपनी ही योजना थी। गांधीजी रक्त क्रान्ति द्वारा पूंजीपतियों से व्यापारों और उद्योगों को छीनना नहीं चाहते थे। गांधीजी की मान्यता है कि जिसके पास सम्पत्ति है वह उसी की रहे। वे ही उसकी देखभाल करें और उसके द्वारा अत्यधिक उत्पादन का प्रयत्न करें। परन्तु इस उत्पादन से प्राप्त लाभ का उपयोग स्वयं न करें क्योंकि वे सम्पत्ति के स्वामी नहीं केवल ट्रस्टी हैं संरक्षक हैं। वास्तव में वह सम्पत्ति जनता की है,

उसके द्वारा किया गया उत्पादन जनता का है। सम्पत्ति के स्वामी अपनी दनिक आवश्यकताओं के लिए यथावश्यक धन ले लें और शेष कर्मचारियों को दे दें। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि गांधीजी के अनुसार सम्पत्ति के स्वामी की भी उतनी ही आवश्यकताएं हैं जितनी कि एक कर्मचारी की। क्योंकि वह भी एक मनुष्य है। यहां प्रश्न पैदा होता है कि एक पूंजीपति सम्पत्ति को त्यागकर साधारण जीवन कैसे बिताएगा? क्या वह सार्वजनिक सम्पत्ति स्वीकार कर लेगा? मार्क्स के अनुसार पूंजीपति शोषण की आदत से बाज नहीं आएगा। मकियावली के अनुसार मनुष्य अपने पिता की हत्या को तो भूल सकता है किन्तु अपनी सम्पत्ति के छीनने को नहीं। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि गांधीजी का सम्पूर्ण राजदर्शन नैतिक आधार पर टिका हुआ है। उनका कहना है कि कर्त्तव्य ही सब कुछ है अधिकार नहीं। गांधीजी के राम राज्य में सभी उचित कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। पूंजीपति इससे अछूता नहीं रहेगा। अतः वह भी स्वयं को पूंजी का स्वामी नहीं वरन् ट्रस्टी समझेगा।

यदि वह ऐसा नहीं समझेगा तो गांधीजी का सत्याग्रह अस्त्र उसको विवश कर देगा कि वह सत्य मार्ग पर चले। हड़ताल, अनशन, असहयोग आदि से पूंजीपतियों को झुकना पड़ेगा। गांधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के अनुसार शोषण तो समाप्त हो ही जाता है साथ ही लोगों का जीवन-स्तर भी समान रहता है।

(३) रोटी के योग्य श्रम

गांधीजी के आदर्श राज्य का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त रोटी के योग्य श्रम है। उन्होंने यह सिद्धान्त रूसी विचारक टाल्सटाय तथा रस्किन से लिया था। इस सिद्धान्त की पुष्टि उन्हें गीता और बाइबिल से भी मिली। गांधीजी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन में इतना शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिए जिससे उसके भोजन की आवश्यकता पूरी हो जाए। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कोई भी व्यवसाय करता हो रोटी के लिए श्रम अवश्य करेगा। मानसिक श्रमवालों के लिए भी आवश्यक है कि वे शारीरिक श्रम करें। रोटी के योग्य श्रमसिद्धान्त पर बल देकर गांधीजी ने श्रम की महत्ता निर्धारित की। यह समाजवाद का प्रबल आधार है।

(४) वर्ण-व्यवस्था

गांधीजी भारतीय संस्कृति के पुजारी थे। पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण उन्हें पसंद नहीं था। भारत में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था (समाज के चार वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र) का गांधीजी ने समर्थन किया और बताया कि इन वर्णों को अपने पतृक व्यवसाय करने चाहिए। इन वर्णों में वेतन व आय समान होगी ताकि एक वर्ग से दूसरे वर्ग में परिवर्तन की लालसा न रहे। इसके अलावा गांधीजी ने वर्ण व्यवस्था को जन्मगत नहीं कर्मगत माना है। गीता के अनुसार वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित नहीं कर्म पर आधारित है।

(५) अपरिग्रह

अहिंसात्मक राज्य में कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नहीं रखेगा। किसी भी प्रकार का संग्रह चाहे वह धन संग्रह हो या सामग्री संग्रह अनुचित है।

(६) पुलिस और जेल

गांधीजी मानते थे कि सभी व्यक्ति प्रारम्भ में ही या अहिंसावादी नहीं हो सकते। मानव-स्वभाव का उनका अध्ययन आदर्शवादी कम यथार्थवादी अधिक था। इसलिए आदर्श समाज में पुलिस की आवश्यकता सदा बनी हो सकती है। आदर्श राज्य की पुलिस जनता की वास्तविक सहायक सेना होगी। पुलिस अपने काम में अहिंसा का सहारा लेगी। संसार के सभी देश युद्ध प्रिय नहीं शांति प्रिय होंगे।

(७) अन्य महत्वपूर्ण बातें

गांधीजी के आदर्श राज्य में न्याय-व्यवस्था का स्वरूप ऐसा नहीं होगा जैसा कि आज है। गांधीजी के अनुसार राम राज्य में न्याय ग्राम-पंचायतों द्वारा होगा। इसमें अधिक लंबी चौड़ी फौज की आवश्यकता नहीं होगी।

अहिंसा प्रधान राज्य की आलोचना

१ बड़े बड़े उद्योगों और मशीनों को एक बुराई मानते हैं। मशीनों से समस्याएं अवश्य उत्पन्न हो सकती हैं। उसे दूर करने का उपाय भी है। रोग को ठीक करने के लिए रोगी की हत्या उचित नहीं है।

२ गांधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त कोरा आदर्शवाद पर आधारित है। पूंजीपतियों का हृदय-परिवर्तन असम्भव है। यह बात भूदान आन्दोलन की आंशिक सफलता से स्पष्ट है।

गांधीजी सेना का विरोध करते हैं लेकिन बिना सेना राष्ट्र की सुरक्षा और शांति सेना खतरे में रहती है।

४ गांधीजी का मानव स्वभाव पर अध्ययन भी त्रुटिपूर्ण है। सभी व्यक्तियों को आत्म बलिदान द्वारा उनके दावों से अवगत कराना आज सम्भव नहीं है। लाखों लोगों को मौत के घाट उतारकर भी हिटलर की विजय पिपासा शान्त क्यों नहीं हुई?

५ गांधीजी कहते हैं कि आवश्यकता को कम करो। यदि आवश्यकताएं ही कम हुई तो प्रगति का मार्ग रुक जाएगा क्योंकि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। नवीन उपकरण और साधनों का विरोध प्रगति पर प्रबल प्रहार करना है।

६ गांधीजी की रोटी के योग्य श्रम की धारणा भी आलोचना का विषय है। प्रत्येक व्यक्ति का कृषि फार्मों में काम करना असम्भव है।

७ वर्ण व्यवस्था भी आज के युग में अनुकूल नहीं है।

क्या गांधीजी के आदर्श राज्य को काल्पनिक कहकर उनके सिद्धान्तों को अव्यावहारिक मानकर छोड़ देना उचित है? इन प्रश्नों के उत्तर में कहा जा सकता है कि गांधीवाद की आज जितनी आवश्यकता है उतनी पहले कभी नहीं रही। क्या गांधीजी के सिद्धान्तों को विश्वव्यापी स्तर पर लागू किया जा सकता है? इसका उत्तर देते हुए लार्ड बायर ने लिखा है, "विज्ञान की प्रगति और संहारक अस्त्रों ने तो गांधीवाद के भवन को और अधिक मजबूत बना दिया है।" निःसन्देह गांधीजी द्वारा प्रदत्त आदर्श की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है परन्तु वह असम्भव नहीं। यदि संसार में असत्य है तो सत्य का मार्ग भी है। सत्य का मार्ग दुष्कर होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ है। सुखी और सर्वगुण सम्पन्न जीवन के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना ही गांधीवाद है।

गांधीवाद और मार्क्सवाद

कुछ व्यक्तियों का कहना है कि हिंसा से मुक्त मार्क्सवाद ही गांधीवाद है। गांधीजी ने १३ फरवरी १९३७ के हरिजन में स्वयं लिखा है, "रशियन साम्यवाद जो कि जनता पर थोपा गया है भारत के लिए विपरीत होगा। मैं अहिंसात्मक साम्यवाद में विश्वास रखता हूँ।" क्या इसका अर्थ यह हुआ कि गांधीवाद और अहिंसात्मक साम्यवाद बराबर है? वास्तव में दोनों में कुछ समानताएं अवश्य हैं किन्तु उनके आधार पर दोनों को एक ही धरातल पर नहीं रखा जा सकता।

समानताएं

१ दोनों ही राज्य को बुराई मानकर उसे समाप्त करके एक राज्य विहीन वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

२ मार्क्स साम्यवाद की अवस्था के पूर्व समाजवाद व गांधीजी अन्तिम अवस्था के रूप में अहिंसा प्रधान राज्य को आवश्यक समझते हैं। ये प्रारम्भिक चरण हैं।

३ दोनों ने श्रम को महत्ता दी है।

विभिन्नताएं

१ गांधीजी का आधार आध्यात्मवाद है जबकि मार्क्स का भौतिकवाद। दोनों की स्थिति उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव के समान है।

२ गांधीजी साधन पर उतना ही बल देते हैं जितना साध्य पर। लेकिन मार्क्स के अनुसार अपने लक्ष्य की प्राप्ति येन केन प्रकारेण होनी चाहिए।

३ अहिंसा गांधीवाद की आत्मा है किन्तु मार्क्सवाद का भवन हिंसा की कब्र पर खड़ा हुआ है।

४ सत्य और अहिंसा गांधीवाद का आधार रहा है। मार्क्स के अनुसार ये सब साधन स्वाभावी हैं।

५ गांधीजी बड़े उद्योगों के यंत्रीकरण के विरोधी हैं जबकि मार्क्सवादी इसके समर्थक हैं।

६ गांधीजी राजनीति को धर्मयुक्त मानते हैं जबकि मार्क्स धर्म को अफीम की गोली कहकर उसका उन्मूलन करना चाहता है।

७ गांधीजी का अहिंसा प्रधान राज्य पूर्ण प्रजातांत्रिक है जबकि मार्क्स के अनुसार संक्रमण काल में मजदूर वर्ग की तानाशाही होगी।

८ गांधीजी समस्त व्यक्तियों के विचारों का परिवर्तन कर समाज का रूप बदलना चाहते हैं जबकि मार्क्सवादी बाह्य परिस्थितियों में परिवर्तन करके व्यक्ति को नया बनाना चाहते हैं। गांधीवाद में आस्तिकता, पवित्रता व नैतिकता और व कारण यह मार्क्सवाद से श्रेष्ठ है।

गांधीवाद और समाजवाद

क्या गांधीजी को समाजवादी कहना उचित है? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम समाजवाद का क्या अर्थ लगाते हैं। वैसे गांधीजी व्यक्तिवादी विचारक थे। व्यक्ति द्वारा सत्य की प्राप्ति ही उनका ध्येय है। गांधीजी वर्ग संघर्ष के विरोधी थे। वे पूंजीपतियों का नाश भी नहीं करना चाहते थे। आधुनिक समाजवाद के विपरीत वे औद्योगीकरण और यंत्रीकरण के विरोधी थे। इन सबके बावजूद भी गांधीजी एक महान् समाजवादी थे। उनका समाजवाद धर्म का मार्ग था। वह आधुनिक समाजवाद नहीं था। वह भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित सत्य अहिंसा का एक अनोखा समाजवाद है। निम्न कारणों से गांधीजी को समाजवादी कहा जा सकता है—

(१) वे समाज में आर्थिक समानता के पक्षपाती थे। उनके अनुसार सभी व्यक्ति इसका तर्क यही है कि यदि प्रत्येक स्वतन्त्रता व महत्त्वपूर्ण जीवन जीना चाहता है और संसार के लिए वस्तुओं की मांग है तो सब मंत्री, डॉक्टर, वकील, शिक्षक, व्यापारी और अन्य लोग दिनभर के काम के लिए समान पारिश्रमिक प्राप्त करेंगे।' 'प्रत्येक व्यक्ति को संतुलित भोजन एवं सुन्दर मकान रहने के लिए, बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधायें और उचित चिकित्सा प्राप्त होनी चाहिए।

(२) वे सामाजिक समानता के भी समर्थक थे। उनके अनुसार सभी व्यक्तियों और व्यवसायों की प्रतिष्ठा समान होनी चाहिए। गांधीजी के समाजवाद में राजकुमार और कृषक, धनी और गरीब, स्वामी और मजदूर सभी समान स्तर पर हैं।

(३) गांधीजी पूंजीपतियों का विनाश नहीं अपितु पूंजीवाद को समाप्त करना चाहते थे। मैं पूंजी का केन्द्रीकरण चाहता हूँ किन्तु कुछ के नहीं सबके हाथों में।

(४) बड़े उद्योगों के विरोधी होते हुए भी आज के युग में उसकी समाप्ति को असम्भव मानते हुए उन्होंने कहा था मैं यह कहने के लिए पर्याप्त समाजवादी हूँ कि ऐसी फैक्टरियों का राष्ट्रीयकरण या राज्य नियन्त्रण होना चाहिए।

(५) गांधीजी एक अहिंसात्मक समाजवाद के प्रवर्तक थे। हमारा समाज अहिंसा पर आधारित होना चाहिए और पूंजी और श्रम तथा जमींदार और कृषक में सामंजस्य पूर्ण सहयोग होना चाहिए।

वास्तव में गांधीजी पूर्णत समाजवादी थे। उनके समाजवादी विचारों का स्रोत मार्क्स नहीं गीता और उपनिषद् है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

Ahluwalia M M Freedom Struggle in India
Ahmed Khan A The Founders of Pakistan
Alexender H G India Since Cripps
Anand C L Introduction to the History of the Government of India
Andrews C F & Mukerjee G The Rise and Growth of Congress in India
Aril Seal The Emergence of Indian Nationlism
Archbold W A J ou nes of Indian Constitutional History
Athalye D A The Life of Lok... ..., Tilak
Auber The Rise and Progrees of British Po⁻er in India
Azad Abul Kalam India wins Freedom
Bahadur Lal The Muslim League Its History Activities and Achievements
Banerjee A C Indian Constitutional Documents Vols I & A Nation in the Making
Basu N K Studies in Gandhism
Besant Annie How India Wrought Freedom
Bose S M The Working Constitution in India
Bose Subhas The Indian Struggle
Boyd British Politics in Transition
Brown C & Dey A K India s Mineral Wealth Cambridge History of India Vol V
Tara Chand The History of Freedom Movement in India Vol I
Chatterjee Amiya The Constitutional Development of India
Chatterjee A C India s Struggle for Freedom
Chaudhry B M Muslim Politics in India
Chesney Indian Polity
Chirol V Indian Unrest
Churchill W The Second World War the Grand Alliance Vol III
Congress Punjab Enquiry Committee Report
Coupland R The Indian Problem
The Cripps Mission
Cox Phillip Beyond the White Paper
Curtis Dyarchy
Darda R S Feudalism to Democracy

Desa A R Social Background of Ind an Nationlism
Dhawan G N Th Political Philosophy of Mahtama Gandhi
Disorders Inquiry Committee Report 1921
Durrani F K The Meani of Pakistan
Dutt Indian Culture
East India Company Act 1773
Emb ee Ainslee T 1857 in India Mutiny or War of Independence
F aser Lovet India under Curzon and After
Gandhi M K The Story of My Experiments with Truth
Gangulee N The Making of Federal India
G iffiths Sir Percival British Impact on India
Gupta D C Ind an National Movement
Gupta N N Gandh and Gandhism
Gurdev Sing Role of Ghadar P ational Movement
Holmes A Hi tory of Ind r Mutiny
Ilbert Governm of India Historical Survey
Inder Parakash Hindu Mahasabha
Indian N onl Congress 1940 46
India Sedition Committee Report 1918
n Lord Some Aspects of Indian Problem
Ijenger R S Ind an Constitution
Jain P C Economic Problems of India
Ka markar D P Bal Gangadhar Tilak
Keith A B Speeches and Documents on Indian Policy Vol I
Constitutional History of India
Kerala Putra Working of Dyarchy in India 1919 1928
Kunte a d Seletora Constitutional History of India
कोसम्बी डी डी प्राचीन भारत की सस्कृति एव सभ्यता ।
L vett V rn y A History of The Indian Nationlist Movement (1600 1919)
Macdo ld The Awakening of India
Mack m Ma iot Village India
Madh a Rao The Indian Round Table Conference and After
Mahajan V D Nationl Movement in India and its Leader
Mathu L P Indian Revolutionary Movement in U S A
Majumdar Ray Cha dh ri & Datta An Advance History of India
Majmd r R C Studies in the Cultural History of India
The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857
History of the Freedom Movement in India
Mehta A & Achy t P The Communal Triangle
Montague Edwi S A Study of Indian Polity
An Indian Diary

Mehrotra S R The Emergence of Indian Nationl Congress
Menon V P The Transfer of Power in India
Mukerjee Indian Constitutional Documents
Murkejee R K Fundamental Unity of India
Nehru J L Discovery of India
Towards Freedom
Nevinson The New Spirit in India
Noman Mohammad Muslim India
Phillips C H The Evolution of India and Pakistan
Punniah K V Constitutional History of India
Raghuvanshi V P S Indian National Movement and Thought
Raj Jagdish The Mutiny and British Land Policy in North India (1856 1868)
Ray P C Life and Times of C R Das
Reddaway W B The Development of Indian Economy
Rajendra Prasad India Devided
Report of the All Parties Conference (Nehru Report)
Report of the Sedition Committee (Rowlatt Report)
Report of the Reforms Inquiry Committee (Muddiman)
Report on the Indian Constitutional Reforms (1918)
Report of the Indian Statutory Commission Vol I
Robert P E History of British India
Savarkar V D The Indian War of Independence (1857)
Sethi R R & Mahajan V D Constitutional History of India
Shah K T Provincial Autonomy
Sharma D S Hinduism Through the Ages
Sharma Shriram Constitutional History of India
Singh G N Land Marks in Indian National and Constitutional Development
Singh Khushwant The History of Sikhs Vol II
Singh Harbans The Heritage of the Sikhs
Smith Oxford History of India
Sinha Sasdhar Indian Independence in prospective
Sitaramayya B Pattabhi The History of Indian Nationl Congre s
Sukla B D A History of Indian Liberal Party
Tendulkar D C Mahatma
Thakore B K Indian Administration to the Dawn of Responsible Government
The Indian Annual Register Parts II III and IV
Vyas K C The Social Renaissance in India
Varma V P Political Philosophy of Mahatma Gandhi